हिंदी वीरकाव्य

(१६००—१८००ई०)

स्वर्गीया माता

श्रीमती पन्नादेवी

एवं

स्वर्गीय पिता

ठाकुर धारासिंह तोमर

की

पुण्य-स्मृति

को

सादर समर्पित

प्रकाशकीय

हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद का सदैव यह प्रयत्न रहा है कि हिंदी में महत्वपूर्ण एवं खोजपूर्ण मौलिक ग्रंथों का प्रकाशन किया जाए। प्रस्तुत पुस्तक 'हिंदी वीरकाव्य (१६००–१८०० ई०)' डा० टीकमसिंह तोमर की इसी प्रकार की एक कृति है। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी द्वारा डी० फ़िल्० उपाधि के लिए इस रचना को स्वीकृत किया जा चुका है।

हिंदी साहित्य में वीरकाव्य-धारा का एक विशेष स्थान है। इस विषय पर कुछ संग्रह तथा संक्षिप्त अध्ययन प्रकाशित हो चुके हैं, किंतु वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित ढंग से संपूर्ण धारा के अध्ययन का प्रथम प्रयास वर्तमान लेखक ने ही किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में वीरकाव्य के प्रमुख एवं प्रतिनिधि कवियों के ग्रंथों का रचना-काल, कथानक, चरित्र-चित्रण, रस, अलंकार, छंद, प्रकृति-चित्रण, शैली तथा भाषा की दृष्टि से विवेचन किया गया है। द्वितीय खंड में इन रचनाओं में प्रयुक्त तिथियों, पात्रों, घटनाओं आदि की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर विचार करके मौलिक निष्कर्ष उपस्थित किए गए हैं। इस प्रकार प्रस्तुत कृति साहित्य और इतिहास दोनों दृष्टियों से अत्यंत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है।

आशा है इस धारा के अन्य उपेक्षित अंगों का अधिक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए विद्वान् लेखक सचेष्ट और प्रयत्नशील रहेंगे।

धीरेंद्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

हिंदुस्तानी एकेडेमी
उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

प्राक्कथन

हिंदी वीरकाव्य-धारा गंभीर एवं वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से अभी तक उपेक्षित रही है। इसके कतिपय कवियों पर थोड़ा बहुत आलोचनात्मक कार्य अवश्य हुआ है, पर इन सभी ग्रंथों में परीक्षार्थियों की कठिनाइयों को ही ध्यान में रक्खा गया है। इनमें उस विस्तृत और सूक्ष्म विवेचन का, जो शोध-कार्य के लिए अपेक्षित है, अभाव है। अतः अनुसंधान एवं वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत निबंध को इस क्षेत्र में अपने ढंग का प्रथम प्रयास समझा जाना चाहिए।

इस ग्रंथ में हिंदी वीरकाव्य (१६००–१८०० ई०) का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह दो भागों में विभाजित है—(१) साहित्यिक अध्ययन एवं (२) ऐतिहासिक अध्ययन। इसके प्रथम खंड में—ग्रन्थ-परिचय, कथानक, चरित्र-चित्रण, रस, अलंकार, छंद, प्रकृति-चित्रण, शैली और भाषा—ये आठ अध्याय हैं। इनमें प्रतिनिधि कवियों एवं उनके ग्रंथों का विवेचन किया गया है। साथ ही प्रत्येक अध्याय के आरंभ में हर एक विषय का सामान्य परिचय भी दे दिया गया है, जिससे संपूर्ण धारा का तद्विषयक ज्ञान पाठक को प्राप्त हो सके।

इस निबंध का द्वितीय खंड ऐतिहासिक अध्ययन से संबंधित है। इसमें ग्यारह अध्याय हैं। इनके अन्तर्गत प्रत्येक ग्रंथ में वर्णित तिथियों, वंश, पात्रों, घटनाओं तथा सेनाओं आदि की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर मौलिक एवं प्रामाणिक इतिहास-ग्रंथों की साक्ष्य से विचार किया गया है। इस तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् जो परिणाम और धारणायें निश्चित की गई हैं उनमें कुछ नवीनता एवं मौलिकता विद्वान् पाठकों को अवश्य प्रतीत होगी।

इस ग्रंथ में दो परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट १ में चुने हुए सहायक-ग्रन्थों की सूची है। परिशिष्ट २ में नामानुक्रमणिका है, जिसमें प्रधान व्यक्तियों तथा स्थानों आदि के नामों को दिया गया है।

अपने इस कार्य के करने से मुझे जिन महानुभावों से पूर्ण प्रेरणा एवं सहायता मिली है उनमें सर्वप्रथम स्थान पूज्य डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम ए०, डी० लिट्० (पेरिस), अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय का है। मैंने आपके तत्वावधान में रहकर ही इस कार्य को पूरा किया है। आपने मेरे अध्ययन का मार्ग निर्देश ही नहीं किया है वरन् सदैव सभी प्रकार की सहायता और सुविधाएँ भी प्रदान करते रहे हैं। अतएव आपके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

दूसरे व्यक्ति, जिनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, डॉ० बनारसी प्रसाद जी सक्सेना, एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन), अध्यक्ष, इतिहास-

विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय हैं। इस निबंध के ऐतिहासिक अध्ययन को वर्तमान रूप देने में आपने ही मेरा पथ-निर्देश किया है। खोज काल में उक्त डाक्टर साहब सदैव निस्संकोच भाव से मेरी सहायता करते रहे हैं। इसके लिए मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

इसके अतिरिक्त प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष डा० बाबूराम सक्सेना, एम० ए०, डी० लिट्० तथा डा० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर हिंदी विभाग के प्रति आभार प्रदर्शित करना भी मेरा परम कर्तव्य है, क्योंकि आप महानुभावों से समय समय पर मुझे उचित सुझाव एवं परामर्श मिलते रहे हैं। साथ ही डा० माताप्रसाद जी गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्, रीडर हिन्दी-विभाग से भी मुझे सदैव पर्याप्त सहायता मिलती रही है। तिथियों की गणना करने में आपने मेरी विशेष रूप से सहायता की है, जिसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। हिंदी के प्रसिद्ध महाकवि पद्माकर के जयपुर निवासी वंशजों के प्रति आभार प्रदर्शित करना भी मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने पद्माकर संबंधी संपूर्ण अप्रकाशित सामग्री मुझे दिखाने की कृपा की।

इसके अतिरिक्त म्युनिस्पल म्युज़ियम प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, तथा महाराजाज़ पब्लिक लाइब्रेरी जयपुर के प्रबन्धकों एवं अधिकारियों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ, जिन्होंने वहाँ जाने पर उपयोगी सामग्री देखने की अनुमति एवं सुविधायें प्रदान करने की कृपा की। उन लेखकों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिनकी अमूल्य कृतियों से मैंने लाभ उठाया है।

साथ ही मैं बलवंत राजपूत कॉलेज आगरा की प्रबंध-समिति, आनरेरी सेक्रेटरी राव कृष्णपाल सिंह ऑव् अवागढ़, प्रिंसिपल रामकरणसिंह एम० ए०, डी० एड्० (हार्वर्ड) तथा श्री पी० सी० गोस्वामी प्रिंसिपल, बलवंत राजपूत हाई स्कूल आगरा के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ जिन्होंने दो वर्ष से अधिक समय का अवकाश स्वीकार करने की कृपा की, जिससे मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में रहकर इस कार्य को संपन्न कर सका।

विजयादशमी, २०११ वि०

टीकमसिंह तोमर

बलवंत राजपूत कॉलेज,
आगरा।

विषय-सूची

द्वितीय खंड : ऐतिहासिक अध्ययन

संकेत-चिह्न-सूची

अला० मु० खि०	=	अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी
इं० गज़े० आव् इं०	=	इंपीरियल गज़ेटियर ऑव् इंडिया
उ० इति०	=	उदयपुर राज्य का इतिहास
ए० सो०	=	एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल
औरंगज़ेब	=	हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब
के० हि० इं०	=	केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया
खं०	=	खण्ड
ग०	=	गुरु
गो० बा० क०	=	गोरा बादल की कथा
छं०	=	छंद
ज० ए० सो० आव् बं०	=	जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल
जहाँगीर	=	हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर
जा० ग्रं०	=	जायसी-ग्रंथावली
टा० रा०	=	टाड-राजस्थान
डि०	=	डिस्ट्रिक्ट
त०	=	तगण
तृ०	=	तृतीय
द्वि०	=	द्वितीय
दे०	=	देखिए
न०	=	नगण
न० सं०	=	नवीन संस्करण
ना० प्र० प०	=	नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी
पृ०	=	पृष्ठ
पृ० महा० पृ० वि० महा०	=	पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य
प्रे० सं० इं० डि०	=	प्रेक्टीकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी
भ०	=	भगण
भा०	=	भाग
भा० प्रा० राज०	=	भारत के प्राचीन राजवंश
म०	=	मगण
मा०	=	मात्रिक

य०	=	यगण
र०	=	रगण
रा० का इति०	=	राजपूताने का इतिहास
ल०	=	लघु
व०	=	वर्णिक
वि०	=	विक्रमी
श्लो०	=	श्लोक
सं०	=	संख्या
स०	=	सगण
सि० फ्रॉ० हिं० लिट्०	=	सिलेक्शंस् फ्रॉम हिंदी लिट्रेचर
ह० महा०	=	हम्मीर-महाकाव्य
ह० रासो	=	हम्मीररासो
ह० आव् रण०	=	हम्मीर ऑव् रणथम्भौर
हिं० सा० इ०	=	हिंदी साहित्य का इतिहास
हि० आव् इं०	=	हिस्ट्री ऑव् इंडिया
हि० आव् मे० हिं० इं०	=	हिस्ट्री ऑव् मेडीवल हिंदू इंडिया

भूमिका

(१)

(अ) हिंदी वीरकाव्य की परिभाषा

प्रत्येक भाषा का साहित्य अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक तथा अन्य प्रकार की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब होता है। जब हिंदी साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। हिंदी साहित्य की उत्पत्ति के समय से ही भारतवर्ष छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभाजित था। इन राज्यों में आए दिन युद्ध होते रहते थे। इन राज्यों के शासकों के आश्रित कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा किया करते थे। यह कवि प्रायः चारण, भाट आदि हुआ करते थे। वीरकाव्य की यह परंपरा हिंदी साहित्य के स्वर्णयुग— भक्ति-काल—में होती हुई रीतिकाल तक समानांतर रूप से चलती रही और अब भी प्रवाहित हो रही है। यह दूसरी बात है कि युग-विशेष में विशेष परिस्थितियों और भावनाओं की प्रधानता के कारण उसका रूप आक्रांत होता रहा हो। आलोच्यकाल में एक ओर तो रीति-ग्रंथों का निर्माण होता रहा और दूसरी ओर यह कवि अपने आश्रयदाताओं के युद्धों एवं वीरतापूर्ण कार्य-कलापों का गुण-गान करते रहे। इस काल में कुछ ऐसे कवि थे जो आदिकालीन चारण-धारा के समान कोरी प्रशंसात्मक ही कविता किया करते थे, पर कुछ ऐसे प्रतिभासंपन्न कवि भी थे जो अपने आश्रयदाताओं के वास्तविक गुणों का ही बखान करते थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इन कवियों में से अधिकांश का चारण जाति से कोई संबंध नहीं था।

उपर्युक्त विवेचन का अभिप्राय यह है कि प्रस्तावित अध्ययन के अंतर्गत उन सभी कवियों को सम्मिलित किया गया है जिन्होंने ऐतिहासिक घटना को लेकर अपने ग्रंथों का निर्माण किया है अथवा अपने आश्रयदाताओं अथवा उनके पूर्वजों की प्रशंसा की है। इसी अर्थ में 'वीरकाव्य' शब्द का प्रयोग इस धारा के अध्ययन के लिए किया गया है।

(आ) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अध्ययन के लिए प्रस्तावित काव्य के यथातथ्य स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह समीचीन प्रतीत होता है कि भारतवर्ष की तत्कालीन ऐतिहासिक, समाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय प्राप्त कर लिया जावे। इसीलिए नीचे क्रमशः इन्हीं विषयों पर अत्यंत संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

आलोच्य काव्यधारा का प्रारंभ मुग़ल सम्राट् अकबर के शासन-काल (१५५६-१६०५ ई०) के उत्तरार्द्ध के अंतिम वर्षों में प्रारंभ हुआ था। जिस समय वह सिंहासनारूढ़ हुआ था उस समय भारतवर्ष कई स्वतंत्र राज्यों में विभाजित था। पर अकबर ने इनमें से कई स्वतंत्र राज्यों पर विजय प्राप्त करके उन्हें राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधने का सफल प्रयत्न किया। अपने इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने में उसे उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश, राजस्थान, बुंदेलखंड, उत्तरी भारत के

अन्य प्रदेश तथा दक्षिण में एक बार नहीं अनेक बार युद्ध करने पड़े। अंत में वह एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ जो उस समय विस्तार, शक्ति एवं वैभव की दृष्टि से संपूर्ण संसार में अनुपम था।

अकबर की मृत्यु के उपरांत जहाँगीर सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके गद्दी पर बैठने के कुछ समय के उपरांत शाहज़ादा ख़ुसरो ने विद्रोह किया जो पकड़कर बंदीगृह में डाल दिया गया। अंत में उसकी मृत्यु हो गई। कंधार का घेरा, मेवाड़ के द्वारा अधीनता स्वीकार करना, दक्षिण के युद्ध, तथा काँगड़ा की विजय आदि इसके शासन की प्रमुख घटनाएं हैं। साथ ही जहाँगीर और नूरजहां का विवाह, शाहजहां तथा महाबत खां के विद्रोह भी विशेष उल्लेखनीय हैं, क्योंकि इन घटनाओं का प्रभाव संपूर्ण साम्राज्य पर पड़ा था। जहाँगीर ने भी अकबर की नीति का अनुकरण करते हुए साम्राज्य के ऐश्वर्य और वैभव को बढ़ाने की सफल चेष्टा की थी। अंत में २८ अक्तूबर, १६२७ ई० को उसका देहांत हो गया।

जहाँगीर के पश्चात् उसका पुत्र शाहजहां सिंहासनारूढ़ हुआ। इसके शासन-काल में वीर सिंह बुंदेला के पुत्र जुझार सिंह ने दो बार विद्रोह किया। वह अंत में मार डाला गया। खां जहां लोदी ने भी सिर उठाया, जिसके फलस्वरूप उसका सिर काट डाला गया। शाहजहां को पुर्तगालवासियों से भी कई युद्ध करने पड़े (१६३१-३२ ई०)। उसे दक्षिण में भी कई लड़ाइयां करनी पड़ीं जिनमें सम्राट् के तृतीय पुत्र औरंगज़ेब ने बड़ी वीरता एवं कार्य-पटुता का परिचय दिया। इसके राज्य की अन्य उल्लेखनीय घटना कंधार-युद्ध संबंधी है जहाँ इसने तीन बार सेनाएं भेजीं। अंतिम तृतीय युद्ध में इसे पराजित होना पड़ा।

शाहजहां के शाहज़ादों में १६५८ ई० में उत्तराधिकार-युद्ध हुआ जिनमें विजयी होकर औरंगज़ेब सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने अपने निकटवर्ती सभी संबंधियों की हत्या करवा दी और मयूर सिंहासन तथा ताज के निर्माणकर्ता अपने पिता शाहजहां को आगरे के दुर्ग में बंदी बना दिया, जहां पर २१ जनवरी, १६६६ ई० को उसका देहावसान हो गया।

औरंगज़ेब ने सम्राट् बनते ही मुग़ल साम्राज्य की अकबर के समय से प्रचलित होनेवाली नीति में एकदम परिवर्तन कर दिया। वह हिंदुओं के प्रति कट्टरता का व्यवहार करने लगा। परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण देश में क्रांति और विद्रोह की ज्वाला धधकने लगी। हिंदू, जो लगभग एक शताब्दी से मुग़ल साम्राज्य के स्तंभ थे, शत्रु बन गए। अतः दक्षिण में मराठा साम्राज्य, राजपूताना में जोधपुर, मेवाड़, मथुरा के आस-पास के जाट तथा सतनामी एवं बुंदेलखंड में बुंदेला विद्रोह करने लगे। साथ ही सिक्खों ने भी स्वतंत्रता का झंडा फहराना आरंभ कर दिया।। यही नहीं, सुन्नी मुसलमान होने के कारण औरंगज़ेब दक्षिण के शीया राज्यों की स्वतंत्रता का अपहरण करने के लिए तैयार हो गया। औरंगज़ेब का समस्त जीवन उक्त शक्तियों से युद्ध करने में ही व्यतीत हुआ। अंत में दक्षिण के मराठों से युद्ध करते हुए २० फरवरी, १७०७ ई० को औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई।[1]

औरंगज़ेब की नीति के कारण मुग़ल राज्य की दशा जीर्ण-शीर्ण हो गई थी। कहीं पर भी

---

[1] डा० ईश्वरीप्रसाद : ए शार्ट हिस्ट्री अव् मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ३१६-६४७; कैंब्रिज हिस्ट्री अव् इंडिया, भाग ४, पृ० ७०-३१८

सुख एवं शांति के दर्शन नहीं हो रहे थे। देशव्यापी युद्धों के कारण वीर-भाव एवं नवीन जाग्रति हिंदू जाति में दिखलाई देने लगी थी।

औरंगज़ेब की मृत्यु के उपरांत उत्तराधिकार के युद्ध में सफल हो जाने पर बहादुरशाह सम्राट् बना। २७ फरवरी, १७१२ ई० को उसका देहांत हो जाने पर उसके पुत्रों में लड़ाई हुई जिसमें सफल होकर मुईज़ुद्दीन जहाँदारशाह शासक बना। वह लगभग ११ मास तक शासन कर सका, जिसके उपरांत उसे युद्ध में पराजित करके फ़र्रुख़सियर दिल्ली के सिंहासन का स्वामी बना (जनवरी १७१३ ई०)। यह दुर्बल, कापुरुष एवं साधारण शासक था। शीघ्र ही इसके राज्य की सारी शक्ति सैयद भ्राताओं के हाथों में चली गई। कालांतर में सम्राट् और सैयदों में अनबन हो गई। अंत में फ़र्रुख़सियर को गद्दी से उतार कर अंधा बना दिया गया, तथा बाद को वह मार डाला गया।

फ़र्रुख़सियर के पश्चात् रफ़ीउद्दरजात तथा रफ़ीउद्दौला क्रमशः शासक बनाए गए, पर कुछ मासोपरांत उनके शासनों का अंत होगया। इसके अनंतर मुहम्मद शाह सिंहासनारूढ़ हुआ (१७१६ ई०)। इसके शासन-काल में दक्षिण, अवध, बंगाल स्वतंत्र हो गए, मराठे शक्तिशाली बन गए, आगरे के निकट जाट स्वाधीन हो गए, पंजाब में सिक्ख अपराजेय बन गए तथा रुहेलों ने रुहेलखंड राज्य स्थापित कर लिया। साथ ही अफ़ग़ानों के आक्रमणों ने नष्टप्राय मुग़ल-साम्राज्य की जड़ें हिला दीं।

मुहम्मदशाह के बाद उसका पुत्र अहमदशाह शासक बना, पर १७५४ ई० में वह गद्दी से उतार दिया गया। उसके पश्चात् आलमगीर द्वितीय गद्दी पर बैठा, पर वह नाम-मात्र का बादशाह था। वज़ीर की आज्ञा से उसकी हत्या कर दी गई। तदनंतर शाहआलम द्वितीय सम्राट् बना। उससे अँग्रेज़ों ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की। वह कुछ समय तक मराठों की संरक्षता में रहा, जो भारत में उस समय सबसे अधिक शक्तिशाली थे। बक्सर के युद्ध में उसने शुजाउद्दौला की सहायता की, पर वह अँग्रेज़ों की बढ़ती हुई शक्ति को रोक न सका। १८०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र अकबर द्वितीय देहली में शाही उपाधि के साथ १८३७ ई० तक रहा।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है औरंगज़ेब के पश्चात् मुग़ल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हुआ। सम्राट् की दुर्बलता दरबारी अमीरों की प्रबलता एवं स्वार्थपरता, नादिरशाह का आक्रमण (फ़रवरी १७३६ ई०), अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों, मराठों की शक्ति-संपन्नता आदि के फलस्वरूप समस्त देश में राजनीतिक अनिश्चितता व्याप्त होगई और अविरल रूप से उथल-पुथल होती रही। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्र की एकता छिन्न-भिन्न होगई और अलग-अलग राज्य बन गए। साथ ही विदेशी शक्तियां भी अपने भाग्य की परीक्षा करने में जुट गई। पारस्परिक संघर्षों में विजयी होकर ईस्ट इंडिया कंपनी अपनी सत्ता जमाने में सफलता प्राप्त करने लगी।[1]

इन्हीं ऐतिहासिक परिस्थितियों में रह कर आलोच्य-कालीन कवियों ने अपने ग्रंथों का निर्माण किया। इनमें से अधिकांश घटनाओं का विवरण उनकी रचनाओं में पाया जाता है जिनका ऐतिहासिक अध्ययन में यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है।

---

[1] कैंब्रिज हिस्ट्री अव् इंडिया भाग ४, पृ० ३१९-४४८; टेक्स्ट बुक अव् माडर्न इंडियन हिस्ट्री, भाग २, पृ० २६-१७०।

(इ) सामाजिक परिस्थिति

मुग़लों के समय में सामंतशाही के आधार पर समाज की व्यवस्था की गई थी। राजा के नीचे मंसबदार होते थे। दरबार वैभव और संस्कृति का केंद्र माना जाता था। दरबार से बाहर प्रदेश में दरिद्रता और दुःख प्रचुर मात्रा में वर्तमान रहते थे। इसी कारण से प्रत्येक प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति शाही नौकरी करना तथा दरबार में रहना श्रेयस्कर समझता था। मुग़ल अमीर अपने आश्रयदाता के समान आमोद-प्रमोदमय जीवन व्यतीत किया करते थे। आय की अपेक्षा उनके व्यय अधिक होते थे। मदिरा का प्रचार अधिक था। अंतःपुर में स्त्रियों को अधिक संख्या में रखा जाता था। नर्तकियों का भी प्रचलन था। उत्तम भोजन करना व्यवहार में था। मांस-भक्षण किया जाता था, पर गौ की प्रतिष्ठा की जाती थी। फल और बर्फ़ अधिकता से प्रयुक्त होते थे। अधिक मूल्यवान् वस्त्र तथा आभूषणों का प्रयोग होता था। द्यूत-क्रीड़ा प्रचलित थी। उत्तम एवं सुसज्जित भवन निर्मित हुआ करते थे। इस प्रकार अमीर लोग अपनी सारी आय व्यय कर दिया करते थे।

मध्यम श्रेणी के लोग उपर्युक्त कृत्रिम जीवन से विरत रहते थे। उनका जीवन अपेक्षाकृत सुखी था। व्यापारी अपना धन गुप्त रखा करते थे। वे मितव्ययतापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।

निम्न श्रेणी के व्यक्तियों का जीवन कष्टमय एवं दुखी था। उनके वस्त्र थोड़े होते थे। ऊनी वस्त्रों का प्रयोग वे नहीं करते थे तथा देश के कुछ भागों में जूतों का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता था। पर दुर्भिक्ष के समय के अतिरिक्त खाद्य पदार्थों का अभाव नहीं था। अकबर के समय में कृषक-वर्ग सामान्यतया सुखी था। हिंदुओं में सती-प्रथा तथा बाल-विवाह प्रचलित थे।

जहाँगीर के समय में अमीरों की विलासिता चरम सीमा को पहुँच गई थी। नौकरों को पर्याप्त वेतन नहीं दिया जाता था। उनसे बलपूर्वक कार्य लिया जाता था। वे केवल एक बार भोजन करते थे। उनके मकान छप्पर के हुआ करते थे। नौकरों की संख्या अधिक हुआ करती थी, क्योंकि वेतन कम होता था। हिंदू चतुर व्यापारी थे। मुसलमान रँगरेज़ और जुलाहे का काम किया करते थे। ज्योतिष, शकुन आदि में विश्वास किया जाता था।

शाहजहां के शासन के अंतिम दिनों में समाज की दशा बिगड़ने लगी थी। सड़कें सुरक्षित नहीं रह गई थीं। भिक्षा माँगना अधिक प्रचलित था।

औरंगज़ेब के समय में समाज की दशा और भी बिगड़ गई थी। अमीरों का नैतिक पतन हो गया था। ज्योतिष तथा जादू-टोना में विश्वास किया जाता था। दरबारी लोग मौलिकता तथा प्रतिभामयी स्फूर्ति से कोसों दूर थे। वे आमोद-प्रमोद के लिए धन पानी की तरह बहाया करते थे। दासता वर्त्तमान थी। हिजड़ों का प्रचलन था। उत्कोच स्वीकार किया जाता था। पर साधारण जनता उक्त अवगुणों से रहित थी।

अट्ठारहवीं शताब्दी में सामाजिक जीवन पतन के गर्त में तीव्र गति से गिरने लगा था। पर हिंदू और मुसलमान साधारणतया प्रेमपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे, यद्यपि उनमें राजनैतिक वैमनस्य वर्तमान था[1]।

---

[1] ए शार्ट हिस्ट्री अव् मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ६४८-६५४; एन एडवांस्ड हिस्ट्री अव् इंडिया, पृ० ५६६-५६६; टेक्स्ट बुक आव् माडर्न इंडियन हिस्ट्री, भाग ३, पृ० २८-३८

कहने की आवश्यकता नहीं है कि आलोच्य कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के ऐश्वर्य, वैभव, दरबार, प्रासाद, वेश-भूषा आदि का यथास्थान विस्तृत वर्णन किया है, जो इस बात को सिद्ध करता है कि ये कवि अपने समय के सामाजिक जीवन से परिचित एवं प्रभावित थे।

(ई) धार्मिक प्रवृत्तियां

सोलहवीं शताब्दी के अंत तक भारतवर्ष में देशव्यापी धार्मिक आंदोलनों का प्रवाह प्रवाहित हो चुका था। इन धार्मिक सुधारों का सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में प्रभाव पूर्ण-रूप से वर्तमान रहा था। इसके साथ ही आलोच्य काल में विविध प्रकार के अन्य धार्मिक संप्रदायों की भी स्थापना हुई थी।

वीरभान नामक साधु ने, जिसका जन्म १५४७ ई० में हुआ था, सतनामी धर्म की नींव डाली थी। इसके अनुयायी अधिकतर मेवात में वर्तमान थे, क्योंकि यही स्थान उसके प्रचार का केंद्र था। इसके अतिरिक्त सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में लालदासी संप्रदाय के प्रवर्तक लालदास का आविर्भाव हुआ। इसके साथ ही बाबालाल नामक अन्य सुधारक ने अपने सिद्धांतों का प्रचार किया था। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में क्षत्रिय वंश में प्राणनाथ नामक महात्मा का जन्म हुआ, जो छत्रसाल बुंदेला के धर्मगुरु थे। इन्होंने धामी नामक संप्रदाय की नींव डाली थी। उपर्युक्त सुधारकों के अतिरिक्त जगजीवन, चरणदास, गुलाब आदि अन्य धार्मिक संप्रदाय-संस्थापक उत्पन्न हुए थे।

इस काल में दक्षिण प्रदेश में संत तुकाराम (जन्म १६०८ ई०) तथा समर्थ रामदास आदि महात्माओं[1] ने अवतीर्ण होकर धार्मिक सुधारों का बिगुल बजाया था, जिससे प्रभावित होकर वीर केशरी शिवाजी ने हिंदूधर्म-रक्षार्थ सफल प्रयत्न किए थे।

ऊपर जिन धार्मिक आंदोलनों का उल्लेख किया गया है, उनमें से अधिकांश का प्रभाव आलोच्य धारा के कवियों पर पड़ा था। उदाहरणार्थ, गोरेलाल ने 'छत्रप्रकाश' में स्वामी प्राणनाथ के सिद्धांतों का वर्णन किया है। इसी प्रकार से अन्य ग्रंथ भी इन धार्मिक प्रभावों के लिए देखे जा सकते हैं।

(उ) साहित्यिक प्रवृत्तियां

जैसा कि कहा जा चुका है आलोच्य काल का प्रादुर्भाव अकबर के शासन के अंतिम वर्षों में हुआ था। इस सम्राट् का राज्य-काल हिंदी भाषा के लिए स्वर्ण-युग था। इस युग में एक ओर भक्तिकाव्य-प्रवाह उमड़ा, तथा दूसरी ओर अनुकूल परिस्थिति पाकर वीर, शृंगार और नीति की कविताओं के आविर्भाव के लिए विस्तृत क्षेत्र खुल गए। फुटकर कविताएँ अधिकतर इन्हीं विषयों को लेकर छप्पय, कवित्त-सवैयों और दोहों में हुआ करती थीं। मुक्तक रचनाओं के अतिरिक्त प्रबंध-काव्य-परंपरा ने भी ज़ोर पकड़ा और अनेक अच्छे-अच्छे आख्यान-काव्य भी इस काल में लिखे गये।

इसमें संदेह नहीं कि अकबर के राजत्व-काल में एक ओर तो साहित्य की चलती हुई परंपरा को प्रोत्साहन मिला, तथा दूसरी ओर भक्त-कवियों की दिव्य वाणी का स्रोत उमड़ चला। इन

[1] डा० ताराचंद इंफ्लूएंसः अव् इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० १७८-२८८

दोनों की विभूति से अकबर का राजत्व-काल जगमगा उठा और साहित्य के इतिहास में उसका विशेष स्थान हुआ।[1]

इस काल में विविध विषयपूर्ण वर्णन की प्रणाली और भी वृद्धिगत हुई। सगुण वैष्णव-साहित्य के उत्थान से सूफ़ी और निर्गुण-धाराएँ बलवती न हो सकीं। केशव के समय से आचार्यता की भी स्थापना हमारे साहित्य में हुई।[2]

हिंदी-काव्य अब पूर्ण प्रौढ़ता को पहुँच गया था। केशवदास जी ने काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। इस काल में लक्षण-ग्रंथों की भी भरमार होने लगी। कवियों ने कविता लिखने की यह एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना फिर उसके उदाहरण के रूप में कवित्त या सवैया लिखना। हिंदी साहित्य में यह एक अनूठा दृश्य खड़ा हुआ। पर सूक्ष्म विवेचन और पर्यालोचन-शक्ति का विकास नहीं हुआ।

वास्तव में इन कवियों में आचार्यत्व के गुण नहीं थे। इस युग में साहित्य-शास्त्र की गंभीर और विस्तृत विवेचना तथा नई-नई बातों की उद्भावना नहीं हो सकी। केशव को अलंकारवादी कहते हैं। शेष कवि इसको ही काव्य की आत्मा या प्रधान वस्तु मानकर चले।

इन कवियों द्वारा रसों विशेषतः शृंगार रस और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। अलंकारों की अपेक्षा नायिका-भेद की ओर अधिक झुकाव रहा। इससे शृंगार-रस के अंतर्गत बहुत सुंदर मुक्तक रचना हिंदी में हुई। नख शिख-वर्णन और षट्ऋतु-चित्रण पर कई पुस्तकें लिखी गईं। विप्रलंभ संबंधी बारहमासे भी कुछ कवियों ने लिखे।

रीति-ग्रंथों की इस परंपरा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा पड़ी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न-भिन्न चिंत्य बातों तथा जगत् के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई। उसका क्षेत्र संकुचित हो गया। वाग्धारा बँधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गए। दूसरी बात यह हुई कि कवियों की व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत ही कम रह गया।

बहुत थोड़े कवि ऐसे मिलते हैं जिनकी वाक्य-रचना सुव्यवस्थित पाई जाती है।

रीतिकाल के कवियों के प्रिय छंद कवित्त और सवैये रहे हैं। कवित्त को तो शृंगार और वीर दोनों रसों के लिए समान रूप से उपयुक्त माना गया था। वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। शृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था[3]।

इस प्रकार मोटे रूप से इस युग में दो धाराएँ—एक शृंगार तथा दूसरी वीररस-संबंधी प्रवाहित होती रहीं। मिश्रबंधुओं के शब्दों में इस भूषण और देववाले काल में उत्साह की मूर्ति

---

[1] **रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १९६-१९८**

[2] **मिश्र-बंधु-विनोद, भाग १, पृ० २४६**

[3] **हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० २३२-२४१; मिश्र-बंधु-विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ३८१-३८७-६२४-६३१**

खड़ी हो गई और वीर-रस ने हिंदी साहित्य को कुछ समय के लिए इभारोही करके छत्र-मुकुट से सुशोभित कर दिया, मानो वह साक्षात् दीपक राग का प्रतिरूप बन गया[१]।

उपर्युक्त विवरण का अभिप्राय यह है कि ऊपर लिखी हुई साहित्यिक प्रवृत्तियों में से प्रायः सभी आलोच्य धारा के कवियों में भी वर्तमान थीं जिनका विस्तृत वर्णन आगे यथास्थान किया गया है।

(२)

(अ) विषय की सीमा

अध्ययनार्थ प्रस्तावित विषय की सीमा १६००-१८०० ई० रक्खी गई है। इस काल के आरंभिक वर्षों में लिखे गए काव्यों पर १६वीं सदी के अंतिम वर्षों का प्रभाव एवं घटनावली का भी विवरण मिलता है। अतएव इस विषय का क्षेत्र १६०० ई० से कुछ वर्ष पूर्व आरंभ हुआ मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इस काल के आदिकवि केशव की काव्य-प्रतिभा अधिकांश उन्हीं वर्षों में प्रौढ़ता को प्राप्त हुई थी। इस धारा के अंतिम कवि जोधराज हैं, जिन्होंने १८२८ ई० में 'हम्मीररासो' की रचना की थी, अतएव इस अध्ययन-काल की अंतिम सीमा १८२८ ई० निर्धारित की जानी चाहिए।

इस विषय का साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टि से आगे सविस्तार अध्ययन किया गया है। आरंभ में यह विचार था कि उक्त पहलुओं के अतिरिक्त सामाजिक दृष्टि से भी इस साहित्य का अध्ययन किया जावे। इसी भावना से प्रेरित होकर सामग्री भी एकत्र की गई थी। पर इस निबंध का आकार अधिक बढ़ जाने के कारण सामाजिक अध्ययन संबंधी सामग्री का यहाँ पर उपयोग नहीं किया जा सका है। आशा है कि निकट भविष्य में उस सामग्री के आधार पर अपने अध्ययन की धारणाएँ पाठकों के समक्ष रखी जा सकेंगी। प्रस्तुत अवसर पर केवल साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन से ही संतोष किया जा रहा है।

(आ) डिंगल एवं पिंगल वीर-काव्यों में से केवल पिंगल काव्य के अध्ययन के कारण

इस संबंध में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि डिंगल और पिंगल वीरकाव्यों में से यहां पर केवल पिंगल वीर काव्यही का अध्ययन किया गया है। इसके विशेष कारण हैं। डिंगल और पिंगल दो विभिन्न भाषाएं हैं। दोनों की साहित्यिक एवं भाषा संबंधी प्रवृत्तियां अलग-अलग हैं। साथ ही दोनों भाषाओं में वीरकाव्य की अत्यधिक प्रचुरता है। ऐसी परिस्थिति में डिंगल और पिंगल वीरकाव्यों का अलग-अलग स्वतंत्र रूप से अध्ययन करना अधिक वैज्ञानिक होगा। इसीलिए केवल एक ही प्रकार के पिंगल काव्य ही का अध्ययन यहां पर किया जा रहा है।

(३)

सामग्री-प्राप्ति के साधन एवं अध्ययन की सामग्री का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तावित अध्ययन की सामग्री के लिए अधिकतर प्रकाशित ग्रंथों की ही सहायता पर निर्भर

---

[१] मिश्र-बंधु-विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ३८२

होना पड़ा है। साथ ही इस विषय से संबंधित प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्राप्य सभी रचनाओं का उपयोग करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आलोच्य धारा के अध्ययन की सामग्री प्रचुर मात्रा में वर्तमान है। इस धारा के ग्रंथ असंख्यों की संख्या में राज्यों के पुस्तकालयों एवं व्यक्तिगत अधिकारों में विद्यमान हैं। पर खेद का विषय है कि उनके प्रकाशन की ओर लोगों का बहुत कम ध्यान गया है। यही नहीं अध्ययन एवं अवलोकनार्थ चेष्टा करने पर भी उन ग्रंथों के स्वामी उन ग्रंथों को दिखलाने के लिए तैयार नहीं होते हैं।

आरंभ में आलोच्य धारा के कवियों के क्रमिक अध्ययन का विचार था पर हस्तलिखित ग्रंथों की प्राप्ति में कठिनता एवं असफलता से निराश होकर, प्रकाशित प्राप्य ग्रंथों के विस्तृत अध्ययन से ही संतोष करना पड़ा है। आगे चलकर पद्माकर-कृत 'प्रताप-विरुदावली' की हस्तलिखित कृति प्राप्त होजाने पर उसे भी अध्ययन के लिए ग्रंथ सूची में सम्मिलित कर लिया गया है। जिन ग्रंथों का विस्तृत अध्ययन किया गया है उनकी नामावली आगे दी हुई सूची (अ) में देखी जा सकती है। इन ग्रंथों के संक्षिप्त परिचय के संबंध में प्रथम खंड के अध्याय एक में विचार किया गया है।

इस संबंध में यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि कुछ प्रकाशित ऐसे ग्रंथ भी उपलब्ध हैं जिनका उपयोग इस अध्ययन में नहीं किया गया है। इस प्रकार का सर्वप्रथम ग्रंथ बनारसीदास जैन-कृत 'अर्द्धकथा' (रचनाकाल वि० सं० अगहन, १६९८-१६४१ ई०) है जिसको डा० माताप्रसाद गुप्त ने संपादित करके प्रयाग-विश्वविद्यालय से प्रकाशित कराया है। यह कवि की आत्म-कथा है जिसमें उसकी समकालीन परिस्थितियों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यह रचना आत्मकथा होने के कारण इस अध्ययन-सूची में नहीं ली गई है।

इसके अतिरिक्त १८९७ ई० के जनरल अव् एशियाटिक सोसायटी अव् बंगाल में एक छोटी-सी कविता उर्दू लिपि में छपी है। इस रचना में मुहम्मदशाह और नादिरशाह के युद्ध (१७३८ ई०) का वर्णन है। यह रचना साधारण है।

साथ ही अन्य प्रमुख प्रकाशित ग्रंथ 'परमालरासो' है जिसके संपादक डा० श्यामसुंदर दास तथा प्रकाशक नागरी-प्रचारणी सभा काशी है। अभी तक इसे 'पृथ्वीराजरासो' का एक अंश माना जाता रहा है, पर उक्त विद्वान् संपादक के मतानुसार वह एक स्वतंत्र काव्य-ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना-तिथि भी अनिश्चित है। एक संदिग्ध एवं विवादास्पद रचना होने के कारण इस कृति के अध्ययन का यहाँ पर प्रश्न ही नहीं उठाया गया है। दूसरे यह वृहदाकार होने के कारण एक अलग स्वतंत्र अध्ययन का विषय बन सकता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस धारा की सामग्री अप्रकाशित रूप में अत्यधिक मात्रा में वर्त्तमान है। यहाँ उन सभी अप्रकाशित ग्रंथों और ग्रंथकारों की सूची देना सम्भव नहीं है। केवल कुछ चुने हुए ग्रंथों का ही उल्लेख आगे सूची (ब) में किया जा रहा है। इन ग्रंथों के देखने का लेखक को अवसर नहीं प्राप्त हुआ है। उनकी नामावली आदि के लिए सहायक ग्रंथों के साक्ष्य पर ही निर्भर रहना पड़ा है।

आगे क्रमशः अध्ययन किए जानेवाले ग्रंथों की सूचियाँ क्रमशः (अ) तथा (ब) के अंतर्गत दी जा रही हैं।

सूची (अ)

सविस्तार अध्ययन किये जानेवाले ग्रंथों (प्रकाशित और अप्रकाशित) की सूची

क्रम	कवि	ग्रंथ	रचनाकाल (ई० सन् में)	संपादक—प्रकाशक
१.	केशव	वीरसिंहदेव-चरित	१६०८	नागरीप्रचारणी सभा, काशी
२.	केशव	रत्नबावनी		भगवानदीन, रामनारायण लाल, इलाहाबाद।
३.	जटमल	गोराबादल की कथा	१६२३ अथवा १६२८	अयोध्याप्रसाद शर्मा, तरुण-भारत ग्रंथावली, प्रयाग।
४.	मतिराम	ललितललाम	१६६१-६२	मतिराम-ग्रंथावली, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ।
५.	भूषण	शिवराजभूषण	२६ अप्रैल १६७३	विश्वनाथप्रसाद मिश्र
६.	भूषण	शिवाबावनी		भूषण-ग्रंथावली
७.	भूषण	छत्रसालदशक		साहित्य कार्यालय, काशी।
८.	भूषण	फुटकर पद		
९.	मान	राजविलास	२६ जून १६७७ को प्रारंभ	लाला भगवानदीन नागरीप्रचारणी सभा, काशी
१०.	गोरेलाल	छत्रप्रकाश	१७१० के लगभग	श्यामसुंदर दास नागरीप्रचारणी सभा, काशी
११.	श्रीधर	जंगनामा	जनवरी, १७१३ के लगभग	राधाकृष्णदास, किशोरीलाल गोस्वामी, नागरीप्रचारणी सभा, काशी
१२.	सदानंद	रासा भगवंतसिंह	नवंबर १७३५ के लगभग	नागरीप्रचारणी पत्रिका, भाग ५, १९८१ वि०
१३.	सूदन	सुजानचरित्र	१७५३ के लगभग	राधाकृष्ण दास, नागरीप्रचारणी सभा, काशी
१४.	गुलाब	करहिया कौ रायसो	अगस्त १७६७ के लगभग	नागरीप्रचारणी पत्रिका भाग १०, १९८६ वि०
१५.	पद्माकर	हिम्मतबहादुर-विरुदावली	१७९२ के लगभग	लाला भगवानदीन भारतजीवन प्रेस
१६.	पद्माकर	जगद्विनोद		विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पद्माकर-पंचामृत श्री रामरत्न-पुस्तकभवन, काशी

१७.	पद्माकर	प्रतापसिंह-विरुदावली		अप्रकाशित
१८.	जोधराज	हम्मीर रासो	१७ अप्रैल १८२८	श्यामसुंदर दास नागरीप्रचारणी सभा, काशी

सूची (ब)

नीचे उन ग्रंथों की तालिका दी जा रही है, जिनको विस्तृत अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया जा सका है, क्योंकि वे प्राप्त नहीं हो सके। यहां पर केवल चुने हुए ग्रंथ दिये जा रहे हैं। रचनाकाल ई० सन् में दिखलाया गया है। इन ग्रंथों में से अधिकांश अप्रकाशित हैं।

क्रम	कवि	ग्रंथ	रचनाकाल	विशेष
१.	केशव	जहांगीर-जस-चंद्रिका	१६१२ अथवा १६१८	
२.	ऋषभदास जैन	कुमारपालरासो	१६१३	
३	मानसिंह महाराजा	मान चरित्र	१६१८	
४.	दयालदास	राणारासा	१६२०	
५.	बनवारी	स्फुट छंद	१६३३	जसवंतसिंह के भाई अमरसिंह ने सलावत को मारा, उसी की प्रशंसा की है।
६.	एक चारण	जगद्विलास	१६२८-५४	मेवाड़ के राणा जगत् सिंह के दरबारी कवि ने इसे बनाया।
७.	निधान	जसवंतविलास	१६४१	तृतीय त्रैमासिक खोज रिपोर्ट में इसे १६१७ ई० की रचना माना है।
८.	गंभीर राय	एक ग्रंथ	१६५०	मऊवाले जगत् सिंह और शाहजहां का युद्ध-वर्णन।
९.	रत्नाकर	कुछ कविता	१६५५	इन्होंने सुल्तान शुजा की प्रशंसा में कविता की है।
१०.	कुलपति मिश्र	रसरहस्य	१६६७	जयपुरनिवासी रामसिंह के यश का वर्णन।
११.	कुलपति मिश्र	संग्रामसहाय	१६७६	
१२.	सुखदेव मिश्र	फाज़िल अली प्रकाश	१६७१	नृप-यश आदि वर्णन।
१३.	घनश्याम शुक्ल	स्फुट	१६८०-१७७८	रीवां नरेश के यहां उनकी प्रशंसा में कविता। एक छंद काशी नरेश की प्रशंसा का भी सरोज में लिखा है।
१४.	कुम्भकरण	रतनमासा	१६७३	राठौर रतनसिंह और औरंगज़ेब के युद्ध का वर्णन।
१५.	श्रीपति भट्ट	हिम्मतप्रकाश	१६७४	बांदा के नवाब सैयद हिम्मत खां के दरबार में थे।

१६.	रणछोड़	राजपट्टन	१६८०	मेवाड़ के राजघराने का इतिहास।
१७.	महाराजा जैसिंह	जयदेवविलास	१६८१-१७००	ये उदयपुर के राणा थे। इस ग्रंथ में अपने वंश का वर्णन किया है।
१८.	सतीप्रसाद	जयचंद-वंशावली		जयचंद की वंशावली एवं उनका परिचय।
१९.	निवाज़ तिवारी	छत्रसाल-विरुदावली	१६८० के लगभग	नवाब आज़म खां के आश्रित।
२०.	उत्तमचंद	दिलीपरंजिनी	१७०३	राजा दिलीपसिंह के आश्रित। उक्त राजा के वंश का वर्णन।
२१.	हरिकेश द्विज	जगत्‌दिग्विजय	१७२५	जयतपुर के राजा जगतराज की जीवनी एवं चंदेल आदि राज-वंशों का वर्णन।
२२.	हरिकेश द्विज	ब्रजलीला	१७३१	छत्रसाल, हृदयशाह की प्रशंसा तथा कृष्ण-राधा-मिलन।
२३.	हरिकेश द्विज	वीर रस की स्फुट रचना		
२४.	गंजन	कमरुद्दीन खां हुलास	१८२८	
२५.	केवल राम	बाबीबिलास	१७२६	जूनागढ़ के नवाबों की प्रशंसा में ग्रंथ।
२६.	मूकजी वंदीजन	खीची-वंशावली	१७१८	
२७.	जगन्नाथ प्राचीन	मोहमद राज की कथा	१७१६	
२८.	शाहजू पंडित	बुंदेल-वंशावली	१७३७	बुंदेले राजाओं का विवरण।
२९.	कुंवर कुशल	लखपति-यशसिंधु	१७३६	
३०.	अनंत फंदी	स्फुट	१७४३	नाना फड़नवीस की प्रशंसा।
३१.	श्रीकृष्ण भट्ट कलानिधि	साभर-युद्ध	१७३४	जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह और देहली के सैयद भाइयों के युद्ध का वर्णन।
३२.	शंभुनाथ मिश्र	अलंकार-दीपक	१७४६	खीचीनृप भगवंत राय का यश-वर्णन।
३३.	शंभुनाथ मिश्र	रस-कल्लोस	१७५०	यश-वर्णन एवं नायिकाभेद-निरूपण।
३४.	शंभुनाथ मिश्र	रस-तरंगिनी		यश-वर्णन एवं नानियका भेद-निरूपण
३५.	शंभुनाथ मिश्र	भगवंतराय यश वर्णन		भगवंत राय का यश-वर्णन।
३६	तीर्थराज	समरसार	१७४६	डौडिया खेरे के राजा अचलसिंह के यहां थे।
३७.	महताब	नखशिख	१७४३	हिंदूपति की प्रशंसा की है। राजा शब्द के स्थान पर बादशाह शब्द का प्रयोग किया है।
३८.	विहारी लाल	हरदौल-चरित्र	१७५८	
३९.	प्रतापसाहि	काव्यविलास	१७२६	

४०. प्रतातसाहि	जयसिंह-प्रकाश	१७५५	राजपूताना के किन्हीं राजा जयसिंह की प्रशंसा में रचना।
४१. लाल झा मैथिल	कनरपीघाट की लड़ाई	१७८०	नरेन्द्र सिंह दर्भंगा नरेश के यहाँ थे।
४२. लाल कवि	कवित्त	१७७५	महाराजा महीपनारायण सिंह जी तथा अन्य किसी राजा का रण-वर्णन।
४३. मान कवि	नरेन्द्र-भूषण	१७८८	राजा रणजोरसिंह के यश का वर्णन।
४४. दत्तू अथवा देवदत्त	ब्रजराज-पंचाशा	१७६१	राजा ब्रजराज देव की चढ़ाई का वर्णन।
४५. शिवराम भट्ट	प्रताप-पचीसी	१७६०	राजा विक्रमादित्य ओड़छा के दरबार में थे।
४६. शिवराम भट्ट	विक्रम-विलास		
४७. शिवनाथ	रासा भैया बहादुर सिंह का	१७६६	बलरामपुर के राजकुमार बहादुरसिंह द्वारा शरणार्थी की रक्षार्थ किसी शत्रु से लड़े गये युद्ध का वर्णन।
४८. शिवनाथ (असनी वाले)	रायसा		महाराजा जसवन्त सिंह धारा नगरीवाले और महाराजा अजीतसिंह रीवां वाले के युद्ध का वर्णन।
४९. शिवनाथ (असनी वाले)	वंशावली	१८२५	
५०. मान (खुमान)	समरसार	१७६५	किसी अँग्रेज़ उच्च पदाधिकारी को राजकुमार धर्मपाल सिंह द्वारा वश में करने की किसी घटना का वर्णन।
५१. दुर्गाप्रसाद	अजीत सिंह फते ग्रंथ अथवा नायक रासा		१७६६ ई० में रीवां के सरदारों और पेशवा की सेना के बीच लड़े गये युद्ध का वर्णन।
५२. गोपाल	भगवंतराय की विरुदावली		भगवंतराय और सआदतखां के युद्ध का वर्णन।

इस स्थल पर यह उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक न होगा कि अध्ययन किये जानेवाले ग्रंथों में से 'ललितलालाम' तथा 'जगद्विनोद' के केवल कुछ ही छंद इस अध्ययन के अंतर्गत आते हैं। इन पदों में विशेष ऐतिहासिक विवरण का उल्लेख नहीं मिलता है। यही दशा 'प्रतापसिंह विरुदावली' की है। इसीलिए ऐतिहासिक अध्ययन के अंतर्गत इन ग्रंथों पर अलग से विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी गई है। इन रचनाओं का साहित्यिक मूल्य अधिक है, ऐतिहासिक कम।

प्रथम खंड : साहित्यिक अध्ययन

अध्याय १ : ग्रंथ-परिचय

इस अध्याय में सविस्तार अध्ययन किये जानेवाले कवियों का कालक्रम से संक्षिप्त जीवन-वृत्त और ग्रंथ-परिचय दिया जा रहा है :—

केशवदास

सनाढ्य जाति में उत्पन्न मिश्र उपनामधारी पंडित राजकृष्णदत्त के पुत्र पंडित काशीनाथ के घर केशवदास अवतीर्ण हुए थे।[1] केशवदास के ज्येष्ठ भ्राता बलभद्र और कनिष्ठ भाई कल्याण दास थे।

केशवदास का जन्म १६१२ वि० (१५५५ ई०) में टेहरी में और मृत्यु १६७४ वि० (१६-१७ ई०) में हुई। लाला भगवानदीन के मतानुसार इनका जन्म चैत्र १६१८ वि० (१५६१ ई०) में और देहांत १६८० वि० (१६२३ ई०) में हुआ था। यह ओड़छाधीश के राजकवि, मंत्र-गुरु एवं मंत्री थे। महाराजा रामसिंह के लघु भ्राता इंद्रजीत ने इनको सम्मानित करके २१ ग्राम प्रदान किये थे। इन्होंने अपनी नीति-चातुर्य से इंद्रजीत सिंह पर अकबर द्वारा किया हुआ एक करोड़ रुपये का दंड क्षमा करा दिया था। महाराज बीरबल ने इनके एक छंद पर मुग्ध होकर इन्हें ६ लाख रुपये दिये थे।

केशव-रचित निम्नलिखित ग्रंथ बतलाये जाते हैं :—

१—रत्नबावनी—इंद्रजीत सिंह के ज्येष्ठ भ्राता रत्नसिंह की वीरता का वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है।

२—रसिकप्रिया – रचनाकाल १६४८ वि० (१५९१ ई०)—रसों के वर्णन के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई है।

३—कविप्रिया—रचनाकाल १६५८ वि० (१६०१ ई०)—इस ग्रंथ में कवि-वंश तथा इंद्र-जीत सिंह के वर्णन के पश्चात् काव्य के अंगों का विधिपूर्वक विवेचन किया गया है।

४—रामचंद्रिका —रचनाकाल १६५८ वि० (१६०१ ई०)—इसमें श्री रामचंद्र जी की कथा वर्णित है।

५—वीरसिंह देव चरित —रचनाकाल १६६४ वि० (१६०७ ई०)—इस ग्रंथ में महाराज बीरसिंह देव बुंदेला के युद्धों एवं स्वातंत्र-संग्राम का वर्णन है। इस ग्रंथ में १६०८ ई० तक की घट-नाओं का वर्णन है, अतः इसकी रचना इसी काल के आस-पास की गई होगी। इसलिए विविध विद्वानों द्वारा स्वीकार की गई तिथि १६६४ वि० अशुद्ध है।

६—विज्ञानगीता—रचनाकाल १६६७ वि० (१६१० ई०)—इस ग्रंथ में कवि-वंश-परिचय तथा दार्शनिक विचारों का विवेचन किया गया है।

---

[1] रामचंद्रिका, पहिला प्रकाश, छं० ४-९; कविप्रिया, प्रभाव द्वितीय, छं० १-२१. पृ० ८-१०

७—जहांगीरजसचंद्रिका—इसका रचनाकाल १६६६ वि० (१६१२ ई०) माना गया है। इस ग्रंथ में जहांगीर का यश वर्णित है।

केशव का लिखा हुआ 'नखशिख' नामक एक और ग्रन्थ बतलाया जाता है। इनके नाम से 'बालिचरित्र' और 'हनुमानजन्मलीला' दो अन्य ग्रन्थ भी मिलते हैं, पर रचना-शैली की शिथिलता और निकृष्टता के कारण उनके केशवरचित होने में संदेह है।[१]

प्रस्तावित अध्ययन की दृष्टि से 'रत्नबावनी,' 'कविप्रिया' का इंद्रजीत सिंह संबंधी अध्याय, 'वीरसिंहदेवचरित' और 'जहागीरजसचंद्रिका' का विशेष महत्त्व है।

जटमल

जटमल ने अपने विषय में लिखा है कि मोरछड़ो के शासक पठान सरदार, नासिर-नंद अली खां न्याज़ी खां के समय में धर्मसी के पुत्र नाहर खां जटमल ने सिंबुला ग्राम के बीच अपने ग्रंथ की रचना की[२]। संभवतः नाहर खां जटमल की उपाधि थी अथवा वह मुसलमान हो गया था[३]। श्री ओझाजी ने कवि जटमल रचित 'गोराबादल की बात' शीर्षक लेख में लिखा है कि ओसवाल महाजनों की जाति में नाहर एक गोत्र है, अतएव संभव है कि जटमल जाति का ओसवाल महाजन हो[४]।

काशी नागरी प्रचारणी सभा की सन् १९४० की हस्त-लिखित ग्रंथों की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट में 'गोराबादल' की कथा की एक नई प्रति का उल्लेख किया गया है। यह हस्तलिखित ग्रंथ पंडित मदनलाल जी मिश्र, ज्योतिषी लक्ष्मणजी के मंदिर के पीछे, भरतपुर के पास सुरक्षित है। इस ग्रंथ में जटमल का यह वृत्त दिया है :—

> आणद उछव होत घर-घर देवता नहीं सोक।
> राजा तिह अलीषान नुं षानना सुर नंद॥
> सकल सरदार पाठाण माहें अजु नषत्र मां चंद।
> धरमसीहुं नंद नाहर जाट जटमल नाम।
> कही कथा वणय के विच सांवेला गाम॥
> कहां यकां आणंद उपजत सुणत सब सुष होइ।
> जटमल हों गुणी अणां विघन न लागे कोइ॥२७॥[५]

इस उद्धरण के अनुसार नासिर खां के पुत्र अली खां के समय में धर्मसिंह के आत्मज

---

[१] मिश्रबंधुविनोद, प्रथम भाग, पृ० ३४६-७; हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० २०७-८; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३६२-७; शिवसिंहसरोज, कवियों का जीवनचरित्र, पृ० २०-१; केशवपंचरत्न, आदि का, पृ० २-३, ७-८; सेलेक्शंस फ्रॉम हिंदी लिट्रेचर, भाग १, पृ० ४०-१; वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान पृ० ४८।

[२] गोराबादल की कथा छं० १४०

[३] वही, कवि परिचय, पृ० ३

[४] नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, पृष्ठ ४०२

[५] नागरीप्रचारिणी सभा काशी की अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों की खोज रिपोर्ट; १६४० ई०, एम् एस०-७१ ग्रंथ नं० १६६, १९४० ई०

नाहर जटमल जाट ने सांवेला ग्राम में इस कथा की रचना की। इस विवरण से नाहर जटमल की उपाधि प्रतीत होती है और उनकी जाति जाट ठहरती है।

संवला (सुवुला, सांवेला) गांव कहां है इसका पता अभी तक नहीं चला, पर इतना तो निश्चित है कि वह (जटमल) मेवाड़-निवासी नहीं था। यदि ऐसा होता तो चित्तौड़ के राजा रत्नसेन को जो गुहिलवंशी था, कदापि वह चौहानवंशी न लिखता[1]। कहने की आवश्यकता नहीं कि श्री ओझाजी का उक्त मत केवल अनुमान पर अवलंबित है। जटमल की इस ऐतिहासिक भूल का कोई और भी कारण हो सकता है, जिसके संबंध में ऐतिहासिक-विवरण में विचार किया गया है।

जटमलकृत 'गोराबादल की कथा' की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में उसके विभिन्न नाम मिलते हैं, यथा 'गोरेबादल की कथा', 'गोराबादल री कथा', 'गोराबादल की बात'[2]।

जटमल ने इस ग्रंथ की रचना वि० सं० १६८५ फाल्गुन पूर्णिमा (१६२८ ई०) अथवा १६८० वि० (१६२३ ई०) में की थी[3]।

जटमल ने अपने उक्त ग्रंथ में अलाउद्दीन के चित्तौड़ दुर्ग के आक्रमण के अवसर पर गोरा-बादल के द्वारा वीरता प्रदर्शित करने का वर्णन किया है।

मतिराम

मतिराम, चिंतामणि तथा भूषण के भाई परंपरा से प्रसिद्ध हैं। यह तिकवाँपुर (ज़िला कानपुर) में संवत् १६७४ वि० (१६१७ ई०) के लगभग उत्पन्न हुए थे। इनका स्वर्गवास अनुमान से सं० १७७३ वि० (१७१६ ई०) में होना समझ पड़ता है। ग्रियर्सन के विचार में इनका समय १६-५० ई० से १६८२ तक रहा था। शिवसिंहसरोजकार ने मतिराम का सं० १७३८ वि० (१६८१ ई०) विद्यमानत्व-काल माना है।

मतिराम राजा उदोतसिंह कुमाऊंनरेश और भाऊसिंह हाड़ा बूंदीनरेश तथा शंभुनाथ सुलंकी इत्यादि के यहां बहुत दिनों तक रहे थे।

मतिराम ने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की थी :—

१. फूलमंजरी—इसमें ६० दोहे हैं। एक दोहे को छोड़कर शेष ५६ दोहों में फूलों का वर्णन है। जहांगीर की आज्ञा से आगरा नगर में इस ग्रंथ की मतिराम ने रचना की थी।

२. रसराज—इस ग्रंथ में शृंगार-रसांतर्गत नायिका-भेद का वर्णन है। यह किसी राजा के आश्रय में नहीं बनाया गया है।

३. छंदसारपिंगल—कहा जाता है कि श्रीनगर के फतेहसाहि बुंदेला के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई थी।

४. ललितललाम—यह अलंकार-शास्त्र-संबंधी ग्रंथ है। बूंदी के महाराजा भावसिंह जी के लिए ग्रंथ की रचना हुई है। इसकी रचना अनुमानतः संवत् १७१८ और १७१६ (१६६१ और १६६२ ई०) के बीच हुई थी।

---

[1] नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, भाग १३, पृ० ४०२

[2] हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ८८२-३

[3] गोरा बादल की कथा, छं० १४४ (पाद-टिप्पणी अंतर्गत पाठांतर सहित), पृ० ३४, हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पहिला भाग, पृ० ४८

५. मतिराम-सतसई---यह पुस्तक किन्हीं भोगराज नाम के गुणी राजा के लिए मतिराम ने बनाई है।

६. साहित्यसार—यह १० पृष्ठों का एक छोटा-सा ग्रंथ है। इसमें नायिकाभेद का वर्णन है।

७. लक्षणशृंगार—यह १४ पृष्ठों का एक छोटा-सा ग्रंथ है। इसमें भावों और विभावों का वर्णन है।

८. अलंकार-प्रवेशिका—यह ग्रंथ संवत् १७४ वि० (१६६० ई०) में कुमायूं के राजा उदोत सिंह के पुत्र ज्ञानचंद के लिए मतिराम जी ने बनाया था।

पंडित भगीरथप्रसाद दीक्षित ने 'वृत्तकौमुदी' का पता लगाया है। इसके रचयिता का नाम भी मतिराम है। और इसका निर्माण-काल संवत् १७५८ वि० (१७०१ ई०) है। दीक्षित जी 'रसराज' और 'वृत्तकौमुदी' के रचयिता को एक ही व्यक्ति मानते हैं और उनका कहना है कि 'रसराज' के रचयिता का जो 'छंदसार-पिंगल' प्रसिद्ध है, वही यह 'वृत्तकौमुदी' ग्रंथ है। पर मिश्रबंधुओं के मत में 'ललितललाम' आदि ग्रंथों के रचयिता कश्यपगोत्री त्रिपाठी मतिराम 'वृत्तकौमुदी' के रचयिता वत्सगोत्री मतिराम से भिन्न हैं। 'वृत्तकौमुदी' के रचयिता मतिराम 'रसराज' के कवि मतिराम से एकदम भिन्न हैं[1]।

यहां पर यह बतला देना भी ठीक प्रतीत होता है कि मतिराम के उक्त ग्रंथों में से केवल 'ललितललाम' के उन्हीं छंदों को आलोच्य साहित्य में सम्मिलित किया गया है जो कवि ने अपने आश्रयदाता तथा उसके परिवार के संबंध में लिखे हैं। शेष ग्रंथों से प्रस्तावित अध्ययन का विशेष संबंध नहीं है।

भूषण

भूषण ने 'शिवराजभूषण' में अपने वंश का परिचय देते हुए लिखा है कि ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका गोत्र कश्यप था। इनके पिता रत्नाकर त्रिपाठी थे। यह त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) में यमुना के किनारे रहते थे, जहां बीरबल के समान राजा उत्पन्न हुए थे और जहां विश्वेश्वर के तुल्य देव-विहारीश्वर महादेव हैं। चित्रकूट-पति हृदयराम के पुत्र रुद्र सोलंकी ने इन्हें 'भूषण' उपाधि से भूषित किया था[2]।

तिकवाँपुर कानपुर ज़िले की घाटमपुर तहसील में यमुना के बांये किनारे पर है। इसके पास अकबरपुरबीरबल नाम का एक छोटा-सा गांव है, जहां बीरबल के उत्पन्न होने की बात कही जाती है। गांव से कुछ दूर सड़क के किनारे, देव-विहारीश्वर का मंदिर भी है।

कहा जाता है कि ये चार भाई थे, चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ (उपनाम जटाशंकर)। भूषण के भ्रातृत्व के संबंध में विद्वानों में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानों ने इनके वास्तविक नाम पतिराम अथवा मनिराम की कल्पना भी की है, पर यह कोरा अनुमान ही प्रतीत होता है।

---

[1] शिवसिंहसरोज, कवियों का जीवन-चरित्र, पृ० १०१; माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, संख्या १४६, पृ० १६१; हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० २५२-४; मिश्रबंधु-विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४४३-५०; मतिराम-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० २१८-३८; भूषण विमर्श, पृ० ४-१६।

[2] विश्वनाथप्रसाद मिश्र : भूषण-ग्रंथावली; शिवराजभूषण, छं० २५-८

भूषण के प्रमुख आश्रयदाता महाराज शिवाजी और छत्रसाल बुंदेला थे। भूषण के फुटकर कई ऐसे छंद मिलते हैं जिनमें विभिन्न नरेशों की प्रशंसा की गई है। इसके आधार पर भूषण के बहुत से आश्रयदाता नहीं माने जा सकते, क्योंकि उन छंदों में से सभी भूषण के रचे हैं, इस बात का कोई भी पुष्ट प्रमाण नहीं है। मिश्रबंधुओं ने इनका जन्म अनुमान से वि० सं० १६७० (१६१३ ई०) में और मृत्यु वि० सं० १७७२ में (१७१५ ई०) मानी है। शिवसिंह सेंगर ने भूषण का जन्मकाल १७३८ वि० लिखा है। ग्रियर्सन ने इनका समय १६६० ई० माना है। कुछ विद्वानों के मतानुसार शिवाजी के दरबार में भूषण नहीं रहे थे, वरन् वे शिवाजी के पौत्र साहू के दरबारी कवि थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन विद्वानों का यह मत भ्रमपूर्ण है। वास्तव में भूषण शिवाजी के ही समकालीन थे।

'शिवसिंहसरोज' में भूषण के बनाये हुए चार ग्रंथों—'शिवराजभूषण', 'भूषणहजारा', 'भूषणउल्लास' और 'दूषणउल्लास'—का उल्लेख मिलता है। इनमें से अंतिम तीन ग्रंथ अभी तक देखने में नहीं आए हैं। अभी तक भूषण के बनाए हुए 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक' तथा कुछ स्फुट छंद ही मिलते हैं[1]।

भूषण ने शिवराजभूषण की रचना के समय का उल्लेख इस प्रकार किया है:—

संवत् १७३०, सुचि[2] (ज्येष्ठ) बदी १३, भानुवार (रविवार)[3]

वैशाख अमाचंद का मध्य व्याप्ति-काल	·१	अप्रैल ६·४४
२८ तिथियों का समस्त व्याप्ति काल	२७+१	२७·५६
	२९	३४·००
		=२९ अप्रैल, १६७३ ई०, रविवार

[1] विश्वनाथप्रसाद मिश्र : भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० १०९-१५; राजनारायण शर्मा : भूषण-ग्रंथावली, भूमिका पृ०, १-१८; ब्रजरत्नदास : भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ४-९६; मिश्रबंधु : भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ७-३९, मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४६६-८; रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण, पृ० २५४-६; शिवसिंहसरोज—कवियों का जीवन चरित्र, पृ० ९१-३; माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, संख्या १४५, पृ० ६१; उदयनारायण तिवारी : वीरकाव्य, २५८-६७; सीताराम : सेलेक्शंस फ्राम हिंदी लिट्रेचर, भाग १, पृ० ८१-४; भगीरथप्रसाद दीक्षित : भूषण-विमर्श पृ० १-३४

[2] सुचि (शुचि) शब्द के अर्थ के लिए देखिए :—

विलियम : ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, पृ० १०८१

आप्टे : प्रेक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० ९२२

हिंदी-शब्दसागर, छठा खंड, पृ० ३३३५

उक्त ग्रंथों में सुचि (शुचि) शब्द का अर्थ ज्येष्ठ और आषाढ़ दोनों मास दिया है। गणना पर ठीक उतरने के कारण यहां पर इस शब्द का अर्थ ज्येष्ठ ही लिया गया है।

[3] विश्वनाथप्रसाद मिश्र : भूषण-ग्रंथावली, शिवराजभूषण, छं० ३८२

अतएव भूषण ने 'शिवराजभूषण' की रचना रविवार, २६ अप्रैल, १६७३ ई० को की थी।

पाठांतर के आधार पर मिश्रबंधुओं ने इस ग्रंथ की रचना-तिथि संवत् १७३० वि० कार्त्तिक बुधवार सुदी १३ और लाहौरवाली 'भूषण-ग्रंथावली' में संवत् १७३० वि० श्रावण मास, बुधवार सुदी १३ मानी गई है[1]।

इन विद्वानों के उक्त मत पाठ-भेद तथा अनुमान के आधार पर ही अवलंबित हैं। गणना के द्वारा खरी उतरने के कारण 'शिवराजभूषण' की रचना-तिथि २६ अप्रैल, १६७३ ई० ही ठीक जँचती है। 'शिवराजभूषण' में वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिक जाँच से भी यही तिथि ठीक उतरती है, क्योंकि उसमें कोई भी ऐसी घटना वर्णित नहीं हुई है जो इस तिथि के पश्चात् घटित हुई हो[2]। इससे भूषण और शिवाजी की समसामयिकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और इनका वीर शिवाजी के दरबार में रहना सिद्ध हो जाता है।

भूषण ने 'शिवराजभूषण' में अलंकारों की परिभाषा और उदाहरणों का वर्णन किया है। 'शिवाबावनी' में ५२ छंदों में शिवाजी की कीर्ति और 'छत्रसालदशक' में महाराज छत्रसाल बुंदेला का यश दस छंदों में वर्णित है। इनकी फुटकर रचनाओं में विविध व्यक्तियों के संबंध में कहे गये पद्य संगृहीत हैं।

मान कवि

मान कवि के वंश, माता-पिता आदि के विषय में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनकी जाति के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इन्हें भाट और कुछ जैन यति बतलाते हैं। यह मेवाड़ के महाराणा राजसिंह (जन्म २४ सितम्बर, १६२६ ई०, राज्याभिषेक १० अक्तूबर, १६५२ ई०, मृत्यु २२ अक्तूबर १६८० ई०) के राजकवि थे। इन्होंने 'राजविलास' की रचना २६ जून १६७७ ई० को आरंभ की थी और ग्रंथ-समाप्ति १६८० ई० में की[3]। अतएव इनके संबंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह कवि १६७७ ई०-१६८० ई० में वर्त्तमान थे।

शिवसिंह सेंगर ने इनका समय संवत् १७५६ वि० (१६६६ ई०) और उनके ग्रंथ का नाम 'राजदेवविलास' माना है[4]। ग्रियर्सन[5] के मतानुसार इनका रचना-काल १६६० ई० तथा मिश्र-बंधुओं[6] के मतानुसार १७१७ वि० (१६६३ ई०) था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन सभी विद्वानों द्वारा दी हुई तिथियाँ अशुद्ध हैं।

---

[1] मिश्रबंधु : भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ४७; वही, छं० ३८०; राजनारायण शर्मा : भूषण-ग्रंथावली, छं० ३८२, पृ० २५२; वही, पाद-टिप्पणी पृ० २७२-३

[2] विस्तृत ऐतिहासिक विवरण के लिये देखिये (इस पुस्तक का खंड २, अध्याय ३) भूषण-ग्रंथावली की ऐतिहासिकता

[3] राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० १०७; डिंगल में वीर रस, भूमिका, पृ० ४२

[4] शिवसिंहसरोज, कवियों का जीवन चरित्र, कवि संख्या ८६, पृ० १०४

[5] वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, संख्या १८६, पृ० ७३

[6] मिश्रबंधुविनोद, भाग २, पृ० ४६२-३

'राजविलास' की निम्नलिखित पंक्तियों के आधार पर डा० उदयनारायण तिवारी[1] ने मान के मुख्य नाम मंडान होने की कल्पना की है :—

तिन द्यौस मात त्रिपुरा सुतवि कीनौ ग्रंथ मंडान कवि ।
श्री राजसिंह महाराण कौ रचि यहि जस जौ चंद रवि[2]॥

मान ने 'राजविलास' में अन्यत्र मंडान शब्द का प्रयोग नहीं किया है। अन्य साक्ष्य के अभाव में मान के नाम संबंधी इस अनुमान को ठीक नहीं माना जा सकता।

'राजविलास' की रचना-तिथि :—

सं० १७३४ आषाढ़ शुक्ला सप्तमी बुधवार[3]

आषाढ़ अमाचंद्र का		
मध्यस्थ काल	४ जून	२०.४३
७ तिथियों का समस्त	७	६ .८९
व्याप्ति काल	११	२६.९२

=बुधवार, २६ जून, १६७७ ई०

अतएव मान कवि ने 'राजविलास' की रचना बुधवार, २६ जून, १६७७ ई० को प्रारंभ की होगी।

मान ने अपने इस ग्रंथ में मेवाड़ाधिपति महाराणा राजसिंह के पूर्वजों से लेकर उनके जीवन के अन्त तक की घटनाओं का वर्णन किया है।

लाल कवि (गोरेलाल)

लाल कवि ने 'छत्रप्रकाश' में अपने जीवनवृत्त के संबंध में कुछ नहीं लिखा है। उनके वंशज उत्तमलाल गोस्वामी तैलंग बीकानेरनिवासी से प्राप्त सूचना के आधार पर मिश्रबंधुओं ने लाल कवि का यह जीवन परिचय दिया है :—

इनके (लाल कवि के) पूर्वज आंध्र देश में राजमहेंद्री ज़िले के नृसिंहक्षेत्र धर्मपुरी में रहते थे। इनके पूर्वज भट्ट काशीनाथ की पूर्णा नामक कन्या श्री जगद्गुरु बल्लभाचार्यजी को ब्याही थी। भट्ट काशीनाथ के पुत्र जगन्नाथ के ६ पुत्र हुए। दिल्ली सम्राट् बहलोल लोदी ने इनको ६ ग्राम दिये थे। अतः ये लोग भी इन्हीं ग्रामों—गिट्टा, लंबुक, जोगिया, तिघरा, गिरधन तथा भरस—के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें से श्री गिट्टा के पुत्र नागनाथ हुए जिनकी दसवीं पीढ़ी में कवि लाल उपनाम गोरेलाल तथा दीनदयाल हुए। प्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् पं० गंगाधर शास्त्री तैलंग के पुत्र कृष्ण शास्त्री ने बल्लभ दिग्विजय नामक ग्रंथ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है :—

वृहत्कमौद्गल्यगोत्रे प्रथिततर यशा नागनाथान्वयेभूत् ।
बुंदेलाधीशपूज्यः कविकुलतिलको गौरिलालाख्या भट्टः ॥

---

[1] **वीरकाव्य, पृ० २१४**

[2] **राजविलास, छं० ३८, पृ० ८**

[3] **वही**

शास्त्री गंगाधर स्तत्कुल जनिरभवत् तत्कुले शास्त्रि कृष्णः।
तेनेदं लिख्यते श्री गुरुवरचरितम् स्रग्धराणां मतेन ॥

सारांश यह है कि मुद्गलगोत्रीय नागनाथ के वंश में कविकुलतिलक गोरेलाल हुए जिन्हें बुंदेलाधीश्वर बड़ी पूज्य दृष्टि से देखते थे।।इससे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो जाती है।

संवत् १५३५ वि० (१४७८ ई०) में बुंदेलखंड की रानी दुर्गावती ने नागनाथ को हटाकर दमोह के पास संकोलि नामक ग्राम दिया था। तभी से ये तथा इनके वंशज बुंदेलखंड में आये। इन्हीं नागनाथ के वंश में संवत् १७१५ वि० (१६५८ ई०) में लाल कवि का जन्म हुआ था। महाराजा छत्रसाल ने लाल कवि को बढ़ई, पठारा, अमानगंज, सगेरा तथा दुग्धा नामक पाँच गाँव दिये थे। लाल कवि दुग्धा में रहने लगे और अब भी उनके वंशज वहाँ रहते हैं।[1]

लाल कवि की मृत्यु-तिथि के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। छत्रसाल के जीवन की 'छत्रप्रकाश' में वर्णित अंतिम घटना का समय संवत् १७६४ वि० (१७०७ ई०) मानकर मिश्रबंधुओं[2], रामचंद्र शुक्ल[3] आदि विद्वानों ने उक्त तिथि को ही लाल कवि की संभावित मरण-तिथि होने की कल्पना की है, पर यह अशुद्ध है। 'छत्रप्रकाश' की प्राप्त प्रति में वर्णित अंतिम घटना लोहागढ़ विजय है। छत्रसाल ने इस दुर्ग को १७६७ वि० (१६ दिसंबर, १७१० ई०) को जीता था[4]। अतएव यदि 'छत्रप्रकाश' की वर्त्तमान प्रति को पूर्ण माना जावे तो गोरेलाल की मृत्यु १६ दिसंबर १६१० ई० के पश्चात् निकट भविष्य में हुई होगी।

ग्रियर्सन ने लाल कवि का परिचय देते हुए लिखा है :—

वह राजा छत्रसाल बुंदेला के दरबार में थे। १६५८ ई० में दारा तथा औरंगज़ेब के मध्य होनेवाले धौलपुर के युद्ध में छत्रसाल की मृत्यु के अवसर पर वह उपस्थित थे। उसने नायिका-भेद पर 'विष्णुविलास' ग्रंथ लिखा, पर वह 'छत्रप्रकाश' के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं[5]।

इतिहास से विदित होता है कि शाहजहां के पुत्रों में होनेवाले उत्तराधिकार युद्ध में धौलपुर में दारा की ओर से युद्ध करते हुए बूँदीश्वर गोपीनाथ के पुत्र छत्रसाल हाड़ा वीरगति को प्राप्त हुए थे[6]। ग्रियर्सन ने छत्रसाल बुंदेला का परिचय देते हुए उसकी मृत्यु-तिथि १६५८ ई० स्वीकार की है[7]। यह उनकी भूल है। वास्तव में छत्रसाल बुंदेला की मृत्यु १७३१ ई० में हुई थी। छत्रसाल हाड़ा के पिता का नाम गोपीनाथ[8] था। और छत्रसाल बुंदेला के पिता का नाम चंपतिराय था[9]।

---

[1] मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४४२-४; वीरकाव्य, पृ० २६२-४
[2] मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४४४
[3] हिंदी साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण, पृ० ३३३
[4] देखिये ऐतिहासिक विवरण, खंड २, अध्याय ५
[5] वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, कवि संख्या २०२, पृ० ७७
[6] मआसिरुल् उमरा, भाग एक, पृ० ४०५; टाड : राजस्थान, दूसरा भाग, पृ० १३३८-४८
[7] वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, कवि संख्या, १६७, पृ० ७६
[8] टाड : राजस्थान, भाग २ पृ० ११३८
[9] मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० १३६

इस विवेचन से सिद्ध हो जाता है कि ग्रियसन महोदय ने भ्रमवश छत्रसाल हाड़ा और छत्रसाल बुंदेला को एक व्यक्ति समझकर ऐसी अनर्गल बात कह डाली है।

शिवसिंह ने लाल कवि उपनाम गोरेलाल का वृत्तांत नहीं दिया है। उन्होंने लाल कवि प्राचीन का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह कवि राजा छत्रसाल हाड़ा कोटा बूंदीवाले के यहां था। जिस समय दाराशिकोह (शुकोह) और औरंगज़ेब फतूहा में लड़े और राजा छत्रसाल मारे गये उस समय यह कवि भी उस युद्ध में वर्त्तमान थे। इनका बनाया हुआ 'विष्णुविलास' नामक ग्रंथ नायिका-भेद में अति विचित्र है[1]।

इस कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि बूँदी के लाल कवि, जिन्होंने 'विष्णुविलास' लिखा, छत्रसाल हाड़ा की मृत्यु के अवसर पर उक्त युद्ध में वर्त्तमान थे, न कि 'छत्रप्रकाश' के रचयिता लाल कवि। साथ ही यदि मिश्रबन्धुओं द्वारा दी हुई लाल कवि की जन्म-तिथि १७१५ वि० (१६५८ ई०) को ठीक माना जावे तो छत्रसाल हाड़ा के निधन के वर्ष में लाल कवि उपनाम गोरेलाल का जन्म हुआ था, अतः उनका उक्त युद्ध में वर्त्तमान होना असम्भव है। इससे भी ग्रियर्सन के कथन की अवास्तविकता सिद्ध हो जाती है।

ग्रियर्सन ने अपने ग्रंथ की रचना करने में राग-सागरोद्भव 'रागकल्पद्रुम' की भी सहायता ली है[2]। उक्त ग्रंथ में हिंदी कवियों की नामावली में लाल कवि का नाम नहीं दिया है पर ग्रंथ-सूची में 'छत्रप्रकाश' का उल्लेख किया गया है[3]। उसी ग्रंथ में दी हुई वर्णानुक्रमिक नाम सूची[4] पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि लाल को व्यक्तिवाचक मानकर उन पृष्ठों का संकेत किया गया है जहाँ पर वह शब्द प्रयुक्त हुआ है। उक्त ग्रंथ में दिये हुए पदों में से प्रमुख रूप में परमानंददास[5], कुम्भनदास[6], कृष्णादास[7] और कृष्णानन्द[8] के पदों में लाल शब्द का प्रयोग किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त सभी पदों में लाल शब्द कृष्ण, बालक, नायक आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, न कि किसी व्यक्ति विशेष के लिए। कुछ भी हो यह शब्द लाल कवि का पर्यायवाची किसी भी दशा में नहीं हो सकता।

ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रियर्सन ने उक्त ग्रंथ में प्रयुक्त इस लाल शब्द एवं उसमें उल्लिखित 'छत्रप्रकाश' के कारण अथवा 'सिवसिंहसरोज' में वर्णित बूँदी के लाल कवि को भ्रमवश मऊवासी और 'छत्रप्रकाश' के रचयिता लाल कवि मानकर उक्त भूल कर दी है। उनके इसी भ्रामक

---

[1] शिवसिंहसरोज, कवियों का जीवन-चरित्र, पृ० ११४

[2] वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, कवि संख्या ६३८, पृ० १३६-४१

[3] रागकल्पद्रुम, दूसरा खंड, ग्रंथकार और ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय, पृ० ४-५; तथा राग सागर की सूचना, पृ० २-३

[4] वही, दूसरा खंड, वर्णानुक्रमिक नाम सूची, पृ० १५

[5] रागकल्पद्रुम, दूसरा खंड, पृ० ६० (दो पदों में)

[6] वही, पृ० १३४ (केवल एक पद में)

[7] वही, पृ० १३४ (दो पदों में)

[8] वही, पृ० २५७ (एक पद में)

कथन को ठीक समझकर सीताराम[१], श्यामसुन्दर दास[२] तथा मिश्रबंधुओं[3] ने उसे सत्य मान लिया है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि छत्रसाल हाड़ा की मृत्यु के समय वर्त्तमान रहनेवाले और 'विष्णुविलास' के रचयिता लाल कवि बूँदी निवासी थे और मऊवासी छत्रसाल बुंदेला के दरबार में रहनेवाले तथा छत्रप्रकाशकार लाल कवि उपनाम गोरे लाल उनसे भिन्न व्यक्ति थे, जिनका औरंगज़ेब के उत्त; उत्तराधिकार युद्ध से कोई संबंध नहीं था।

लाल कवि रचित निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं :—

१. छत्रप्रशस्ति २. छत्रछाया ३. छत्रकीर्ति ४. छत्रछंद ५. छत्रसालशतक ६. छत्र-हजारा ७. छत्रदंड ८. छत्रप्रकाश ९. राजविनोद १०. विष्णुविलास[४] तथा ११. बरवै[५]।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि 'विष्णुविलास' इनकी रचना नहीं है। इस ग्रंथ के रचयिता लाल कवि बूंदीवाले थे। लाल कवि की वास्तविक कीर्ति का स्तंभ 'छत्रप्रकाश' ही है। छत्रसाल की आज्ञा से उन्होंने इस ग्रंथ की रचना की थी, यथा :—

धन चंपति के औतरो पंचम श्री छत्रसाल।
जिकी आज्ञा सीस धरि, करी कहानी लाल[६]॥

इन्होंने इस ग्रंथ में बुंदेल-वंश की उत्पत्ति, चंपति राय के विजय-वृत्तांत, उनके उद्योग और पराक्रम, चंपति राय के अंतिम दिनों में उनके राज्य का मुग़लों के राज्य में जाना, छत्रसाल का थोड़ी सेना लेकर अपने राज्य का उद्धार फिर क्रमशः विजय पर विजय प्राप्त करते हुए मुग़लों को नाकों-दम करना आदि घटनाओं (दिसंबर, १७१० ई० तक की) का वर्णन किया है।[७]

श्रीधर (मुरलीधर)

श्रीधर अथवा मुरलीधर प्रयाग के रहनेवाले थे। ग्रियर्सन ने श्रीधर और मुरलीधर को दो भिन्न कवि मानते हुए यह लिखा है कि ये दोनों मिलकर कविता किया करते थे, पर वास्तव में वैसा नहीं है। 'जंगनामा' की निम्न पंक्ति से यह सिद्ध होता है कि श्रीधर का ही अन्य नाम मुरलीधर था।

श्रीधर मुरलीधर उरुफ, द्विजवर वसत प्रयाग। (पंक्ति ५)

ग्रियर्सन ने इस कवि का समय १६८३ ई० माना है, परंतु 'जंगनामा' में वर्णित घटना जनवरी, १७१३ ई० की है अतः श्रीधर इसी तिथि के लगभग (१७१३ ई०) वर्त्तमान रहे होंगे। इरविन महोदय का भी यही मत है।

---

[१] सेलेक्शंस फ्राम हिंदी लिट्रेचर, भाग १, पृ० १०६।

[२] छत्रप्रकाश, भूमिका, पृ० १०।

[३] मिश्रबंधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ५४३।

[४] वहीं, पृ० ५४३।

[५] हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पहला भाग, पृ० ४०।

[६] छत्रप्रकाश, पृ० ६६।

[७] लाल कवि की जीवनी, हिंदी अनुशीलन, वर्ष चार; अंक १, चैत्र-ज्येष्ठ, २००८ वि०, पृ० ४५-८ में छप चुकी है।

श्रीधर ने कई ग्रंथ लिखे थे। इनका एक ग्रंथ रागरागिनियों का, एक नायिकाभेद का एक जैनियों के मुनियों के वर्णन का, कुछ स्फुट श्रीकृष्ण-चरित की कविता, कुछ चित्रकाव्य, फ़र्रुख़सियर का 'जंगनामा' और उस समय के अमीर, राज्यकर्मचारियों तथा राजाओं की प्रशंसा की कविता है। शिवसिंह तथा ग्रियर्सन ने इनके बनाये हुए 'कविविनोद' का वर्णन किया है[1]।

श्रीधर के जंगनामा में १६३० पंक्तियां हैं। इसमें इसने फ़र्रुख़सियर और जहांदारशाह के युद्धों का वर्णन किया है।

सदानंद

सदानंद के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इन्होंने अपनी रचना में अपने संबंध में कुछ भी नहीं लिखा है। केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे अपने आश्रयदाता भगवंतराय खीची के समकालीन थे और उन्होंने आँखों देखी घटनाओं का उल्लेख किया है[2]।

सदानंद ने 'रासा भगवंतसिंह' की रचना की है। इन्होंने अपने इस छोटे काव्य में अपने आश्रयदाता के अंतिम युद्ध का वर्णन किया है। भगवंतराय ने यह युद्ध नवम्बर, १७३५ ई० में लड़ा था। अतएव यह कवि उक्त तिथि के आस-पास था, ऐसा अनुमान लगाना अनुचित न होगा।

सूदन

सूदन के जीवन के विषय में विस्तृत विवरण का अभाव है। उनके 'सुजानचरित्र' में केवल दो पंक्तियाँ आत्म-परिचायक है, जिनसे केवल इतना ही ज्ञात होता है, कि वे मथुरा निवासी माथुर चौबे थे और उनके पिता का नाम बसंत था। वह छंद निम्नलिखित है :—

मथुरा पुर सुभ धाम माथुर कुल उतपति बर।
पिता बसंत सुनाम सूदन जानहु सकल कवि[3]॥

ये भरतपुराधीश महाराजा बदन सिंह के पुत्र सुजान सिंह (सूरजमल) के राजकवि थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में 'सुजानचरित्र' नामक ग्रंथ की रचना की है। इस कवि का समय अंधकार के गर्त में निहित है। 'सुजानचरित्र' में सूरजमल के युद्धों की अगहन १८०२ वि० (२८ अक्टूबर-२७ नवम्बर, १७४५ ई०) से १८१० वि० (१७५३ ई०) तक की घटनायें वर्णित है। अतएव इस ग्रंथ की रचना १८१० वि० (१७५३ ई०) के आस-पास हुई होगी। इस से सूदन के वर्तमानत्व का अनुमान लगाया जा सकता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि सूदन ने अपने इस ग्रंथ में सुजानचरित्र के युद्धों आदि

---

[1] शिवसिंहसरोज, कवियों का जीवनचरित्र, संख्या ३४, पृ० १२३; मार्डन वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, सं० १५६, १५७, पृ० ६५; जनरल अव् दि एशियाटिक सोसाइटी अव् बंगाल, सं० ६६, १६०० ई० पृ० १-३; सेलेक्शंस फ्रॉम हिंदी लिट्रेचर, भाग १, पृ० १७७-८; जंगनामा, भूमिका पृ० २१-२; हिंदी साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण, पृ० ३३२-३; वीर-काव्य, पृष्ठ ३२८-३१; मिश्रबंधुविनोद, भाग २, पृ० ५४०-१

[2] नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ५, अंक ३, पृ० ११३

[3] सुजानचरित्र, प्रथम जंग, छं० १०, पृ० ३

का विस्तृत वर्णन किया है पर उनके सम्पूर्ण जीवन का विवरण उसमें अप्राप्य है। केवल ऊपर बतलाये हुए समय में सूरजमल द्वारा लड़े गये युद्धों का ही वर्णन उसमें मिलता है। ग्रंथ के आरम्भ में उसने १७५ पूर्ववर्ती एवं समकालीन कवियों के नामों का भी उल्लेख किया है[1]।

गुलाब कवि

'करहिया कौ रायसौ' के रचयिता गुलाब कवि माथुर चतुर्वेदी, आंतरी निवासी थे। इसमें वर्णित युद्ध उनके समक्ष हुआ था। और युद्ध के दस मास पश्चात् की स्वयं उनकी हस्तलिखित प्रति में वह प्रति (जो पत्रिका[2] में प्रकाशनार्थ भेजी गई थी) लिखी गई है। यह प्रति कवि के वंशज पं० चतुर्भुज जी वैद्य आंतरी के यहां सुरक्षित है।

इस ग्रंथ में कवि के आश्रयदाता करहिया के प्रमाणों और भरतपुराधीश जवाहरसिंह के मध्य हुए युद्ध का वर्णन है। कवि द्वारा दी हुई उस युद्ध की तिथि १५ अगस्त, १७६७ ई० है[3]। इसी समय गुलाब वर्तमान रहे होंगे।

पद्माकर

पद्माकर तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पूर्व पुरुष गोदावरी के निकट रहा करते थे। इनके वंश के मूल पुरुष मधुकर भट्ट अत्रिगोत्रीय और तैत्तरीय शाखा के युजुर्वेदी ब्राह्मण थे। १६१५ वि० (१५५८ ई०) में महारानी दुर्गावती के राज्य-काल में गढ़ा मांडला में पद्माकर के पूर्वज आकर रहने लगे। इनमें से कुछ ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का आश्रय ग्रहण किया। इनके यहाँ बसने पर एक समुदाय की दो शाखायें भी हो गईं। जो मथुरास्थ और गोकुलस्थ के नाम से प्रसिद्ध हैं। पद्माकर मथुरास्थ शाखा के थे।

पद्माकर के पिता मध्यप्रांतांतर्गत् सागर में रहा करते थे। इनके पूर्व पुरुषों का निवास उत्तर में आने पर पहले-पहल बांदा में हुआ। इसीलिये ये लोग बांदावाले भी कहलाये। पद्माकर का जन्म १८१० वि० (१७५३ ई०) सागर में हुआ था।

पद्माकर ने अपने पिता से कविता तथा मंत्रसिद्धि का अभ्यास किया। तत्कालीन सागर-नरेश रघुनाथ राव अप्पा साहब की प्रशंसा में एक कविता सुनाकर एक लक्ष मुद्रा प्राप्त की थी। कुछ समय पश्चात् ये बांदा में जाकर रहने लगे, जहाँ इन्होंने महाराज जैतपुर तथा सुगरा निवासी नोने अर्जुन सिंह को अपना शिष्य बनाया।

वहां से पद्माकर दतिया के महाराज पारीक्षत के दरबार में गये। दतिया से होकर यह रजवान के गोसाईं अनूपसिंह उपनाम हिम्मतबहादुर के यहां गये। कहा जाता है कि १८५५ वि० (१७९८ ई०) तक पद्माकर हिम्मतबहादुर के यहां रहे।

---

[1] शिवसिंहसरोज, कवियों की जीवनी, सं० ६६, पृ० ११६-७; माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, सं० ३६७, पृ० ६७, मिश्रबंधुविनोद, भाग २, पृ० ७०६-१७; हिंदी साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण, पृ० ३६२-५; सुजानचरित्र, कविपरिचय, पृ० १-६; सेलैक्शंस फ्रॉम हिंदी लिट्रेचर, भाग १, पृ० २४१-२; वीरकाव्य, पृ० ३६१-६

[2] नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १०, पृ० २७६

[3] देखिए 'करहिया कौ रायसौ' की ऐतिहासिकता

तत्पश्चात् यह सितारे गये और महाराज रघुनाथराव (राघोवा) के दरबार में पहुँचे। १८५६ वि० (१७६६ ई०) में सागर के रघुनाथ राव ने इन्हें फिर अपने यहां बुलाया।

इसके अनंतर बाँदा होते हुये यह जयपुर के सवाई महाराज प्रतापसिंह के यहां गये। महाराज प्रतापसिंह की मृत्यु के उपरांत यह पुनः बाँदा लौट आये। कुछ समय के पश्चात् यह फिर जयपुर के राजा जगत्सिंह के दरबार में पहुँचे। महाराजा ने पद्माकर को अपना राजकवि बनाया।

यह जयपुर से उदयपुर गये। उन दिनों वहाँ महाराज भीमसिंह राज्य करते थे। एक बार जयपुर से बाँदा जाते समय बूँदी नरेश ने इनका बड़ा आदर दिया था। इसके अनंतर यह तत्कालीन ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया के यहां गये। वहां दौलतराव के एक मुसाहिब ऊदा जी ने भी इनका अच्छा आदर किया था। श्वेत कुष्ठ से आक्रांत होने पर यह गंगा-सेवन के लिए कानपुर चले गये। वहां इनका कुष्ठ नष्ट हो गया। पर इसके बाद केवल छः मास तक और यह जीवित रहे। अंत में वहीं १८६० वि० (१८३३ ई०) में स्वर्गवासी हुए।

पद्माकर के लिखे हुए कुल ६ ग्रंथ बतलाये जाते हैं:—

१. हिम्मतबहादुर-विरुदावली—यह ग्रंथ पद्माकर की आरम्भिक रचनाओं में से माना जाता है। उन्होंने इस ग्रंथ में हिम्मतबहादुर तथा अर्जुनसिंह नोने के बीच लड़े गये युद्ध का वर्णन किया है। यह युद्ध १७६२ ई० में हुआ था। कहा जाता है कि पद्माकर उस समय हिम्मतबहादुर के साथ थे और उन्होंने अपनी इस रचना में आँखों देखा विवरण दिया है।

२. जगद्विनोद—यह रस सम्बन्धी ग्रंथ है। पद्माकर ने इस ग्रंथ की रचना जयपुराधीश महाराज जगत् सिंह की आज्ञा से की थी। उन्होंने इस ग्रंथ में अपने आश्रयदाता की प्रशंसा के उपरांत नायिकाभेद तथा रस का निरूपण किया है।

३. पद्माभरण—यह अलंकार विषय एक छोटा सा ग्रंथ है। इसकी रचना जयदेवकृत चन्द्रालोक के आधार पर की गई है।

४. रामरसायन—यह वाल्मीकीय रामायण के प्रारम्भ के तीन कांडों का हिन्दी अनुवाद है। कुछ लोगों का कहना है कि यह ग्रंथ इनके दासी-पुत्र का रचा हुआ है। पद्माकर ने एक सोनारिन रख ली थी।

५. प्रबोधपचासा—यह ग्रंथ पद्माकर के ज्ञान वैराग्य तथा भक्ति विषय के ५१ कवितों का संग्रह है।

६. गंगालहरी—इसमें ५६ छंदों में गंगा की कीर्ति का वर्णन है।

७. हितोपदेश—ग्वालियर में दौलतराव के मुसाहिब उदौ जी के कहने से संस्कृत के हितोपदेश का गद्य-पद्यात्मक भाषानुवाद पद्माकर ने किया है।

८. आलीजाह-प्रकाश (आलीजाह सागर) —पद्माकर ने दौलतराव सिंधिया के नाम पर नायिकाभेद के इस ग्रंथ की रचना की। कहा जाता है कि इसमें और 'जगद्विनोद' में बहुत कम अंतर है। 'जगद्विनोद' के ही छंद कहीं-कहीं थोड़े शब्दांतर से और अधिकांश में उन्हीं शब्दों में इसमें रखे हैं। वर्णन-पद्धति में भी कोई अंतर नहीं है। हां, आरम्भ में दौलतराव की प्रशंसा के

छंद रखे हुए हैं। यथास्थान कुछ अंतर भी पाया जाता है। 'आलीजाह-प्रकाश' की रचना १८७८ वि० (१८२१ ई०) में हुई थी। पद्माकर के ग्रंथों में केवल इसी का रचना काल दिया गया है।

६. प्रतापसिंह-विरुदावली—कुछ लेखकों ने इस ग्रंथ का नाम 'सवाई जयसिंह-विरुदावली' माना है, पर वास्तव में यह 'प्रतापसिंह-विरुदावली' है। यह पद्माकर के वंशजों (जयपुर निवासी) के यहां सुरक्षित है। मुझे इसे देखने का अवसर मिला है। यह ६८ पृष्ठों का ग्रंथ है जिससे सवाई महाराज प्रतापसिंह के यश का वर्णन रोचक शैली में किया गया है।

इसके अतिरिक्त पद्माकर की कुछ फुटकर रचनाएँ भी यत्र-तत्र देखने और सुनने में आती हैं।[1]

पद्माकर की उपर्युक्त रचनाओं में से 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली', 'जगद्विनोद' के आश्रयदाता सम्बंधी छंद तथा 'प्रताप-विरुदावली' का इस धारा के अंतर्गत अध्ययन किया गया है।

जोधराज

हिंदी के अधिकांश कवियों के समान जोधराज का भी जीवन अप्राप्य है। इन्होंने अपने ग्रंथ में आत्म-परिचयात्मक जो छंद लिखे हैं उनका सारांश यह हैं कि यह (अलवर राज्यांतर्गत) नीम राणा के चौहान वंशीय राजा चंद्रभाण के आश्रित थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। इनका निवासस्थान बीजवार ग्राम था। जोधराज अत्रि गोत्रीय गौड़ वंश कुलोत्पन्न ब्राह्मण थे। यह काव्य-कला और ज्योतिष-शास्त्र के पूर्ण पंडित थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की आज्ञा से 'हम्मीररासो' की रचना की जिसमें रणथम्भौर के राव हम्मीर और अलाउद्दीन खिलजी के युद्धों का वर्णन है।[2]

जोधराज का केवल एक ही ग्रंथ 'हम्मीररासो' प्राप्त है, जिसकी रचना-तिथि के सम्बंध में उन्होंने यह दोहा दिया है :—

चंद्र नाग वसु पंच गिनि संवत् माधव मास।
शुक्ल सुतृतिया जीव जुत ता दिन ग्रंथ प्रकाश ॥[3]

नागों की संख्या साधारणतया ८ मानी गई है, यथा :—

अनंतो वासुकिः पद्मो महापद्मश्च तक्षक।
कुलीरः कर्कटः शंखश्चाष्टौ नागा प्रकीर्तिताः ॥[4]

---

[1] शिवसिंहसरोज, कवियों की जीवनी, सं० २, पृ० ७२; माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर अव् हिंदुस्तान, सं० ५०६, पृ० ११०; मिश्रबंधुविनोद, द्वि० भाग, पृ० ८६८-६१०; हिंदी-साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण, पृ० ३०७-११; द्वादश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, कार्य-विवरण दूसरा भाग (निबध माला) संवत् १६७६ वि०, पृ० ७०-६२; हिम्मतबहादुर-विरुदावली, पद्माकर का जीवन चरित्र, पृ० १-१७; पद्माकर-पंचामृत, आमुख, पृ० ५-२४; पद्माकर की काव्य-साधना, पृ० १४-६२; सेलेक्शंस फ्राम हिंदी लिट्रेचर, भाग १, पृ० ३३३-५; वीरकाव्य, पृ० ४४४-५७

[2] हम्मीररासो, छं० ५-१३; वही, भूमिका पृ० १; मिश्रबंधुविनोद, द्वि० भाग, पृ० ६०२-४; हिंदी-साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण, पृ० ३५१-२; सेलेक्शंस फ्राम हिंदी लिट्रेचर, भाग १, पृ० १६५-६; वीरकाव्य, पृ० ४०८-६

[3] हम्मीररासो, छं० ६६८ [4] मिश्रबंधुविनोद, द्वि० भाग, पृ० ६०३

अर्थात् अनंत, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कट तथा शंख ये ८ नाग होते हैं।

विलियम महोदय[1] नाग को ७ की संख्या का सूचक मानते हैं। श्री अगरचंद नाहटा[2] के मतानुसार उक्त शब्द ७ और ८ दोनों संख्याओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

नाग को ७ का पर्यायवाची मानने से रासो की रचनातिथि सं० १७८५ वि० वैशाख शुक्ला ३, जीव (गुरुवार) ठहरती है। गणना करने पर ज्ञात होता है कि सं० १७८५ वि० में वैशाख शुक्ल तृतीया को गुरुवार नहीं पड़ा था।

नाग का अर्थ ८ लेने से जोधराज-कथित तिथि १८८५ वि० वैशाख शुक्ल तृतीया बृहस्पतिवार आती है :—

वैशाख अमाचंद्र का मध्यस्थ समाप्ति काल	२	अप्रैल १४.५७
तीन तिथियों का समस्त समाप्ति काल	२ + १	२.९५
	५	१७.५२

=बृहस्पतिवार, १७ अप्रैल, १८२८ ई०

उपर्युक्त गणना से सिद्ध होता है कि जोधराज ने 'हम्मीररासो' की रचना सं० १८८५ वि०, वैशाख शुक्ल ३, बृहस्पतिवार तदनुसार, १७ अप्रैल १८२८ ई० को की थी।

शिवसिंह-सरोज में इस ग्रंथ का उल्लेख नहीं है। ग्रियर्सन महोदय ने इसका समय १४२० वि० (१३६३ ई०) लिखकर इसकी शुद्धता पर संदेह प्रकट किया है।[3]

इसकी रचना-तिथि का विवेचन करते हुए मिश्रबंधुओं ने लिखा है कि सम्भवतः अनंत को ईश्वर समझकर इनको नागों की गणना से निकालकर नाग से ७ का बोध कराया हो। जो हो, यथार्थ संवत् १७८५ (१७२८ ई०) ही जँचता है।[4]

उक्त उद्धरण पर विचार करने से विदित होता है कि मिश्रबंधुओं ने केवल अनुमान का ही आश्रय लिया है अतएव उनके द्वारा स्वीकृत तिथि अमान्य है।

बाबू श्यामसुंदरदास जी ने इसका समय संबत् १७८५ वि० (१७२८ ई०) माना है। बाबू साहब को खवा (जयपुर) के महाराजकुमार ने एक पत्र में लिखा था कि नीमराणा (नीवागढ़) के वर्तमान महाराज श्री १०८ श्री जनकसिंह जी राजा चंद्रभान की दसवीं या ग्यारहवीं पीढ़ी में हैं। एक पीढ़ी लगभग बीस वर्ष की पड़ती है, सो इस हिसाब से भी ग्रंथ-निर्माण का ठीक संवत् १७८५ वि० (१७२८ ई०) जान पड़ता है।[5]

ऐतिहासिक ठोस प्रमाणों से रहित, अनुमान पर अवलम्बित, उक्त पत्र के आधार पर आश्रित यह कथन भ्रामक अतः त्याज्य है।

लाला सीताराम[6] ने इस ग्रंथ की रचना-तिथि १७८५ वि० (१७२८ई०) और आचार्य

---

[1] प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी, पृ० ५३६

[2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४६, १९९८ वि०, पृ० ११६

[3] मिश्रबंधुविनोद, द्वि० भाग, पृ० ६०२ [4] वही। [5] वही।

[6] सेलेक्शंस फ्रॉम हिंदी लिटरेचर, भाग १, पृ० १९५

रामचंद्र शुक्ल[1] ने १८७५ वि० (१८१८ ई०) मानी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अन्य विद्वानों के समान उक्त महानुभावों के मत भी निराधार ही हैं।

ऐसी परिस्थितियों में गणना द्वारा सिद्ध बृहस्पतिवार, वैशाख शुक्ल तृतीया, १८८५ वि० तदनुसार १७ अप्रैल, १८२८ ई० ही 'हम्मीररासो' की रचना-तिथि ठीक ठहरती है।

'हम्मीररासो' की उक्त रचना-तिथि के आधार पर जोधराज का उक्त तिथि के आस-पास वर्तमान रहना सिद्ध होता है।

---

[1] हिंदी-साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण, पृ० ३५१

अध्याय २

कथानक

सामान्य परिचय—कथानक की दृष्टि में अध्ययन की सुविधा के लिए आलोच्यग्रंथों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) प्रबंध-काव्य :—

(अ) महाकाव्य—वीरसिंहदेवचरित, राजविलास, छत्रप्रकाश, सुजानचरित्र, हम्मीररासो।

(आ) खंडकाव्य—गोराबादल की कथा, जंगनामा, रासा भगवंतसिंह, करहिया को रायसौ, हिम्मतबहादुर-विरुदावली।

(२) मुक्तक ग्रंथ—रत्नबावनी, ललितललाम, शिवराजभूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक, भूषण की फुटकर कविता, जगत्विनोद, प्रतापविरुदावली।

महाकाव्यों की कथा-वस्तु में कवियों ने अपने चरित्र-नायकों के जीवन की अधिकाधिक घटनाओं का समावेश किया है। उन्होंने ग्रंथ के आरंभ में नायकों के पूर्वजों के उल्लेख किये हैं, जिन पर किंवदंतियों, कल्पना और चारणपरंपरा का अधिक प्रभाव होने के कारण उनका मुख्य कथा-वस्तु से विशेष संबंध नहीं है।

इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं तथा उनसे संबंधित पात्रों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करके कथानकों को अधिक अस्वाभाविक बना दिया है। जान-बूझकर बार-बार ऐसे प्रसंग लाये गये हैं जिनसे उन्हें दान, आत्मश्लाघा, शौर्य आदि की प्रशंसा करने का अवसर मिले। फल यह हुआ है कि इन ग्रंथों के कथानकों के पूर्वापर संबंध की रक्षा नहीं हो सकी है तथा उनमें अरोचकता एवं नीरसता का समावेश हो गया है। ऐसे अंशों की 'राजविलास' और 'हम्मीररासो' में भरमार है।

कुछ कवियों ने विविध-विषयों की लंबी सूचियाँ गिनाने की परिपाटी का अनुकरण किया है तथा व्यक्तियों और वस्तुओं के नामों की बार-बार आवृत्ति की है, जिसके कारण कथानक को भारी ठेस पहुँची है। इन कवियों की इस पद्धति का कारण उनकी पांडित्यप्रदर्शन-भावना प्रतीत होती है।

इस काल में ऐसे काव्यों का भी निर्माण हुआ है जिनमें ऐतिहासिक वर्णन की वास्तविकता के साथ ही कथानक को निर्दोष एवं काव्योचित गुणों से युक्त करने का भी ध्यान रक्खा गया है। इस दृष्टि से 'वीरसिंहदेवचरित' तथा 'छत्रप्रकाश' का विशिष्ट स्थान है।

इन कवियों ने ऐतिहासिक कथावस्तु को अपने काव्यों के लिए चुनकर उनमें पौराणिक, काल्पनिक एवं परंपरागत घटनाओं का समावेश करने के अतिरिक्त 'पृथ्वीराजरासो', तुलसीकृत 'रामचरितमानस' आदि से भी पर्याप्त सहायता ली है। इसके फलस्वरूप ग्रंथों में रोचकता और सरसता के समावेश के साथ ही साथ कवियों को अपनी काव्य-शक्ति प्रदर्शित करने के लिए अधिक स्वतंत्र क्षेत्र मिल गया है। पर ऐसा करने में कहीं-कहीं पर प्रबंध-निर्वाह संबंधी भूलें भी हो गई हैं जैसा कि 'हम्मीररासो' के देखने से विदित होता है।

इन ग्रंथों में जीवन के विविध-विषयों की झाँकी देखने को मिलती है। प्रकृति-वर्णन, ऋतु-चित्रण, नदी-वर्णन, धार्मिक उपदेशों का विस्तृत विवरण, राजनीति, जी को उबा देनेवाले संवाद,

दैवीशक्ति-चित्रण आदि की भी इनमें भरमार है, जिनके कारण अधिकांश स्थलों पर कथावस्तु-प्रवाह मंद पड़ गया है।

खंड-काव्यों में कवियों ने प्रायः एक प्रमुख घटना ही को काव्य का विषय बनाया है। कुछ कवियों ने अपने ग्रंथों को रोचक बनाने के लिए कथावस्तु को आकस्मिक एवं विस्मयपूर्ण बनाने के लिए कल्पना की सहायता ली है। ऐसा करने में उनसे कुछ ऐतिहासिक भूलें भी हो गई हैं और वे पूर्वापर संबंध-निर्वाह करने में भी असफल रहे हैं, जैसा कि 'गोराबादल की कथा' से स्पष्ट होता है। साथ ही नायिका-भेद की परंपरा से प्रभावित होने के कारण जटमल और भी असफल रहा है।

कुछ ऐसे भी खंडकाव्य लिखे गये हैं जिनमें कोरी प्रशंसा, नामों की बार-बार की आवृत्ति आदि के कारण ग्रंथ नीरस और कथानक का प्रवाह नष्ट हो गया है। उदाहरणार्थ 'जंगनामा' और 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' देखे जा सकते हैं।

पर कुछ ऐसे खंडकाव्य भी मिलते हैं जिनमें कथानक के चित्रण में उनके रचयिताओं को पर्याप्त मात्रा में सफलता मिली है। जैसा कि 'रासा भगवंत सिंह' और 'करहिया को रायसौ' से सिद्ध होता है।

मुक्तक काव्यों में से कुछ ऐसे ग्रंथ हैं जिनमें शिवाजी, छत्रसाल जैसे वीरों को आलंबन बनाया गया है। इन ग्रंथों में इन पात्रों के जीवन के विस्तृत कार्य-कलापों के दर्शन हो जाते हैं। इनमें से अधिकांश ग्रंथों में शौर्य, वीरता, प्रताप, युद्ध, तलवार आदि के सजीव चित्रण किये गये हैं, जिनमें वीररस का अच्छा परिपाक हुआ है। इसके लिए भूषण के ग्रंथ तथा 'रत्नबावनी' विशेष उल्लेखनीय हैं। शेष ग्रंथों में आश्रयदाताओं के दानादि की ही विशेष प्रशंसा की गई है।

आलोच्यकालीन सभी ग्रंथों के कवियों ने वीरता, रौद्र, शृंगार, दया, दान, धार्मिकता आदि भावनाओं के चित्रण के लिए कथानक का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। पर यह मानना पड़ेगा कि ऐसा करने में कहीं-कहीं पर ये कविगण औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर गये हैं।

ऊपर दिये हुए संक्षिप्त सामान्य परिचय से यह स्पष्ट हो जाता है कि कथानक प्रयोग की दृष्टि से ये कवि एक बँधी हुई धारा का ही अनुकरण करते रहे हैं। समानान्तर रूप से प्रवाहित होनेवाली रीति की परम्परा से उनमें से अधिकांश कवि न बच सके। साथ ही दरबारी चारण-भाट-परिपाटी भी उनके सामने थी। दान और लोभ की लिप्सा भी उनको पथभ्रष्ट करने में न चूकी। ये ही कारण थे जिनके वशीभूत होकर ये कवि प्रबंध-निर्वाह में उतने सफल नहीं हो सके जितना उन्हें होना चाहिए था। ऐसा होते हुए भी उनमें से असाधारण प्रतिभावाले कवि परम्परा से ऊँचा उठने में आशातीत सफलता प्राप्त करने में सफल हुए हैं। इस दृष्टि से गोरेलाल और भूषण के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त प्रमुख प्रवृत्तियों को विस्तृतरूप से स्पष्ट करने के लिए आगे प्रत्येक ग्रंथ का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा रहा है :—

'वीरसिंहदेवचरित' और 'रत्नबावनी'

जब किसी काल्पनिक घटना को लेकर कवि अपने काव्य का ढाँचा खड़ा करता है तो उसे प्रबन्ध-कल्पना के चातुर्य को दिखाने का अधिक अवसर मिलता है। ऐतिहासिक घटनावली के आधार पर रचे गये ग्रंथों में विशेष परिवर्त्तन नहीं किये जा सकते। 'वीरसिंहदेवचरित' के कथानक पर

विचार करने से यह बात अधिक दृढ़ हो जाती है। केशव का ध्यान कथानक को रोचक बनाने की ओर उतना नहीं गया है जितना कि ऐतिहासिक घटनावली के क्रमानुसार वर्णन की ओर।

केशव ने 'वीरसिंहदेवचरित' की रचना का उद्देश्य इस प्रकार दे दिया है :—

नव रस मय सब धर्म मय राजनीति मय मान।
वीर चरित्र विचित्र किय केसवदास प्रमान॥[1]

उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि केशव का ध्यान प्रबन्ध-निर्वाह की ओर उतना नहीं था जितना कि उपर्युक्त बातों की ओर।

केशव ने इस ग्रंथ के आरम्भ में दान और लोभ में तर्क-वितर्क द्वारा जो दीर्घ संवाद कराये हैं[2], उनसे कथानक को विशेष गति प्राप्त नहीं होती और न उनका मुख्य घटनावली से कोई विशेष संबंध ही है। कवि ने इस प्रसंग द्वारा अपनी जानकारी और वाक्चातुर्य को प्रकट करने की ही प्रवृत्ति प्रदर्शित की है।

आगे चलकर केशव ने वीरसिंहदेव के पूर्वजों का वर्णन[3] करने में नामों का उल्लेख अस्पष्ट और साधारण ढंग से किया है। उसमें चरित्रविकास का एकदम अभाव है।

इससे आगे के प्रसंगों में दान और लोभ के पूछने पर विंध्यवासिनी देवी आगे की घटनाओं का वर्णन करती चलती हैं, इससे अधिकांश स्थलों पर नाट्कीय त्वरा और रोचकता का समावेश हो जाने के कारण कथानक की नीरसता एवं इतिवृत्तात्मकता प्रचुर मात्रा में कम हो गई है।[4]

कहीं-कहीं पर केशव ने प्रासंगिक घटनाओं का उल्लेख इसलिए किया है जिससे उनके चरित्रनायक का मार्ग प्रशस्त हो जाये, उदाहरणार्थ मेवाड़ से अपने सेनापतियों के लौट जाने पर अकबर चिन्तित होकर बुन्देलखंड से आगरा चला गया और वीरसिंह देव ने शांति की साँस ली।[5]

केशव ने अपने कथानक के वर्णन में यत्र-तत्र पात्रों के चरित्र और स्वभाव के अनुरूप भी वर्णन किये हैं। जब अबुल्फ़ज़ल् वीरसिंहदेव के प्रदेश में होकर जा रहा था उस समय का वर्णन कवि की उक्त प्रवृत्ति का परिचय देता है, यथा :—

चले कूंच कै अपने जोर
आगे दीनी रसद चलाइ।
पीछे आपुनु चले बजाइ॥[6]

इत्यादि पंक्तियों से शेख़ की निर्भीकता आदि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। आगे चलकर शेख़ और पठान के वार्त्तालाप[7] से भी अबुल्फ़ज़ल् के कतिपय गुणों का ज्ञान पाठक को हो जाता है, पर युद्ध-भूमि में इस प्रकार की बातचीत प्रायः अस्वाभाविक होती है।

केशव ने वीरसिंह और सलीम के चरित्रों को विकसित करने के लिए ही उन दोनों के प्रयाग में मिलने के प्रसंग की कल्पना की है।[8] अबुल्ज़फ़ल् के मरण-समाचार के ज्ञात होने पर अकबर

---

[1] वीरसिंहदेवचरित, छं० ६, पृ० २ [2] वही, पृ० १-१३ [3] वही, पृ० १४-६
[4] वही, पृ० १६, २०-१, २८, ४४, ५५, ५६, ७२ [5] वही, पृ० २८ [6] वही, पृ० ३४-६
[7] वही, पृ० ३४-६ [8] वही, पृ० २६-३४

के दुःख, शोक, क्रोध आदि का चित्रण करके केशव ने अपनी भावुकता, चरित्र-चित्रण-पटुता एवं कथानक के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सफल प्रयोग का परिचय दिया है।[१] यद्यपि इस प्रसंग में शोक के साथ शृङ्गार का भी वर्णन हो जाने से रसाभास की झलक आ गई है तो भी पात्रों की भावनाओं का उत्तम चित्रण हुआ है।

अबुल्फ़ज़ल् की मृत्यु का समाचार मिलने पर जहाँगीर ने वीरसिंहदेव को राज्याभिषेक देकर[२] अकबर द्वारा माँगने पर वीरसिंह देव को सम्राट् के समक्ष उपस्थित न करके[३] और स्वयं सम्राट् बनने पर उन्हें विविध सम्मान प्रदान करके[४] सलीम ने अपनी कृतज्ञता, गुणग्राहकता एवं सद्शीलता का अनुपम परिचय दिया है। केशव ने इन अवसरों को अपनी पैनी दृष्टि से पहिचान कर उसके अनुरूप ऐतिहासिक तथ्यों का प्रयोग किया है।

इसके अतिरिक्त संगम-वर्णन[५], वीरसिंह और राजसिंह के युद्ध का वर्णन[६], ऋतु-वर्णन[७], बेतवा-वर्णन[८], उपदेश[९] आदि में केशव उपमा, उत्प्रेक्षा, संदेह आदि अलंकारों में इतने बहगये हैं कि कथानक की धारा अग्रसर होती हुई दिखलाई नहीं देती है। इन स्थलों पर पाठक को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो वह अलंकार का पाण्डित्यपूर्ण कोई ग्रंथ पढ़ रहा है, प्रबंध-काव्य नहीं।

इसी प्रकार भुवपाल और क्षेत्रपाल का दीर्घ वार्त्तालाप[१०] शरीर की नश्वरता, मृत्यु की निश्चितता, सेवा-कार्य की महत्ता, सामाजिक दशा, क्षत्रियत्व के गुण, गाय, द्विज, मित्रादि की रक्षा आदि के विवेचन से परिपूर्ण है, जिससे कथानक की शृंखला विशृंखलित हो जाती है। इस प्रकार के सूक्ष्म विवेचन युद्ध-क्षेत्र में संभव नहीं और न वे स्वाभाविक ही लगते हैं।

उपर्युक्त कतिपय स्थलों के अतिरिक्त अधिकांश स्थलों पर लेखक ने इतिवृत्तात्मक वर्णन-शैली को ही अपनाया है, जिसका कारण कथावस्तु का ऐतिहासिक होना ही है।

'वीरसिंहदेवचरित' के कथानक के संबंध में ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि केशव में कथानक-चित्रण की पटुता थी, जिसका उन्होंने यथावसर परिचय भी दिया है। पर उक्त-ग्रंथ की ऐतिहासिक वस्तु, कवि की अलंकार-प्रियता एवं पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण केशव को इस ग्रंथ के कथानक-चित्रण में उतनी सफलता नहीं मिली जितनी कि मिलनी चाहिए थी। इतना होते हुए भी उन्होंने प्रबंध-कल्पना का पर्याप्त परिचय दिया है।

रत्नबावनी

केशव कृत यह ग्रंथ मुक्त-पद्धति में लिखा गया है। इसमें मधुकरशाह के १६ वर्षीय पुत्र रत्नसेन की वीरता का वर्णन है। कवि ने उपयुक्त आलंबनों और उद्दीपनों के वर्णनों द्वारा वीर रस का पूर्ण परिपाक करने की सफल चेष्टा की है। फुटकर रचना होते हुए भी नायक के विशिष्ट गुणों का क्रमिक विकास पाठक के हृदय-पटल पर अंकित हो जाता है, और इसके पठन में खंड-काव्य का सा आनंद आने लगता है।

---

[१] वीरसिंहदेवचरित, पृ० ३८-४० [२] वही, पृ० ३७-८ [३] वही, पृ० ४५ [४] वही, पृ० ५८-९ [५] वही, पृ० ३०-२ [६] वही, पृ० ५०-१ [७] वही, पृ० ६७-९ [८] वही, पृ० ६९-७० [९] वही, पृ० ७०-१ [१०] वही, पृ० ७६-८१

गोराबादल की कथा

जटमल कृत 'गोराबादल की कथा' का कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी उसमें रोचकता लाने के लिए पर्याप्त काल्पनिक अंश वर्तमान है। ग्रंथ के आरंभ में राणा रत्नसेन और भाट की वार्ता[1] में नाटकीय त्वरा के दर्शन होते हैं। योगी का आगमन, उसकी सहायता से मृग-चर्म पर उड़कर सिंहलद्वीप पहुँचना तथा रत्नसेन को पद्मावती की प्राप्ति के उपाय[2], एकदम असंभव तथा आकस्मिक घटनाएँ हैं, पर इनसे कथानक में विस्मय, चित्ताकर्षकता और रोचकता का समावेश हो गया है। इस प्रकार की घटनाएँ काल्पनिक जगत् में ही होती हैं, व्यावहारिक क्षेत्र में उनका विद्यमानत्व दुष्कर होता है।

जटमल ने चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी कथानक में परिवर्तन किये हैं। मृगया खेलते समय प्यास से आकुल राजा के कष्ट निवारणार्थ राघव चेतन द्वारा पद्मिनी की मूर्ति निर्मित करना, रत्नसेन को उससे अप्रसन्न करने के लिए अधिक स्वाभाविक कारण उपस्थित करता है।[3]

चित्तौड़ से निकाले जाने पर राघव का वैरागी बनकर संयोग से दिल्ली की वाटिका में पहुँचना, आँखेट के लिए गए हुए अलाउद्दीन से अचानक भेंट हो जाना, भारत-सम्राट् के आग्रह करने पर नगर में प्रविष्ट होने के लिए राघव का स्वीकृति देना, शशा पर हाथ फेरते हुए कोमलता का प्रसंग आ जाने पर पद्मिनी का उल्लेख[4] राघव के चरित्र को अधिक निखार देते हैं। उसके ऊपर जायसी ने राणा से प्रतिशोध लेने का जो कलंक लगाया है, उससे जटमल ने राघव को मुक्त कर दिया है। इसी प्रकार अलाउद्दीन की बेगमों के प्रतिबिंब के तेल में दर्शन करना भी[5] उसके चरित्र को ऊँचा उठाने लगता है।

राणा के द्वारा अलाउद्दीन को पद्मिनी के स्थान पर दासी दिखाने की कल्पना[6] तथा अलाउद्दीन द्वारा दिये गए कष्टों से पीड़ित होकर सुल्तान को पद्मिनी समर्पित करने के लिए तैयार हो जाना[7] राणा के चरित्र को कुछ नीचा गिरा देता है। पर इसे प्रचलित कथा का अनुकरण माना जा सकता है।

जटमल ने पात्रों के भावों—कृतज्ञता[8], वीरता[9], वात्सल्य[10] आदि—के सफल चित्रण के लिए कथानक का समुचित प्रयोग किया है, पर उसने स्त्री-पुरुष-जाति-वर्णन[11] द्वारा कथानक की शृंखला को नष्ट कर दिया है। इससे कथावस्तु को भारी आघात पहुँचा है।

जटमल ने कतिपय स्थलों पर कथानक के निर्वाह में भयंकर भूलें भी कर दी हैं। पद्मिनी की प्राप्ति के लिए अलाउद्दीन का सिंहल पर आक्रमण तथा सागर के किनारे पहुँचकर राघव द्वारा यह बतलाना कि पद्मिनी चित्तौड़ में है,[12] कवि की असावधानी एवं कथानक-वर्णन संबंधी अनभिज्ञता का परिचायक है। इसी प्रकार अलाउद्दीन का दुर्ग का घेरा डाले रहना और राणा को इसका पता न लगना भी उपर्युक्त[13] कथन की पुष्टि करता है।

---

[1] गोराबादल की कथा, छं० ६-१४ [2] वही, छं० १६-२७ [3] वही, छं० ३१ [4] वही, छं० ३१-७ [5] वही, छं० ६२ [6] वही, छं० ८९ [7] वही, छं० ८८-९० [8] वही, छं० १३८ [9] वही, छं० १२७-३७, १४१-६ [10] वही, छं० १०६-११ [11] वही, छं० ३८-६० [12] वही, छं० ६४-९ [13] वही, छं० ७२

ऊपर के विवेचन के पश्चात् ज्ञात होता है कि जटमल ने कथानक के प्रयोग में कुछ त्रुटियां की है, पर उसको अधिक रोचक बनाने के लिए कल्पना-शक्ति की भी पूर्ण सहायता ली है। कथानक-चित्रण में उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है।

ललितललाम

'ललितललाम' अलंकार-शास्त्र संबंधी मुक्तक ग्रंथ है। कवि ने अपने आश्रय-दाता बूँदी-नरेश भावसिंह जी की राजधानी तथा उनके वंश का वर्णन करके अलंकारों के लक्षण एवं उदाहरण दिये हैं। उन्होंने प्रसंगवशात् अपने आश्रयदाता के विशिष्ट गुणों—दान आदि—का उल्लेख किया है। इसमें कथानक-निर्वाह का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। आलोच्य विषय संबंधी पद्यों में आश्रयदाता की प्रशंसात्मक भावनाओं का मतिराम ने सफल चित्रण किया है।

भूषण-ग्रंथावली

भूषण की सारी रचनाएँ मुक्तक-पद्धति में लिखी गई हैं। उनमें प्रबंध-काव्य के समान कथा-प्रवाह खोजना कवि के प्रति अन्याय होगा। भूषण ने अपने चरित्रनायकों के विशिष्ट चारित्र्य-गुणों और कार्य-कलापों को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। उनके काव्य का यह क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उनके नायकों के जीवन की विस्तृत झाँकी पाठक को मिल जाती है। नीचे भूषण के प्रत्येक ग्रंथ पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी :—

भूषण ने शिवराज-भूषण की रचना के संबंध में लिखा है :—

सिव-चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषन के चित्त।
भाँति-भाँति भूषननि सो, भूषित करौ कवित्त ॥
सुकबिन हूँ की कछु कृपा, समुझि कबिन को पंथ।
भूषन भूषनमय करत, सिवभूषन सुभ ग्रंथ[१] ॥

ऊपर दी हुई पंक्तियों से सिद्ध हो जाता है कि शिवाजी के चरित्र से ही भूषण को यह अलंकार-ग्रंथ लिखने की प्रेरणा मिली थी। उन्होंने इस ग्रंथ में शिवाजी के जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया है। उनमें से कुछ घटनाओं का उल्लेख मात्र किया है तथा कुछ पर कई छंदों की रचना कर डाली है। उन्होंने कुछ स्थलों पर एक ही छंद में अनेकों घटनाओं का वर्णन कर दिया है। इस पुस्तक में शिवाजी के वंश, रायगढ़ आदि के वर्णन के साथ उनके जीवन के १६५५ ई० से लेकर रविवार २६ अप्रैल, १६७३ ई० तक की प्रमुख घटनाओं, युद्धों एवं शौर्य-पूर्ण कार्य कलापों की झाँकी मिल जाती है। 'शिवराजभूषण' में इन घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन नहीं है। इसका कारण यह है कि यह अलंकार ग्रंथ है, न कि इतिहास ग्रंथ। अतएव उसमें क्रमबद्ध इतिहास अथवा घटनावली का अन्वेषण करना उचित नहीं है।

शिवाबावनी

यह ग्रंथ भी संग्रह-ग्रंथ है जिसमें शिवाजी के प्रताप, रण-प्रस्थान, रण, तलवार, नगाड़ा, आतंक, तेज, पराक्रम, विजय आदि का वर्णन है। इस ग्रंथ में वीर, रौद्र तथा भयानक रस का

---

[१] भूषणग्रंथावली, शिवराजभूषण, छं० २६-३०।

सुंदर परिपाक हुआ है। भूषण ने इसमें शत्रुओं की दुर्गति का सुंदर चित्र खींचा है। शिवाजी के प्रताप और आतंक के वर्णन बड़े विशद हैं। इसमें १६५५ ई० से १६७७-७८ ई० तक की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है।

छत्रसाल-दशक

भूषण के इस ग्रंथ में महाराज छत्रसाल बुंदेला के आतंक, पराक्रम, रण, तलवार, तोपखाना, प्रताप, दान आदि गुणों का वर्णन है। इन छंदों में चरित्र-नायक के गुणों का अच्छा वर्णन हुआ है। यह ग्रंथ क्रमानुसार नहीं लिखा गया है, वरन् संग्रह मात्र है।

फुटकल छंद

भूषण कृत स्फुट-काव्य में भी विविध व्यक्तियों के संबंध में कहे गये छंदों का संग्रह है। इनमें कुछ शृङ्गार के भी पद हैं।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भूषण ने अपनी मुक्तक रचना में शिवाजी तथा छत्रसाल के प्रमुख गुणों और उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया है। उनकी रचना क्रमबद्ध न होते हुए भी चरित्र-चित्रण तथा रस-परिपाक के गुणों से ओत-प्रोत है। हाँ, उसमें प्रबंध-काव्य के गुणों का अभाव है जो मुक्तक काव्य के लिये स्वाभाविक ही है।

राजविलास

'राजविलास' ऐतिहासिक ग्रंथ है पर मान ने उसके कथानक में ऐतिहासिक तथ्यों का कम ध्यान रखा गया है। दरबारी कवि होने के कारण वे परंपरागत, चारण और भाटों में प्रचलित घटनाओं का अपने काव्य में स्वतंत्रतापूर्वक समावेश करने के लोभ का संवरण न कर सके। यही कारण है कि अपने आश्रयदाता के पूर्वजों का वर्णन करने में बापारावल संबंधी प्रचलित सभी दंतकथाओं[1] को मान ने राजविलास में स्थान दिया है। साथ ही बापारावल की पट्टावली[2] का उल्लेख करते समय उसने नामों की एक लम्बी सूची दी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन नामों में से अधिकांश अशुद्ध है, और उनके सन्-संवत् भी भ्रान्तिपूर्ण हैं। इन नामों का प्रमुख कथानक से कोई विशेष संबंध नहीं है और वे पाठक के हृदय में ग्रंथ के प्रति अरूचि उत्पन्न करते हैं।

मान ने 'राजविलास' के कथानक में कुछ हेर-फेर भी किये हैं, उदाहरणार्थ उसने जसवंतसिंह और औरंगज़ेब की अनबन के कारणों[3] औरंगज़ेब और अजीतसिंह के मिलन आदि[4] के संबंध में कुछ ऐतिहासिक भूलें की हैं। इसके संबंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ऐसा करने से औरंगज़ेब के आतंक, जसवंतसिंह के आत्मसम्मान, राठौरों के वीरतापूर्ण युद्धों तथा वीरों की गर्वोक्तियों का स्वतंत्रतापूर्वक उत्तम वर्णन करने का मान को अवसर प्राप्त हो गया है, जिसका उसने सफलतापूर्वक लाभ उठाया है।

महाराणा राजसिंह और औरंगज़ेब के मध्य हुए युद्धों[5] में प्रयुक्त कथानक में भी यत्र-तत्र मान ने ऐतिहासिक क्रम एवं घटना को अघात पहुँचाया है, पर वहाँ पर युद्ध का सुन्दर वर्णन, वीरता, भय,

---

[1] राजविलास, छं० १७-१२८, पृ० १७-२४ [2] वही, छं० १-२७, पृ० २५-४० [3] वही, छं० ६-६६, पृ० १४६-५७ [4] वही, छं० १०१-३२, पृ० १६४-६६ [5] वही, पृ० २०६-६३

आतंक और प्रताप का अच्छा चित्रण बन पड़ा है। इस प्रसंग में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कवि ने कल्पना और अतिशयोक्ति से जी भरकर कार्य लिया है।

मान ने चरित्र-चित्रण करने के विचार से घटनावली का कम प्रयोग किया है। पर उक्त काव्य में ऐसे स्थल प्रचुरता से मिलते हैं जिनसे विदित होता है कि मान में इस क्षमता का अभाव न था, पर इस प्रवृत्ति को प्रधानता देने में वे असफल रहे हैं। चरित्र-चित्रण की भावना से प्रयुक्त 'राजविलास' में ये स्थल देने जा सकते हैं[1]।

मान की रुचि विविध विषयों के विशद वर्णन की ओर अधिक झुकी हुई थी, जिसके फलस्वरूप कथानक की गति एवं प्रवाह को भारी धक्का लगा है। सरस्वती-वर्णन,[2] वर्षा-वर्णन[3], राजसिंह के राज्य की प्रशंसा,[4] उदयपुर वर्णनांतर्गत विविध विषयों का चित्रण[5], बारात के राजसी वैभव का वर्णन,[6] राजसिंह एवं जसवंतसिंह का डींग बघारना,[7] राजसिंह के राज्याभिषेक का चित्रण,[8] महाराणा की आत्मश्लाघा,[9] वीरों की लम्बी सूची,[10] सामंतों की आत्मप्रशंसात्मक उक्तियाँ[11] आदि कुछ ऐसे प्रसंग है जिनमें कवि ने अनावश्यक विस्तार और पुनरावृत्ति की भरमार कर दी है, जिसके कारण घटनावली के प्रवाह में बाधा पड़ गई है। साथ ही अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के कारण अधिकांश स्थल ऊहात्मक हो गये हैं। पात्रों की आत्मश्लाघा एवं गर्वोक्तियों में मान उनके चरित्र को उठाने की अपेक्षा गिराने में अधिक सहायक हुए हैं।

यह सब होते हुए भी 'राजविलास' में ऐसे स्थल प्रचुर मात्रों में हैं, जहां पर मान ने कथानक के साथ उचित न्याय किया है। ऊपर दिये हुए कतिपय दोषों का कारण यह प्रतीत होता है कि मान दरबारी कवि था। अतः चारण परिपाटी एवं रीति-परंपरा से प्रभावित होना उसके लिये स्वाभाविक था। कविता उसके लिये जीविकार्जन का एक प्रमुख साधन थी। ऐसी दशा में अपने आश्रयदाता की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा करना ही उसका मुख्य लक्ष्य था, सर्वाङ्ग सुंदर काव्य लिखना नहीं। इसीलिये कथानक के साथ न्याय करने में वह बड़ी सीमा तक असफल रहा है।

छत्रप्रकाश

गोरेलाल ने 'छत्रप्रकाश' में गणेश जी और सरस्वती जी की बंदना[12] के उपरांत श्री रामचन्द्रजी से लेकर बुंदेलों की वंशावली का वर्णन किया है।[13] बुंदेलावंश-वर्णन में कवि ने परंपरा, चारण-परिपाटी और कल्पना की पर्याप्त मात्रा में सहायता ली है। उसने ज्ञात दंत-कथाओं का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया है। उसने नामावली की शुद्धता पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया है।

लाल कवि ने छत्रसाल की पूर्व-जन्म-कथा, सारवाहन-चरित्र[14] के वर्णन में कल्पना और

---

[1] राजविलास, छं० ६-२२, पृ० १०४-६, छं० ३६-९, पृ०२३०-१ [2] वही छं० १-३६, पृ० १-७ [3] वही, छं० ३९-५७, पृ० ८-१० [4] वही, छं०६०-१००, पृ० ११-५; छं० १-१५, पृ० १६-७ [5] वही, छं० ८५-१४७, पृ० ४५-५४ [6] वही, छं० ६६-८२, पृ० ७०-४ [7] वही, छं० ८५-९२, पृ० ७४-६ [8] वही, छं० २३-९३ पृ० ८४-९५ [9] वही, छं० १९५-९, पृ० १८१-२; छं० १३-७, पृ० १८६-७ [10] वही छं० ५५-६८, पृ० १९३-५ [11] वही, छं० ११-२३, पृ० १४४-२४७ [12] छत्रप्रकाश, पृ० १-२ [13] वही, पृ० २-१६ [14] वही, पृ० १७-२२

अत्युक्ति के सम्मिश्रण के साथ वीर, रौद्र एवं आतंक के चित्रण की दृष्टि से कथानक का अच्छा प्रयोग किया है। इस कथा का आगामी घटनावली में सुंदर समवन्य किया गया है।

छत्रसाल के जन्म तथा बालचरित्र का वर्णन करने[१] में कथानक का नख-शिख, अलंकार एवं बाल-सौंदर्य-वर्णन में सफल प्रयोग किया गया है। छत्रसाल द्वारा किये गये राम-दर्शन की घटनावली के वर्णन में गोरेलाल ने बाल औत्सुक्य तथा धर्म-भावना का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। सात वर्ष के छत्रसाल द्वारा राम और सीता की शृंगारिक भावनाओं को समझने की क्षमता का उल्लेख करके कवि ने उसमें कुछ अस्वाभाविकता का समावेश कर दिया है। छत्रसाल के सामने बाल-गोविन्द के नृत्य की कल्पना करके कवि ने अपने आश्रयदाता की बाल्यावस्था में ही भगवद्भक्ति-प्रवृत्ति दिखलाने की चेष्टा की है। इस घटनावली पर पौराणिक प्रभाव है। कुछ अस्वाभाविक होते हुए भी यह प्रसंग ग्रंथ के नायक के स्वभाव का आभास देने के साथ ही ग्रंथ को सरस भी बना देता है।

चौर-बध और पहाड़सिंह-प्रपंच-वर्णन[२] में लाल कवि ने बड़े कौशल का परिचय दिया है। इस प्रसंग में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, षड़यंत्र-प्रवृत्ति, सतर्कता आदि भावों एवं मनोवृत्तियों का सुंदर चित्रण किया गया है। इस घटनावली का उल्लेख करते हुए कवि ने एक ऐतिहासिक भूल भी की है। दारा द्वारा कंधार विजय करना लिखकर उसने अपनी ऐतिहासिक अनभिज्ञता का परिचय दिया है। हो सकता है कि कंधार-विजय का सारा गौरव चंपतिराय को देने की दृष्टि से ही उसने ऐतिहासिक घटना में यह परिवर्तन किया हो। कुछ भी हो, ऐसा करने में गोरेलाल ने दारा और चम्पतिराय के वैमनस्य का सुन्दर चित्रण करने में सफलता प्राप्त की है।

इसी प्रकार गोरेलाल ने बहादुर खां के लड़के के घोड़े आदि को चंपतिराय द्वारा युद्ध में लूटने की घटना[३] का उल्लेख करके कथानक को अधिक स्वाभाविक बनाकर कथा को अग्रसरता प्रदान की है।

गोरेलाल ने यथावसर आतंक, प्रताप, बीभत्स आदि के वर्णन के साथ ही साथ चरित्र-चित्रण के लिये घटनावली का सुंदर प्रयोग किया है।[४] कथानक के वर्णन के साथ ही बीच-बीच में अविवेकी की सेवा का दुष्परिणाम,[५] क्षत्रिय के कर्त्तव्य[६] आदि का भी समावेश कर दिया गया है जिनसे कथानक में रोचकता और सरसता आ गई है।

'छत्रप्रकाश' में कवि ने अपने आश्रयदाता के साथियों की नामावली[७] तथा विजित देशों की दीर्घ सूची[८] का बार-बार उल्लेख किया है। उसके ऐसा करने से कथानक में कुछ नीरसता का मिश्रण हो गया है। पर लाल ने मान तथा सूदन के समान लंबी-लंबी सूचियों का उल्लेख नहीं किया है। वास्तव में गोरेलाल अपने चरित्र नायक का सूक्ष्मातिसूक्ष्म युद्ध-विवरण देना चाहते थे, यही कारण था कि उन्होंने इन नामों का बार-बार उल्लेख किया है।

---

[१] छत्रप्रकाश पृ० २३-७ [२] वही, पृ० २८-४१ [३] वही, पृ० ४७-६ [४] वही, पृ० ५०-२, ५७, ६५-८ [५] वही, पृ० ७७ [६] वही, पृ० ८० [७] वही, पृ० ८६, १०१-३, १२५, १३३-४ [८] वही, पृ० ६६-७, १०४-२०, १२८

इस कवि ने घटना की वास्तविकता का कितना ध्यान रक्खा है, यह इसी से सिद्ध हो जायेगा कि उसने अपने आश्रयदाता की एक बार की पराजय का भी उल्लेख इन शब्दों में कर दिया है—

कह्यौ सबनि समुझाइयौ, जिन भजिबे पछिताउ।
भजे कृष्ण अवतार जे, पूरन प्रगट प्रभाउ॥[१]

आगे चलकर गोरेलाल ने 'छत्रप्रकाश' में महाराज प्राणनाथ द्वारा छत्रसाल को दिये गये कृष्ण-जन्म आदि के उपदेश का वर्णन किया है।[२] इस उपदेश में शृंगार का पुट पूर्णरूप से वर्त्तमान है। यह सम्पूर्ण वर्णन भागवत् के आधार पर लिखा गया है, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रसंग का प्रमुख काव्य से सीधा कोई संबंध नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि युद्ध में पराजित छत्रसाल तथा उनके साथियों की निराशा एवं हतोत्साहितता को दूर करने की दृष्टि से अथवा स्वामी प्राणनाथ की महत्ता प्रदर्शित करने की लालसा से ही इस विवरण को इस ग्रंथ में स्थान दिया गया है। मुख्य कथानक से संबंध न होते हुए भी यह प्रसंग अधिक रोचक और सरस ढंग से वर्णित किया गया है।

छत्रप्रकाश में अंतिम घटना लोहगढ़ विजय है, जिसके वर्णन में भी कवि ने कुछ ऐतिहासिक परिवर्त्तन किये हैं,[३] पर वर्णन सुंदर हुआ है।

इस प्रकार गोरेलाल ने 'छत्रप्रकाश' के कथानक का निर्वाह किया है। कुछ ऐतिहासिक व्यतिक्रम होते हुए भी घटनाओं का यथातथ्य निरूपण करने का उन्होंने ध्यान रक्खा है। लाल कवि ने यथाशक्ति अनावश्यक विस्तार एवं आवृत्ति का बहिष्कार किया है। भावों का समुचित उत्कर्ष दिखाने में उन्हें सफलता मिली है। कुछ खटकनेवाले दोष होते हुए भी यह मानना पड़ता है कि 'छत्रप्रकाश' में लाल कवि की प्रबंध-पटुता निस्संदेह उच्च कोटि की बन पड़ी है। उन्होंने संबंध-निर्वाह और मार्मिक स्थलों की अपनी पैनी दृष्टि से परख करके अपनी अभूतपूर्व कार्य-पटुता का परिचय दिया है।

जंगनामा

श्रीधर ने 'जंगनामा' के लिये फ़र्रुखसियर के उत्तराधिकार युद्ध की घटना को चुना है। उसने अपने इस छोटे से काव्य में कथानक के वर्णन पर बहुत कम ध्यान दिया है। इस कवि ने दोनों पक्षों से युद्ध में सम्मिलित होनेवाले अमीरों तथा वीरों के नामों की बार-बार आवृत्ति की है।[४] इन नामों की भरमार, अमीरों की सजावट तथा विशेषणों की आवृत्ति करने में श्रीधर ने अपनी इतनी संलग्नता दिखलाई है कि जिसके कारण कथानक-वर्णन हेय एवं नीरस हो गया है। इसके अतिरिक्त नादात्मक शैली-प्रयोग[५] के कारण भी घटनावली-प्रवाह को भारी धक्का लगा है।

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि श्रीधर ने कथानक का वर्णन करने में चरित्र-चित्रण, वीरता, आतंक, भय, रौद्र आदि भावनाओं का अच्छा विवेचन किया है।[६] उसने

---

[१] छत्रप्रकाश दो० ३, पृ० १४७ [२] वही, पृ० १५०-९ [३] वही, पृ० १६१-३
[४] जंगनामा, पंक्तियाँ ५२-६०, ७४-८२, १७४-२१२, २३३-३४५, ४१३-५३४, ८६७-१२४६, १२७३-४२० [५] वही, पंक्तियाँ १४२१-५०, १५६३-७४ [६] वही, पंक्तियाँ ८४-९४, ३७१-७, ५९०-६०६, ७०३-९, १२५०-७१

मुइज़ुद्दीन की बौखलाहट और डींग बघारने[१] और उसके दरबार[२] का यथातथ्य वास्तविक वर्णन किया है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि नीरसता एवं अरोचकता के स्थलों की भरमार होते हुए भी जंगनामा में ऐसे स्थान भी हैं जहां पर श्रीधर ने घटनावली के वर्णन में सहृदयता और सजगता का परिचय दिया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मुरलीधर में उत्तम काव्य-रचना की अनुपम प्रतिभा वर्तमान थी, पर भाटों की प्रशंसात्मक एवं लोभपूर्ण प्रणाली का अनुसरण करने के कारण उन्हें कथानक के साथ उचित न्याय करने का ध्यान नहीं रहता था। यही कारण है कि उनके घटना-वर्णन में इतनी नीरसता एवं शुष्कता है।

रासा भगवंतसिंह

सदानंद ने इस ग्रंथ में अपने आश्रयदाता के अंतिम युद्ध का वर्णन किया है। उसने इसमें व्यर्थ के विस्तार एवं अनावश्यक प्रसंगों और घटनाओं का एकदम बहिष्कार किया है।

इस कवि ने घटनावली का वर्णन इस पद्धति से किया है जिससे क्रोध,[३] आतंक,[४] वीरोचित गर्वोक्ति,[५] तथा चरित्र-चित्रण[६] के सुंदरतापूर्वक प्रतिपादन के साथ ही साथ युद्ध के अच्छे वर्णन[७] भी करने में वह सफल हो सके। कवि ने युद्ध में वीरता प्रदर्शित करनेवाले वीरों के नामों के उल्लेख[८] के अतिरिक्त चरित्रनायक के दान[९] का भी वर्णन किया है। उसके इस कार्य से कथानक का सौन्दर्य अधिक निखर गया है।

सारांश यह है कि 'रासा भगवंतसिंह' में लम्बी-लम्बी सूचियों तथा संयुक्ताक्षरों से युक्त शैली का एकदम अभाव है। यही कारण है कि इसका कथानक-वर्णन इतना सफल और वीररसानुकूल बन पड़ा है। इस प्रकार सदानंद को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता मिली है।

सुजानचरित्र

सूदन ने अपने ग्रंथ 'सुजानचरित' के लिए भरतपुराधीश सुजानसिंह के युद्धों का कथानक चुनकर उसी प्रकार दूरदर्शिता का परिचय दिया है जिस प्रकार भूषण ने शिवाजी तथा छत्रसाल को अपने काव्य का आधार बनाकर अपनी काव्य-पटुता प्रदर्शित की है। इस कवि ने सूरजमल के संपूर्ण जीवन को अपने ग्रंथ में स्थान नहीं दिया है। सूदन ने सुजानसिंह के पूर्वजों के वर्णन के साथ उनके सात युद्धों का विस्तृत वर्णन किया है। उसने युद्ध संबंधी प्रत्येक सूक्ष्म एवं विस्तृत घटनावली का उल्लेख अपने इस ग्रंथ में किया है।

सूदन ने 'सुजानचरित्र' में प्रत्येक वस्तु और पदार्थ की लम्बी नामावली दी है। आरम्भ

---

[१] जंगनामा, पंक्तियाँ ७१०-३०, ७५८-६६, ८३६-४२ [२] वही, पंक्तियाँ ६७४-९० [३] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, सं० १९८१ वि०, छं० १२, पृ० ११५ [४] वही, छं० ३५ पृ० ११६ [५] वही, छं० ४४, पृ० १२१-२ [६] वही, छं० ५४-५, पृ० १२३ [७] वही छं० ६८-९, पृ० १२५; छं० ७९-८० पृ० १२७ [८] वही, छं० ९५-७, पृ० १२९-३० [९] वही, छं० ४८-९, पृ० १२२

में १७५ कवियों के नाम,[१] अवतारों का उल्लेख[२] तथा सुजान के पूर्वजों का वर्णन[३] किया है। इसी प्रकार राजपूत, जाट तथा अन्य जातियों[४] तथा युद्धों में सम्मिलित होनेवाले वीरों के नामों[५] की बार-बार आवृत्ति की है। इसका परिणाम यह निकला है कि कथानक अरुचिकर और नीरस हो गया है तथा उसकी गति को भारी धक्का लगा है। इसके अतिरिक्त सूरजमल द्वारा दिल्ली के लूटे और जलाये जाने का वर्णन करते हुए सूदन ने विविध पशु-पक्षियों, अस्त्र-शस्त्रों, बर्त्तनों, बाजों, कपड़ों, आभूषणों, मिष्ठान्न, अनाज, ग्रन्थों[६] आदि के नामों की एक बड़ी विशाल सूची दी है, जिसके फलस्वरूप कथानक की धारा एकदम टूट गई है। इस अवसर पर केशव के समान पांडित्य-प्रदर्शन के प्रलोभन में सूदन ऐसे फँसे हैं कि उन्हें घटनावली के चित्रण का लेश-मात्र भी ध्यान नहीं रहा है। इस संबंध में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सूदन ने वीररस-काव्य-परंपरा का अनुकरण करके संयुक्त वर्णों[७] और व्यर्थ की नादात्मक निरर्थक शैली[८] का बार-बार प्रयोग करके कथानक को और भी शुष्क, नीरस तथा अरुचिकर बना दिया है।

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि सूदन को कथानक को सुंदर ढंग से अंकित करने में भी पूर्णरूपेण सफलता मिली है। यथावसर सूदन ने पात्रों के चरित्र-चित्रण[९] करते समय घटनावली को सुंदर रूप दिया है। उसने बीभत्स,[१०] वीर,[११] शृंगार[१२] तथा भय[१३] आदि के वर्णन करने में भी कथानक को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर दिया है। सूदन ने अलंकार-वर्णन[१४] करने में भी कथानक का उचित प्रयोग किया है।

सूदन ने अपने चरित्र-नायक के प्रतिद्वंद्वी का उत्तम[१५] वर्णन करके अपने ग्रंथ के कथानक को स्वाभाविकता प्रदान करने के साथ ही अपनी उदारता का भी परिचय दिया है। सुजान-चरित्र, में कवि सूदन ने युद्ध-वर्णन करने में बड़ी पटुता दिखाई है।[१६] बार-बार युद्ध का विस्तृत

---

[१] सुजानचरित्र, छं० १-६, पृ० १-३ [२] वही, छं० ११, पृ० ३-४ [३] वही, छं० १२-२६, पृ० ४-६ [४] वही, छं० ५-६, पृ० १४; छं० १३-४, पृ० ३०-१; छं० २७, पृ० ७५; छं० १५, पृ० १०८-६; छं० ४, पृ० २००-१ [५] वही, छं० ३२ पृ० १८-२०; छं० ८, पृ० २३-४; छं० १३, पृ० ४६-७; छं० ३ (४), पृ० ५३-४; छं० ८, पृ० ६३-४; छं० २८, पृ० ७५-६; छं० १८, पृ० ८-४५; छं० ७, पृ० ६४-६; छं० ५, पृ० ११२-३; छं० ६, पृ० ११५-६; छं० २-६, पृ० १२०-४; छं० ६, ६-१२, पृ० १३२-५; छं० ८-१०, पृ० १८४-५; छं० २०, पृ० १६४-५; छं० ५, पृ० २०१, छं० ३२-३, पृ० २०८-६; छं० १६-७ पृ० २१५-६; छं० २१, पृ० २१७-८; छं० २८, पृ० २२१-२; छं० ३२-६, पृ० २४३-४; [६] वही, छं० ३१-४७, पृ० १७१-६, [७] वही, छं० ४, पृ० २१-२; छं० १८, पृ० ३५, छं० २२, पृ० २१८-२० [८] वही, छं० २ (केवल कुछ पंक्तियाँ) पृ० २०-१; छं० १४, पृ० १३५-७; छं० १६, पृ० १४३; छं० ११, पृ० १८५-७ [९] वही, छं० २-४, पृ० ५७-५८; छं० ३४, पृ० ६६; छं० २-३, पृ० ६२-३; छं० २०-२, पृ० ६८ [१०] वही, छं० ११, पृ० ५६; छं० ६, पृ० ८२; छं० १६, पृ० २०५ [११] वही, छं० ५, पृ० ६३-४ [१२] वही, छं० ३५-७, पृ० १४६-७ [१३] वही, छं० १४-७, पृ० १६६-७ [१४] वही, छं० १२, पृ० २६ [१५] वही, छं० ४०-४, पृ० १४८-५१

इस कवि ने अपने ग्रंथ में एक स्थल पर दिल्ली के आदि काल से प्रारंभिक इतिहास को वर्णित काल तक संक्षेप में दिया है।[१] इस संक्षिप्त कथन से भी उसकी कथानक-चित्रण-पटुता का आभास मिलता है।

सूदन ने ग्रंथ के अंत में पहुँचकर मराठों द्वारा किये गए जाट-राज्य के आक्रमण का विस्तृत वर्णन न करके ब्रज-शोभा, कृष्ण-लीला, मुचकुन्द-कथा आदि पौराणिक विषयों का वर्णन किया है।[२] कहना न होगा कि ऐसा करके कवि ने प्रमुख ऐतिहासिक घटनावली को छोड़कर ग्रंथ के कथानक के साथ अन्याय किया है।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से विदित होता है कि सूदन को कथानक-चित्रण-पटुता प्राप्त थी, पर अपनी बहुज्ञता, पांडित्य-प्रदर्शन तथा शैली और भाषा-विविधता का प्रयोग करने के प्रलोभन में फँस जाने के कारण उनके 'सुजानचरित्र' में अधिकांश स्थलों पर अरोचकता, नीरसता तथा शुष्कता का समावेश हो गया है, जिससे कथानक को करारी ठेस पहुँची है। यह होते हुए भी 'सुजान-चरित्र' में कथानक के सुंदर वर्णन के स्थलों की भी कमी नहीं है।

करहिया को रायसौ

गुलाब कवि ने 'करहिया को रायसौ' नामक छोटे से खंड-काव्य में करहिया-प्रदेश के परमारों वर्णन करने से युद्ध के उत्तम वर्णन के तो काव्य में दर्शन हो जाते हैं, पर इससे कथानक की गति मंद अवश्य पड़ गई है।

और भरतपुराधीश जवाहिरसिंह के युद्ध का वर्णन किया है। इस कवि ने आरंभ में सरस्वती और गणेश जी की स्तुति[३] के पश्चात् अपने आश्रय-दाताओं की प्रशंसा की है[४]।

इसके अनंतर उसने उक्त युद्ध का वर्णन किया है। गुलाब कवि ने वीरों के नामों का बार बार उल्लेख किया है[५]। इन नामों के साथ ही उसने अधिकांश स्थलों पर इन वीरों के युद्ध तथा गर्वोक्तियों का अच्छा वर्णन किया है। गुलाब ने वीररसात्मक संयुक्ताक्षर शैली का भी प्रयोग किया है,[६] पर इससे कथानक के प्रवाह में बाधा पड़ी है।

उपर्युक्त कथन का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि गुलाब कवि में घटनावली के वर्णन की क्षमता का अभाव था। उसने कथानक का वीर-चरित्र-वर्णन करने में सफल प्रयोग किया है।[७] उसे रौद्रादि रस के चित्रण में भी पर्याप्त सफलता मिली है।[८]

यद्यपि गुलाब कवि ने इस छोटे से कथानक के चित्रण में कुछ असावधानी दिखलाई है, पर उसके वर्णन में उसे पर्याप्त मात्रा में सफलता भी प्राप्त हुई है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने शृंगारादि का समावेश अपने इस ग्रंथ में न करके कथानक को पूर्णरूपेण वीररसानूकूल बनाया है।

---

[१] सुजानचरित्र छं० ३-१६, पृ० १५४-७ [२] वही, छं० २७-५५, पृ० २२७-५० [३] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १०, १९८६ वि०, छं० १-४, पृ० २७७ [४] वही, छं० ५-८, पृ० २७७-८ [५] वही, छं० २१-२, पृ० २७९-८० छं० २३४ पृ० २८२-३; छं० ४५, पृ० २८५-६; छं० ५९-६२, पृ० २८८-९ [६] वही, छं० ३८, पृ० २८४; छं० ४७, पृ० २८७ [७] वही, छं० ४०-२, पृ० २८५ [८] वही, छं० १८, पृ० २८१

हिम्मतबहादुर-विरुदावली

पद्माकर ने हिम्मतबहादुर-विरुदावली में अनूपगिरि हिम्मतबहादुर तथा अर्जुनसिंह के मध्य लड़े गये युद्ध का वर्णन किया है। उन्होंने इस ग्रंथ के कथानक-वर्णन में परम्परा का पालन अधिक किया है। ग्रंथ के आरंभ में चरित्र-नायक की ऊहात्मक पद्धति में प्रशंसा की गई है।[१] इस ग्रंथ का अधिकांश भाग राजपूत उपजातियों,[२] वाद्य-यंत्रों,[३] हाथियों,[४] घोड़ों,[५] तोपों,[६] बंदूकों,[७] तलवारों[८] तथा अन्य हथियारों[९] आदि के नामों के गिनाने से भरा पड़ा है। परिणाम यह हुआ है कि कथानक का प्रवाह एकदम रुक गया है और ग्रंथ अरोचक हो गया है। संयुक्ताक्षरों[९] तथा नादात्मकशैली[१०] के प्रयोग ने भी घटनावली के लिए घातक कार्य किया है। पात्रों द्वारा लंबे-लंबे कथन[११] भी इस ग्रंथ में मिलते हैं जो चरित्र और कथानक दोनों ही दृष्टियों से ठीक नहीं है।

यह सब दोष होते हुए भी हिम्मतबहादुर-विरुदावली में कथानक की दृष्टि से कुछ विशिष्ट गुण भी वर्त्तमान हैं। पद्माकर ने अपने आश्रयदाता के प्रति-नायक की प्रशंसा[१२] करके कथा को अधिक स्वाभाविक बनाने की चेष्टा की है। पात्रों के स्वाभाव एवं गुण-दोष-चित्रण की भी चेष्टा की गई है, पर कम मात्रा में[१३]। युद्ध के वर्णन में अलंकारों की भरमार कर दी गई है, पर उनमें से कुछ अच्छे चित्रण भी हुए हैं[१४]।

ऊपर के विवेचन से यह सार निकलता है कि पद्माकर को 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' में कथानक-चित्रण में आशातीत सफलता नहीं मिली है। सूदन के समान उन्होंने नाम गिनाने की परंपरा और शब्दों की तड़क-भड़क पर ही विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने उपयुक्त नायक चुनने ही में असावधानी का परिचय दिया है। पर इस ग्रंथ में ऐसे स्थल भी हैं जिनसे सिद्ध होता है कि पद्माकर यदि सतर्कता से काम लेते तो उन्हें कथानक-चित्रण में पर्याप्त सफलता मिल गई होती।

जगद्विनोद

'जगद्विनोद' के जिन छंदों का आलोच्य विषय के अंतर्गत अध्ययन किया गया है, वे मुक्तक हैं और उनमें महाराज जगद्सिंह, जयपुराधीश की प्रशंसा की गई है। अतएव इस संबंध में कथानक-वर्णन पर विचार करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

प्रतापविरुदावली

प्रतापविरुदावली में महाराज प्रतापसिंह की विविध दृष्टियों से मुक्तक छंदों में प्रशंसा की गई हैं। कवि ने उसमें किसी घटना का वर्णन नहीं किया है।

---

[१] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० ३-१४ [२] वही, छं० २७-३७ [३] वही, छं० ३६-४१ [४] वही, छं० ४७-१ [५] वही, छं० ५२-६ [६] वही, छं० ६३-७०, ८६-९१ [७] वही, छं० ७०-२ [८] वही, छं० १९३-२०१ [९] वही, छं० ४५, ६१ [१०] वही, छं० १२०, १८६ [११] वही, छं० ९४-११०, १२२-८ [१२] वही, छं० १७-१८

हम्मीररासो

जोधराज ने हम्मीररासो के आरंभ में गणेश और सरस्वती[1] की स्तुति, आश्रयदाता[2] तथा अपना[3] परिचय दिया है। तदनन्तर उसने सृष्टि और मानव-रचना, चंद्र और सूर्य-वंश का वर्णन[4] किया है जिसका आधार पौराणिक गाथाएं हैं। इसके आगे उसने आबू पर्वत पर किये गये यज्ञ से अग्निवंशीय क्षत्रियों की उत्पत्ति[5] का उल्लेख किया है, जिस पर पृथ्वीराजरासो की स्पष्ट छाप विद्यमान है। तदनन्तर पद्म ऋषि के तप भंग होने और हम्मीर तथा अलाउद्दीन के जन्म संबंध[6] में जोधराज ने पौराणिक, काल्पनिक एवं मनगढ़ंत बातों का उल्लेख किया है, जिनका मूल कथानक से विशेष संबंध नहीं है। इसके संबंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इस घटना का आश्रय लेकर कवि ने ऋतुओं और श्रृंगार का विस्तृत वर्णन किया है। पर उसके ये वर्णन परंपरानुसरण मात्र हैं और कहीं-कहीं पर सीमा का उल्लंघन कर गये हैं, अतएव यह घटनावली कथानक के लिये भूषण नहीं वरन् दूषण है।

जोधराज ने हम्मीर और अलाउद्दीन के पारस्परिक बैर के कारणों का उल्लेख करते हुए मीर महिमा तथा शाही बेगम रूप-विचित्रा के प्रेम, मीर द्वारा सिंह के मारने, इस घटना से सुल्तान के अप्रसन्न होकर मीर महिमा को निकाल देने तथा मीर महिमा के हम्मीर के यहां जाकर शरण लेने का वर्णन[7] किया है।

इस कथा से मिलती-जुलती एक घटना, मीर हुसेन कथा[8], का पृथ्वीराजरासो में उल्लेख है। इन दोनों ग्रंथों में वर्णित दोनों कथाओं में अत्यधिक साम्य है। हम्मीररासो के रचना-काल से पूर्व ही पृथ्वीराजरासो का वर्तमान रूप निश्चित हो चुका था। ऐसी परिस्थिति में यह विदित होता है कि जोधराज इस कथा के लिये चंद बरदायी का ऋणी है।

मीर महिमा और रूप-विचित्रा की कथा ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी अपना निजी महत्त्व रखती है। इस प्रसंग में कवि ने सेना, झंझावत, मीर महिमा के चरित्र और श्रृंगार के वर्णन में विशदता का परिचय दिया है, पर श्रृंगार के वर्णन में वह अश्लीलता की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है। साथ ही उसने अलाउद्दीन के द्वारा चूहे को मरवाकर उसके चरित्र को अधिक गिरा दिया है। इस दृष्टि से विचार करने पर कथानक का यह अंश कवि के द्वारा उचित ढंग से नहीं वर्णित किया गया है, यही कहने के लिये बाध्य होना पड़ता है।

आगे चल कर जब दूत अलाउद्दीन के समक्ष मीर महिमा के राव हम्मीर की शरण में जाने का समाचार देता है, उस अवसर पर शाही मंत्री बहराम खां का यह कथन कि मीर तो सागर के पार चला गया है,[9] कुछ अस्वाभाविक लगता है। उसकी इस उक्ति के पश्चात् और किसी उत्तर का उल्लेख न करके, कवि ने एकदम हम्मीर को पत्र लिखने के लिये शाही आज्ञा का कथन[10] करके कथानक के पूर्वा पर संबंध-निर्वाह को आघात पहुँचाया है।

---

[1] हम्मीररासो, छं० १-४ [2] वही, छं० ५-७ [3] वही, छं० ८-११ [4] वही, छं० १४-३६ [5] वही, छं० ४०-७० [6] वही, छं० ७१-वचनिका, पृष्ठ ३८ [7] वही, छं० १८८-३०५ [8] पृथ्वीराजरासो सार, ६ वां समय, पृष्ठ ३६-४३ [9] हम्मीररासो छं० ३१८ [10] वही, छं० ३१६

इसके अनन्तर जोधराज ने दूत के मुख से राव हम्मीर के राजसी वैभव, वाटिका आदि का विस्तृत वर्णन कराया है,[१] जो परंपरा का पालन मात्र है। इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता के पूर्वजों की प्रशंसा करके उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया है, ऐसा अनुमान होता है। इसी प्रकार वजीर के मुख से कराये गये हम्मीर के पूर्वजों के गुण-गान[२] को भी समझना चाहिए। इन वर्णनों में कथा की धारा एकदम मंद पड़ गई है।

इसके आगे यथास्थान अलाउद्दीन का मंत्री उसे राव हम्मीर से युद्ध न करने की मंत्रणा देता है और तुरंत ही आक्रमण के लिये सेना की तैयारी की सूचना मिल जाती है[३] इसको कथानक में क्रम-भंग ही कहना उचित जँचता है। इसी प्रसंग में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उक्त सेना में कवि ने देश-विदेश की विविध सेनाओं के नाम गिनाये हैं, जो काल्पनिक एवं परंपरागत हैं।

जोधराज की कथानक संबंधी त्रुटियों का यहीं पर अंत नहीं हो जाता है। उसने चौहानों और मुसलामानों के परंपरागत बैर का वर्णन[४] किया है, जो पृथ्वीराजरासो के आधार पर प्रतीत होता है और जिसका प्रमुख घटनावली से कोई भी संबंध नहीं है।

यही नहीं, इस कवि ने दोनों पक्षों में दैवी-शक्ति की सहायता की भी कल्पना की है। राव हम्मीर और अलाउद्दीन देवों और पीरों को अपनी अपनी सहायता के लिये बुलाते हैं। वे देव और पीर एक बार नहीं अनेक बार आकर अपने अपने उपासकों की सहायतार्थ युद्ध में सम्मिलित होते हैं।[५] ऐसे स्थलों पर कथानक बच्चों का खेलवाड़ और उपहासास्पद हो गया है और मुख्य कथानक का रूप उनमें न जाने कहाँ विलीन हो गया है। इसी प्रकार जमाल खाँ का मुहम्मद ग़ोरी के आदेश से पृथ्वीराज को पकड़ना और अलाउद्दीन के आदेश को पाकर हम्मीर के विरुद्ध रण-क्षेत्र में जाना भी कवि की असावधानी का परिचायक है[६]। उसने मुहम्मद ग़ोरी और अलाउद्दीन के समय का ध्यान नहीं रक्खा है, जिसके परिणामस्वरूप इस स्थल पर कथानक एकदम काल्पनिक एवं निराधार हो गया है।

आगे चलकर चित्तौड़ के कुमारों के प्रसंग[७] में भी जोधराज ने अपनी ऐतिहासिक अज्ञानता का परिचय दिया है, जिसके फलस्वरूप कथानक की स्वाभाविकता नष्ट हो गई है और इसके समावेश से अकारण ही ग्रंथ को विस्तार दे दिया गया है।

चंद्र-कला-नृत्यान्तर्गत मीर महिमा द्वारा अलाउद्दीन के मुकुट गिराये जाने का उल्लेख किया गया है।[१] ऐसा प्रतीत होता है कि जोधराज ने यह घटना तुलसी द्वारा वर्णित अंगद द्वारा फेंके गये रावण के मुकुट के प्रसंग[२] से ली है।

सुर्जन के विश्वासघात[१०] के कथानक में जोधराज ने सम्भवतः अकबर के समकालीन रणथंभौर दुर्गाध्यक्ष राव सुर्जन के नाम-का उल्लेख करके अपनी अज्ञानता का परिचय दिया है।

---

[१] हम्मीर रासो, छं० ३३२-७२ [२] वही, छं० ३६७-९ [३] वही, छं० ३७०-२ [४] वही, छं० ४११-२ [५] वही, छं० ४५६, ४७८-८६, ५६१-७, ६१८-९ [६] वही, छं० ५३५-८ [७] वही, छं० ५०६-३४, ६६०-२ [८] वही, छं० ६२२-४३ [९] माताप्रसाद गुप्त, श्रीरामचरित मानस, लंका कांड, पृ० ४२१ [४] हम्मीर रासो छं० ६४७-५६, ६६२

इसी प्रकार अलाउद्दीन के द्वारा हिंदू देवों की पूजा करना,[१] उसके द्वारा संधि-प्रस्ताव,[२] सम्राट् का पराजित होकर बंदी बनना तथा मुक्ति पाकर दिल्ली को प्रस्थान करना,[३] शिवजी को अर्पित किये गये राव हम्मीर के शीश की आज्ञा मानकर अलाउद्दीन का रामेश्वरम् में जाकर सागर में समाधिस्थ होकर प्राण-विसर्जन करना,[४] ऐसे प्रसंग हैं जो एकदम इतिहास-विरुद्ध और काल्पनिक हैं। इन कथानकों के कारण मुख्य घटनावली का रूप विकृत हो गया है। पर ऐसा करने से कवि को अपनी कल्पना-शक्ति का परिचय देने का अच्छा अवसर मिल गया है। साथ ही अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करके पुष्कल धन प्राप्त करने का भी सुयोग उसे मिल गया होगा, जैसा कि उसने ग्रंथ के अंत में स्वीकार भी किया है[५]।

कथानक संबंधी उपर्युक्त त्रुटियों और भूलों के होते हुए भी उसमें कुछ विशिष्ट गुण भी हैं। जोधराज ने वीरोक्ति[६] रौद्र,[७] आदि के अच्छे उदाहरणों द्वारा कथानक को अधिक स्वाभाविक बनाने की सफल चेष्टा की है। जोधराज ने युद्ध के अच्छे चित्रण द्वारा[८] वीररस का अच्छा परिपाक किया है, यद्यपि ऐसा करने में उसने कल्पना का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। उसने पात्रों के चरित्र को ऊँचा उठाने की भी चेष्टा की है। पर कहीं-कहीं पर उसमें उपदेश की प्रधानता हो गई है, उदाहरणार्थ हम्मीर की रानी का चरित्र क्षत्राणी के अनुरूप होते हुए भी उपदेशात्मक हो गया है।[९] कहीं-कहीं पर जोधराज ने वीर और शृंगार के सुंदर चित्रण[१०] द्वारा कथानक को अधिक रोचकता प्रदान की है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने वीरकाव्य की सूदन वाली नाम गिनाने की परि-पाटी का एकदम बहिष्कार किया है। केवल एक दो स्थानों पर ही राजपूतों[११], घोड़ों[१२] एवं गजों[१३] का उल्लेख हुआ है। कवि की इस नीति के कारण कथानक की सरसता और रोचकता की पर्याप्त मात्रा में रक्षा हो गई है।

ऊपर किये गये विवेचन का यह सार निकलता है कि हम्मीररासो में कथानक के वर्णन में कवि ने बहुत सी भूलें की हैं, पर उसमें ऐसे विशिष्ट स्थल भी हैं जो कवि की प्रबंध-कल्पना-पटुता का प्रमाण देते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि जोधराज ने इतिहास-विश्रुत नायक अपने काव्य के लिए चुना है। यही कारण है कि उसे अपने उद्देश्य में कुछ सफलता मिली है। उसके सामने पृथ्वीराजरासो की परंपरा थी, जिससे उसने पूर्ण लाभ उठाया है। परंपरा से ऊँचा उठने की मौलिक प्रतिभा संभवतः जोधराज में वर्त्तमान नहीं थी, इसीलिए वे अपने काव्य के कथानक के प्रवाह की रक्षा करने में उतने सफल नहीं हो सके जितना कि उन्हें होना चाहिए था। साथ ही चारणों की आश्रयदाताओं की ऊहात्मक प्रशंसा करके प्रचुर धन प्राप्त करने की परिपाटी और लालसा ने भी कथानक के रूप को विकृत करने के लिए उन्हें विवश कर दिया था। यह सब होते हुए भी इस दृष्टि से जोधराज का निजी स्थान है इसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

---

[१] हम्मीररासो छं० ६०१-२ [२] वही, छं० ८३०, ८४८, ९२७-२९ [३] वही, छं० ९३५-४२ [४] वही, छं० ९४७-६५ [५] वही, छं० ८६७ [६] वही, छं० ३२७ [७] वही, छं० ३८० [८] वही, छं० ४३८-५५, ८९३-९२० [९] वही, छं० ६६६-८२ [१०] वही, छं० ७५०-८ [११] वही, छं० ७०० [१२] वही, छं० ७१२-२८ [१३] वही, छं० ७२९-३७

अध्याय ३

चरित्र-चित्रण

सामान्य स्थिति— प्रस्तुत साहित्य के मंथन से विदित होता है कि पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर इन कवियों का ध्यान विशेष रूप से नहीं गया था। ये ग्रंथ ऐतिहासिक काव्य थे इसी लिए अधिकांश कविगण इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण करके ऐतिहासिक घटनावली, पात्रों, स्थानों तथा अन्य सामग्री की सूची का उल्लेख भर कर दिया करते थे। इनमें पात्रों की अधिक भरमार होती थी। लूटमार तथा युद्ध-सामग्री की विस्तृत सूची, अलंकार-प्रयोग, चमत्कारवादिता, रीति-परंपरा का अनुसरण आदि कुछ ऐसे कारण थे, जिनके फलस्वरूप चरित्र-चित्रण की ओर इन कवियों का ध्यान बहुत कम गया था।

उपर्युक्त कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि उक्त काव्यों में चरित्र-चित्रण का एकदम अभाव है। पर इतना सत्य है, कि इन कवियों ने अधिकतर परंपरागत कुछ विशिष्ट गुणों का ही उल्लेख अपने पात्रों के संबंध में किया है। पर कुछ प्रबंध-काव्यों में चरित्रों का अच्छा चित्रण भी हुआ है। ऐतिहासिक प्रबंध-काव्यों में चरित्र-चित्रण प्रायः उत्तम हुआ है। रासो परंपरा के ग्रंथों में पृथ्वीराजरासो की छाप स्पष्ट रूप से मिलती है। मुक्तक-ग्रंथों में कुछ विशेष बातों को ही लेकर चित्रण कर दिया गया है। स्त्री-पात्रों के संबंध में भी एक बँधी हुई धारा का अनुकरण किया गया है। नीचे चरित्र-चित्रण संबंधी कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है, जिससे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो सके।

कुछ अपवादों के साथ प्राय: सभी पात्रों—विशेषकर नायकों-में एक ही प्रकार की विशेषताओं के उल्लेख सभी ग्रंथों में मिलते हैं। इन पात्रों को मृगया, मल्ल-युद्ध तथा गज-युद्ध से विशेष प्रेम होता था। वे अस्त्र-शस्त्र संचालन में अधिक दक्षता प्राप्त किया करते थे। युद्ध में स्वयं सेना संचालन करते हुए नायक सेना के अग्र भाग में रहकर युद्ध की गति-विधि का स्वयं निरीक्षण करते थे। वे विजयी वीरों का समुचित आदर किया करते थे।

इन ग्रंथों के नायक प्रायः युद्ध-वीर के रूप में ही चित्रित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त वे दान-वीर, दया-वीर एवं धर्म-वीर भी हुआ करते थे। वेद, गौ, ब्राह्मण और हिंदू धर्म की रक्षा के लिए ये पात्र सदैव परिकरबद्ध रहा करते थे। वे दान में मन-भर धन लुटाया करते थे। ये भाटों एवं कवियों को सदैव सम्मानित करते थे।

कुछ पात्र बड़े यशस्वी तथा कर्म-वीर हुआ करते थे। शत्रु से लोहा लेना, अपनी विजय के लिए सर्वस्व न्यौछावर करना और हँसते-हँसते अपने प्राणों की बलि चढ़ा देना इन वीर-पुंगवों के लिए साधारण बात थी। उनमें से कुछ वीरों ने अपने बाहु-बल पर, साधारण स्थिति से उठकर और दिल्ली राज्य की जड़ें हिलाकर, विस्तृत राज्यों की स्थापना की थी। ऐसे पात्रों के वर्णन में सच्ची वीरता, अदम्य उत्साह, असीम अध्यवसाय और कार्य-कुशलता के दर्शन होते हैं। प्रायः सभी प्रमुख पात्रों की यह विशेषता थी कि वे शत्रु को तंग करने के लिए छिपकर छापा मारते, राज्यों को लूटते, आग लगा देते, चौथ उगाहते और जंगलों एवं अन्य सुरक्षित स्थानों में जा छिपते थे।

दिल्ली राज्य के शत्रुओं और विद्रोहियों में परस्पर मित्रता स्थापित हो जाया करती थी। ऐसे मेल-मिलाप द्वारा वे अपने शत्रु को पराजित करने के लिए सदैव प्रयत्न करते रहते थे। अवसर पड़ने पर विश्वासघात, हत्या आदि करने से भी कुछ पात्र नहीं चूकते थे, किन्तु अधिकांश पात्र सत्यानुसार आचरण करनेवाले और महान् व्यक्ति थे।

इन पात्रों में और विशेषरूप से नायकों में सच्ची राजपूत वीरता एवं कर्मण्यता के गुण वर्तमान थे। प्रतिद्वन्द्वी से लोहा लेना और करमिट अथवा मरमिट की भावना उनमें रहा करती थी। उनकी वीरता, क्रूरता एवं नृशंसता की भित्ति पर अवलंबित नहीं थी। हाहा खाते पर हाथ उठाना, धोके से शत्रु को मारना आदि बातें उन्हें रुचिकर नहीं थीं। प्रार्थना किये जाने पर वे शत्रु को धर्म-द्वार प्रदान कर दिया करते थे। वे जितने वीर होते थे उतने ही दयालु और जितने ही कठोर उतने ही उदार।

इन पात्रों में स्वामिभक्ति, कृतज्ञता आदि गुण वर्तमान थे। सेनापति आदि कर्मचारी अपने स्वामी के कार्य को बड़ी तत्परता और सच्ची लग्न के साथ किया करते थे। यह उनके चरित्र की एक अलौकिक विशेषता थी।

इन ग्रंथों में कुछ ऐसे पात्र भी मिलते हैं जो छल-कपट, विश्वासघात एवं धूर्तता के साक्षात् अवतार थे। अपने स्वार्थ की पूर्त्ति करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य होता था। नीति, अनीति, उचितानुचित का ध्यान करना तथा ऐसी ही अन्य बातों पर विचार करना उनके लिए सदैव आवश्यक था। कुछ ऐसे भी पात्र थे जो आत्मश्लाघा एवं दूसरों को उपदेश देना आदि ही सच्ची वीरता का आदर्श समझा करते थे।

इन ग्रंथों में नायक और उसके पक्ष के पात्रों के गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर अंकित किया गया है। उनके प्रतिपक्षियों को प्रायः अधिक ऊँचा उठाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। ऐसे बहुत कम कवि हैं, जिन्होंने प्रतिनायक के आतंक, गौरव और वैभव का उदारतापूर्वक वर्णन किया है। इस संबंध में मान और सूदन के नाम लिये जा सकते हैं। रासो परम्परा के अनुयायी जोधराज ने अपने ग्रंथ के उपनायक के चरित्र को बहुत गिरा दिया है। सूदन, पद्माकर आदि कवियों ने अपने आश्रय दाता के शत्रु की भी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

इन ग्रंथों में नारी-पात्रों का उल्लेख अपेक्षाकृत कम हुआ है। जटमल ने नारी-जाति-वर्णन और जोधराज ने स्त्री-चित्रण में रीति तथा रासो परम्परा का अनुसरण किया है।

उक्त सभी ग्रंथों में नारी-पात्र प्रायः दो रूप में हमारे सामने आते हैं। कुछ ऐसे स्त्री-पात्र हैं जिनके नखशिख, सौंदर्य आदि का वर्णन किया गया है। यह स्पष्ट ही श्रृङ्गारिक भावना का प्रभाव है। नारी का यह रूप उद्दीपक, साधना में बाधक और कर्त्तव्य-पथ से विमुख कराने वाला है।

नारी का दूसरा रूप भी इन ग्रंथों में देखने को मिलता है। उनका यह स्वरूप अत्यन्त उज्ज्वल एवं महान् है। इस रूप में स्त्री सच्ची क्षत्राणी, सती, साध्वी, माता और पत्नी के रूप में आती है। उसका यह रूप अधिक वास्तविक, वीरता से पूर्ण और स्थायी है। उसका यह चित्रण रीति-काल के अश्लील प्रभाव से बचा हुआ है। यह इस काव्यधारा की अपनी निजी विशेषता है, जिसकी उपमा अन्यत्र मिलना कठिन है। यद्यपि इन कवियों ने अपने ग्रंथों में बहुत कम स्त्री-पात्रों का समावेश किया है, किन्तु जहां पर भी उन्होंने नारी के इस आदर्श रूप को रक्खा है वहाँ पर वह

सच्ची घटनाओं पर निर्भर होने के कारण अधिक सत्य एवं प्रभावोत्पादक हो गया है। नारी का यह रूप चारण, भक्ति और रीतिकालीन साहित्य में सबसे अलग अपनी विशेषता रखता है। सूक्ष्म होते हुए भी नारी का यह चित्रण आदर्श और महान् है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा, कि कुछ कवियों ने प्रबंध-काव्यों में इतिहास के अनुकूल और कुछ ने ऊहात्मक शैली के अनुसार अपने पात्रों के चरित्र अंकित किये हैं। कुछ ग्रंथों में अतिशयोक्तिपूर्ण चरित्र-चित्रण भी मिलते हैं। कुछ ग्रंथों में रासो की शैली पर चरित्रों का वर्णन किया गया है। मुक्तक-ग्रंथों में भी दो प्रकार के चरित्र-चित्रण मिलते हैं। कुछ में यशस्वी नायक को लेकर उसकी वीरता आदि का वर्णन किया गया है और कुछ में कोरी प्रशस्ति मात्र की गई है। कुछ कवियों ने चरित्र-चित्रण के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित की है। पर प्रायः सभी ने कुछ विशिष्ट शैली ही का अनुकरण किया है। जैसा कि कहा जा चुका है, नारी-पात्र कम आये हैं, पर उनके चरित्रों की अपनी निजी विशेषताएँ हैं।

ऊपर बतलाई हुई चरित्र-चित्रण की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने के लिए नीचे प्रत्येक ग्रंथ के प्रमुख पात्रों के चरित्रों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है :—

वीरसिंहदेवचरित तथा रत्नबावनी

केशव के वीरसिंहदेवचरित्र के अध्ययन से विदित होता है कि कवि की प्रवृत्ति पात्रों के चरित्रों के क्रमिक विकास एवं चित्रण की ओर लेशमात्र भी नहीं रही है। इस ऐतिहासिक ग्रंथ में इतिवृत्तात्मक वर्णन-शैली का अनुकरण करते हुए तथा घटनावली की सूची देते हुए कवि तीव्र गति से अग्रसर होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। पात्रों, स्थानों, आदि के नाम गिना देने की ओर कवि की विशेष रुचि रही है। पात्रों की इतनी भरमार कर दी है कि उनके चरित्र-संबंधी विश्लेषण के लिए अवसर ही नहीं रह गया है। साथ ही चमत्कारप्रियता, अलंकार-प्रयोग, ऋतु-वर्णन आदि के कारण भी चरित्र-चित्रण को व्याघात पहुँचा है। संवादों के द्वारा पात्रों के चरित्रों में सजीवता का समावेश हो जाता है। ऐसे अवसर जहाँ कहीं भी आये हैं, वहाँ पर पात्रों की विशेषताओं का विकास होता हुआ दिखलाई देता है, परन्तु बहुत कम पात्रों में। अधिकतर पात्र आत्मश्लाघा और उपदेशपूर्ण वार्तालाप में ही व्यस्त पाये जाते हैं।[१] स्त्री-पात्रों का कम उल्लेख किया गया है।

इस ग्रंथ में उल्लिखित अधिकांश पात्रों के ऐश्वर्य, वैभव, शौर्य, वीरत्व, चातुर्य, राजनीतिज्ञता आदि गुण इतिहास-प्रसिद्ध हैं। केशव ने उनके इन गुणों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। कहीं-कहीं पर उनकी ओर संकेत भर कर दिया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उनकी गति-विधि, विजयों तथा पराजयों का उल्लेख भर उक्त ग्रंथ में मिलता है।

'रत्नबावनी' मुक्तक ग्रंथ है। उसमें चरित्र का विकास नहीं हुआ है। रतनसेन के कतिपय गुणों का उल्लेख भर किया गया है।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए इन ग्रंथों के प्रमुख पात्रों के चरित्रों पर विचार कर लेना ठीक प्रतीत होता है। उक्त ग्रंथों के सभी पात्रों के चरित्रों पर इस सीमित परिधि में विचार करना संभव नहीं है। दूसरे वह अनावश्यक भी है, क्योंकि अधिकांश पात्रों के नामों का उल्लेख भर किया

---

[१] वीरसिंहदेवचरित्र, छं० ७८-८०, पृ० ३५

गया है। जिन पात्रों के चरित्र के संबंध में यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री मिलती है, उन्हीं में से कुछ प्रमुख पात्रों के चरित्रों पर नीचे विचार किया जा रहा है।

वीरसिंहदेव—मधुकरशाह के कनिष्ठ पुत्र और बड़ौन के शासक वीरसिंहदेव इस काव्य के नायक हैं। केशव ने इन्हें अत्यंत शक्तिशाली, पराक्रमी, गहरवार-कुल-कलश, ईश-अंशावतार, महाराजमणि, अकबार को दुःसह दुःख से जलानेवाले आदि विशेषणों से विभूषित किया है।[1]

यह आरंभ से ही अकबर जैसे उद्दंड सम्राट् का अपनी सीमिति सामग्री के बल पर बड़ी वीरतापूर्वक सामना करते रहे। वे उसके भेजे हुए सैनिकों को भगा देते तथा उसके सूबों और स्थानों पर बात की बात में अधिकार कर लेते थे। शत्रु की अपार सेना के आने पर वे घने वनों में घुस जाते और वहाँ से उसको तंग करते रहते थे।[2] यह उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता थी। इतनी विशाल सेना का खुलकर सामना करना भयपूर्ण था। अतः उन्होंने उक्त नीति का अनुसरण किया था।

अकबर के सेनापति और सूबेदार नवाब दौलतखाँ द्वारा दक्षिण में उच्च पद प्रदान करने के प्रलोभन को ठुकराकर आखेट का बहाना करके वीरसिंहदेव ने बुंदेलखंड में लौटकर बड़ौन पर पुनः अधिकार कर लिया। इन कार्यों से इनकी मातृ-भूमि के प्रति भक्ति एवं नीति-चातुर्य विदित होती है।[3]

ओड़छा राज्य-परिवार से सहज शत्रुता होने पर भी वे अपने भतीजे संग्रामसाहि को अपने यहाँ बिना रोक-टोक आने-जाने देते थे। छली, विश्वासघातक एवं दुष्ट प्रकृति के अपने ज्येष्ठ भ्राता रामसाहि की सेवा के लिए यह कहकर कि "जेठो भैया दजै राज। इनकी हमैं सेवा सौं काज॥ जो कछु राजा-आयुस दियौ। सिर पर मानि सबै हम लियौ॥" ये तत्पर हो गए थे।[4] तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति उनकी यह उदार भावना वास्तव में उनके चरित्र को बहुत ऊँचा उठा देती है।

प्रयाग में पहुँचकर उन्होंने जो धार्मिक कृत्य किये उनसे उनकी धार्मिकता, दानशीलता, एवं उदारता प्रकट होती है।[5]

वीरसिंहदेव अनुकूल परिस्थितियों से लाभ उठानेवाले एक चतुर राजनीतिज्ञ थे। अपने शत्रु को नीचा दिखाना और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर उन्होंने विद्रोही सलीम से मैत्री स्थापित की थी।[6] वे निर्भय एवं निडर योद्धा थे। इसी कारण सलीम के द्वारा किए गए अबुलफ़ज़ल को पकड़ने या मारने के प्रस्ताव का विरोध करते हुए उन्होंने स्वामी और सेवक के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करते हुए ये शब्द कहे थे :—

जन की जुवती कैसी रीति, सब तजि साहिब ही सों प्रीति।[7]

पर अंत में अपने मित्र के हित-साधन तथा अपने भावी लाभ एवं अकबर के प्रति शत्रु भावना के वशीभूत होकर सलीम के प्रस्ताव के अनुसार कार्य करने को वे सन्नद्ध हो गए।

अबुलफ़ज़ल के मारे जाने पर क्रुद्ध होकर अकबर ने इनके विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगा

[1] वीरसिंहदेव चरित छं० १-२, पृ० १ [2] वही, छं० २८-३७, पृ० २० [3] वही, छं० ५५-६, पृ० २३ [4] वही, छं० ६५, पृ० २३, छं० ३६, पृ० २६ [5] वही, छं० २६-४३, पृ० ३०-२ [6] वही, छं० ४४-५२, पृ० ३२-३ [7] वही, छं० ६१-३, पृ० ३३-४

दी। वीरसिंहदेव के परिवार के प्रायः सारे व्यक्ति शत्रु से मिले थे, पर उन्होंने बड़ी चतुरता, धीरता, एवं वीरतापूर्वक शत्रु का सामना किया। वे एक दुर्ग से दूसरे और दूसरे से तीसरे में चले जाते पर शत्रु के हाथ नहीं आते थे। विजय प्राप्त होने पर शत्रु को अभय-दान देकर वे अपनी विशालहृदयता का परिचय देते थे।[1]

जहांगीर से प्राप्त बुंदेलखंड के सारे पट्टे रामसाहि के सामने रखकर तथा अपने पुरोहित केशव मिश्र के परामर्श से उनके प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत होकर उन्होंने भरत सदृश्य त्याग का आदर्श उपस्थित किया था।[2] यही नहीं, ओरछा में नर-संहार बंद करवाकर, ओरछा आदि इंद्रजीत तथा अन्य व्यक्तियों को समर्पित करके तथा रामसाहि को मुक्त कराने के लिए आगरा पहुँचकर उन्होंने अपनी दयालुता, निर्लिप्तता, भ्रातृ-भक्ति आदि अनुपम गुणों का परिचय दिया था।[3]

अंत में जहांगीर ने इन्हें मधुकरसाहि के सारे देश का शासक बना दिया। कवि के शब्दों में वे "नरदेवनि के देव" थे।[4]

ऊपर के संक्षिप्त परिचय से विदित होता है कि वीरसिंहदेव आदर्श वीर, चतुर राजनीतिज्ञ, धार्मिक उदार निर्भीक मनः तथा दानी शासक थे। वे पारिवारिक वैमनस्य और शत्रुता को दूर करने के उपाय करते रहते तथा गुरुजनों एवं कनिष्ठों के प्रति अपने कर्त्तव्यपालन का सदैव ध्यान रखते थे। अकबर जैसे ऐश्वर्यवान् एवं शक्तिशाली शासक को सदैव नाकों चने चबाते रहना ही उनकी महानता का पर्याप्त प्रमाण है।

रामसाहि—वीरसिंहदेव के सबसे बड़े भ्राता और ओरछा के शासक रामसाहि उन व्यक्तियों में से थे जो स्वार्थ्यन्ध होकर सदा अपने परिवारवालों के विरुद्ध अकबर के इंगित पर नाचा करते थे। वीरसिंहदेव से बड़ौन छीनने के लिए, इंद्रजीत और वीरसिंहदेव में वैमनस्य उत्पन्न करने के उद्देश्य से अकबर द्वारा प्रदत्त पंचहजारी मंसब और बुंदेलों के राजा बनने के प्रलोभन से वे अपनी रक्षा न कर सके। इसके लिए अकबर ने सरोपाव देकर इन्हें पुरस्कृत किया था। अपने स्वार्थ में सफल होने के लिए वे शपथ का भी कोई मूल्य नहीं समझते थे।[5]

सारांश यह है कि रामसाहि मध्ययुगीन उन स्वार्थी तथा मदांध राजाओं के प्रतीक थे जो सत्ता और भूमि-अधिकार-प्राप्त करने के लिए तत्कालीन सम्राट् के चरण-तल पर लोटते, पारिवारिक एकता और शांति को नष्ट करके स्वार्थ-सिद्धि में लीन रहते, सजातीय की उन्नति देखकर ईर्ष्याग्नि में भस्म होने लगते और सत्यासत्य का कुछ भी ध्यान नहीं रखते थे।

इंद्रजीत—कछौवा के जागीरदार इंद्रजीतसिंह कभी वीरसिंहदेव के साथ हो जाते और कभी अकबर तथा रामसाहि के पक्ष में होकर उनका विरोध करने लगते। इससे ही इनके चरित्र की दुरंगी नीति का ज्ञान हो जाता है।[6] इनमें त्याग की भावना थी, क्योंकि अकबर द्वारा प्रस्तावित राज्य-प्राप्ति को इन्होंने अस्वीकार कर दिया था।[7] ये बड़े बुद्धिमान् थे।[8] यह बड़े शक्तिशाली,

---

[1]वीरसिंहदेव चरित छं० ३७-५२, पृ० ४२-४, छं० ३७-५८, पृ० ५३-५ [2] वही, छं० ५४-६, पृ० ६० छं० ५९-६०, पृ० ६५-६ [3] वही, छं० ४६-५१, पृ० ८७ [4] वही, छं० ६३, पृ० ८८ [5] वही, छं० १६-४३, पृ० १६-२१; छं० २०-४०, पृ० २५-६ [6] वही, छं० २०, पृ० २५ [7] वही, छं० ४१-५, पृ० ४७ [8] वही, छं० ३७-८, पृ० ७०

युद्ध-प्रिय एवं वीर योद्धा थे। ओरछे के युद्ध में अबदुल्लाह की असंख्य सेना को पराजित करना इसका प्रमाण है। युद्ध में अपने घोड़े के मारे जाने पर भी वीरता से शत्रु-संहार करते हुए अचेतनावस्था को ये प्राप्त हुए।[1] अंत में अपने इन गुणों के लिए वे पुरस्कृत हुए और ओरछा के शासक नियुक्त किये गए।[2]

राव भूपाल—अपने पिता रत्नसेन के ही समान राव भूपाल भी महान् वीर योद्धा थे। अब्दुल्लाह को ओरछा से पराजित करके भगाने में इनका प्रमुख हाथ था। रणक्षेत्र से घायल इंद्रजीत को हटाकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाकर इन्होंने अपनी बुद्धि-चातुर्य्य का परिचय दिया था। ये सच्चे स्वामि-भक्त थे। आपत्ति में स्वामी का साथ देना स्वधर्मपालनार्थ सब कुछ त्यागने को तत्पर तथा सत्य, गाय, द्विज और मित्र की सतत रक्षा करने के लिए सदैव परिकरबद्ध रहते थे। उनका सिद्धान्त था कि—

सत्य गाय द्विज मीत कौ सतत रक्षा कर्म। स्वामी तजै न सांकरै यहै हमारो धर्म॥[3]

ईश्वर के प्रति उनकी अपार आस्था थी। गुरुजनों का आदर करने में ये चतुर थे। तलवार चलाने में कोई इनका सामना नहीं कर सकता था।[4]

संग्रामसाहि—संग्रामसाहि ने अपने पिता रामसाहि के सारे गुणों को उत्तराधिकार रूप में पाया था। यह नीच प्रकृति के पुरुष थे। वीरसिंहदेव से ऊपरी मन से मिले रहते थे। बरार के पास से वीरसिंह को बड़ौन को लौटाने का परामर्श देकर अवसर पाकर बड़ौन अपने लिए माँगकर अपनी स्वार्थपरता, विश्वास-घातकता एवं नीचता का परिचय दिया था। केवल आंतरिक बातों को जानने के अभिप्राय से ये वीरसिंह के पास आते-जाते रहते थे। इस प्रकार ये स्वार्थी, लोभी, पदलोलुप एवं धूर्त प्रकृति के मनुष्य थे।[5]

केशव मिश्र (केशवदास)—वीरसिंह के शब्दों में यह "कासीमनि के कुलदेव। सबही के भेव को जाननेवाले" थे।[6] ये योग्य राजनीतिज्ञ, राजपरिवार के हितैषी, युद्ध के विरोधी एवं कुल-मर्यादा के रक्षक थे।[7] मंत्र-बल, मित्र-बल, बुद्धि-विवेक, दलबल दुर्ग-बल, दान-बल, बाहुबल एवं ईश्वर-बल के अभाव में युद्ध का निषेध करनेवाले चतुर नीतिज्ञ थे। कल्यानदे द्वारा निकाले जाने पर इन्होंने वीरसिंहदेव के यहाँ आदर पाया।[8] इससे इनकी स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

राव प्रताप—यह महान् वीर थे और वीरसिंह के प्रति सदैव स्वामिभक्त रहे। उनकी सेना में रहकर सदा वीरता के साथ शत्रु का सामना किया करते थे। वे 'रनजीत' माने जाते थे।[9]

रत्नसेन—मधुकर साहि के पुत्र और वीरसिंहदेव के अग्रज रत्नसेन तलवार चलाने में अत्यंत दक्ष थे। इनकी वीरता पर मुग्ध होकर अकबर ने अपने हाथ से इनके सिर पर पाग बांधकर इन्हें सम्मा-

---

[1] वीरसिंहदेव चरित छं० ३१-४१, पृ० ७५ [2] वही, छं० ४८, पृ० ८७ [3] वही, छं० १५, पृ० ७६ [4] वही, छं० ३१-४५, पृ० ७५-८० [5] वही, छं० ५८-६५, पृ० २२-३ छं० २७-३२, पृ० ४१-४ छं० २-६, पृ० ४४ [6] वही, छं० ४१, पृ० ६४ [7] वही, छं० ३४-६१, पृ० ६४-६ [8] वही, छं० ४०-५०, पृ० ७०-१ [9] वही, छं० १२, पृ० ५०; छं० १३, पृ० ७३; छं० ६३, पृ० २३

नित किया था। इन्होंने वीरतापूर्वक युद्ध करके 'गौर' को जीतकर अकबर के राज्य की वृद्धि की थी।[१] वह ईश्वर और पंचों में विश्वास करनेवाले महान् पुरुष थे। अपनी कुल-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सब कुछ त्यागने के लिए तत्पर रहते थे और उसी के लिए वीरता से लड़कर अंत में परमधाम सिधारे।[२]

इस प्रकार रत्नसेन का चरित्र उन इने-गिने महान् व्यक्तियों में से है जो अपनी वंश-परंपरागत मान-मर्यादा के लिए हँसते-हँसते प्राण-विसर्जन करते हैं।

रानी कल्यानदे—केशव ने अपने ग्रंथों में स्त्री-पात्रों को कम स्थान दिया है। रानी कल्यानदे के चरित्र द्वारा उन्होंने यह दिखलाया है कि अंतःपुर की देवियाँ किस प्रकार नौकरों के कहने के वश में होकर कार्य कर बैठती थीं और वे प्रायः संकीर्णता, स्वार्थपरता, एवं मूर्खता की साक्षात् प्रतिमा हुआ करती थीं।[३]

अकबर—वीरसिंह के प्रतिद्वन्द्वी इतिहास-प्रसिद्ध अकबर के चरित्र के संबंध में केशव ने बहुत कम लिखा है। शेखअबुल्फ़ज़ल के मरने पर उसका शोक-विह्वल होना तथा वीरसिंह को दंड देने के लिए अपने राज्य की सारी शक्ति लगा देना अकबर के अबुल्फ़ज़ल के प्रति मैत्री-भाव, तथा गुण-ग्राहकता का पता चलता है। अकबर भेदनीति में भी बड़ा चतुर था इसीलिए उसने संग्राम को कछौवा और बड़ौन की जागरें दी थीं।[४]

सलीम—मेवाड़ से हारकर लौट आने से अकबर के शाहज़ादे सलीम की कायरता विदित होती है। विद्रोही सलीम ने स्वार्थ के लिए अबुल्फ़ज़ल की हत्या करवा कर अपने नाम पर कलंक का टीका लगवाया था। पर उसमें एक महान् विशेषता थी कृतज्ञता तथा गुण-ग्राहकता की। अबुल्फ़ज़ल की हत्या के उपरांत वह वीरसिंहदेव के क्रीत दास के समान व्यवहार करने लगा था। उसने उसे राजा बनाया, स्वयं अकबर के हाथों महान् कष्ट और असह्य वेदनाएँ सहीं पर वीरसिंह को उसे समाप्ति करने के लिए उद्यत न हुआ। स्वयं सम्राट् बनने पर उसने वीरसिंह को संपूर्ण बुंदेलखंड का राजा घोषित किया। उस स्वार्थान्ध युग में सलीम कृतज्ञता आदि सद्गुणों का प्रतीक माना जा सकता है।[५]

अबुल्फ़ज़्ल—केशव के अनुसार अबुल्फ़ज़ल् सलीम को तिनके के समान भी नहीं मानता था। वही पिता-पुत्र के मध्य मनोमालिन्य का प्रमुख कारण था। वह बड़ा अभिमानी, वीर, क्रोधी, दक्षिण का विजेता तथा सम्राट् का विश्वासपात्र था। आलमतोग और नगाड़े की रक्षा करना वह अपना कर्तव्य समझता था। हिन्दुओं के प्रति उसमें घृणा की भावना थी। यह उसकी महान् धार्मिक संकीर्णता थी। युद्ध से पीठ दिखाकर भाग जाना उसको कायरता का द्योतक लगता था। युद्ध छिड़ जाने पर क्रोध से अग्नि-वर्ण होकर वह युद्ध करने लगता था। रण-क्षेत्र में प्राण देकर उसने अपने स्वामी अकबर तथा अपनी मान-मर्यादा की रक्षा की। सलीम उसे 'दिल्ली के घर का बध' पुकारा करता था।[६]

---

[१] वही, छं० ६-१०७, पृ० १५-६　[२] केशव पंचरत्न, छं० १२, १४, १६, २०, २२, पृ० ३, ४, ५, ६,　[३] बीरसिंहदेवचरित्र छं० ६१-४, पृ० ६६　[४] वही, छं० ६-२३, पृ० ३८-४१
[५] वही, छं० ३, पृ० २८ छं० ५६, पृ० ३३ छं० ९६-१०१, पृ० ३७ छं० ६३-६, पृ० ४६
[६] वही, छं० ५४-७, पृ० ३३ छं० ७१-९०, पृ० ३४-६ छं० ९५, पृ० ३७

ऊपर केशव के ग्रंथों के कुछ पात्रों के चरित्रों पर विचार किया गया है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि चरित्र विकास पर कवि ने बहुत कम ध्यान दिया है। वर्णनात्मक-शैली अपना कर द्रुतगति से पुस्तक की घटनावली के अन्त तक पहुँचने की कवि की प्रकृति रही है।

गोराबादल की कथा

गोराबादल की कथा में भी कवि की प्रवृत्ति चरित्र-चित्रण की ओर नहीं गई है। कवि का ध्यान श्रृंगारिक वर्णन तथा ऐतिहासिक इतिवृत्तात्मक घटना-चित्रण की ओर अधिक रहा है। पात्रों के चारित्र-विकास की ओर से उसने आँखें बंद कर ली हैं।

जटमल ने स्त्री के सौंदर्य के साथ उसकी वीरता, सच्चे मातृत्व एवं रमणीत्व का सुंदर चित्रण किया है।

इस ग्रंथ में पात्रों के स्वभाव एवं गुण-दोषों का अत्यंत अल्प विवरण उपलब्ध होता है। उसी के आधार पर मुख्य पात्रों का संक्षिप्त चरित्र नीचे दिया जाता है :—

गोरा—जटमल के अनुसार गोरा बली, रण-रसिया और रण-ढाल था। अस्त्र-शस्त्र प्रयोग में वह जितना चतुर था उतना ही दानी भी था। युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ते हुए उसने स्वामी के कार्य-संपादन में अपने प्राण विसर्जित किए। उसकी वीरता पर मुग्ध होकर उसके शिर को क्रमशः गिरिजा, देवांगना, गंगा और शंभु नें लेकर सत्कार प्रदान किया।[1]

बादल—बादल भी अपने चाचा गोरा के समान अनुपम वीर, रणरसिक, एवं शरणागत-रक्षक था। अपना शिर देकर यश से भूमंडल को भर देने की उसकी प्रतिज्ञा थी। वह बड़ा ही नीति-चतुर भी था, क्योंकि डोली की योजना उसी के मस्तिष्क की उपज थी। माता और पत्नी के रोकने पर भी वह युद्ध में जाने के न रुका इससे उसके अदम्य उत्साह और शौर्य का असीम परिचय मिलता है। उसका सिद्धांत था कि—

नासी न पूत देऊँ कबहुँ, बादल दल थेना चलै।

अंत में वीरतापूर्वक लड़ते हुए अलाउद्दीन को पराजित करके उसने राय रत्नसेन को छुड़ाकर दम ली।[2]

रतनसेन—चितौड़ के राजा रायमल बत्तीसों लक्षणों से युक्त, रण-निपुण तेजस्वी तथा पराक्रमी योद्धा थे। वे भाटों का विशेष सम्मान किया करते थे। आखेट के प्रति उनकी विशेष रुचि थी। वे एक रसिक हृदय व्यक्ति थे। वे पद्मावती पर विशेष अनुरक्त। रतनसेन सरल प्रकृति के थे इसी कारण से वे अलाउद्दीन के प्रलोभन जाल में फँस गये थे। शारीरिक यातना से भयभीत होकर पद्मावती को अलाउद्दीन को समर्पित कर देने के लिए उद्यत होकर उन्होंने अपनी भीरुता का परिचय

---

[1] गोराबादल की कथा छं० ६, पृ० ६; छं० ६३, पृ०; २४ छं० १३०, पृ०; ३० छं० १३४, पृ० ३१ छं० १४२-३, पृ० ३३; छं० १४६, पृ० ३३

[2] वही, छं० ६, पृ० ६ छं० ६२, पृ० २३ छं० ६६, पृ० २४ छं० ६८, पृ० २५ छं० १०४ पृ० २६ छं० १०७-६, पृ० २७ छं० ११६, पृ० २८ छं० १३६-७, पृ० ३१-२

दिया था। पर डोलियों के आने पर अप्रसन्नता प्रकट की। इससे विदित होता है कि वे स्वभाव से वीर थे। उनकी वह कायरता क्षणिक थी।[1]

पद्मावती—पद्मावती अत्यंत रूपवती एवं गुणवती थी। अपनी मान प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए कपट से काम लेने को भी वह उचित समझती थी। गोरा और बादल को युद्ध के लिए प्रस्तुत करने से उसकी नीतिचातुर्य विदित होती है। युद्ध से विजयी होकर लौटने पर बादल की उसने आरती उतारी इससे सिद्ध होता है कि वह कृतज्ञता और गुणग्राहकता के उच्च आदर्श में विश्वास रखती थी।[2]

अलावदी (अलाउद्दीन)—अलाउद्दीन महान् महान् शक्तिशाली, हठी तथा आखेट-प्रिय शासक था। वह बड़ा सरस व्यक्ति था। सच्चे गुणों का सदैव आदर करता था। वह कपट और प्रलोभन में कार्य-सिद्धि को न्याय संगत मानता था।[3]

अन्य पात्रों का न तो विशेष महत्त्व है और न उनके चरित्र के संबंध में ग्रंथ से विशेष सामग्री ही उपलब्ध है।

ललितललाम

मतिराम ने ललितललाम नामक मुक्तक ग्रंथ में के आलोच्य छंदों में बूंदी नरेश राव भावसिंह के पूर्वजों से लेकर उन तक के राजाओं की गुणगाथा वर्णन करने का प्रयत्न किया है। यह वर्णन एकदम चारणों के समान ही है। केवल प्रचलित विशेषणों, धार्मिकता, प्रताप, आतंक और दानशीलता का ही विशेष उल्लेख मिलता है। राव भावसिंह के चरित्र के संबंध में कवि के विचार देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है :—

राव भावसिंह—मतिराम के अनुसार राव भावसिंह हिन्दुओं की ढाल थे। वे ईश्वर भक्ति और वेद में आस्था रखते थे। वे तेजस्वी, दुष्ट-दमनकर्ता और प्रतापशाली थे। भावसिंह दान में कल्पद्रुम के समान थे। वे समर में हटना नहीं जानते थे। वैरियों के नाश और मित्रों के रक्षण में वे चतुर थे। हाथियों का दान करने में उनकी समता कोई नहीं कर सकता था। वे राजऋषि सदृश्य थे।[4]

इस प्रकार मतिराम द्वारा वर्णित चरित्र-चित्रण में कोई नवीनता अथवा मौलिकता नहीं है। उन्होंने अपने आश्रयदाता में सभी गुणों विशेषकर गज-दान की महानता को आरोपित किया है।

भूषण ग्रंथावली

भूषण के सारे ग्रंथ मुक्तकाव्य शैली में प्रणीत हैं। मुक्तक-कविता में रस-परिपाक पर विशेष

---

[1] गोराबादल की कथा, छं० ३, पृ० १, छं० ४, पृ० वही, छं० १० पृ० २ छं० १५-६, पृ० ३ छं० २२, पृ० ५-६, छं० २६, पृ० ८ छं० ८१, पृ० २० छं० ८६, पृ० २२ छं० ८८, पृ० २३ छं० १२५, पृ० २६ [2] वही, छं० १४, पृ० ३ छं० ७६, पृ० २० छं० ६१, पृ० २३ छं० ६२-३, पृ० २३-४ छं० १३८, पृ० ३२ [3] वही, छं० ३३, पृ० ६ छं० ३४ पृ० वही, छं० ६४, पृ० १६ छं० ६५, पृ० १६ छं० ७२, पृ० १७ छं० ७६, पृ० १६ छं० ८६, पृ० २२

[4] मतिराम ग्रंथावली, ललितललाम छंद २४-३, पृष्ठ ३६७ छं० ४१, पृ० ३६८ छं० ४७ पृ० ३७० छं० ५८; पृ० ३७२ छं० ६४, पृ० ३७३ छं० ७१, पृ० ३७५ छं० ११६-२० पृ० ३८६-३८७, छं० ३७३, पृ० ४६५

ध्यान रखा जाता है। उसमें चरित्र-चित्रण, पात्रों के स्वाभाविक गुणदोषों के क्रमिक विकास तथा उत्थान-पतन का वर्णन करने के लिए बहुत कम अवसर रहता है। यही कारण है कि भूषण की कविता में पात्रों के चरित्र-चित्रण में उस प्रवृत्ति का अभाव है जो प्रबन्ध काव्यों में दृष्टिगोचर होती है।

भूषण की कविता का अधिकांश भाग प्रातःस्मरणीय, पुण्यश्लोक महाराज शिवाजी तथा छत्रसाल के विषय में है। इन अनुपम वीरों के कुछ विशिष्ट गुणों एवं कृत्यों ही को आधार मानकर इन्होंने अपने काव्य का भव्य प्रासाद निर्मित किया है। अन्य पात्रों के नाम केवल प्रासंगिक रूप से उक्त नायकों के गुण-विकास के लिए उल्लिखित कर दिये गये हैं। अतएव नीचे केवल इन्हीं प्रमुख पात्रों के चरित्रों पर विचार किया जा रहा है।

शिवाजी—भूषण ने शिवाजी को शिव जी का अवतार माना है। वे बाल्यावस्था से ही महान् वीर थे। उन्होंने बाल लीला के बहाने अनेक गढ़ एवं कोट अधिकृत कर लिये थे। शिवाजी महान् बलशाली, साहसी और उत्साही राजा थे।

युवा होते ही इन्होंने अपनी वीरता द्वारा असंख्य दुर्गों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। दक्षिण के मुसलमान राज्यों और भारत सम्राट् औरंगजेब की सेनाओं को अपनी वीरता के बल पर वे सदैव पराजित करते रहे। वे युद्ध-कला में बड़े चतुर थे। अस्त्र-शस्त्र प्रयोग तथा सैन्य संचलन में कोई भी उनकी समता नहीं कर सकता था।

शिवाजी प्रायः शत्रु पर अचानक धावा बोला करते थे, जिससे शत्रु आतंक के वशीभूत होकर अपने बचाव के उपाय सोचने लगता था। सलेहरि विजय और शाइस्ता खाँ पराजय इनकी इस सफल नीति के प्रमाण हैं।

वे शत्रु से सदैव सावधान रहते थे। यही कारण था कि अफजल खाँ से भेंट करने के लिए जाते समय वे अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर गये थे। शिवाजी उक्त सावधानी के साथ कुशाग्रबुद्धि भी थे। यदि यह न होता तो आगरे के कारागार से मुक्त होना उनके लिए असम्भव हो जाता।

युद्धवीर होने के साथ ही वे नम्र, विनयशील तथा दयालु थे। शत्रु के प्रार्थना करने पर वे उसे अभय दान देकर उसके गंतव्य स्थान तक पहुँच जाने के समय तक की उसकी रक्षा का सारा भार अपने ऊपर से लिया करते थे।

वेद, गौ और ब्राह्मण के सेवक शिवा जी ने औरंगजेब की हिन्दू धर्म विनाशिनी नृशंसतापूर्ण नीति का सफलता पूर्वक विरोध करके हिन्दू धर्म की रक्षा की।

अधिक क्या, शिवाजी वीररसावतार, दक्षिण की ढाल, हिन्दुओं की दीवार और तुर्कों के काल थे। वे सदैव वीरता एवं निर्भीकता का प्रदर्शन किया करते थे। शिवाजी सुंदरता, गुरुता, प्रभुता, सज्जनता, दयालुता, कोमलता, दान, कृपाण-संचालन, दीनों को अभय-दान, विवेक-बुद्धि आदि सद्गुणों के साक्षात् अवतार थे।[1]

छत्रसाल—वीर केसरी महाराज छत्रसाल अत्यंत शक्तिशाली एवं अनुकरणीय योद्धा थे।

---

[1] विश्वनाथप्रसाद मिश्र; भूषण ग्रंथावली, शिवराज भूषण, छं० १३, ३४, ४०, ५१, ६३, ६८, ७३, ७५, ७६, ८३, १११, १२२, १६२, २३७, २४६, २६६, शिवा बावनी, छं० ६, १७, १८, ४१, ४२

बर्छी आदि आयुध प्रयोग में कोई भी इनकी समता नहीं कर सकता था। इनकी धाक सर्वत्र व्याप्त थी। कोई भी इनका सामना करने का साहस नहीं कर सकता था। वे वीर रस में सदैव मत्त रहते थे। औरंगज़ेब भी सदा इनसे काँपता रहता था। वे जैसे वीर थे वैसे ही दानी।[1]

औरंगजेब—भूषण की कविता में यह शिवाजी और छत्रसाल के प्रतिपक्षी के रूप में आया है। औरंगज़ेब बड़ा छली, कपटी, एवं धूर्त था। सिंहासनारुढ़ होते समय इसने अपने संबंधियों को मौत के घाट उतारा। उसने बाबर और अकबर की हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति त्याग-कर उनके साथ नृशंसता एवं क्रूरता का व्यवहार करना आरंभ कर दिया था।

उदंड एवं शक्तिशाली औरंगज़ेब शिवाजी की शक्ति के आतंक से सदैव भयभीत रहता था। 'सरजा' नाम सुनते ही औरंगजेब अचेत हो जाया करता था। संसारविजेता औरंगजेब को शिवाजी से पराजित होना पड़ा था।[2]

ऊपर के कतिपय चरित्रों के विवेचन से विदित होता है कि भूषण ने अपने पात्रों के कुछ गिने-गिनाए गुणदोष का ही विवेचन किया है। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन होने पर भी उनके अधि-कांश गुण ऐतिहासिक सत्य घटनाओं पर अवलंबित है। भूषण ने अपने नायक के प्रतिपक्षी को प्रायः प्रच्छन्न रखा है।

राजविलास

मान कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में अपनी निजी शैली को अपनाया है। दरबारी कवि होने के नाते चारण शैली में उन्होंने स्वयं ही पात्रों के संबंध में प्रशस्ति-शैली का आश्रय लेकर कथन किये हैं। यत्र-तत्र पात्रों से उन्होंने सुंदर गर्वोक्तियाँ कहलाई हैं, पर उनसे उन पात्रों के वास्तविक गुण-दोषों पर प्रकाश नहीं पड़ता। उन उक्तियों में शब्दाडंबर, वाक्जाल और आत्मश्लाघा ही की प्रधानता है। इतना अवश्य है कि इन उक्तियों से पाठक के हृदय में वीररसा-त्मक स्फूर्ति का अवश्य संचार हो जाता है।

इस कवि ने पात्रों के संबंध में उक्तियों की प्रायः आवृत्ति कर दी है। वे प्रायः एक ही प्रकार के भाव व्यक्त करते हुए दिखलाए गये हैं। परिणाम यह हुआ है कि इन पात्रों के संबंध में हमें एक ही प्रकार की धारणा निर्धारित करनी पड़ती है। पात्रों का अस्तित्व जहाँ पर भी स्वयं सामने आया है वहाँ पर उनका रूप अधिक निखरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। राजसिंह के प्रति-पक्षी औरंगज़ेब के ऐश्वर्य, वैभव, आतंक आदि का वर्णन करके कवि ने नायक के गौरव को बढ़ाने का प्रयत्न किया है। उनकी यह विशेषता भूषण से भी बढ़कर है।

राजविलास में स्त्री पात्रों का कम उल्लेख हुआ है। कवि ने उनके केवल सौंदर्य और नख-शिख का ही वर्णन किया है। तत्कालीन मान-मर्यादा पर मर मिटनेवाली राजपूत-रमणियों के चित्रण का इसमें खटकनेवाला अभाव है। रूपकुँवरि ने औरंगज़ेब के साथ किये जानेवाले अपने विवाह का विरोध करके क्षत्राणियोचित गुणों का कुछ आभास दिया है।

नीचे कुछ पात्रों के गुण-दोषों का विवेचन कर लेने से ऊपर की बातों का स्पष्टीकरण हो जायेगा।

---

[1] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; भूषण ग्रंथावली, छत्रसाल दशक, छं० २, ३, ७, १० फुटकर, छं० ४१, पृ० १०७ [2] वही, शिवराज भूषण, छं० ७६, ६०, १११, २२६, २८० शिवाबावनी, छं० ३५, ३६, ४०, ४१

राजसिंह—राजविलास के देखने से विदित होता है कि राजसिंह की प्रकृति विभिन्न गुणों की आकर थी। वे बाल्यावस्था से ही युद्धप्रिय थे। मल्ल युद्ध, उन्मत कुंजरों की लड़ाई आदि की ओर उनका अधिक झुकाव था। साथ ही उन्हें नाटक गीत आदि में भी अधिक आनंद मिलता था। उनके अंग-प्रत्यंग में सदा राग-रंग रमता था। 'ऋतु-विलास वाटिका' उनकी सरसता एवं सहृदयता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस प्रकार वीरता एवं श्रृंगारिकता दोनों का उनमें सुंदर सामंजस्य था।

वे खरी बात कहनेवाले थे। उन्हें देखकर शत्रु काँप जाते थे। वे जितने वीर थे उतने ही भगवद्भक्त तथा प्रजा-वत्सल भी थे। दुर्भिक्ष से पीड़ित प्रजा के हाहाकार को सुनकर उनका हृदय करुणा से द्रवीभूत हो गया था। इसीलिए उन्होंने 'राजसर' का निर्माण कराया था, जिससे असंख्य प्राणियों की रक्षा हुई थी। अतएव राजसर उनकी प्रजा-पालन नीति तथा दयालुता का सजीव कीर्तिस्तम्भ है।

गुजरात की पीड़ित प्रजा की करुण कहानी सुनकर उन्होंने वहां से अपने पुत्र भीमकुमार को लौटा लिया जो उस प्रदेश को लूटने और प्रजा को कष्ट देने में व्यस्त थे। यह भी उनकी दीन-रक्षा एवं दयालुता का एक प्रमाण है।

जोधपुर के शरणागत शिशु महाराजकुमार अजीतसिंह को आश्रय देकर महाराणा ने अपनी शरणागत-वत्सलता का परिचय दिया था।

वे जितने वीर, सरस, दानी और दयालु थे, उतने ही चतुर राजनीतिज्ञ भी। औरंगज़ेब के आक्रमण का समाचार ज्ञात होने पर दुर्गम पार्वतीय प्रदेश में रहकर शत्रु का सामना करने के लिए निश्चय करना उनकी महान् युद्ध-नीति-चातुर्य थी।

किं बहुना, महाराणा राजसिंह दानी, सज्जन का सम्मान करनेवाले और दुर्जन को दंड देनेवाले थे। वेद-विहित नीति के अनुसार वे इस उत्तम ढंग से न्याय करते कि दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता था। कवि के मतानुसार इनके शासन-काल में अजा और सिंह एक घाट पानी पीते थे।[1]

जगत्सिंह—यह महाराणा राजसिंह के पिता थे। जगत्सिंह बड़े धर्मात्मा और वेद आदि धार्मिक ग्रंथों के पंडित थे। वे महान् दानी, उदयपुर-श्रृंगार, गो-ब्राह्मण तथा प्रजापालक थे। ये 'हिन्दुआन'-सूर्य थे।[2]

जसवंतसिंह—मान के मतानुसार जोधपुराधीश महाराज जसवंतसिंह हिन्दू-हठ-रक्षक तथा संग्राम-शूर थे। वे बड़े अभिमानी एवं चतुर माने जाते थे। भरसक प्रयत्न करने पर भी औरंगज़ेब इन्हें अपने किसी भी प्रपंच में न फँसा सका था। यह इनके चातुर्य का पर्याप्त प्रमाण है।[3]

---

[1] राजविलास, छंद १६१-२, पृष्ठ ६१, राजविलास, छं० १६, पृ० ६४; छं० ६०, पृ० ७५; छं० १, पृ० ७६; छं० ४३-४, पृ० १२४-५; छं० १३५-७, पृ० १३६; छं० ८, पृ० १४९; छं० १९५, पृ० १८१; छं० ६६, पृ० २०१; छं० ३६-७, पृ० २३०; छं० १०५, पृ० २६२ [2] वही, छंद ३८, पृ० ४१; छं० ४४-२, पृ० वही; छं० ५५, पृ० ४२; छं० १६, पृ० ६३; छं० ३०, पृ० ६५ [3] वही, छं० ८७, पृ० ७५; छं० ५२, पृ० १५५

औरंगज़ेब—राजविलास में औरंगज़ेब महाराणा राजसिंह के प्रति-पक्षी के रूप में अंकित हुआ है। इस ग्रंथ के अनुसार वह महान् शक्तिशाली सम्राट् था। उसके ऐश्वर्य, एवं वैभव की सर्वत्र धाक थी।

वह प्रलोभन, दंभ, छल, कपट, धूर्तता आदि सभी से काम लेने में दक्ष था। राज्य-प्राप्ति के लिए अपने पिता को कारागार में डालने से भी वह नहीं चूका था।[1]

शाहज़ादा अकबर—मान के अनुसार यह शाहजादा अहंकारी, ऐश्वर्य एवं तरुणावस्था के मद से अंधा और राग-रंग में सदैव लिप्त रहनेवाला था। मल्ल-युद्ध तथा गज-युद्ध में उसकी विशेष अभिरुचि थी।[2]

ऊपर दिये हुए कतिपय पात्रों के चरित्रों के उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि मान ने प्रायः सभी पात्रों में एक सी ही विशेषताएँ दिखलाने की चेष्टा की है। उन्होंने कुछ विशिष्ट गुणों और दोषों को लेकर उनका उल्लेख भर कर दिया है। राजविलास में प्रबंधात्मक एव क्रमिक चारित्र्य-विकास का अभाव है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में कवि ने परंपरा का अनुकरण किया है; पर कहीं-कहीं पर उसने वास्तविक गुण-दोष की ओर भी संकेत किया है।

छत्रप्रकाश

छत्रप्रकाश इतिहास काव्य है। बुंदेल-वंश की उत्पत्ति से लेकर छत्रसाल तक की वंशावली और चंपतिराय तथा छत्रसाल के युद्धों और वीर-कार्यों का इतिवृत्तात्मक वर्णन ही इसमें मिलता है। पात्रों की संख्या भी बहुत है पर अधिकांश नाम प्रसंगवशात् घटना से संबंधित होने के कारण-उल्लिखित हुए हैं। उनके गुण, शील, स्वभाव के क्रमिक विवरण का अभाव है। कवि ने सरल पद्धति का अनुसरण करते हुए घटना-वर्णन को ही अपना लक्ष्य बनाया है। चंपतिराय तथा छत्रसाल के युद्धों से संबंधित बातों का ही वर्णन होने के कारण अधिकांश पात्रों के चरित्र-चित्रण का उल्लेखनीय विवरण इसमें नहीं मिलता। पर चंपतिराय और छत्रसाल के शौर्य और वीरता का विवरण पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। अतः इनके ही चरित्रों को नीचे देने का प्रयत्न किया जा रहा है :—

चंपतिराय—गोरेलाल ने चंपतिराय को महान् वीर एवं अदम्य उत्साहवाला व्यक्ति चित्रित किया है। इन्होंने अपने बाहु-बल से शाहजहाँ से बुंदेलखंड का राज्य पुनः लौटा लिया था। ये बड़े युद्ध-नीति-चतुर थे। शत्रु के राज्य में छापा मारते थे और उसके राज्य के चंबल से बेतवा नदी तक के सारे प्रदेश में आग लगा दी थी। वे कभी सामने आकर युद्ध करते और कभी छिपकर शत्रु पर आक्रमण करते थे। वे उससे मनमाना 'डांड भराया' करते थे। ये सारे कार्य उनकी नीति-कुशलता के यथेष्ट प्रमाण हैं।

चंपतिराय सदैव शत्रु से सावधान रहते थे। ओड़छा के पहाड़सिंह द्वारा भेजे हुए हत्यारे को इन्होंने रात्रि के अंधकार में मार डाला था। वीर इतने थे कि दारा के साथ कंधार तक युद्ध में भेजे गये थे। इन्हीं की सहायता से औरंगज़ेब गुप्त मार्ग से नदी पार उतर कर अपनी सेना की रक्षा

---

[1] राजविलास, छं० २३, पृ० १०६ छं० ८२, पृ० ११४; छं० ९-११, पृ० १४९; छं० ५१, पृ० १५५ [2] वही, छं० ११५, पृ० १६६; छं० १, पृ० २११; छं० ७, पृ० २४४; छं० ८, पृ० वही; छं० ९७, पृ० २६१

अवसर पाकर शाही धन लूट लेते, उसके राज्य में आग लगा देते और इस प्रकार वे अपनी नीति-चातुर्य का परिचय देते थे। युद्ध इतनी वीरता से करते थे कि सारे-रण-क्षेत्र की देख रेख रखते थे। जिस किसी भी वीर को शत्रुओं द्वारा घिरा देखते उसकी सहायता के लिए तुरंत जा पहुँचते। ऐसी सावधानी से युद्ध करने वाले वीर विरले ही मिलेंगे।

बड़े-बड़े गढ़पति इनकी धाक मानते थे, सूबेदार इनसे सदैव भयभीत रहते थे और उमराव रण में इनके सामने नहीं आते थे। ये चौथ लेकर ही शत्रु के देश को छोड़ते थे।

जब शत्रु सत्यता का व्यवहार करता तो छत्रसाल भी शत्रु-भावना त्यागकर उससे मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते थे। इसी कारण से युद्ध में लूटे सारे सामान को दलेल खाँ के पास लौटाकर भेज दिया था।

गाढ़ पड़ने पर वे धैर्य से काम लिया करते थे। युद्धभूमि से भाग आनेवाली अपनी सेना को उन्होंने धैर्य बँधाया था। इस अवसर पर स्वामी प्राणनाथ ने आकर उपदेश देकर हतोत्साहित व्यक्तियों के हृदय में पुनः उत्साह का संचार किया था।

अंत में प्राणनाथ स्वामी ने इनका राजतिलक किया। वे संतोषी इतने थे कि अपने राज्य से ही संतुष्ट रहकर बहादुरशाह द्वारा प्रस्तावित मंसब को अस्वीकार कर दिया था। ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए वे अपने राज्य का भार सँभालते रहे।

छत्रसाल एक आदर्श वीर एवं महान् विभूति थे। उनकी महान्ता इसी से व्यक्त होती है कि पाँच सवार और पच्चीस पैदल लोगों के साथ युद्ध आरंभ करके लगभग दो करोड़ रुपये की आय की रियासत अपने लिए अर्जित कर ली। यह उनकी असाधारण ईश्वरप्रदत्त शक्ति का यथेष्ट प्रमाण है।[1]

छत्रप्रकाश के अन्य पुरुष पात्रों के चरित्रों के संबंध में भी यथातथ्य इतिहास-सम्मत गुणों का पता चलता है, पर उन सभी के चरित्रों के विषय में विचार करना यहां असंभव है।

स्त्री पात्र—छत्र प्रकाश में स्त्री पात्रों का कम उल्लेख हुआ है। छत्रसाल की माता लाल-कुंवरि[2] आदर्श राजपूत रमणी तथा हीरादेवी[3] अपने स्वार्थ के लिए चंपतिराय से वैमनस्य रखने-वाली नारी के रूप में चित्रित की गई हैं।

ऊपर के प्रमुख पात्रों के चरित्रों के संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने अपने पात्रों के युद्ध संबंधी गुणों का ही उल्लेख किया है। कोरी प्रशंसा के वशीभूत होकर ऊहात्मक उड़ानें उसने नहीं भरी है। वह अपने पात्रों के प्रति कथन करते समय सत्य से दूर नहीं भागा है, यहाँ तक कि छत्रसाल की पराजय तक को चातुर्य के साथ कह गया है। अभिप्राय यह है कि लाल द्वारा वर्णित पात्रों के चरित्र प्रायः स्वाभाविक घटनावली के अधिक निकट और अधिक सरल हैं। यह विशेषता अन्य अधिकांश कवियों से इन्हें अलग रखती है।

---

[1] छत्रप्रकाश, पृ० १७, १९, २३, ४, २७, ४३-५५, ६६-७, ६९-७२, ७७-९, ८४, ८९, ९१-२, ९५-६, १०७, ११३, ११८, १२३, १४३, १४७, १५१-९, १६३ [2] वही, पृ० ६५
[3] वही, पृ० ५५-६, ६८

जंगनामा

जंगनामा में पात्रों के चरित्र-चित्रण की लेशमात्र भी प्रवृत्ति नहीं दिखलाई पड़ती है। एक छोटी सी घटना के वर्णन में श्रीधर ने सौ से अधिक पात्रों के नामों की भरमार कर दी है। सम्राट् से लेकर साधारण अमीर तक का नाम नहीं छोड़ा है। यही नहीं अनेक स्थलों पर उनके नामों की बार-बार आवृत्ति की है। इस कारण से पात्रों के गुण-स्वभाव कथन का कवि को अवसर ही नहीं मिला है। प्रायः सभी पात्रों की एक सी वेश-भूषा, एक से अस्त्र-शस्त्र और एक ही प्रकार की युद्ध-पद्धति का कवि ने वर्णन किया है। स्मरण रहे कि ऐसे वर्णन भी अपेक्षाकृत कम ही हैं। सेनाओं के संचालन और युद्ध-वर्णन की घटनाओं का उल्लेख करते हुए द्रुतगति से श्रीधर जंगनामा में आदि से अन्त तक पहुँच गये हैं। ऐतिहासिक घटना का वर्णन करना ही उनका लक्ष्य रहा है। इसी कारण पात्रों के चरित्र का वास्तविक चित्रण नहीं हो सका है। नीचे दिये हुए कुछ पात्रों के चरित्र से इस कथन की पुष्टि हो जायेगी :—

फर्रूख़सियर—श्रीधर के अनुसार बादशाह फरुर्खसियर उदार एवं वीर योद्धा था। दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए क्रुद्ध होकर उसने पटने से प्रस्थान किया। ईद आदि धार्मिक कृत्यों में भी उसकी विशेष अभिरुचि थी।

वह वस्त्र आदि से पुरस्कृत करके सैनिकों को सम्मानित करता था। सेना के द्वारा लूटे हुए सामान को वह सैनिकों में ही विभाजित करके अपनी नीति-चातुर्य का प्रमाण दिया करता था।

वह युद्ध-नीति में भी दक्ष था। आगरे के निकट उसने यमुना बड़े कौशल से पार कर ली थी और शत्रु को इसका कानों-कान पता तक न चलने दिया।

इस कवि के विचार में वह सुंदर, सुजान, वीर, शीलवंत, ओजस्वी, दानी, तथा सम्राट् अकबर के समान सर्वगुण संपन्न था। कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्रीधर का उक्त कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है।[१]

मौजुद्दीन (मुइजुद्दीन)—इसने सम्राट् बनते ही दिल्ली दरबार को कलावंतों और नर्तकियों का अखाड़ा बना दिया था और उन्हें बड़-बड़े माही, मरातिब आदि प्रदान किये। इसे अस्त्र-शस्त्र के स्थान पर ढोलक आदि वाद्य-यंत्र अधिक प्रिय थे। रास-रंग के प्रति इसकी अधिक रूचि थी। यह बक्की एवं झक्की भी बहुत था।

इन दुर्गुणों के होते हुए भी इसमें एक विशेषता यह थी कि यह बड़ा वीर था। यद्यपि यह युद्ध में पराजित हुआ पर इसने रण-भूमि में असीम वीरता का परिचय दिया था।[२]

एजुद्दीन—जब-जब अवसर पड़ा तब-तब इसने युद्ध-भूमि से भागकर अपनी कायरता और कापुरुषता का परिचय दिया था। युद्ध के प्रति उसकी नाममात्र को भी अभिरुचि नहीं थी।[३]

छबीलेराम—यह अवसर पाते ही एजुद्दीन का साथ छोड़कर फ़रुर्खसियर से जा मिला था। यह वीर और युद्ध में प्रवीण था। युद्धस्थल में यह महान् वीरता प्रदर्शित करता था। इसने शत्रु को अपने सामने से हराकर भगा दिया था।[४]

---

[१] **जंगनामा, पंक्तियाँ ११, ३७९-८०, ३८४, ३८९-९२, ६४५-६०, ८२०-३४, १५८५-९०**
[२] वही ६७४-९०, ७१८-२८, ८३५-४१, १४७५-८६ [३] वही, ५८९-९० [४] वही, ३९७-८, ७७३-७, ९६२-७२, १२३५, १३२५-२९, १५११-३०

इस प्रकार जंगनामा में पात्रों के चरित्रों के निखरे हुए रूप का अभाव है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यन्त साधारण कोटि का है।

रासा भगवंतसिंह का

इस छोटे खंडकाव्य में कवि ने चरित्र-चित्रण के विषय में विशेष प्रयास नहीं किया है। उसमें चरित्र-नायक के केवल कतिपय गुणों का उल्लेख भर कर दिया गया है।

भगवंतराय खीचीं—असोथर के स्वामी भगवंतराय बड़े वीर थे। अवसर पड़ने पर लूट मार करके शत्रु को त्रस्त करने में ये बड़े कुशल थे। दान करने में भी वे अनुपम थे। पैतृक-भूमि को त्याग कर भाग जाना उन्हें कापुरुषता का चिह्न प्रतीत होता था। युद्ध करने के लिए घड़ी-मुहूर्त्त देखने के पक्ष में वे नहीं थे। युद्ध में वीरतापूर्वक शत्रु-संहार करते हुए उन्होंने वीर-गति प्राप्त की थी।[१]

स्त्री-पात्र—इस काव्य में स्त्री-पात्रों का अभाव है। भगवंतराय की रानी के द्वारा युद्ध के स्थान से भाग चलने का प्रस्ताव करवा कर कवि ने उसके चरित्र को गिरा दिया है। उसका उक्त कथन राजपूत रमणी के स्वाभाविक चरित्र के विरुद्ध पड़ता है।[२]

सुजान-चरित्र

सूदन ने चरित्र-चित्रण में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक उदार दृष्टि से काम लिया है। उसने अपने आश्रयदाता के ऐश्वर्य, वैभव और गुणों का सुंदर वर्णन करने के साथ ही प्रतिपक्षियों का भी उतना ही उत्तम वर्णन किया है। चरित्र-चित्रण में उसने प्रायः ऐतिहासिक परंपरा ही का अनुकरण किया है। पात्रों के युद्ध-वीरत्व को अंकित करने की ओर उसकी कुछ अधिक प्रवृत्ति रही है, किंतु अवसर मिलने पर करुणा, रति आदि भावनाओं को चित्रित करके पात्रों के गुण-दोषों के विस्तृत क्षेत्र को अपनाने का भी उसने प्रयत्न किया है। पर नामों की अधिकता, उनकी आवृत्ति तथा विविध वस्तुओं की विशाल सूचियों के कारण पात्रों के चारित्र्य-विकास में अवश्य कुछ बाधा पड़ी है। एक ही प्रकार के गुण, वीरभावना, आतंक तथा प्रताप आदि को प्रदर्शित करने के लिए बार बार एक ही प्रकार के युद्ध-संबंधी विवरण देने के कारण उनके प्रति पाठक की अरुचि हो जाती है। कुछ पात्रों के चरित्र नीचे दिये जाते हैं—

सुजानसिंह—सुजान-चरित्र का नायक सुजानसिंह बाल्यावस्था से ही निडर और वीर था। वह अपने पिता का परम भक्त था। उसके हृदय में महादेव जी के प्रति अगाढ़ भक्ति थी। उसे आखेट से विशेष प्रेम था।

वह सेना के सुख-दुःख का अत्यधिक ध्यान रखता था। युद्ध-भूमि में स्वयं सैन्य-संचालन और युद्ध-निरीक्षण करना उसे अधिक प्रिय लगता था। युद्ध में वह सदैव सेना के अग्र भाग में रहता था।

---

[१] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, १९८१ विक्रमी, छं० १०, पृ० ११५; छं०४८-९, पृ० १२२; छं० ५५, पृ० १२३; छं० ५७, पृ० १२४; छं० १०३,पृ० १३१ [२] वही, भाग वही, संवत् वही, छं० ५३-४, पृ० १२३

सुजानसिंह साम, दाम भेद और दंड चारों प्रकार की नीति में चतुर था। अपनी मित्रता और दिल्ली-सिंहासन के प्रति स्वामि-भक्ति में वह इतना दृढ़ था कि शत्रु की भेद-नीति उसे विचलित नहीं कर सकती थी। हतोत्साहित सैनिकों के हृदय में वह सदैव उत्साह का संचार किया करता था। विचलित होते हुए प्रधान-मंत्री मंसूर को प्रोत्साहन प्रदान करके उसने युद्ध के लिए सन्नद्ध किया था। उसके युद्ध-क्षेत्र से भाग जाने पर सुजान स्वयं अंत तक रण-क्षेत्र में युद्ध करता रहा था। उसकी वीरता का यह यथेष्ठ प्रमाण है।

'दुष्ट के साथ दुष्टता का पूर्ण व्यवहार करना चाहिए' यह उसका सिद्धांत था। और इसी के अनुसार वह सदा आचरण भी किया करता था।

आवश्यकता पड़ने पर वह युद्ध-भूमि से हटकर शत्रु को धोखे में डालने की नीति का भी अनुसरण किया करता था। भावी युद्ध की आशंका से वह अपने दुर्ग-सेना आदि को सदैव सुसज्जित रक्खा करता था।[1]

राव बहादुरसिंह—यह सुजानसिंह का एक प्रतिपक्षी था। यद बड़ा बुद्धिमान् और शूर वीर था। सुजान द्वारा प्रस्तावित अपमानजनक संधि-प्रस्तावों को ठुकराकर इसने अपनी महान्ता का परिचय दिया था। वह क्षत्रिय के कर्त्तव्य और धर्म को पूर्ण रूप से समझता था। अवसर पड़ने पर शत्रु के साथ छल-पूर्ण व्यवहार करना यह राजनीति के अंतर्गत मानता था। उसके लिए मृत्यु और जीवन का आनंद समान था। अंतिम युद्ध में जाने से पूर्व अंतःपुर में उसकी केलि-क्रीड़ा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके उपरांत उक्त युद्ध में वीरतापूर्वक इसने प्राण-विसर्जन करके वीरता का आदर्श उपस्थित किया था।[2]

सफ़दरगंज मंसूर—यह दिल्ली का प्रधान-मंत्री था। अपने उपसूबेदार नवलराय की मृत्यु का बदला लेने के लिये बंगश नवाबों के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रस्तुत होकर इसने अपनी वीरता का परिचय दिया था। यह उसका अपनी आत्मप्रतिष्ठा की रक्षा का प्रयत्न समझना चाहिए। वह वीरों को सदैव आदर की दृष्टि से देखा करता था। आवश्यकता पड़ने पर युद्धभूमि से भाग जाना इसके लिए एक साधारण बात थी। अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए वह सम्राट् के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करने से भी नहीं चूकता था। इससे सिद्ध होता है कि उसे राज्य के लाभ-हानि का इतना ध्यान नहीं था जितना कि व्यक्तिगत स्वार्थ का।

---

[1] सुजानचरित्र, जंग १, अंक १, छं० १३, पृ० ५; जं० वही, अं० २, छं०१, पृ० ७; जं० वही, अं० ४, छं० ११, पृ० २५; जं० २, अं० १, छं० ८, पृ० २६; जं० वही, अंग २, छं० ५, पृ० ३२; जं० ३, अं० २, छं० १, पृ० ४३; जं० वही, अं० ३, छं०१०, पृ० ५०; जं० वही, अं० ५, छं० ४, पृ० ५८; जं० ४, अं० ३, छं० ३२,-३३, पृ० ७८; जं० वही, अं० २, छं० ३६-४३, पृ० ७८-६; जं० ५, अं० ३, छं० ३६, पृ० १३१; जं० ६, अं० ४, छं० १७, पृ० १६३-१६४; जं० वही, अं० ६ छं० १० पृ० २१३-४ [2] वही,५ अंक २, छं० १८, पृ० ११८-६; जं० वही, अं० ३, छं० १६, पृ० १२७; जं० वही, अं० वही, छं० २७-८, पृ० १३०, जं० वही, अं० ४, छं० ३५-७, पृ० १४६-७ जं० वही, अं० वही, छं० ४३-४, पृ० १५१

यह नीतिकुशल भी था। दिल्ली के युद्ध में पीछे हटकर इसने अपनी नीति-पटुता का अच्छा परिचय दिया था।[1]

उसके चरित्र से स्पष्ट है कि तत्कालीन उच्च पदाधिकारी अपने निजी स्वार्थ की चिंता किया करते थे। प्रजा-पालन और राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्य का उन्हें ध्यान नहीं रहता था।

स्त्री-पात्र—सुजान-चरित्र में प्रधान रूप से किसी भी स्त्री-पात्र का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रसंगवश राव बहादुर की स्त्री तथा देवी आदि का यत्र-तत्र उल्लेख भर कर दिया गया है।

करहिया को रायसौ

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'करहिया को रायसो' का एक अत्यंत साधारण स्थान है। उसमें व्यक्तिगत रूप में पात्रों के नाम औरसाथ ही इने-गिने गुणों—'सत्य, खग्ग-संचालन, पैज, रजपूती मूँछों का पानी' आदि का उल्लेख कर दिया गया है। राजपूत रमणियों ने अपने सतीत्व और मान-मर्यादा के लिए किस प्रकार हँसते-हँसते प्राण-विसर्जन किए इसका भी कवि ने सुंदर ढंग से उल्लेख करके राजपूत नारी के पूत-चरित्र का आभास दिया है।[2]

पद्माकर के ग्रंथ

(क)—हिम्मतबहादुर-विरुदावली—इस छोटे खंडकाव्य में चरित्र-चित्रण का प्रयास कम मिलता है। कवि ने अपने आश्रयदाता के दान, दया, धर्म आदि का ही अधिक वर्णन किया है। उसके सैन्य-बल और युद्ध-कौशल का भी वर्णन मिलता है। नायक के प्रतिद्वन्द्वी की वीरता का भी अच्छा चित्रण हुआ है। इस ग्रंथ में युद्ध-स्थली में वीरों तथा अस्त्र-शस्त्रों के नामों के उल्लेख ही विशेष रूप से मिलते हैं। चरित्रों के वर्णन में परंपरा का अनुसरण मात्र है। इस काव्य में नारी पात्रों का एकदम अभाव है।

हिम्मतबहादुर—पद्माकर ने इसके चरित्र-वर्णन में अत्युक्ति से काम लिया है। उन्होंने इसे शिवजी के समान वीर, महान् दानी, दया की मूर्ति, हिंदू-लाज-रक्षक, चौंसठ कला-प्रवीण, दृढ़-प्रतिज्ञ, सत्यवक्ता, नवरस-प्रतिमूर्ति, आदि गुणों से युक्त बतलाया है। वह घड़ी मुहूर्त्त देखकर युद्ध करनेवाला माना गया है। वह युद्ध में विजय की अभिलाषा से भागवत् "गीतान के जंत्र-मंत्र" धारण करता था। युद्ध भूमि को देखकर रौद्र-रूप धारण करके वह वीररस में डूब जाता था। अपने सैनिकों को जागीर, दान आदि देकर अपना बना लेता था जिससे वे प्रसन्नतापूर्वक उसके हित-साधन में प्राण-विसर्जन किया करते थे।[3]

मानधाता—यह हिम्मतबहादुर के कोषाध्यक्ष मनसुखराय कायस्थ का आत्मज था। यह युद्ध करने में अनुभवी वीर था। अपने स्वामी का सच्चा भक्त और सेवक था। वह सदा हरावल में रहा करता था। वह मरना और मारना दोनों भली प्रकार से जानता था। युद्ध में बड़ी वीरता से शत्रु-संहार करते हुए उसने वीरगति पाई थी।[4]

अर्जुनसिंह नोने—यह सच्चे वीर क्षत्रिय थे। इन्होंने अनेक राजाओं को पराजित करके

---

[1] सुजानचरित्र, जं० ४ अं० २, छं० १३-४, पृ० ६५; जं० वही, अंक वही, छं० २८, पृ० ६७; जंग वही, अंक ५, छं०७, पृ० ९१; जंग ६, अंक ४, छंद १७, पृ० १९३-४ [2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, संवत् १९८६; छं० ४०, २८५; छं० ५१, पृ० २८७ [3] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० ३-१४, २०, ११६, ११६, १२५ [4] वही, छं० १२१, १२३-४, १३३

उनके राज्यों को हस्तगत कर लिया था। यह युद्ध में बड़ी वीरता से काम लेते थे। इनकी उपस्थिति से हतोत्साहित सैनिक भी उत्साहित होकर युद्ध-रत हो जाते थे।

अर्जुनसिंह निर्भीक इतने थे कि दुर्ग की आड़ लेकर युद्ध करने के प्रस्ताव को ठुकरा कर खुले मैदान में आ डटे थे। जय-पराजय को ईश्वराधीन छोड़कर क्षत्रिय-धर्म-पालन करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। युद्ध-भूमि में दीनता प्रदर्शित करना और शत्रु को पीठ दिखाना ये दोनों कार्य उन्हें अरुचिकर लगते थे। अपने शत्रु की वीरता का भी वह आदर किया करते थे।

अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अंत में उन्होंने वीरगति प्राप्त की।[1]

(ख) **जगद्विनोद**—इस मुक्तक काव्य-ग्रंथ में जगद्सिंह संबंधी कुछ पद मिलते हैं जिनमें जगद्सिंह के गुणों का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है:—

जगद्सिंह—जयपुराधीश महाराजा जगद्सिंह क्षत्रियों के ईश, दयालु तथा धर्मात्मा थे। शत्रु को देखकर वे उग्र और रौद्र रूप धारण कर लिया करते थे। युद्ध में पीठ दिखाना और पर-स्त्री पर कुदृष्टि डालना उन्हें दुर्जनता और नीचता के लक्षण लगते थे। वे महान् दानी भी थे[2]।

इस प्रकार पद्माकर द्वारा चित्रित कुछ चरित्रों के विवेचनोपरांत हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उनका ध्यान चरित्र-वर्णन की ओर अपेक्षाकृत कम था। परंपरागत इने-गिने विशेषणों का बढ़ा चढ़ाकर उल्लेख कर देना ही उन्हें अभीष्ट था। पर अपने नायक के प्रतिद्वंद्वी का उदारतापूर्वक वर्णन करके उन्होंने अपनी दूरदर्शिता एवं विशाल-हृदयता का परिचय दिया है।

हम्मीररासो

'हम्मीररासो' के चरित्र-चित्रण में कवि ने रासो-परम्परा का अनुकरण किया है। स्त्री को ही युद्ध का कारण मानकर कवि को शृंगारिक विचारधारा-वर्णन का अवसर प्राप्त हो गया है। फल यह हुआ है कि पात्रों के शृङ्गार-संबंधी गुणों को दिखलाने में कवि ने अधिक समय नष्ट किया है। पर आशा आदि राजपूत रमणियों के चरित्रों से नारी-वीर-भावना का चित्रण करने में कवि पर्याप्त मात्रा में सफल हुआ है।

इन ग्रंथों में भूत-प्रेत, वीर आदि के युद्ध-वर्णन के कारण पात्रों को रण-स्थल में अपनी वीरता प्रकट करने का कम अवसर मिला है। इस कारण से पात्रों का चरित्र निरखने नहीं पाया है।

जोधराज ने हम्मीर के प्रतिपक्षी अलाउद्दीन के चरित्र को बहुत गिरा दिया है। इसके दो परिणाम हुए हैं। एक तो अलाउद्दीन का इतिहास सम्मत उद्दंड, रौद्र तथा वीर चरित्र पाठक के सामने नहीं आता है। उसका चूहे से भयभीत होना हास्यास्पद हो गया है। दूसरा परिणाम यह हुआ है कि नायक का चरित्र भी ऊँचा नहीं उठ सका है। प्रतिद्वन्द्वी जितना ही अधिक शक्तिशाली होगा उतना ही नायक के साहस, उत्साह तथा वीरत्व का विकास होगा। कवि इस साधारण बात को विस्मृत कर गया है।

---

[1] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० १७, ८७, ९१, ९४-६, १०१, १०३, ११०-१, २०७

[2] पद्माकर-पंचामृत, जगद्विनोद, छं० ५-६, ५९९, ६८६, ६९४-५।

मीर महिमा के चरित्र से तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम प्रेम-भावना के ऊपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। नीचे हम्मीररासो के प्रमुख पात्रों के चरित्रों पर संक्षिप्त विचार किया जा रहा है—

हम्मीर—हम्मीररासो के नायक हम्मीर परम्परागत राजपूत वीरभावना के प्रतीक थे। शरणागत-वत्सलता तथा प्राण-विसर्जन करके अपने प्रण की रक्षा करना वह भली प्रकार जानते थे। होनहार तथा संसार की अनित्यता को जानते हुए क्षात्र-धर्म का पालन करना वे अपने जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझते थे। दूसरे के दुःख से द्रवीभूत हो जाना उनका स्वभाव था। युद्ध में शत्रु को पीठ दिखलाना वे जानते ही न थे। वह नीति के अनुसार युद्ध करने के पक्षपाती थे। उन्होंने इसी कारणसे रात्रि-युद्धबन्द करा दिया था क्योंकि उसमें मित्र-शत्रु, वीर-कायर आदि का पता लगना कठिन था। विप्र, दीन-दुखी और आश्रित की रक्षा करते हुए अपने धर्म-पालन द्वारा यश-प्राप्त करनायही उनके जीवन का लक्ष्य था। उन्होंने शत्रु द्वारा प्रस्तावित सन्धि-प्रस्ताव का विरोध करके अपनी वीरता तथा बन्दी सुलतान को छोड़कर अपनी उदारता का महान् परिचय दिया था।[1]

इस स्थान पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि जोधराज ने हमीर का चरित्र अंकित करने में पृथ्वीराजरासो के कथानक की सहायता ली है। जिसके फलस्वरूप उसमें अनैतिहासिकता का पुट आ गया है।

राव रणधीर—राव रणधीर स्वामि-भक्त और सच्चे वीर थे। शत्रु को पराजित करना ही उनका लक्ष्य था, इसलिए रात्रि में युद्ध करना भी उन्होंने न्यायसंगत समझा था। घायल होकर भी वे वीरतापूर्वक युद्ध करते रहे थे। शत्रु ने भी मुक्तकंठ से इनकी वीरता की प्रशंसा की थी। लड़ते हुए इन्होंने वीरगति प्राप्त की।[2]

आशा रानी—आशा रानी सती, साध्वी और पति-पुत्र को प्रसन्नता से युद्ध की अनुमति देनेवाली वीर क्षत्राणी थी। अन्त में वीरतापूर्वक जौहर करके इसने अपने गौरव की रक्षा की थी।[3] उसका चरित्र वीरता और मान-मर्यादा-रक्षण का सजीव उदाहरण है।

मीर महिमा—मीर महमिा साहसी, वीर, एवं धर्मानुसार आचरण करनेवाला था। वह अपनी प्रतिज्ञा पर सदा अटल रहता था। वीरतापूर्ण कार्य करना, पर गर्व या हर्ष लेशमात्र भी प्रकट न करना उसके चरित्र की अनुपम विशेषता थी। झूठ बोलना और युद्ध में पीठ दिखलाना वह जानता ही न था। वह मधुर-भाषी एवं पर-दुःख-कातर था। निर्भीकता और गम्भीरता की वह साक्षात् प्रतिमा था। राव हम्मीर के गुणों से वह इतना प्रभावित हुआ था कि अपने प्राणों का मोह त्याग कर शत्रु के पास जाने के लिए वह प्रस्तुत हो गया था, जिससे हम्मीर की आपत्ति का अन्त हो जाए। अन्त में अपने कुटुम्बियों को मारकर और युद्ध क्षेत्र में पहुँचकर उसने अपनी महानता का परिचय दिया तथा युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की।[4]

---

[1] हम्मीररासो, छं० २८६, ३०३, ३२७, ३५३-४, ४२३, ४१५, ४१६, ४७६, ६५८ ७०६, ८२८, ८४८, ६२६, ६३६-८, ६३६, ६४०, ६४२, ६४६ [2] वही, छं० ४४८, ४६६, ५०५, ५०७, ५८० [3] छं० ३५१, ५२१, ६६६, ६७२, ६८०, ६४५ [4] वही, छं० २१४, २१६ २२३, २४०, २५६-६१, २६७, ६४३, ६५८, ६६५, ६३०, ६४७।

वन में अपरिचित स्त्री के सम्पर्क में आकर मानवीय दुर्बलता के वशीभूत हो जाना मीर महिमा के चरित्र पर एक कलंक है। इसका समाधान केवल इस प्रकार किया जा सकता है कि उसकी दुर्बलता का चित्रण करके जोधराज ने उसे मानव कोटि में रखकर उसके चरित्र को स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न किया है। पर जिन परिस्थितियों में उसके इस दोष को दिखलाया गया है वे उसके चरित्र को कदापि ऊँचा नहीं उठा सकतीं। इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कवि का उद्देश्य उसके चरित्र के चित्रण की ओर नहीं था, वरन् रासो-परम्परा का अनुसरण और तत्कालीन अमीरों की भोग-विलासमयी प्रवृत्ति का चितण मात्र था। हाँ इतना अवश्य है, कि ऊपर कहे हुए अन्य गुणों के कारण मीर महिमा की महान् वीरता, स्वामिभक्ति एवं कृतज्ञता का पता चल जाता है।

अलाउद्दीन—जोधराज ने अलाउद्दीन के साथ उचित न्याय नहीं किया है। उसे एक का पुरुष, हिन्दू-देवताओं की उपासना और सागर में प्राण-विसर्जन करनेवाला बतलाकर कवि ने अवास्तविक एवं अनर्गल बातों से उसका सम्बन्ध जोड़ दिया है। इसके परिणाम-स्वरूप इतिहास में वर्णित अलाउद्दीन के चरित्र के स्वरूप की अपेक्षा यह चित्रण अत्यन्त प्रच्छन्न और विकृत हो गया है।

कवि ने इसे मृगया-प्रिय, रमण में कामदेव तुल्य और चूहे को मारकर अपने मुख से अपनी डींग बघारनेवाला बतलाया है। उसके अनुसार अलाउद्दीन हम्मीर के वैभव-विवरण को सुनकर भयभीत हो उठा था और उसने तुरन्त मन्त्रणा करने के लिए उसे दरबार में बुलाया था। वह अपनी आन पर दृढ़ रहनेवाला व्यक्ति था। अवसर पड़ने पर दान, भेद और प्रलोभन सभी साधनों को काम में लाना वह उचित समझता था।[1]

रूप-विचित्रा—अलाउद्दीन की बेगम रूपविचित्रा के हृदय में मीर महिमा के प्रति पूर्वानुराग वर्तमान था। एकांत में किसी अपरिचित व्यक्ति से इस प्रकार दुर्बलता का परिचय देना उसके चरित्र की नीचता की चरम सीमा है। पर उसमें वीरता की भावना भी वर्तमान थी। जब उसने अलाउद्दीन को मीर महिमा को मारने के लिए प्रस्तुत देखा, तो वह स्वयं अपना शिर कटवाने के लिए तैयार हो गई थी।[2] इसका चरित्र कवि की शृंगार-भावना-चित्रण का प्रतीक है।

ऊपर के चरित्र-विवेचन से विदित होता है कि जोधराज ने अपने नायक तथा उसके प्रण-पालन में सहायक पात्रों के चरित्रों को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है और उनके प्रतिद्वन्द्वियों को नीच प्रकृति का दिखलाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने आश्रयदाता के पूर्वजों के शत्रुओं में महान्ता दिखलाने के पक्षपाती नहीं थे। इसी कारण से और पृथ्वीराज रासो के प्रभाव से उन्होंने अलाउद्दीन आदि के चरित्र को अत्यन्त गौण रूप दे दिया है।

---

[1] हम्मीररासो छं० १८८, २०८, २४५, ३६३, ३६४, ५६०, ६०१, ६४७, ८३०, ९३६।
[2] वही, छं० २२२, २४५, २४६, २६८।

अध्याय ४

रस

सामान्य स्थिति—रस-निरूपण के विचार से इस धारा का प्रमुख स्थान है। रस-वर्णन की प्रवृत्तियों की दृष्टि से आलोच्य ग्रंथों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. कुछ ग्रंथ रसों के लक्षण और उदाहरण वर्णन करने के विचार से लिखे गए हैं, जैसे मतिराम कृत ललितललाम ।

२. अलंकारों के रीतिग्रंथ जिनमें उदाहरण रूप में विविध छन्दों में रसों का परिपाक दिखलाया गया है। इस कोटि में शिवराजभूषण और जगद्विनोद आते हैं।

३. वे ग्रंथ जो कविता की दृष्टि से लिखे गए हैं और जिनमें विविध रसों के उदाहरण मिलते हैं, इसके अन्तर्गत शेष सभी ग्रंथ सम्मिलित हैं।

इस काल में यद्यपि सभी रसों का किसी न किसी रूप में प्रयोग होता रहा है, पर कुछ ऐसे विशिष्ट रस थे जिनका प्राय: सभी कवियों ने रुचि-वैचित्र्य के साथ प्रयोग किया है। उन रसों के नाम ये हैं :—

वीर (चारों प्रकार के—युद्ध, दान, दया तथा धर्म), शृंगार, बीभत्स, रौद्र, भयानक ।

कम प्रयुक्त होनेवाले रसों में करुण, हास्य, अद्भुत तथा शांत रस की गणना की जा सकती हैं।

वीररस—वीर-निरुपण की प्रवृत्ति सभी ग्रंथों में दृष्टगोचर होती है। वीररस के चारों प्रकार—युद्ध, दान, दया और धर्मवीर के चित्रण करने की ओर इन कवियों का ध्यान गया है, पर प्रधानता युद्धवीर और दानवीर की ही रही है। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। ये कवि राजाश्रित थे। उनके दान और युद्ध-कौशल की प्रशंसा करना इनके लिए नितान्त आवश्यक था। पर कुछ ऐसे कवि भी थे, जिन्होंने अपने चरित्र-नायकों के वीरत्व एवं शौर्य का वास्तविक अंकन करना ही अपना लक्ष्य बनाया था। उनकी रचनायें वीररस की दृष्टि से अधिक सफल बन पड़ी हैं, उदाहरणार्थ रत्नबावनी तथा भूषण की रचनायें ली जा सकती हैं।

वीररस के प्रसंग में अस्त्र-शस्त्र आदि युद्ध-सामग्री, वीरों की सजावट, सैन्य-प्रस्थान, वीरों की गर्वोक्तियाँ, पौरुषपूर्ण कार्यों, तुमुल कोलाहल आदि के सजीव चित्र अंकित किए गए हैं, जिनसे वीररस का वास्तविक चित्र पाठक के हृदयपटल पर अंकित हो जाता है,। इस सम्बन्ध में केशव, भूषण, मान और सूदन की रचनायें विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त जटमल, गुलाब एवं सदानन्द को भी वीररस के वर्णन में पर्याप्त सफलता मिली है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कुछ कवियों ने अपने आश्रय-दाताओं की दानशीलता का वर्णन करने में ऊहात्मक उड़ानें भरी हैं। रस प्रसंग में दान की सामग्री, तथा 'गज' आदि का वर्णन जी खोलकर किया गया है। मान, मतिराम तथा सदानन्द के नाम इस प्रसंग में विशेष

उल्लेखनीय हैं। ऐसे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में अस्वाभाविकता एवं नीरसता का समावेश हो गया है। संयुक्ताक्षरों की वर्णन-शैली का प्रयोग ही वीर-रस निष्पत्ति की वास्तविक शैली, है ऐसा समझने वाले भी इस धारा में अधिकांश कवि थे। ऐसे कवियों में मान और सूदन प्रमुख हैं।

युद्ध-सामग्री का वर्णन करने में उपमा, उत्प्रेक्षा, संदेह आदि अलंकारों का सहारा लेकर बाह्य तड़क-भड़क में मग्न रहनेवाले केशव और पद्माकर उक्त प्रसंगों में वास्तविक रस-निरूपण करने में असफल रहे हैं।

कुछ कवियों का ध्यान केवल अपने नायकों के युद्धों आदि का वर्णन करने की ओर ही गया है। इस कारण वीररस का उनकी रचनाओं में अभाव पाया जाता है। ऐसे कवियों में गोरेलाल तथा श्रीधर विशेष उल्लेखनीय हैं।

वीररस के साथ एक ही छंद में अन्य रसों को मिश्रित कर देने की प्रवृत्ति भी इस युग में प्रचलित थी।

उपर्युक्त विवेचन से वीररस की वास्तविक दशा का परिचय हमें प्राप्त हो जाता है। कुछ हेर-फेर के साथ प्रायः एक ही प्रकार की प्रवृत्तियाँ इस धारा में प्रचलित रही है। पर चारण-काल की अपेक्षा इस धारा में वीररस का अधिक निखरा हुआ, वास्तविक और सजीव स्वरूप हमें मिलता है।

शृंगार—वीररस के उपरान्त शृंगार-रस का प्रयोग इस साहित्य में प्रमुख रूप से हुआ है। शृङ्गार-वर्णन में स्त्री-पुरुष-जाति-भेद, नख-शिख-वर्णन, ऋतु-वर्णन आदि का प्रचुर मात्रा में चित्रण मिलता है। इसके लिए जटमल, मान तथा जोधराज विशेष प्रकार से उल्लेखनीय हैं। अधिकांश कवि शृंगार-वर्णन में तल्लीन होकर कथा-वस्तु का निर्वाह विस्मृत कर देते थे, रीति-काल तथा रासो-परंपरा का प्रभाव इन ग्रंथों के शृंगार-चित्रण में स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। कहीं-कहीं पर अश्लीलता के नग्न चित्र भी प्रस्तुत कर दिए गए हैं।

उक्त दोषों के होते हुए भी इन कवियों की रचनाओं में शृंगार के ऐसे सुन्दर वर्णन मिलते हैं, जो उत्तमता में रीतिकालीन उच्च शृंगारी कवियों से किसी भी दशा में कम नहीं हैं।

गोरेलाल जैसे कवि ने लौकिक शृंगार द्वारा अलौकिक शृंगार की ओर संकेत किया है। कुछ ऐसे भी कवि हैं जिन्होंने वीररस में शृंगार का पुट दिया है। जोधराज तथा पद्माकर के नाम इस सम्बन्ध में विशेष रूप से लिए जा सकते हैं।

शृंगार-वर्णन के लिए रासो-परंपरानुसार स्त्री-पात्रों की कल्पना करनी भी इन ग्रंथकारों ने आवश्यक समझी है। उदाहरण के लिए जोधराज का नाम लिया जा सकता है।

कुछ कवियों के शृंगार-रस-वर्णन में स्ववाचकत्व दोष आ गया है। परंतु इन थोड़े से दोषों के होते हुए भी यह रस भी वीररस के समान ही प्रधान है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

बीभत्स—वीर रस के साथ वीभत्स-रस-चित्रण में आरंभ से अंत तक एक ही से उपकरणों-जोगिनी, गिद्ध, हर, कालिका, कंक, मांस, रक्त आदि का चित्रण मिलता है। प्रायः एक ही प्रकार के रूपक भी बाँधे गए हैं।

रौद्र तथा भयानक—वीररस के मित्र रसों—रौद्र तथा भयानक-का थोड़ा-बहुत वर्णन सभी

कवियों की रचनाओं में मिलता है। अधिकांश ग्रंथों में इन रसों का सुंदर परिपाक हुआ है, फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि इन रसों का जैसा चित्रण होना चाहिए था, वैसा नहीं हो सका है।

करुण, हास्य, अद्भुत और शांत रसों के कम उदाहरण मिलते हैं। ये रस प्रायः उपेक्षित रहे हैं।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि इस धारा में सभी रसों का वर्णन मिलता है पर प्रधानता वीर और शृंगार की ही रही है। कुछ इने-गिने दोषों के रहते हुए भी इन रसों का सुंदर परिपाक एवं निर्वाह हुआ है।

प्रत्येक कवि द्वारा प्रयुक्त विभिन्न रसों के विश्लेषण से रस-संबंधी प्रवृत्तियाँ अधिक विस्तार से स्पष्ट हो जायेंगी, इसलिए आगे के प्रत्येक कवि द्वारा किए गए रस-निरूपण का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है :—

केशव

केशव ने वीरसिंहदेव-चरित में वर्णनात्मक शैली का अनुकरण करके अपनी स्वाभाविक चमत्कार-प्रियता को प्रधानता दी है। यही कारण है कि इसमें रस-सामग्री और रस-परिपाक की ओर कवि ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। और यदि उसका ध्यान उधर गया भी है, तो वह उसका समुचित रूप से निर्वाह नहीं कर पाया है। वीरसिंहदेव-चरित में बहुत कम ऐसे स्थल आए हैं जहाँ केशव रस-चित्रण का प्रयत्न करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। वह अपने इस कार्य में कहाँ तक सफल हुए हैं यह जानने के लिए कुछ उदाहरणों की सहायता से नीचे विचार किया जा रहा है :—

वीरसिंह देव-चरित में केशव ने वीर, शृंगार, करुण और वीभत्स रस चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

वीर रस—वीरसिंहदेव-चरित का नायक वीर राजपूत था। उसके चरित्र का आश्रय पाकर कवि वीर, रौद्र, भयानक आदि के अच्छे चित्र उपस्थित कर सकता था, पर इनकी ओर उनका बहुत कम ध्यान गया है। वीर रस का एक उदाहरण देखिए। अबुल्फ़ज़ल की वीरता का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं :—

> "काढ़े तेग सोह यों सेख, जनु तनु धरे धूमधुज देख।
> दंड धरै जनु आपुन काल, मृत्यु सहित जम मनहु कराल"।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऊपर का वर्णन साधारण कोटि का है।

अस्त्र-शस्त्र का वर्णन वीररस के अंतर्गत ही माना जाता है। भूपाल राव की तलवार के वर्णन में केशव ने एक सुंदर छंद लिखा है :—

> "कालिका की केलि सी, कै कालकूट बेलि सी,
> कै काली कैसी जीभ किधौं कालदंड कामिनी।
> किधौं केसौदास ओछी तच्छक की देह दुति,
> जातना की जोति किधौं जात अंतगामिनी॥

[1] वीरसिंहदेव-चरित, प्र० ४, छं० ८६ पृ० ३६।

मीन कैसी छाँह, विषकन्या कैसी बाँह,
किधौं रनजय साधि तानी सिद्धि अभिरामिनी।
राती राती माती अति लोहू की भूपाल राइ,
तेरी तरवारि पर वारि डारौं दामिनी॥"[1]

उक्त छंद में उपमा और संदेह की सहायता से तलवार का अच्छा वर्णन हुआ है। ऐसे उदाहरणों से स्पष्ट है कि कवि में वीररस-चित्रण की प्रतिभा थी, पर पांडित्य, आचार्यत्व, शृंगार आदि के चक्कर में पड़कर वह इधर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सका।

शृंगार—कतिपय स्थलों पर केशव ने शृंगार का वर्णन करने का भी प्रयत्न किया है। अबुलफ़ज़ल की मृत्यु का समाचार पाकर अकबर के राजप्रासाद में करुण-क्रंदन मच गया। उस अवसर पर कवि कहता है:—

"कोलाहल महलनि में भयो, तिनकी प्रतिधुनि सुनि मुनि मन रयो।
मुग्धा मध्या प्रौढ़ा नारी, उठि दौरी जहं तहं डर डारी।
भूषन पटन सम्हारत अंग, अधिक सोभ बाढ़ी अंग अंग।
चंचल लोचन जल झलमले, पवन पाइ जनु सरसिज हले।
चिलके अलिक अलक अति बनी, तरकी तन अंगिये की तनी।
राजकुमारि हसैं मुँह मोरि, तुरकिन के उपजै दुख कोरि।
रोवति तन तोरति अति बनी, बिच बिच बाजति ढोलक घनी।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों तथा इनके आगे के छंद[3] के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि करुण-दृश्य के अंकित करते समय कवि शृंगार की भावना में बह गया है और इस प्रकार अलंकार आदि की सहायता से रसाभास चित्रित कर बैठा है।

रामसिंह की प्रतिष्ठा को पद्मिनी[4] और शरद्-ऋतु को नायिका[5] का रूप देकर नखशिख का वर्णन करके कवि ने अपनी शृंगार-प्रियता का परिचय दिया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कवि ने इन प्रसंगों में भी अलंकारों और उक्ति-वैचित्र्य ही को प्रधानता दी है।

करुण—करुणरस के रसाभास का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। एक आध अन्य स्थल पर करुण की झलक मात्र मिल जाती है। वास्तविक रस-परिपाक के दर्शन नहीं होते हैं।

वीभत्स—बीभत्स रस के वर्णन का एक उदाहरण पर्याप्त होगा:—

"अंचल मुख पोंछति जगमगी, कंठ श्रोन पिय मारग लगी।
सांचहु मृतक मानि भय दली, मानहु सती छोड़ि सत चली।
गीधिन के सुत सोभित बनैं, लीलत पल मुख श्रोनित सनैं।"[6]

इस प्रकार रस-निरूपण और रस-परिपाक की दृष्टि से "वीरसिंह-देव-चरित" अत्यन्त

---

[1] वीरसिंहदेव-चरित्र, पृ० १४, छं० ३०, पृ० ८४ [2] वही, पृ० ६, छं० १२-४, पृ० ३६ [3] वही, पृ० वही, छं० ४, पृ० वही [4] वही, पृ० ८ छं० १४-२६, पृ० ४०-१ [5] वही, पृ० ११, छं० १६-२०, पृ० ६८ [6] वही, पृ० ८ छं० ४३-४

साधारण रचना है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि ग्रंथ के नायक के वीरत्व के संबंध में कवि सर्वथा मौन रहा है। केवल उनके कार्य-कलापों का इतिवृत्तात्मक उल्लेख भर उसने कर दिया है।

वीर रस के उक्त अभाव की बहुत कुछ पूर्ति रत्नबावनी में कवि द्वारा कर दी गई है। कवि ने इस छोटी सी रचना में वीररस का वर्णन ओजस्विनी भाषा में अत्यंत उत्तम ढंग से किया है। एक उदाहरण से इसका स्पष्टीकरण हो जायेगा :—

> "दीठि पीठि तन फेर पीठ तन इक्क न दिक्खिय।
> फिरहु फिरहु फिर फिरहु कहत दल सकल उमग्गिय।
> ठान ठान निज शान मुरकि पाठान जु धाए।
> काढ़ काढ़ तरवार तरल ता छिन तठ आए।
> इक इक्क घाउ घल्लिव सबन रतनसेन रनधीर कहँ।
> जनु ग्वाल बाल होरी हरषि खंडल छोर अहीर कहँ॥"[1]

ऊपर के छंद ही के समान रत्नबावनी में अन्य छंद भी देखे जा सकते हैं, जो ओज और वीर-भाव से परिपूर्ण हैं। अतएव वीररस की दृष्टि से "रत्नबावनी" अत्यंत उत्कृष्ट रचना है। इससे सिद्ध हो जाता है कि चमत्कारवादी, घोर शृंगारी एवं आचार्य कवि केशव में वीररस-चित्रण की पूर्ण पटुता और प्रतिभा थी, पर परिस्थितियों के कारण वे इसकी ओर अपना मन न लगा सके और वीर रस उपेक्षित होकर गौण बन गया तथा अन्य बातों को प्राधान्य प्राप्त हो गया।

जटमल

गोरा-बादल की कथा में वीर और शृंगार प्रमुख रस हैं। वीररस का चित्रण करने में कवि को यथेष्ट सफलता मिली है। समरांगण में युद्ध करते समय गोरा की वीरता संबंधी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं :—

> "तजै तरवार गुरज्ज कुं लेह, दड़ो बड़ साह दुरज्जन देह।
> करै चकचूर गयन्द कपाल, सकै उमराव न आप संभाल।
> कहै मुख मीर अयो जमकाल, अदे नर दे हथियार सुडाल।
> तिणे तिण दंतन सारहुं वीर, न मारहिं तौ सिरगोरिल वीर॥"[2]

युद्ध को प्रस्थान करते समय बादल से उसकी पत्नी का कथन भी विचारणीय है।

> "कन्ता रण में पैसतां, मत तूँ कायर होइ।
> तुम्हैं लाज मुझ मेहणों, भलो न भाषै कोइ॥"[3]

गोरा के मरणोपरान्त उसकी पत्नी की यह उक्ति हृदय में वीरता की भावना जाग्रत करने की पूर्ण क्षमता रखती है।

---

[1] केशव-पंचरत्न, छं० ३१, पृ० ८ [2] गोराबादल की कथा, छं० १३४, पृ० ३१ [3] वही, छं० ११४, पृ० २८।

"भला हुआ जो भिड़ मुआ, कलंक न आयो काइ,
जस जंपै सब जगत में, हिब रण ढूंढो जाइ।"[1]

इसी प्रकार वीररस संबंधी अन्य उदाहरण हैं, जो इस बात को साक्ष्य देते हैं कि कवि ने वीर रस के वर्णन में बड़ी सावधानी से काम लिया है।

शृंगार—जटमल ने शृंगार-वर्णन भी किया है। पुस्तक के अधिकांश भाग में "स्त्री-पुरुष-जाति-वर्णन" किया है। इस प्रसंग में कहीं-कहीं पर वह अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है, यथा :—

"गर्धव-गति गुण-हीण, परै ढ़रि पीन पयोहर ।
मच्छ-गंध तन मलिन, खुलह-सम-तुल्य भगंदर ॥"[2]

यहाँ पर यह बतला देना भी अप्रासंगिक न होगा कि "स्त्री-जाति-वर्णन" तथा "पुरुष-जाति-वर्णन" का मुख्य घटनावली से कोई संबंध नहीं है। अतएव इस वर्णन से वीर-भावना के विकसित होने में कोई सहायता नहीं मिलती है।

कहीं-कहीं पर शृंगार-वर्णन करने में कवि को सफलता भी मिली है, जैसा कि नीचे के उदाहरण से स्पष्ट होता है :—

"नव-सत साजि सजाइ, नारि बादल पै आई।
थै क्युं रमणि न विरम्यो, चलेउ क्युं करण लड़ाई॥
अजहुँ न मांडी सेज, घाव नख नाहिं चमंक्के।
कुचन चोट न सही, सहवि किम सांग धमंक्के॥
छूटंत नाल गोला तहां, टूटनि धड़ सिर ऊपरे।
यूं बादल सूं नारी कहै, मतां देख दल तै मुरै॥"[3]

इस प्रकार जटमल की कृति में केवल दो प्रमुख रस वीर और शृंगार मिलते हैं। जटमल वीर रस का चित्रण करने में शृंगार की अपेक्षा अधिक सफल हुए हैं।

मतिराम

जैसा कि अन्यत्र बतलाया जा चुका है कि ललितललाम में अलंकारों के लक्षणों और उदाहरणों का विवेचन किया गया है। इन अलंकारों के उदाहरणों में से जितने छंद बूँदी राज-परिवार विषयक हैं उनमें से अधिकांश उनकी दानशीलता और प्रशस्ति संबंधी हैं। अतएव ये छंद आलोच्य धारा के अन्तर्गत आ जाते हैं।

वीर रस—मतिराम ने नीचे के पद में वीर रस के चारों प्रकार—धर्म, दया, दान और युद्ध का सुन्दर रूप से चित्रण किया है :—

एक धर्म, गृह खंभ जंभ रिपु-रूप अवनि पर,
एक बुद्धि गम्भीर धीर वीराधि-वीर-वर।

[1] गोराबादल की कथा, छं० १४४, पृ० ३३ [2] वही, छं० ४८, पृ० १३ [3] वही छं० ११३ पृ० २७-८

एक ओज अवतार सकल सरनागत-रच्छक,
एक जासु करबाल निखिल खलकुल कहं तच्छक।
'मतिराम' एक दाता निमनि जग जस अमल प्रगट्टियउ,
चहुवान-बंस-अवतंस इमि इक राव सुरजन भयउ।"[1]

युद्धवीर :—युद्ध-वीर का नीचे के छंद में सुंदर वर्णन मिलता है :—

जेते ऐंड़दार दरबार-सिरदार सब,
ऊपर प्रताप दिल्लीपति कों अभंग भौ।
'मतिराम' कहै करवार के कसैया कैते
गादर-से मूंड़े जग हांसी को प्रसंग भौ।
सुरजन-सुत रज-लाज-रखवारो एक,
भोज ही तैं साहि कों हुकुम-पग पंग भौ।
मूँछनि सों राव मुख लाल रंग देखि मुख,
औरनि कौ मूँछनि बिना ही स्याम रंग भौ॥"[2]

ललितललाम में दानवीर के उदाहरणों की प्रधानता है। धर्मवीर के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं।[3] यहाँ पर यह कह देना भी ठीक प्रतीत होता है कि दान संबंधी पद्यों में से अधिकांश गज-वर्णन पर हैं, जिनमें से कुछ छंदों में कोरा शब्द-चमत्कर ही है।[4]

श्रृंगार—यहां पर बूंदी वर्णन में से श्रृंगार का उदाहरण भी दे देना अप्रासंगिक न होगा।

"चंद्रमुखिन के भौंह जुग, कुटिल कठोर उरोज।
बाननि सौं मन कौं जहाँ, मारत एम मनोज॥
जहाँ चित्त-चोरी करै मधुर-बदन-मुसकानि।
रूप ठगत है दृगन कौं, और न दूजो जानि॥"[5]

भूषण

भूषण की कविता में प्रायः सभी रसों का सम्यक् रूप से परिपाक हुआ है। पर उनकी कविता के नायक शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीर हैं इस कारण से वह वीर रस प्रधान है। उसमें चारों प्रकार के वीर—युद्धवीर, दयावीर, दानवीर और धर्मवीर—के वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, पर प्रधानता युद्धवीर की ही है। यथा :—

"छूटत कमान बान बन्दूकरू कोकबान,
मुसकिल होत मुरचानहू की ओट मैं।
ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि द्वैषिन पै वीरन लै जोट मैं।
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट-भोट मैं।

---

[1]. मतिराम-ग्रंथावली, छं० २३, पृ० ३६४ [2] वही, छं० २६, पृ० ३६५ [3] वही, छं० २३६, पृ० ४०६-१० [4] वही, छं० ३६, पृ० ३६७ [5] वही, छं० २०-१, पृ० ३६३

ताव दै-दै मूँछन कगूँरन पै पाँव दै-दै,
घाव दै-दै अरि-मुख कूदे परैं कोट मैं।"[1]

युद्ध-वीर के संबंध में चतुरंग चमू, वीरों की गर्वोक्तियाँ, योद्धाओं के पौरुषपूर्ण कार्य, उनके आयुध, वस्त्र, युद्ध के बाजे और रण के तुमुल कोलाहलादि का वर्णन हुआ करता है। भूषण की रचनाएँ इस प्रकार के वर्णनों से भरी पड़ी हैं। यहाँ पर केवल एक उदारण देना पर्याप्त होगा। छत्रसाल की तलवार का वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है :—

"भुज भुजगेस की वैसंगिनी भुजंगिनी-सी,
खेदि-खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति, मीन
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज,
भूषन सकै करि बखान को बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।"[2]

युद्ध-वीर के अतिरिक्त दयावीर,[3] दानवीर,[4] और धर्मवीर[5] का भी भूषण के छंदों में सुंदर निर्वाह हुआ है। कुछ स्थलों पर भूषण ने चारों प्रकार की वीरता का वर्णन एक ही पद्य में कर दिया है। यथा :—

"दान-समै द्विज देखि मेरहू कुबेरहू की,
संपति लुटायबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर,
सिव की कथान में सनेह झलकत है।
भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा के दृगन उछाह छलकत है।"[6]

उक्त पद्य में पहले चरण में दान, दूसरे में धर्म, तीसरे में दया और चौथे में युद्ध-वीरता दिखलाई गई है। पिछले चरण में उत्साह की भरपूर सामग्री संकलित कर लेने पर स्थल संकोच से अंतिम चरण में 'उछाह' का आ जाना भारी दोष नहीं है।[7]

भूषण में यद्यपि उत्साह के समस्त रूपों का समावेश नहीं है, क्योंकि उन्होंने वीर रसात्मक महाकाव्य न लिखकर स्फुट रचना की है, पर उसके कुछ रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।...भूषण की

---

[1] विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, शिवाबावनी, छं० ८, पृ० ७२-३ [2] वही, वही, छत्रसाल दशक, छं० ७, पृ० ९१ [3] वही, वही, शिवराजभूषण, छं० १०३, पृ० १९ [4] वही, वही, छत्रसाल दशक, छं० १०, पृ० ९२ [5] वही, शिवाबावनी, छं० १७, पृ० ७५ [6] वही, शिवराज भूषण, छं० ३२८, पृ० ५८ [7] वही, भूमिका, पृ० ७३

कविता में खुले तौर पर महत्कार्य आलम्बन के रूप में इसीलिए नहीं मिलता है कि उसमें प्रतिपक्षी बहुत स्पष्ट है।[1]

रौद्र रस—वीर रस के सहकारी रौद्ररस का भूषण ने बहुत वर्णन किया है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है:—

"सारी पातसाही के अमीर जुरि ठाढ़े तहाँ,
लायके बिठायो कोऊ सूबन के नियरे।
देखि कै रसीले नैन गरब-गसीले भए,
करी न सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत जबै धर्‌यो कर मूठ पर,
तबै तुरकन के निकसि गए जियरे।
देखि तेग चमक सिवा को मुख लाल भयो,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।"[2]

भयानक रस—भूषण ने भयानक रस का बहुत वर्णन किया है। नीचे केवल एक उदाहरण लिखा जा रहा है:—

"कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
कीन्हीं सिवराज वीर अकह कहानियाँ।
भूषन भनत और मुलुक तिहारी धाक,
दिल्ली और बिलाइत सकल बिललानियाँ।
आगरे-अगारन की नाँघती पंगारन,
सँभारती न बारन बदन कुम्हलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहै भागी जाहिं,
बीबी गहे सूथनी सुनीबी गहे रानियाँ।"[3]

भयानक-रस की पूर्णता भूषण की कविता में बहुत अधिक है। इस रस के आलम्बन में पक्षी तो स्पष्ट है, पर प्रतिपक्षी प्रायः प्रच्छन्न है। फिर भी शिवाजी के विकट कर्म विपक्षी के रूप में परोक्ष होते हुए भी स्वयमेव आश्रय की दुर्दशा के उद्भूत हो जाते हैं।[4]

बीभत्स रस—भूषण ने वीभत्स-रस के व्यापारों की भी सुंदर योजना की है। यथा:—

"किलकति कालिका कलेजी की कलल करि,
करिकै अलल भूत-भैरो तमकत हैं।
कहूँ रुंड-मुंड कहूँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहूँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं।
खुलै खग्ग कंध धरि ताल-गति-बंध पर,
धाय-धाय धरनि कबन्ध धमकत हैं।"[5]

---

[1] भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ७४ [2] वही, शिवाबावनी, छं० ४२, पृ० ८४-५ [3] वही, छं० २२, पृ० ७७ [4] वही, भूमिका, पृ० ७६ [5] वही, छं० १३, पृ० ७४

भूषण ने शृंगार,[1] शांत,[2] करुण,[3] अद्भुत[4] तथा हास्य[5] रसों के भी बड़े चातुर्य से चित्रण किए हैं।[6]

ऊपर के विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि भूषण ने अपने काव्य के अन्तर्गत सभी रसों का वर्णन किया है। अधिकांश स्थलों पर अन्य रस वीर रस से लपटे हुए हैं। उनके काव्य में रस-राजकता वीर रस की ही है। इन्होंने शृंगारादि का स्वतंत्र रूप से वर्णन किया है, पर उनका प्रायः संपूर्ण काव्य वीर रस और वीर रस-सामग्री-चित्रण प्रधान है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कवि की रचना में रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है। इस दृष्टि से इस धारा में उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मान

मान ने राजविलास में राजदरबारी कवियों की परम्परा का अनुसरण किया है, इस कारण इनका काव्य अधिक वर्णनात्मक हो गया है। वर्णनों के फेर में पड़कर कवि का ध्यान रस-परिपाक की ओर अधिक नहीं गया है, फिर भी इस धारा के कतिपय कवियों की अपेक्षा इन्हें रस-निरूपण में अधिक सफलता मिली है।

वीर रस—वैसे तो प्रायः सभी रसों के उदाहरण इनके ग्रंथ में मिलते हैं, पर वीर, शृंगार तथा शांतरसात्मक स्थलों की इसमें अधिकता है। उक्त रसों के चित्रण में ही कवि का मन अधिक रमा है। महाराज जसवंतसिंह की वीरोचित उक्ति देखिए :—

"षेती हम कुल षग्ग षग्ग हम अपय षजानह।
षग्ग करैं बस षलक नाम हम षग्ग निदानह।
षल दल षंडन षग्ग षेत इच्छत हम षग्गह।
षिति रष्षन फुनि षग्ग अहितु भग्गो इन अग्गह।
षग धार तित्थ षत्री धरम आवागमनहि अपहरन।
सो षग्ग बंध हम सूर सब धरय न साहि षजान धन।"[7]

इसी प्रकार के अन्य उदाहरणों[8] की ग्रंथ में भरमार है, जिनसे सिद्ध होता है कि कवि में वीर रस वर्णन की प्रतिभा थी, पर समय के फेर में पड़कर अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसात्मक कथन भी उसे करने पड़े, जिससे अधिकांश स्थलों पर अस्वाभाविकता आ गई है। उदाहरणस्वरूप एक पद्य नीचे दिया जाता है :—

"कत्ती किल किल्लां सक्ति सलिल्ला तोप त्रिमुल्ला जाजल्ला।
दल मचि दहचल्ला लोह उजल्ला नहिं बिचि पल्ला घर भल्ला।
घूमत घामल्ला छक्क छयल्ला तजि गृह तल्ला गृह तल्ला एकल्ला।
तुटि तूरत बल्ला ढरि गज डल्ला कापर डुल्ला अकतुल्ला॥"[9]

---

[1] भूषण-ग्रंथावली, फुटकर, छं० ६२, पृ० ११२ [2] वही, छं० ७४, पृ० ११६, [3] वही, शिवाबावनी, छं० ३३, पृ० ८१, [4] वही, छं० ५२, पृ० ८८, [5] वही, शिवराज-भूषण, छं० ३५२, पृ० ६३ [6] वही, भूमिका, पृ० ७०-८० राजनारायण शर्मा, भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ७६-८४ [7] राजविलास, विलास ९, छं० ८०; पृ० १६०, [8] वही, वि० वही, छं० ८१, पृ० वही, वि० १२, छं० ६-१५ पृ० २०९-१० [9] वही, वि० ११, छं० ९, पृ० २०७; (अन्य उदाहरणों के लिए देखिए विलास ११ के छं० ६-८, १०-४, पृ० २०६-८)

यह सब होते हुए भी कवि ने अपने पात्रों के वीरत्व, वीर-भावना एवं कर्त्तव्य-परायणता के सुंदर चित्र उपस्थित किए हैं।

युद्ध-वीर के अतिरिक्त दानवीर[1] एवं धर्म-वीर (दान-वीर गर्भित)[2] का भी मान ने अच्छा चित्रण किया है।

श्रृंगार रस—इसके वर्णन में कवि ने नखशिख[3] का अच्छा चित्रण किया है। श्रृंगार-वर्णन का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है, जिसमें अश्लीलता का पुट आ गया है :—

"कहुँ लंब कुच तिय किद्ध, पुहवी अनादि प्रसिद्ध।
कहुँ जनत कामिनि जात, तब पवन राजत तात ॥"[4]

नीचे श्रृंगार-वर्णन का एक सुंदर उदाहरण भी देखिए :—

"सुचि सुरभि सकोमल सारी, कव्वरि मनु नागिनि कारी।
सिर मोती मांग सुसाजैं, रापरी कनकमय राजैं ॥"[5]

शांत रस—शांतरसात्मक वर्णन में मान का मन पर्याप्त मात्रा में रमा है। केवल एक उदाहरण देखिए :—

"झमकति झंझरि नाद रुणझुण पाय पायल पहिरना।
कमनीय छुद्रावली किंकिनि अवर पय आभूषना।
कलधौत कूरम समय मन क्रम पाप पीड़ प्रहारनी।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥"[6]

ऐसे पद्यों में रचना-सौष्ठव के साथ ही साथ माधुर्य-गुण और अनुप्रास की स्वाभाविक छटा के भी दर्शन होते हैं।

इसके अतिरिक्त इसमें रौद्र और भयानक रसों के भी सुंदर उदाहरण मिलते हैं। नीचे दोनों रसों का एक-एक उदाहरण दिया जा रहा है :—

रौद्र रस— **"लोयन करिय सु लाल कही कमधज्ज कहानिय।**
हम नरनाह अनादि हद्द रक्खन हिंदवानय ॥
हमसे कोइ न हठी होउ हम किन पै हल्लय।
संग्रामहि हम सूर दुट्ट दानव पय डुल्लय।
बंदिहुँ प्रथम तोरन बिहसि तरकि कलहंतन करौं।
अति तुंग सिपर धरवर अचल पूरब तैं पच्छिम धरौं ॥"[7]

भयानक रस—**"मच्यो भय मालव देश मझार। उड़ै प्रज जानि कि टिड्डि अपार ॥**
कहूँ तिय पुत्त कहूँ गय कंत। रड़ै जननी कहुँ बाल रडंत ॥"[8]

---

[1] राजविलास, वि० १, छं० ६१, पृ० ११ [2] वही, वि० ५, छं० ४६, पृ० ८८ [3] वही, वि० १, छं० १७-३०, पृ० ३-६; वि० ७, छं० ६-२२, पृ० १०४-६ [4] वही, वि० १, छं० ८३, पृ० १३ [5] वही, वि० ७, छं० ७, पृ० १०४ [6] वही, वि० १, छं० १४, पृ० ३, (अन्य उदाहरणों के लिए देखिए इसी विलास के छं० ६-१२, १४-५, पृ० १-३) [7]

वीभत्स रस—मान ने वीभत्स रस का वर्णन करने में परम्परा का ही अनुसरण किया है जैसा कि निम्न उदाहरण से सिद्ध होता है :—

"चौसट्ठि पीवत चोल, भरि भरि सुपत्र अलोल।
बिहसंत बीर बेताल, कलिकाल भाल कराल ॥"[1]

करुणरस—मान में कहीं कहीं पर करुण-रस का भी दर्शन हो जाता है। यथा :—

"सुनिय बत्त संग्राम सीह परिवार समेतह।
धसकि परी धनबती अवनि मुरझाइ अचेतह।
सखियनि करी सचेत धवल उट्ठी धीरज धरि।
सती संग संगह्यौ पिता बरजंत बिबिहि परि।
निज उअर फारि काढ्यौ गरत पावक पिंड पइट्टयौ।
धन धन्य कहै सुर धनवती पति सम प्रान परट्ठयौ ॥"[2]

ऊपर की समीक्षा से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मान के राजविलास में सभी प्रमुख रसों का चित्रण हुआ है। पर कवि ने वीर, शृंगार और शांत-रसात्मक भावनाओं का अधिक सरलतापूर्वक वर्णन किया है। अधिकांश स्थलों पर अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण होते हुए भी, यह निर्विवाद है कि कवि में रसानुभूति की पूर्ण क्षमता थी, जिसका उसने अपनी रचना में यथेष्ठ मात्रा में परिचय भी दिया है।

गोरेलाल

गोरेलाल ने वर्णनात्मक शैली में चंपतिराय और उनके पुत्र छत्रसाल के युद्धों का वर्णन किया है। उनकी विजयों का विवरण मात्र देना और विजित स्थानों तथा योद्धाओं की नामवाली का उल्लेख करना ही इस कवि का एकमात्र उद्देश्य रहा है। फलस्वरूप रस-चित्रण की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया है। कुछ पंक्तियाँ वीर, शृंगार और वीभत्स आदि रसों की ओर संकेत करती हुई यत्र-तत्र बिखरी मिल जाती हैं, जिनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि ने आचार्यत्व की दृष्टि से प्रेरित होकर यह ग्रंथ नहीं लिखा है। स्वाभाविक रूप में जो रस संबंधी सामग्री ग्रंथ में आ गई है वह उसकी रस-चित्रण-योग्यता की परिचायक है। इसके संबंध में कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

वीर रस—कुँवर सारवाहन के युद्ध के वर्णन में से कुछ पंक्तियाँ देखिए :—

"कुँवर कढ़े जल तैं सर भीनै। आइ हथ्यार तीर मैं लीनै।
हाँके मुगल ताल की जोरी। भजे बिडरि बालक चहुँ ओरी।
कुँवर सारवाहन बल बाढ़े। तमकि तीर तरकस तें काढ़े।
× × ×
अरुन रंग आनन छबि लीनी। तानि कमान कुंडलित कीनी।
छूटे बान बज्र से बाँके। फूटे सुभट निकट जे हाँके।"[3]

---

[1] राजविलास, वि० १२, छं० १८, पृ० २१० [2] वही, वि० १, छं० ३७, पृ० २०-१
[3] छत्रप्रकाश, अध्याय ३, पृ० २०

छत्रसाल की वीरता का वर्णन इस छंद में दर्शनीय है :—

"तरल तुरंगम की तनक, तुरत बग्ग झमकाइ।
परदल में हाँक्यौ छता, खाई कोट नकाइ॥"[1]

श्रृंगार रस—इस काव्य की एक विशेषता यह है कि इसमें श्रृंगार रस का बहुत कम वर्णन हुआ है। राम की मूर्त्ति का वर्णन करते हुए श्रृंगारिक भावना की निम्न उक्ति विचारणीय है :—

"इत उत ये चितवत नहीं, मन्द मन्द मुसकात।
सीता सौं चाहत कह्यौ कछू रसीली बात।"[2]

स्वामी प्राणनाथ के द्वारा छत्रसाल को जो उपदेश दिया गया है उसमें भी यत्र-तत्र लौकिक श्रृंगार-भावना का वर्णन करते हुए पारलौकिक प्रेम का वर्णन किया गया है।[3]

वीभत्स रस—इस ग्रंथ में वीभत्स-भावना संबंधी भी कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं। यथा :—

"खाइ मास मसहार अघाने, जोजन दसक गीध मँडराने।"[4]

कवि वीभत्स का अच्छा वर्णन नहीं कर पाया है। उसने वीभत्स-रस के वर्णन में प्रयुक्त सामग्री में से केवल एक आध का उल्लेख भर कर दिया है, जिससे किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि रस-परिपाक की दृष्टि से साधारण होते हुए भी 'छत्रप्रकाश' अपने ढङ्ग का एक अनूठा काव्य है।

श्रीधर

'जंगनामा' में ऐसे बहुत कम स्थल हैं जहाँ पर रस का समुचित निर्वाह हुआ है। बिविध रसों संबंधी कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

वीर रस—युद्ध-प्रधान-काव्य होने के कारण संपूर्ण ग्रंथ में वीर रस की प्रधानता होनी चाहिए थी, पर कथानक की इत्तिवृत्तात्मक शैली, नामों की भरमार आदि के कारण कवि का ध्यान उधर पर्याप्त मात्रा में नहीं गया है। पर जहाँ कहीं भी उसने वीर रस संबंधी चित्रण किए हैं उनसे स्पष्ट है कि उसमें वीर रस-वर्णन की अनूठी प्रतिभा थी। नीचे के उदाहरण से यह बात सिद्ध हो जाती है :—

"भालनि सों भाला भिर्यो बरछा सों बरछानि,
सरे समसेर समसेरनि सुखंग मैं।
तीरन को कीनो तन तीरनि तुनीर तोरू,
तोरादार जोरन न पावतु सुफंग मैं॥
जंग सुलतानी मैं कहानी कैसो कीनो काम,
श्रीधर छबीलेराम राजा रनरंग मैं।
साढ़े तीनि हाथ कद दसहथा हाथी चढ़्यो,
दोई हाथ होत हैं हजार हाथ जंग मैं॥"[5]

---

[1]छत्रप्रकाश, अध्याय २२, पृ० १४५, [2]वही, अध्याय ४, पृ० २५, [3]वही, अध्याय २३, पृ० १५३-४, [4]वही, अध्याय २६, पृ० १२६ [5] जंगनामा, पृ० ६२

भयानक रस—भयानक रस का सजीव चित्रण नीचे की दी हुई पंक्तियों में देखिए :—

"यह सुनत एजुद्दीन भाग्यो फौज संग सबै भगी।
तहँ सकल मजलिस मौज में इक बारगी दुख सों पगी॥
तब लगी मुख बिष सी बिरी अरु गीत गारी सी लगी।
अंग अमल की लाली घटी ततबीर औ डर रिस जगी॥
कहाँ लौं लेखिये कथा सब रीति देखि परी नई।
हहरे कलावंत गिर गए मेहरान को मुरछा भई॥
कहुँ परी ढिनगत ढोलकी सुध ताल धुँघरू की गई।
सब गयो मद छुटि छाक सो रट ऊहि आहि दई दई।"[1]

बीभत्स रस—इस कवि ने बीभत्स रस का भी सुन्दर वर्णन किया है। यहाँ पर केवल एक उदाहरण दिया जाता है :—

"झुंडनि झँडूले प्रेत लोहू के प्रवाह परे,
लाती लरैं पौरै पेलि पियत अन्हात हैं।
खोपरा लों खोपरिन फोरैं गलकर गद्द,
पोरी लों पलासी खाल खैंचि खैंचि खात हैं॥
पाखर से खापरनि चहुवा चुरैलनि के,
चाइ भरे चर चर चपरि चबात हैं।"[2]

ऊपर बतलाए हुए ही प्रमुख रस हैं, जिनके उदाहरण उक्त ग्रंथ में मिलते हैं। शेष रसों के चित्रण का इसमें प्रायः अभाव है।

सदानन्द[3]

वीर रस—भगवंतरायसा में रस-निरूपण में कवि को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। यह ग्रंथ वीररसप्रधान है। उसमें वीर रस का अच्छा निर्वाह हुआ है। यथा :—

"चमकै छटा सी ज्यौं घटा सो दल फारि देत,
केतिक कटा कै भट जुत्थन सुभाइ कै।
भूप भगवन्त की कृपान ज्यौं करद खैदु,
खंडे खल सीस भुज समर चुनाइ कै।
जीति सी जगी है अनुराग सों रंगी है,
वज्र ज्वाल सों पगी है गति अद्भुत पाइ कै।
आरत कौं छाँड़ते बिचारि तन मानी मूढ़,
मोगल संवारत तुराब खान खाइ कै।"[4]

---

[1] जंगनामा, पृ० २६ [2] वही, पृ० ६३ [3] इस कवि कृत भगवंतरायसा का पाठ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ५, १६८१ वि० की पृष्ठ संख्या ११४-३१ पर दिया है, अतः प्रासंगिक संकेतों में दी हुई छं०संख्या इन्हीं पृष्ठों पर देखनी चाहिए। [4] छं० ८०, (अन्य उदाहरणों के लिए देखिए छं० संख्या ४४, ६८, ६६, ७६, १०२, १०३)

दान में दिए गए हाथियों के वर्णन का एक सुंदर उदाहरण यह है :—

> "मत्त चलै अति मत्त सदा मद षंडन ते बहु नीरु झरै जू।
> कज्जल से गिरि राजत भू पर ताहि लखे घन संक धरै जू॥
> है जु सिंगार निजै दल कौ अरि के दल कौ जिमि काल घिरै जू।
> "नन्द" सदा भगवंतसिंह नृप ते बारन बकसीस करै जू॥"[1]

इसमें रौद्र[2] तथा बीभत्स[3] के भी सुंदर उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार इस संक्षिप्त ग्रंथ में कवि ने रस-निरूपण का विशेष ध्यान रक्खा है। उसने रासो की प्रचलित शृंगार-रस-प्रधान-परम्परा का एकदम बहिष्कार किया है।

सूदन

सूदन की रचना में सभी प्रमुख रसों का सुन्दर चित्रण हुआ है। नीचे कुछ उदाहरणों की सहायता से उन पर विचार किया जा रहा है :—

वीर रस—वीर रस से संबंधित सामग्री-अस्त्र-शस्त्र, सेना, हाथी, घोड़े, वीर-वेश, युद्ध आदि का कवि ने अच्छा वर्णन किया है, जिससे वीर रस के परिपाक में पूर्ण सफलता मिली है। इस रस के चित्रण का एक उदाहरण देखिए :—

> "कोप्यो मानौ काल सौ बदन महिपाल पूत,
> दीठि बाँकी करि कै निहारै ओर तू जाकी।
> तू ही अवतार भुवभार के उतारन कौं,
> सार के संभार नहिं ताब नर दूजा की।
> सूदन समथ्थ अरि रूदन कौं पथ्थ सम,
> कीरति अकथ्थ रत्नाकर लौं भूजा की।
> दिल्ली दलदट्टन सुकट्टन मलेच्छ बंस,
> देस-देस जाहर प्रचंड तेग सूजा की।"[4]

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं, जिनसे इस कथन की पुष्टि होती है कि कवि को इस रस के चित्रण में पूर्ण रूप से सफलता मिली है।

रौद्र रस—वीर रस के मित्र-रसों में से रौद्र का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

> "कालजमन तिहिं काल लाल लोचन कराल तन।
> अति उताल चलि चाल ढाल किरवाल धारि पन॥
> छह करोर गज बाजि जोरि मुच्छन मरोरि मुख।
> ×　　　　×　　　　×
> वहुँ जमन जाल बिकराल बल ज्यौं अकाल ज्वाला झरिय॥"[5]

भयानक रस—वीर रस के अन्य मित्र-रस भयानक के चित्रण का एक सुन्दर उदाहरण देखिए :—

---

[1] वही, छं० ४६　[2] वही, छं० १२, २५,　[3] वही, छं० ७६, ६८　[4] सुजान-चरित्र, जंग १, अं० ४, छं० १६, पृ० २६　[5] वही, जं० ७, अं० २, छं० ६६, पृ० २५१-२

"सूदन सबल सिंह सूरज तिहारे धाक,
धूमनु करत रहै दक्खिनी बिभूक्यौ सौ।
सहित अमीर पीर धीर न धरत उर,
चौंकि-चौंकि चाहत चकत्ता चित चूक्यौ सौ।"[1]

बीभत्स रस—सूदन ने बीभत्स का बहुत वर्णन किया है, पर उन्होंने सभी स्थलों पर बीभत्स रस की सामग्री में से केवल थोड़े से चुने हुए उपकरणों और उपमानों की ही आवृत्ति की है। एक उदाहरण देखिए जिसमें इस रस का सजीव चित्र अंकित किया गया है :—

"तिनके जुद्धहिं देखि बहुत चरबीचर आइय।
जुग्गिनि जोरि जमाति जहाँ जाहर जमुहाइय।
काली करत कलोल खलखलैं तहँ खबीस गन।
भैरव भभर्यौ फिरत पिता के हार हेत रन॥
जहँ ईस दूत जगदीस के गीरबान गनिका उमगि।
जहँ रुस्तमखाँ रु हकीमखाँ स्वामि काम हित रहिय पगि॥"[2]

श्रृंगार रस—सुजान-चरित्र में श्रृंगार रस का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। सूदन की प्रवृत्ति इस रस की ओर अधिक झुकी हुई थी। इनका श्रृंगार रसव का र्णन कहीं-कहीं पर अश्लीलता की सीमा के निकट पहुँच गया है, जैसा कि इस उदाहरण के स्पष्ट है :—

"सैन के सदन दोऊ राजत मदन भरे
बदन बिलोकि कै ललकि लपटाने हैं।
उर सौं उरज मिले अधर सुधरु चारु
चूमत कपोल लोल लोचन लजाने हैं।
हार उरझाने मुरझाने हैं कुसुमभार
अंग मदसूदन तऊ न अरसाने हैं।
बैन तुतराने सतराने भौंह ताने रस
साने मुसिकाने ललचाने रतिमाने हैं॥"[3]

उक्त छंद उस अवसर पर आया है, जब राव बहादुरसिंह बड़गूजर युद्ध करने का निश्चय करके, अंतःपुर में प्रविष्ट हुआ है। इस प्रसंग में वीर रस संबंधी संवादों आदि का वर्णन न करके इस प्रकार के श्रृंगार संबंधी पद्यों का प्रयोग कवि की श्रृंगार-भावना-प्रियता का द्योतक है। यह स्पष्ट रूप से रीति-काल की श्रृंगारिक भावना का प्रभाव प्रतीत होता है।

हास्य रस—सूदन ने हास्य रस का पुट देकर शिव की स्तुति में एक सुंदर कवित्त लिखा है :—

"बाप विष चाखै भैया-षट-मुख राखै देखि
आसन मैं राखै बसवास जाको अचलै।

---

[1] सुजानचरित्र, जं० ५, अं० ४, छं० ४७, पृ० १५२ [2] वही, जं० ३, अं० ४, छं० २, पृ० ५३ [3] वही, जं० ५, अं० ४, छं० ३६, पृ० १४७

भूतन के छैया आस-पास के रखैया
और काली के नथैया हू के ध्यान हू ते न चलै।
बैल बाघ वाहन बसन कौं गयंद-खाल
भाँग कौं धतूरे कौं पसार देतु अचलै।
घर को हवालु यहै संकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे पूत मोदक कौं मचलै॥"[1]

सूदन ने एक ही छंद में दो रसों के वर्णन भी किये हैं। वीर और शृंगार विरोधी रसों का एक ही छंद में वर्णन कर देने से रसाभास हो गया है।[2] कहीं-कहीं पर वीर रस के साथ बीभत्स रस के भाव का एक ही छंद में वर्णन कर दिया है।[3] सूदन ने एक ही छंद में भयानक और बीभत्स के भाव का सुंदर समन्वय भी किया है।[4]

ऊपर सूदन द्वारा प्रयुक्त केवल प्रमुख रसों ही का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। संपूर्ण ग्रंथ में प्रधानता वीर रस की है, जो स्वाभाविक ही है। कुछ स्थलों को छोड़कर सूदन को रस-चित्रण में, अन्य काव्य-क्षेत्रों के समान, पूर्ण सफलता मिली है। इस दृष्टि से उनका एक विशिष्ट स्थान है।

गुलाब कवि

"करहिया कौ रायसौ" में बहुत कम रसों के चित्रण के दर्शन होते हैं। एक स्थान पर गुलाब ने एक ही छंद में दान धर्म-युद्ध-वीर का वर्णन किया है :—

"दान तेग सूरे बल विक्रम से रूरे पुण्य
पूरे पुरषारथ को सुकृती उदार है।
गावे कविराज यश पावे मन भायो तहाँ
वर्ण धर्म चारु सुन्दर सुढार है॥
राजत करहिया में नीत के सदन सदा
पोषक प्रजा के प्रभुताई हुसयार है।
जंग अरबीले दल भंजन अरिंदन के,
बिदित जहान जग उदित पमार है।"[5]

वीर रस—का एक सुन्दर उदाहरण देखिए :—

"गज छोड़ के अश्व सवार भयौ। ललकार जवाहिर आय गयौ॥
बिरच्यौ इत केहरि सिद्ध नरम्। कर इष्ट उचारन शुद्ध भरम्॥
पहुँच्यौ रन पंचम सिंघ मरद्द। करै झुक झार अरीन गरद्द॥
रुप्यौ इत जाट निराट बली। मुख ते रटना सुचितान भली।"[6]

---

[1] सुजानचरित्र, जं० ३, अं० १, छं० १, पृ० ४१ [2] वही, जं० ५, अं० ४, छं० ३४, पृ० १४६ [3] वही, जं० ३, अं० ४, छं० ११, पृ० ५६, जं० २, अं० २, छं० १२, पृ० ३३ [4] वही, जं० ५, अं० २, छं० ६, पृ० ११२ [5] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० १०, संवत् १९८६, छं० ८, पृ० २७८, [6] वही, वही, छं० ३५, पृ० २८२

बीभत्स—उक्त छंद में आगे बीभत्स रस की कुछ पंक्तियाँ भी दर्शनीय हैं :—

"कटि मुँडनि शूरन श्रोन मचे। तहाँ बेगि सदाशिव माल सचे॥
कर जुग्गिन चौसठ नच्च पगम्। इम देखि के कायर देह डगम्॥"[1]

नीचे बीभत्स का एक और उदाहरण दिया जाता है :—

"मसहार गिद्धन कीन। नच जुग्गनी परबीन।
कहुँ भूत भैरों प्रेत। चुनि मुंड मालनि हेत॥
तहाँ हुलस काली आय। पल चरन मंगल गाय।
कर स्रोन पान नवीन। बहुँ भाँत आशिख दीन।"[2]

इस प्रकार उक्त रचना में केवल वीर और बीभत्स के ही उदाहरण मिलते हैं। बीभत्स में प्रायः एक से ही उपमानों का प्रयोग किया गया है। रस-परिपाक के विचार से "करहिया कौ रायसौ" साधारण कृतियों ही में परिगणित किया जाना चाहिए।

पद्माकर

रस-निरूपण की दृष्टि से पद्माकर हमारे सामने रीतिकार तथा कवि के रूप में आते हैं। इन्होंने जगद्विनोद में हिन्दी की प्रचलित रीति-परम्परा का पूर्ण अनुगमन किया है। पद्माकर परम्परा से तिल भर भी हटकर चलना नहीं चाहते थे।[3] इन्होंने स्थायी भावों के जितने उदाहरण दिए हैं, उनमें इसका बराबर ध्यान रखा है कि भाव-कोटि में उसका क्या स्वरूप होगा।[4] हिन्दी के अधिकांश रचयिताओं ने भावों या रसों का नाम लेना बहुत आवश्यक समझा है। इसलिए पद्माकर उससे नहीं बच सके। अतः पद्माकर का रस और भाव-निरूपण वैसा उत्तम नहीं है जैसा उसे होना चाहिए।[5] पर हमें यह न भूलना चाहिए कि जगद्विनोद के जिन प्रकरणों—मरण तथा वितर्क (संचारी भाव), युद्धवीर, दानवीर, भयानक और बीभत्स—से हमारा प्रयोजन है, उनके लक्षण और उदाहरण दोनों ही अपेक्षाकृत निर्दोष हैं। नीचे के उदहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी :—

युद्ध-वीर :— "जाही ओर सोर परै घोर घन ताही ओर,
जोर जंग जालिम को जाहिर दिखात है।
कहै "पद्माकर" अरिन की अवाई पर,
साहब सवाई की ललाई लहरात है॥
परिघ प्रचंड चमू हरषित हाथी पर,
देखत बनत सिंह माधव को गात है।
उद्धत प्रसिद्ध जुद्ध जीति ही के सौदा-हित,
रौदा ठनकारि तब हौदा में न मात है॥"[6]

इसी प्रकार दानवीर,[7] भयानक,[8] तथा बीभत्स[9] के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं।

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० १०, १९८६ वि०, छं० ३५, २८३ [2] वही, छं० ४५, पृ० २८६ [3] विश्वनाथप्रसाद मिश्र : पद्माकरपंचामृत, भूमिका, पृ० ५१ [4] वही, वही, वही, पृ० ५६ [5] वही, वही, पृ० ६०-१ [6] वही, वही, छं० ६८६, पृ० २१५ [7] वही, वही, छं० ६९४, ६९५, पृ० २१६ [8] वही, वही, छं० ७०३, ७०५, पृ० २१८-९ [9] वही, वही, छं० ७१०, पृ० २१९

शुद्ध वीररस-प्रधान रचना के विचार से हिम्मतबहादुर-विरुदावली के रस-निरूपण पर विचार करने पर उसमें निम्नलिखित रसों के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं।

वीररस :— "तहँ दुहुँ दल उमड़े घन सम घुमड़े झुकि झुकि झूमड़े जोर भरे।
ताकि तबल तमंके हिम्मत हंके वीर बमंके रन उभरे॥
बोलत रन करखा बाढ़त हरषा बानन बरषा होन लगी।
उलछारत सेलैं अरिगन ठेलैं सीनन पेलैं रारि जगी॥"[1]

दानवीर,[2] रौद्र,[3] भयानक,[4] वीभत्स,[5] शृंगार गर्भित वीर,[6] आदि अन्य प्रमुख रस हैं, जिनके उदाहरण हिम्मतबहादुर-विरुदावली में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। वीर रस के छंदों की संख्या सबसे अधिक है और होनी भी चाहिए। पर वीर रस के छंदों में अस्त्रों-शस्त्रों आदि के नाम भर गिना दिए गए हैं। इस कारण से वीर रस-परिपाक पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है, इस संबंध में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कथन बहुत कुछ सत्य प्रतीत होता है। वे लिखते हैं :—

"इनकी युद्धवाली रचना में वीररस के साथ बीभत्स, रौद्र, भयानक और करुण सब के लिए जगह थी, पर ये युद्ध-वीर का ही सच्चा निरूपण नहीं कर पाए, फिर अन्य रसों की चर्चा ही क्या? युद्ध के प्रसंग में जहाँ वीरों की काट का अवसर आया है वहाँ सभी जगह तीर, बरछी, आदि का नाम भर ले लिया है। उनकी काट का वर्णन करके, रसात्मकता उत्पन्न करने की चेष्टा ही नहीं है। जहाँ चढ़ाई आदि का चित्रण करने की आवश्यकता थी वहाँ इन्हें नाम गिनाने से ही फुरसत नहीं थी। जहाँ सेना के उपकरणों का वर्णन आया है, वहाँ उपमा, उत्प्रेक्षा और परंपरा-पालन में ही लगे रहने से बाह्यस्वरूप तक मजे में नहीं झलकाया गया, आभ्यंतर की चर्चा ही क्या? केवल सबसुखराय के पुत्र मानधाता की स्वामिभक्ति और उत्साह-वर्धक वचनों के अतिरिक्त और कहीं भी कोई भाव-व्यंजना हिम्मतबहादुर-विरुदावली में नहीं है।"[7]

मिश्र जी के ऊपर के कथन में बहुत कुछ सत्य होते हुए भी, यह स्वीकार करना पड़ता है कि पद्माकर में इस धारा के अन्य कवियों के समान परम्परा का अनुकरण मात्र था। उनका रस-निरूपण बहुत से कवियों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। रस-निरूपण की दृष्टि से जगद्विनोद में दिए हुए उदाहरण अधिक, स्वच्छ, स्पष्ट और सजीव हैं।

जोधराज

जोधराज के 'हम्मीररासो' में परंपरानुसार वीर और शृंगार रसों का प्रधानतया चित्रण हुआ है। वीररस के वर्णन में कवि को उच्च कोटि की सफलता नहीं मिली है। इतिहास प्रसिद्ध कथानक होने पर भी इस कवि ने वीर रस के चित्रण में, चातुर्यपूर्ण कौशल नहीं दिखलाया है। नीचे दिए हुए वीररस के छंद से इस कथन की पुष्टि हो जाती है :—

"किए हुक्म साह तन में रिसाइ।
किन्हों जु जंग फिर बीर आइ॥

---

[1] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० १८२, पृ० ३७ [2] वही, छं० ८, पृ० २, ३ [3] वही, छं० ११७, पृ० २३ [4] वही, छं० ७४-५, पृ० १४ [5] वही, छं० २०७-८, पृ० ४३ [6] वही, छं० ५३, पृ० ६ [7] पद्माकर-पंचामृत, भूमिका, पृ० ८३-४।

छूटंत तोप मनु वज्रपात ।
जल सुविक धरा छुटि गर्भ जात ।"[1]

कहने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त पद्य रस-परिपाक की दृष्टि से अत्यंत साधारण कोटि का है ।

दान वीर--दान वीर के कुछ पद्य भी इन्होंने लिखे हैं, जिनमें दान-सामग्री की गणना मात्र करा दी गई है । यथा :--

"बकसि सेख को बाजि साज कंचन के साजे ।
मुक्त माल सिरपेंच जटित हीरा छबि छाजे ॥
सकल सथ्थ सिरपाव शाल दिन्नव अति भारिय ।
पंच लक्ख को पटो दियो आदर भुवकारिय ॥
दिन्नी सुठौर सुंदर इकै तेहि देखत हिय हर्षियउ ।
उच्छाह सहित उठि शेष तब आनन्द मंगल वर्षयउ ।"[2]

श्रृंगार रस—इस ग्रंथ में श्रृंगाररस की भी प्रधानता है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। श्रृंगार रस के वर्णन के प्रसंग में कवि ने ऋतु-वर्णन[3] तथा नखशिख-वर्णन[4] जी खोलकर किया है। इनका श्रृंगार-वर्णन अश्लीलता की पराकाष्ठा को पहुँच गया है, यथा—

"कंचन लता सी थहरात अंग अंग मिलि,
सीकर समूह अंग अंगनि में दरसै ।
चंबन कपोल नैन खंडन अरध नख,
गहत पयोधर प्रचंड पानि परसै ॥
आनन्द उमंगन मैं मुसकात बाल तुत-
रात बतरात सतरात रस बरसै ।
लपटनि झपटनि मसकनि अनेक अंग,
रति रंग जंग तैं अनंग रंग सरसै ।"[5]

उक्त छंद में अधिक खुला वर्णन होने के कारण अश्लीलता का समावेश हो गया है। इस प्रकार इस कवि ने श्रृंगार-वर्णन में रासो और रीतिकाल की परंपरा का अनुसरण किया है।

नीचे के पद्यों में वीर और श्रृंगार रसों का एक ही छंद में प्रयोग करके रसों के नामों का उल्लेख कर दिया गया है, जिससे उसमें स्वशब्दवाच्यत्व दोष आ गया है :—

"श्रवन सुनै वर वीर रस, सिंधव राग अपार ।
हरषि उठे दोउ तिहिं समै, मिलन वीर श्रृंगार ॥
मिलनै सुवीर श्रृंगार, दुहु हरष हिए अपार ।
बर वीर हरषेउ अंग, उत अच्छरी सु उमंग ॥"[6]

---

[1] हम्मीररासो, छं० ४६२, पृ० ६३ [2] वही, छं० २०४, पृ० ६१ [3] वही, छं० १००-२०, पृ० २०-७ [4] वही, छं० १२१-४२, पृ० २७-८ [5] वही, छं० २४२, पृ० ४८-९ [6] वही, छं० ७४७-८, पृ० १४८

जोधराज ने कुछ छंदों में युद्ध के लिए प्रस्तुत होते हुए सैनिकों तथा युद्ध में मृत वीरों का वरण करने के लिए प्रस्तुत होती हुई अप्सराओं के साथ-साथ सुसज्जित होने का वर्णन किया है।[१] यह वर्णन कवि की शृंगार-प्रियता का द्योतक है। इस रस के उपरांत कवि ने बीभत्स का अधिक वर्णन किया है। इस चित्रण में प्रायः सभी स्थलों पर एक ही प्रकार के उपकरणों का प्रयोग हुआ है। यहाँ पर केवल एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा :—

"गिद्धय पल भष्पैं रत बल चष्पैं, जंबू अष्पैं हिय हर्षैं।

× × × ×

बहु पत्र भरावैं मिलि मिलि गावैं, धरि धरि धावै मन भावैं।
पल अस्ति चचोरैं बसन निचोरैं, लुत्थि टटोरैं. गुन गावैं।"[२]

प्रमुख रसों में से अन्य रौद्र है, जिसके वर्णन इस ग्रंथ में मिलते हैं।[३] अन्य रसों में से भयानक[४] तथा शांत रस[५] का चित्रण भी इस कवि के द्वारा किया गया है।

ऊपर के विवेचन से यह सार निकलता है कि रस-परिपाक की दृष्टि से हम्मीर रासो को वीर रस-प्रधान ग्रंथ स्वीकार नहीं किया जा सकता। इतना शौर्य-पूर्ण कथानक होते हुए भी कवि वीर रस का सजीव चित्रण अंकित करने में असमर्थ रहा है। ग्रंथ के उपनायक अलाउद्दीन को आखूत (चूहा) से डराकर कवि ने शौर्य और वीरता का अपमान किया है।[६] हम्मीररासो में शृंगार रस की प्रधानता है, पर उसका विकृत और अश्लील रूप ही पाठक के सामने अधिक आता है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कवि ने रासो-परंपरा का अनुकरण किया है और रासो-ग्रंथों में रस-निरूपण की जो परिपाटी थी कवि ने उसका पूर्ण रूप से निर्वाह किया है।

---

[१] हम्मीररासो छं० ७४६-५८, पृ० १४८-६ [२] वही, छं० ७८६, पृ० १५५, (बीभत्स के अन्य उदाहरणों के लिए देखिए छं० ३८,५२६, ७७६, ८०६, ६०६-६०६, ६११)
[३] वही, छं० २६५,३३०, ३६३,४१३ [४] वही, छं० २३३ [५] वही, छं० ८५०-५३, पृ० १६४-५
[६] वही, छं० २४५, पृ० ५०

अध्याय—५

अलंकार

सामान्य स्थिति—अलंकार-योजना की दृष्टि से आलोच्य काल की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ हैं। इस संपूर्ण साहित्य में अलंकार संबंधी दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। प्रथम धारा उन कवियों की थी, जो रीति काल से प्रभावित होकर अपने ग्रंथों में अलंकारों के लक्षणों और उदाहरणों का विवेचन करके आचार्य-पद प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते थे। इस प्रकार के केवल दो ग्रंथ 'शिवराज-भूषण' और 'ललितललाम' हैं। 'शिवराज-भूषण' शुद्धि रीति की दृष्टि से निर्दोष ग्रंथ नहीं माना जा सकता। उसके अधिकांश अलंकारों के लक्षण और उदाहरण अस्पष्ट और सदोष हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके रचयिता का लक्ष्य अपने चरित्र-नायक का यश-गान करना है रीति-ग्रंथ लिखना नहीं। मतिराम को 'ललितललाम' में अधिक सफलता मिली है। आचार्यत्व के विचार से भूषण की अपेक्षा वे अधिक सफल हुए हैं। इस प्रकार इस धारा में केवल दो ही ग्रंथ आते हैं और उनको भी नितांत उच्चकोटि के रीति-ग्रंथ नहीं माना जा सकता।

दूसरी प्रवृत्ति के अंतर्गत वे ग्रंथ आते हैं, जिनमें अलंकारों के लक्षणों का वहिष्कार करके कविता करना ही कवियों ने अपना लक्ष्य रक्खा है और उनमें अलंकारों के प्रयोगों के उदाहरण न्यूनाधिक संख्या में वर्त्तमान हैं। इस कोटि में उपर्युक्त दो लक्षण ग्रंथों के अतिरिक्त शेष सभी ग्रंथ सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ ग्रंथों में अलंकारों का बाहुल्य से प्रयोग हुआ है और कुछ में नगण्य। इनका विवरण आगे के पृष्ठों में यथास्थान दिया गया है।

संपूर्ण काल में अलंकार-प्रयोग का क्षेत्र व्यापक होते हुए भी कुछ विशेष अलंकारों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। नीचें दिये हुए अलंकारों का अधिकांश कवियों के ग्रंथों में प्रचुर-मात्रा में प्रयोग मिलता है।

(अ) शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक।

(आ) अर्थालंकारों में निम्नलिखित सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है :—

उपमा, मालोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा (गम्योत्प्रेक्षा, उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा), अतिशयोक्ति (रूपकातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति), भ्रम तथा संदेह।

(इ) विरोध मूलक अलंकारों में विरोधाभास।

(ई) लोक-व्यवहारमूलक अलंकारों में से लोकोक्ति के अधिक उदाहरण मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त नीचे दिए हुए अलंकारों के प्रयोग भी मिलते हैं, पर उन्हें बहुत कम कवियों ने अपनाया है :—

(उ) **शब्दालंकार**—श्लेष।

(ऊ) **अर्थालंकार**—अनन्वय, अपह्नुति, उल्लेख, तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तूपमा, व्यतिरेक, विषम, विशेषोक्ति, परिसंख्या, पर्याय, काव्यलिंग, अनुमान, ललितोपमा, व्यतिक्रम, अप्रस्तुतप्रशंसा, अत्युक्ति तथा उदाहरण।

उपर्युक्त अलंकारों के प्रयोगों में कवियों ने कुछ विशेष नियमों, परंपराओं एवं विशेषताओं का पालन किया है। नीचे कुछ ऐसे ही प्रमुख अलंकारों की विशेषताओं पर विचार किया जा रहा है :—

अनुप्रास—इस अलंकार का प्रायः सभी रचनाओं में प्रयोग हुआ है। कुछ कवियों ने इसका प्रयोग कोरे चमत्कार-प्रदर्शनार्थ किया है। ऐसे अवसर पर कोरे शब्दाडम्बरों की भरमार है। चमत्कार-प्रियता के कारण अवसर का ध्यान नहीं रक्खा गया है। नायक-नायिका का रूप-वर्णन, ओज, छटा, युद्ध-वर्णन, कवियों के नामों तथा लूट की सामग्री की सूची, युद्ध के उपकरणों आदि के वर्णन के अवसर पर अनुप्रास को विशेष प्रकार से अपनाया गया है। कहीं-कहीं पर इसके प्रयोग से काव्य में सजीवता, ओज और कवित्व-गुणों का समावेश हो गया है। पर अधिकांश स्थलों पर नीरसता आदि की इतनी भरमार हो गई है कि कविता के प्रति अरुचि होने लगती है।

उपमा—अर्थालंकारों में से उपमा का अत्यधिक प्रयोग मिलता है। गोरेलाल, जोधराज आदि कवियों ने सुंदर उपमानों का सृजन किया है। सेना के प्रस्थान, युद्ध, हाथी, घोड़ों, अस्त्र-शस्त्र आदि के वर्णन में मेघ, बिजली, और वर्षा के उपकरणों को उपमानों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। सूदन ने कृषि संबंधी कुछ नवीन उपमानों को अपनाया है।

रूपक—सेना के प्रस्थान, युद्ध की सामग्री, युद्ध के वर्णन में मेघ, बिजली, बूदें, नदी, पानी के प्रवाह, वक-पंक्ति आदि के रूपक बाँधे गये हैं। केशव ने सूर्य के लिए "अरुनमुख" उपमान का प्रयोग करके अपनी अदूरदर्शिता का परिचय दिया है। उपर्युक्त प्रचलित रूपकों के अतिरिक्त बरात, तीर्थराज-प्रयाग, काल की वाटिका, सूरजमल का होता बनकर यज्ञ करना, विराट-पुरुष, वसंत, कृष्ण-स्तुति, गोवर्द्धन की कथा आदि पौराणिक तथा अन्य प्रकार के रूपकों का इन कवियों ने सफल चित्रण करके काव्य में नवीनता और सजीवता का समावेश किया है।

उत्प्रेक्षा—इस अलंकार का प्रयोग वस्तुओं, हाथी, नगर, वर्षा, घोड़ों, युद्ध, रूप आदि के वर्णन में सुंदरता के साथ किया गया है।

अतिशयोक्ति—अतिशयोक्ति तथा इसके भेद रूपकातिशयोक्ति और अक्रमातिशयोक्ति का कवियों ने जी खोलकर वर्णन किया है। युद्ध तथा वैभव आदि के वर्णन में ऊहात्मक उड़ानें भरीं गई हैं। राजविलास में गर्वोक्तियों के चित्रण में इस अलंकार द्वारा विशेष छटा का समावेश हो गया है।

ऊपर दिये हुए संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण से इस काल की प्रमुख आलंकारिक प्रवृत्तियों का सामान्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अलंकार संबंधी विस्तृत विवरण के लिए आगे प्रत्येक कवि की अलंकार संबंधी विशेषताओं और उनके द्वारा प्रयुक्त प्रमुख अलंकारों का संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है जिससे प्रस्तुत विषय का सविस्तर परिचय पाठकों को प्राप्त हो जाय।

केशव

आलोच्यकालीन प्रत्येक कवि के अलंकार-प्रयोग पर विचार करने की दृष्टि से हिंदी के प्रथम आचार्य केशव सर्व प्रथम हमारे सामने आते हैं।

अलंकार-प्रयोग करने में केशव चमत्कारवादी कवि हैं। उन्होंने इस सिद्धांत का निर्वाह अपने प्रायः सभी ग्रंथों में किया है। केशव ने वीरसिंहदेव-चरित्र में शब्दालंकार और सादृश्यमूलक

अलंकारों का बाहुल्य से प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में से अनुप्रास, यमक और श्लेष के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। ये अलंकार कोरे चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य के लिए प्रयुक्त हुए हैं। यह बात नीचे दिए हुए उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगी।

अनुप्रास—वीरसिंहदेव-चरित्र में अनुप्रास सब से अधिक प्रयुक्त शब्दालंकार है। इस ग्रंथ के प्रथम दो तीन प्रकाशों में लोभ और दान के संवाद में तो इसकी भरमार कर दी गई है। कोरे चमत्कार के लिए उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण वार्त्तालाप कराए गए हैं। कुछ ऐसे भी उदाहरण मिल जाते हैं जहाँ पर अनुप्रास के प्रयोग से काव्य के सौंदर्य की वृद्धि हुई है, यथा :—

"रोग भये भागे सब भोग, भोग भगे नहिं सुख संजोग।
सुख बिन दुख कर दिन उद्दोत, दुख तैं कैसे मंगल होत॥"[1]

अधिकांश स्थलों पर केशव ने चमत्कार-प्रियता के वशीभूत होकर, अनुप्रास की झोंक में आकर और प्रसंग का ध्यान न रखते हुए पद्य लिख डाले हैं। यहाँ पर केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

"केसौ राह अब्बुलफजलि मार्‌यौ वीरसिंह साहि के महल जहँ तहँ उठि धाई है।
पीरी पीरी पातरी निपट पट पातरेई कटितट छीन उर लट लटकाई है॥
भ्रकुटी सों व झुकी सी, झझके से लोचनि उझके से उरजनि उर छवि छाई है।
खानजादी खान डारि, पान डारि सेखजादी साहिजादी पान डारि पीटनै कौं आई हैं॥"[2]

शुद्ध अलंकार की दृष्टि से उक्त उदाहरण उत्तम है पर अबुलफ़ज़ल् की मृत्यु के उपरान्त शोक से पीड़ित रमणियों के संबंध में ऐसी उक्ति कवि की अलंकार-प्रियता की ही द्योतक है।

यमक—अनुप्रास के उपरान्त यमक शब्दालंकार का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। इसका केवल एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा :—

"राजा वीरसिंह जू को बंधु हरीसिंह देउ।
हरीसिंह की दुहाई हरिसिंह कैसो जायो है॥"[3]

श्लेष—केशव ने उक्त ग्रंथ में इस शब्दालंकार का प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया है। सूर्य के वर्णन के प्रसंग में श्लेष का यह उदाहरण विचारणीय है :—

"जहीं वारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहाँ कर्‌यौ भगवंत बिन संपति सोभा साज।"[4]

इस ग्रंथ में सादृश्यमूलक अलंकारों में से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रम, संदेह और अतिशयोक्ति का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में हुआ है :—

उपमा—उपमा केशव का अधिक प्रिय अलंकार है। अबुलफ़ज़ल की मृत्यु के समाचार को पाकर शोक-पीड़ित अकबर की दशा का वर्णन करते समय उपमा का अच्छा उदाहरण बन पड़ा है :—

---

[1] वीरसिंहदेव-चरित, प्रकाश ७, छं० ५७, पृ० ४८ [2]वही, पृ० ६, छं० ४, ३६
[3]वही, प्र० वही, छं० ४१, पृ० ४२ [4] वही, प्र० ११, छं० २६, पृ० ६६

"अति निःशब्द भयौ दरबार, पवन हीन ज्यौं सिंधु अपार।
घरी चारि में आई सुद्धि, तब उठि बैठ्यौ साहि सुबुद्धि ॥"[१]

विद्रोही खुसरो का पीछा करते हुए जहाँगीर का वर्णन करते समय केशव ने उपमान के प्रयोग का समुचित ध्यान नहीं रक्खा है, यथा :—

"पीछे लग्यौ साहि सिरताज, ज्यौं सुवास पीछे अलिराज ॥"[२]

खुसरो विद्रोही था और जहाँगीर शत्रु-भाव से प्रेरित होकर उसका पीछा कर रहा था। अतएव अलिराज से उसकी तुलना करने में कवि ने प्रचलित उपमान परंपरा का दुरुपयोग किया है :—

वर्षा-वर्णन में उपमा के कतिपय सुंदर उदाहरण इनके द्वारा बन पड़े हैं।[3]

रूपक—केशव ने उत्प्रेक्षा-गर्भित रूपक का बड़ी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। युद्ध-वर्णन में वर्षा के उपकरणों की कल्पना का यह सुंदर उदाहरण देखिए :—

"धुंध धूरि धुरवा से गनौ, बाजत दुंदुभि गर्जत मनौ।
जहाँ-तहाँ तरवारैं कढ़ी, तिनकी दुति जनु दामिनि बढ़ी ॥
तुपक तीर ध्रुव धारापात, भीत भये रिपुदल भट व्रात।
श्रोनित जल पैरत तिहिं खेत, कूरभ कुल सब दलहि समेत ॥"[४]

युद्ध के अवसर पर सेना के प्रयाण तथा युद्ध आदि का वर्णन करने में बरात का सुंदर रूपक बाँधा गया है।[५]

शरद्-ऋतु-वर्णन में नायिका की कल्पना करके रूप और नखशिख-वर्णन करने में सुंदर रूपक केशव से बन पड़ा है।[६] केशव ने कहीं-कहीं पर अलंकार-प्रियता के कारण उपमा देते समय उपमान का उचित ध्यान नहीं रक्खा है, उदाहरणार्थ रूपक का यह छंद देखिए :—

"दिनकर बानर अरुन मुख चढ्यौ गगन तरु धाय।
केसव, तारा कुसुम बिनु कीनौं झुकि झहराय ॥"[७]

उक्त छंद में सूर्य की उपमा अरुन मुखवाले बानर से देना असंगत है।

उत्प्रेक्षा—यह अलंकार केशव को सब से अधिक प्रिय है। आलोच्य ग्रंथ में उत्प्रेक्षा का सब से अधिक प्रयोग हुआ है। वस्तु-वर्णन,[८] हाथी-वर्णन,[९] आगरा-वर्णन,[१०] तथा वर्षा[११] आदि के वर्णन में कवि ने उत्तम-उत्तम उत्प्रेक्षाएँ प्रयुक्य की हैं। उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी इस अलंकार के सुंदर उदाहरण मिलते हैं। वीरसिंह की बलध्वजा का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

---

[१] वीरसिंहदेव-चरित्र, प्र० ६, छं० ७, पृ० ३८ [२] वही, प्र० १०, छं० १४, प्र० ६३ [3] वही, पृ० ११, छं० १-१४, पृ० ६७ [४] वही, प्र० ८, पृ० ५३ [५] वही, प्र० ८, छं० ६-३५, पृ० ५०-५२ [६] वही, प्र० ११, छं० १६-२०, पृ० ६८ [७] वही, प्र० ११, छं० २६, पृ० ६६ [८] वही, प्र० ४, छं० १८, पृ० २५; छं० ६३, पृ० ६१ [९] वही, प्र० ५, छं० ३४-४०, पृ० ३१ [१०] वही, प्र० ६, छं० २२, पृ० ५७ [११] वही, प्र० ११, छं० १-१३, पृ० ६७

"वीरसिंह की बल-ध्वजा धूरिनि में सुख देति।
जुद्ध जुरन कौं मनहु प्रति जोधनि बोले लेति॥"[1]

वीरसिंह के डंके के बजने पर उत्प्रेक्षा का एक सुंदर उदाहरण देखिए :—

"काँपन लागी भूमि भय भागि गयो जनु भानु।
बाजि उठ्यौ दिसि वाम तै वीरसिंह नीसानु॥"[2]

केशव ने अधिकांश स्थलों पर उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है, जिससे कवि की कोरी अलंकार-प्रियता ही टपकती है।[3]

भ्रमालंकार—इस अलंकार का कवि ने बहुत कम प्रयोग किया है। प्रासंगिक रूप से एक उदाहरण पर्याप्त होगा। युद्ध के उपरांत रणक्षेत्र का वर्णन करते हुए कवि का कथन है :—

"चंद्र जानि वासर चहुँ ओर, चुंचनि चुनत अँगार चकोर।"[4]

संदेह—केशव ने राव-भूपाल की तलवार का वर्णन उपमा से पुष्ट संदेह अलंकार द्वारा एक अत्यंत सुंदर छंद में किया है।[5]

अतिशयोक्ति—केशव ने अतिशयोक्ति का कम प्रयोग किया है। युद्ध-वर्णन में अन्य अलंकारों के साथ इसके भी यत्र-तत्र उदाहरण मिल जाते हैं, पर बहुत कम। संदेह अलंकार के ऊपर दिए हुए उदाहरण में भी तलवार के वर्णन में अतिशयोक्ति की सहायता ली गई है।

विरोधाभास—विरोधमूलक अलंकार में से केवल विरोधाभास के कतिपय उदाहरण इस ग्रंथ में मिलते हैं। नर्मदा का वर्णन करते हुए केशव कहते हैं :—

"जद्दपि निपट कुटिलगति आप, देति सुद्धगति हति अति पाप।
आपुन अधो अधोगति चलै, पतितनि कौ ऊरध फल फलै॥"[6]

केशव द्वारा 'वीरसिंहदेव-चरित्र' में प्रयुक्त अलंकारों के संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रंथ की रचना करते समय भी अलंकार के आचार्य बनने की उन्हें धुनि थी। अतएव उन्होंने कुछ चुने हुए शब्दालंकारों और सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रयोग में ही अपनी रुचि विशेष प्रकार से लगाई है। कहीं-कहीं पर अलंकार-प्रयोग के कारण उनके काव्य में शैथिल्य भी आ गया है। पर कतिपय अलंकारों की बड़ी सुंदर उक्तियाँ भी उनसे बन पड़ी हैं। साथ ही हमें यह भी मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है, कि उनके इस ग्रंथ के अलंकारों में वह प्रौढ़ता, क्लिष्टता, उक्ति-वैचित्र्य तथा दोषों की भरमार नहीं हैं, जो उनके अन्य ग्रंथों में हैं। अलंकार की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यंत साधारण कोटि का है।

जटमल

अलंकार-प्रयोग की दृष्टि से इनके ग्रंथ का अत्यन्त साधारण स्थान है। जटमल की भावना

---

[1] वीरसिंहदेव-चरित, प्र० १२, छं० २८, प्र० ७४ [2] वही, प्र० वही, छं० ३६, प्र० ७५ [3] वही, प्र० १४, छं० १३, प्र० ८२ [4] वही, प्र० ८, छं० ४८, प्र० ५४ [5] देखिए अध्याय ४, केशव कृत वीरसिंह देव-चरितांतर्गत वीररस का द्वितीय उदाहरण पृ० ७८-९ [6] वीरसिंहदेव चरित, प्र० १, छं० ६, पृ० २

आचार्यत्व प्रदर्शित करने की नहीं थी। ग्रंथ लिखते समय अनायास ही जो अलंकार आ गए हैं उन्हीं के उदाहरण उनकी रचना में मिल जाते हैं।

अनुप्रास—शब्दालंकारों में से अनुप्रास का कवि बहुत प्रेमी था। गोराबादल की कथा में इस अलंकार के सबसे अधिक उदाहरण मिलते हैं। उन्होंने नायक-नायिकाओं के रूप वर्णन[1] तथा युद्ध-वर्णन[2] में अनुप्रास का प्रयोग करके चमत्कार का समावेश करने के साथ ही साथ काव्य को सौंदर्य प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। "स्त्री-जात-वर्णन" में से एक पद्य देखिए :—

"पदमिनी पदमगंधा च, पुहुपपगंधा च चित्रनी।
हस्तिनी मदगंधा च, मच्छगंधा च संखिनी।"[3]

रूपकातिशयोक्ति—अर्थालंकारों में से रूपकातिशयोक्ति इनके द्वारा सबसे अधिक प्रयुक्त अलंकार है। इसके उदाहरण "स्त्री-जात-वर्णन" के पद्यों में देखे जा सकते हैं।[4]

अतिशयोक्ति—अतिशयोक्ति के प्रयोग में इस कवि ने ऊहात्मक उड़ान से काम लिया है। यहां पर एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा :—

"लाख लहै ढोलियो, सवा लाख लहै दुलाई।
अरध लाख गिंडुवो, लाख त्रय अंक लगाई॥
केसर अगर कपूर, सेज परमल सूँ भीनी।
ता ऊपर पदमिनी, रमै रस रूप नवीनी॥
अलावदीन सुलताण सुणि, पदमगंध पदमावती।
चंद-बदन चंपक-वरन, रतनसेन मन भावती॥"[5]

उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अन्य अर्थालंकार हैं, जिनके एक आध उदाहरण प्रयत्न करने पर इस ग्रंथ में खोजे जा सकते हैं।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है अलंकार प्रयोग को कवि ने विशेष महत्त्व नहीं दिया है। इस दृष्टि से 'गोराबादल की कथा' एक अत्यन्त साधारण कृति है।

मतिराम

भूषण के समान मतिराम ने भी 'ललितललाम' में अलंकारों के लक्षण और उदाहरण का विवेचन किया है। उन्होंने अपने उक्त ग्रंथ में अधिकांश उदाहरण बूँदी-नरेश भाऊसिंह के संबंध में कहे हैं। मतिराम ने 'ललितललाम' में शब्दालंकारों का वर्णन नहीं किया है। उसमें केवल अर्थालंकारों के लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं। रसवदादि अलंकारों का भी इसमें वर्णन नहीं हुआ है।

मतिराम के लक्षण और उदाहरण प्रायः निर्दोष और स्पष्ट हैं, पर निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण विशेष प्रकार से मनोहर एवं सुंदर बन पड़े हैं :—

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक, दृष्टांत, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति और यथासंख्य।

---

[1] गोराबादल की कथा, छं० ४६-५५, पृ० १२-४ [2] वही, छं० १३४-७, पृ० ३०-२ [3] वही, छं० ४६, पृ० १२, [4] वही, छं० ४२-४, पृ० ११-२; छं० ६३ पृ० १५-६ [5] वही, छं० ८१, पृ० २०।

इन अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों के उदाहरण भी उत्तम दिए गए हैं,[1] पर वीर विषय से संबंधित न होने के कारण उनके नाम यहाँ पर नहीं दिए जा रहे हैं।

मतिराम रीतिकालीन अन्य कवियों की अपेक्षा अलंकार-वर्णन में अधिक सफल हुए हैं। उन्हें उत्तम आचार्य मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

मतिराम कृत ललितललाम के प्रमुख अलंकारों की सूची

यहाँ पर ललितललाम के केवल उन्हीं अलंकारों की सूची दी जा रही है, जिनके उदाहरणों के लिए कवि ने अपने आश्रयदाता के गुणगान को आधार माना है। शेष अलंकार आलोच्य-धारा की सीमा से बाहर होने के कारण इस स्थान पर नहीं दिए गए हैं।

क्रम संख्या	अलंकार	उदाहरण पद्य संख्या[2]	पृष्ठ[1]
१.	उपमा	४१	३६८
२.	लुप्तोपमा	४७	३६९-३७०
३.	मालोपमा	४९	३७०
४.	रसनोपमा	५२	३७०-३७१
५.	अनन्वय	५४	३७१
६.	उपमेयोपमा	५६	३७१-३७२
७.	प्रतीप	५८	३७२
८.	द्वितीय प्रतीप	६०	३७२-३७३
९.	चतुर्थ-प्रतीप	६४	३७३
१०.	पंचम-प्रतीप	६६	३७४
११.	रूपक-समोक्ति अभिन्न रूपक	६९	३७५
१२.	हीनोक्ति-अभिन्न रूपक	७०	३७५
१३.	अधिकोतित-अभिन्न रूपक	७१	३७५
१४.	समोक्ति-तद्रूप-रूपक	७२	३७६
१५.	अधिकोक्ति तद्रूप रूपक	७४	३७६
१६.	परिणाम	७७	३७७
१७.	उल्लेख-प्रथमोदाहरण	७८	३७७
१८.	द्वितीयोदाहरण	७९	३७७-३७८
१९.	भ्रांत्यापह्नुति	९४	३८०
२०.	छेकापह्नुति	९७	३८१
२१.	उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा	१०३	३८२

[1] विश्वनाथप्रसाद मिश्र; भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० २६-७; कृष्ण बिहारी मिश्र; मतिराम-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ४९-७२ [2] कृष्ण-बिहारी मिश्र कृत मतिराम-ग्रंथावली में सम्मिलित ललितललाम के क्रम के अनुसार पद्यों और पृष्ठों की संख्या दी गई हैं।

क्रम संख्या	अलंकार	उदाहरण	पृष्ठ
२२.	सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा	१०५	३८३
२३.	असिद्ध विषया फलोत्प्रेक्षा	१०८	३८४
२४.	(द्विविध) संबंधातिशयोक्ति	११६-१२०	३८५-३८६
२५.	द्वितीय संबंधातिशयोक्ति	१२२	३८७
२६.	अत्यन्तातिशयोक्ति	१२६	३८८-३८६
		पद्य संख्या	
२७.	प्रथम तुल्ययोगिता (अवर्ण्य)	१३१	३८६
२८.	दीपकावृत्ति (शब्दावृत्ति)	१३८	३६०
२६.	शब्दार्थवृत्ति	१४०	३६१
३०.	प्रतिवस्तूपमा	१४३	३६२
३१.	दृष्टांत	१४७	३६२
३२.	प्रथम निदर्शना	१४६	३६३
३३.	द्वितीय निदर्शना	१५१	३६३
३४.	व्यतिरेक	१५६	३६४
३५.	सहोक्ति	१५८	३६४
३६.	परिकर	१६५	३६६
३७.	श्लेष (प्रकृतापकृत)	१७१ १७२	३६७
३८.	प्रथम पर्यायोक्ति	१७८	३६८
३६.	विरोधाभास	१६५	४०१
४०.	प्रथम असंगति	२१५	४०५
४१.	विचित्र	२३५	४०८-४०६
४२.	द्वितीय अधिक	२३६	४०६-४१०
४३.	द्वितीय विशेष	२४८	४११
४४.	तृतीय विशेष	२५०	४१२
४५.	प्रथम हेतुमाला	२५६	४१३
४६.	एकावली	२६०	४१४
४७.	मालादीपक	२६२	४१४-४१५
४८.	सार	२६५	४१५
४६.	यथासंख्य	२६६	४१५
५०.	परिवृत्ति	२७२	४१६-४१७
५१.	परिसंख्या	२७४	४१७
५२.	द्वितीय प्रहर्षण	३०६	४२३
५३.	रत्नावली	३३०	४२७
५४.	द्विविध उदात्त	३७८	४३६-४३७

भूषण ने दो नवीन अलंकार 'सामान्य-विशेष' और 'भाविक-छवि' माने हैं, पर ये दोनों ही क्रमशः विशेष निबंधना और भाविक के अंतर्गत आ जाते हैं।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के पश्चात् यही मानना पड़ता है कि रीतिकार के रूप में भूषण को आशातीत सफलता प्राप्त न हो सकी। रीति-ग्रंथ की दृष्टि से 'शिवराज-भूषण' साधारण श्रेणी की कृति है। सच बात तो यह है कि रीति-ग्रंथ-लेखन-प्रणाली ने इस ग्रंथ में भूषण की कविता का स्वतंत्र विकास नहीं होने दिया है। संभवतः भूषण को अलंकारों का अभ्यास बहुत कम था। यह भी संभव है कि रीति-ग्रंथ के बंधन में न पड़कर भूषण ने शिवाजी के यशोगान करने के लिए रीति-ग्रंथ-परंपरा को साधन मानकर अपने उद्देश्य की पूर्ति की हो। अन्य कवियों के समान उनकी दृष्टि कविता की ओर अधिक टिकी थी। यही कारण है कि 'शिवराज-भूषण' के अधिकांश पद्यों में अलंकारों के अत्यंत उत्कृष्ट प्रयोग के साथ कवित्व के सुंदर दर्शन होते हैं। जहाँ इन्हें कोई बंधन न था वहाँ इन्होंने स्वाभाविक रूप से अत्यंत उत्तम अलंकार-योजना की है।[१]

इनके द्वारा रचित 'शिवाबावनी', 'छत्रसाल-दशक' और फुटकर पद्यों में कवित्व के साथ अलंकारों के सफल प्रयोग हुए हैं। इन ग्रंथों में प्रयुक्त अलंकारों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। पर निम्नलिखित अलंकारों का प्रचुर मात्रा में भूषण ने प्रयोग किया है :—

(क) शब्दालंकारों में से अनुप्रास और यमक का अधिकता से प्रयोग हुआ है।

(ख) अर्थालंकारों में से सादृश्यमूलक अलंकार-उपमा, मालोपमा, प्रतिवस्तूपमा, रूपक, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, अप्रस्तुत-प्रशंसा, तुल्ययोगिता आदि को कवि ने विशिष्ट रूप से अपनाया है।

(ग) विरोध-मूलक अलंकारों में से विरोधाभास, विषम, विशेषोक्ति आदि का प्रयोग किया गया है।

(घ) न्यायमूलक अलंकारों में से परिसंख्या, अनुमान, पर्याय और और काव्यलिंग प्रयुक्त हुए हैं।

(ङ) लोक व्यवहारमूलक अलंकारों में से लोकोक्ति तथा अत्युक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

अन्य अलंकारों का भी सफल प्रयोग हुआ है। इन्होंने अधिकांश पद्यों में कई अलंकारों का प्रयोग बड़े कौशल से किया है, उदाहरणार्थ, छत्रसाल की तलवार की प्रशंसा करते हुए उसने एक ही छंद में रूपक, उपमा, उदाहरण, काकुवक्रोक्ति, यमक और अनुप्रास का प्रयोग इतने चातुर्य से किया है कि काव्य की सरसता बढ़ गई है।[२]

'शिवाबावनी' के कुछ पद्यों में वृत्यानुप्रास के प्रयोग द्वारा शिवाजी के आतंक का सुंदर वर्णन हुआ है।[3] यमक के प्रयोग के लिए 'शिवाबावनी' के ये छंद देखे जा सकते हैं।[४]

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यह कवि रीतिकार के रूप में प्रायः असफल रहा है। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि उनका उद्देश्य शिवा जी एवं छत्रसाल

---

[१] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ८९-६८; राजनारायण शर्मा, देवचंद्र विशारद : भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ६९-७२ [२] भूषण-ग्रंथावली, छं० ७, पृ० ६१ [३] वही, शिवाबावनी, छं० २७, ४४, ४८ [४] वही, वही, छं० २६-८, ३७।

की गौरव-गाथा-गान करना था। समय के प्रवाह में बहकर अलंकार-विवेचन को साधन-मात्र मानकर शिवा-गुण-गान को उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया था और इसमें इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इनके ग्रंथों में अलंकार-प्रयोग के निर्दोष सफल उदाहरण प्रचुर-मात्रा में मिलते हैं। अतएव इन्हें चाहे आचार्यत्व की पदवी न प्रदान की जाये, पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से इनका अपना निजी स्थान है।

(ब) 'शिवराज-भूषण' के अलंकारों की सूची

भूषण ने 'शिवराज-भूषण' में क्रमशः (अ) अर्थालंकार, (आ) शब्दालंकार तथ (ई) उभयालंकार का विवेचन किया है। इसी क्रम से यह सूची रक्खी गई है। उन्होंने कतिपय अलंकारों केभेदों को भी वास्तविक अलंकार के समान माना है। इसी क्रम से संख्या-क्रम भी रक्खा गया है :—

(अ) अर्थालंकार

१. उपमा, लुप्तोपमा, २. अनन्वय, ३. प्रथम प्रतीप, द्वितीय प्रतीप, तृतीत प्रतीप, चतुर्थ प्रतीप, पंचम प्रतीप, ४. उपमेयोपमा, ५. मालोपमा, ६. ललितोपमा, ७. रूपक, रूपक के अन्य दो भेद (न्यूनाधिक), ८. परिणाम, ९. उल्लेख, १०. स्मृति, ११. भ्रम, १२. संदेह, १३. शुद्धापह्नुति, १४. हेत्वापह्नुति, १५. पर्य्यस्तपह्नुति, १६ भ्रांत्यापह्नुति, १७. छेकापह्नुति, १८. कैतवापह्नुति, १९.उत्प्रेक्षा, वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, गम्योत्प्रेक्षा, २०.रूपकातिशयोक्ति, २१.भेदकातिशयोक्ति, २२. आक्रमातिशयोक्ति, २३, चंचलातिशयोक्ति, २४. अत्यंतातिशयोक्ति, २५.सामान्य-विशेष, २६. प्रथम तुल्योगिता, द्वितीय तुल्योगिता, २७. दीपक, दीपकावृत्ति, २८. प्रतिवस्तूपमा, २९. दृष्टान्त, ३०. प्रथम निदर्शना, द्वितीय निदर्शना, ३१. व्यतिरेक, ३२. सहोक्ति, ३३. विनोक्ति, ३४. समासोक्ति, ३५. परिकर, ३६. परिकरांकुर, ३७. श्लेष, ३८.अप्रस्तुत प्रशंसा, ३९. पर्यायोक्ति-प्रथम, द्वितीय, ४०. व्याजस्तुति, ४१, आक्षेप-प्रथम, द्वितीय, ४२. विरोध, ४३. विरोधाभास, ४४. विभावना-प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, ४५. विशेषोक्ति, ४६. असम्भव, ४७. असंगति-प्रथम, द्वितीय, तृतीय, ४८. विषम, ४९. सम, ५०. विचित्र, ५१. प्रहर्षण, ५२. विषादन, ५३. अधिक, ५४. अन्योन्य, ५५. विशेष, प्रथम, द्वितीय, ५६. व्याघात, ५७. गुंफ, ५८. एकावली, ५९. मालादीपक, ६०. सार, ६१. यथासंख्य, ६२. पर्याय, ६३. परिवृत्ति, ६४. परिसंख्या, ६५. विकल्प, ६६. समाधि, ६७.समुच्चय, प्रथम, द्वितीय, ६८. प्रत्यनीक, ६९. अर्थापत्ति, ७०. काव्यलिंग, ७१. अर्थान्तर-न्यास, समान्य-भेद, विशेष-भेद, ७२. प्रौढ़ोक्ति, ७३. संभावना, ७४. मिथ्याध्यवसिति, ७५. उल्लास, गुणेनदोपो, दोषेन गुणो, गुणेन गुणो, दोषेन दोषो, ७६. अवज्ञा, ७७. अनुज्ञा, ७८. लेश, ७९. तद्गुण, ८०. पूर्व रूप, ८१. अतद्गुण, ८२. अनुगुण, ८३. मीलित, ८४. उन्मीलित, ८५. सामान्य, ८६. विशेषक, ८७ पिहित, ८८. प्रश्नोत्तर, ८९. व्याजोक्ति, ९०. लोकोक्ति, ९१. छेकोक्ति, ९२. वक्रोक्ति, श्लेष से वक्रोक्ति, काकु से वक्रोक्ति, ९३. स्वभावोक्ति, ९४. भाविक, ९५. भाविक छबि, ९६. उदात्त, ९७. अत्युक्ति, ९८. निरुक्ति, ९९. हेतु, १००. अनुमान।

(आ) शब्दालंकार

१०१. अनुप्रास-छेक, लाट, १०२. यमक, १०३. पुनरुक्तिवदाभास, १०४. चित्र,

(इ) उभयालंकार

१०५. संकर।

मान

मान कवि का अन्य कवियों के समान ही अलंकार प्रयोग की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इन्होंने भी इस धारा की प्रचलित शैली का अनुकरण किया है। गिने गिनाए प्रचलित अलंकारों की ही इनके ग्रंथ में भरमार है। इनके द्वारा प्रयुक्त प्रसिद्ध अलंकारों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

अनुप्रास—शब्दालंकारों में अनुप्रास का मान ने सबसे अधिक प्रयोग किया है। सेना के प्रस्थान करते समय अनुप्रास की सहायता से कवि ने एक चित्र उपस्थित कर दिया है :—

"सलसलत सेस कलमलत कच्छ, झलझलत उदधि रलरलत मच्छ।
षरभरत चित्त षल दल अधीर, चलचलत चक्र चहुँ डुलत नीर" ॥[१]

राजकुमारी रूपकुँवरि के नखशिख-वर्णन में भी अनुप्रास की सुंदर छटा आंखों के सामने अंकित हो जाती है। एक उदाहरण देखिए :—

" कलकंठ सुरसना कुहकें, मुख स्वास कुसुम वर महकें।
चित्त चुभी चिबुक चतुराई, ससि पूरन बदन सुहाई ॥"[२]

उपमा—मान द्वारा उपमा अलंकार का भी सफलतापूर्वक सुंदर प्रयोग किया गया है। यथा :—

" ता पाछैं कमधज्ज नैं, बंदिय तोरन वार।
उभयराज वर इंद्र ज्यौं, बरसैं कंचन धार ॥"[३]

उत्प्रेक्षा—मान ने इस अलंकार का अन्य अर्थालङ्कारों की अपेक्षा अधिक प्रयोग किया है। इसके प्रयोग में इन्हें सफलता भी पूर्णरूप से मिली है। एक उदाहरण देखिए :—

" सूर चंद सुर साखि सब, बर गँठ जोरा बन्धि।
बँधी मनु हित गंठि दृढ़, दम्पति उभय संबंधि ॥"[४]

रूपक—रूपकालंकार का मान ने बड़े चातुर्य एवं कौशल से प्रयोग किया है। यथा :—

"महिथल सुरग उपजे ममोल, अति अरुन अंग कोमल अमोल।
बगपंति श्याम बद्दल विहार, हिय मध्य पहरि मनु मुत्ति हार ॥"[५]

अतिशयोक्ति—इस अलङ्कारों का प्रयोग वैभव, युद्ध आदि वर्णन के प्रसंग में हुआ है। राणा राजसिंह की गर्वोक्ति में से एक छंद उदाहरणस्वरूप नीचे दिया जा रहा है :—

"उज्जरि करि अग्गरो ढाहि ढिल्ली ढंढोरों।
लाहोरिय धर लुट्टि तटकि तुरकानी तोरों ॥
पनि नंषो षधार बेगि खुरसान बिहंडों।
परजारों पट्टनहि देश भक्खर सब दंडों ॥
सुबिहान साहि ओरंग को गज समेत जीवत गहों।
हौं राजराण तो हिंदुपति कहा अधिक तुम सो कहौं ॥"[६]

---

[१] मान, राजविसाल, वि० ३, छं० ३६, पृ० ६६ [२] वही, वि० ६, छं० ११, पृ० १०४ [३] वही, वि० ३, छं० ६८, पृ० ७७ [४] वही, वि० ७, छं० ७३, पृ० ११२ [५] वही, वि० १, छं० ४९, पृ० ६ [६] वही, वि० ६, छं० १६७, पृ० १८१-२

ऊपर दिये हुए कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट है कि भान ने केवल उन्हीं अलङ्कारों का प्रयोग किया है जो वर्ण्य-विषय की सजीवता एवं भावव्यंजना को बढ़ाने में सहायक हुए हैं। अलङ्कार-पद-योजना में इस कवि ने अन्य कवियों की अपेक्षा स्वाभाविकता का अधिक ध्यान रखने का प्रयत्न किया है और इसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है।

गोरेलाल

गोरेलाल ने अलंकार-प्रयोग में अधिक संयम से काम लिया है। उनके संपूर्ण ग्रंथ के अवलोकन से विदित होता है कि अलंकारों के पीछे पड़ने की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। काव्य को स्वाभाविक प्रगति से प्रवाहित होना चाहिए, यह उनका मत था। काव्य के चरित्र-नायक के कार्य-कलापों का वर्णन करते समय प्रासंगिक रूप से जो कुछ अलंकार आ गए हैं, उनसे काव्य के सौंदर्य का पर्याप्त मात्रा में विकास हुआ है।

अनुप्रास—गोरेलाल कोरे शाब्दिक चमत्कार के पक्षपाती नहीं थे। यही कारण है कि शब्दालंकारों का 'छत्रप्रकाश' में सर्वथा अभाव है। केवल अनुप्रास के एक दो उदाहरण मिल जाते हैं। युद्ध में संलग्न सारवाहन के वर्णन में निम्न उक्ति विचारणीय है :—

"कुँवर सारवाहन बल बाढ़े, तमकि तीर तरकस तैं काढ़े।"[1]

अर्थालंकारों में से निम्नलिखित अलंकारों के विशेष प्रयोग मिलते हैं :—

उपमा—युद्ध के वर्णन में गोरेलाल ने सुंदर उपमाएँ दी हैं, जैसे :—

"तीछन तीर बज्ज से छूटे, बखतरपोस पैान से फूटे।"[2]

तथा

"खाइ-खाइ गोलिन की चोटैं, रन-मंडल लोटन से लेटैं।"[3]

छत्रसाल के विवाह के समय के रूप का वर्णन करते हुए उपमा की यह सुंदर उक्ति कवि ने कही है :—

"तहँ बिधि सौ आगौनी कीनी, बाँध्यौ मौर इन्द्र छबि लीनी।"[4]

रूपक—इस अलंकार का प्रयोग युद्ध-वर्णन के लिए हुआ है। युद्ध-वर्णन में आखेट का रूपक बाँधता हुआ कवि कहता है :—

"मियाँ दुरद भुमिया हरिन, कानन मुलक बिसाल।
कढ़ि सिकार खेलन लग्यौ, समरसिंह छत्रसाल॥"[5]

सागर मथने के रूपक की सहायता से युद्ध-वर्णन की यह उक्ति विचारणीय है :—

"मथ्यौ मध्य रन पैठि कै, मच्यौ चहूँ दिस चाल।
अफगन सैन समुद भौ, मंदर भौ छत्रसाल॥"[6]

उत्प्रेक्षा—युद्ध-वर्णन में वर्षा की कल्पना द्वारा उत्प्रेक्षा का सुंदर प्रयोग हुआ है :—

"जो खग्गन खेलत उत काढ़ी, बेलैं जनु बिजुरन की बाढ़ी।
टोपन टूटि उटैं असि सच्छी, दह में मनो उछल्लै मच्छी॥"[7]

---

[1] छत्रप्रकाश, अध्याय, ३ पृ० २० [2] वही, अ० ४, पृ० २६ [3] वही, अ० २१, पृ० १३६ [4] वही, अ० १६, पृ० १०८ [5] वही, अ० १७, पृ० ११५ [6] वही, अ० २३, पृ० १५६ [7] वही, अ० २०, पृ० १३४-५

वीर छत्रसाल के भतीजे जगतसिंह का वर्णन करते हुए गोरेलाल की यह उक्ति दर्शनीय है :—

"छत्रसाल कौ सुभट भतीजौ, मानहु नैन रुद्र कौ तीजौ।"[१]

छत्रसाल के रूप का वर्णन करते हुए कवि ने अत्यंत उत्तम उत्प्रेक्षाएँ में प्रयुक्त की हैं, यथा :—

"घूँघरवारी घनी लटूरी। देती आनन कौ छवि पूरी॥
मनौ भ्रमर की पाँति सुहाई। अमृत पियन उड़पति पैं आई॥
ऊँच्यौ भाल बिसाल बिराजै। कनक पट्ट कैसी छबि छाजै॥
लसतु अष्टमी चंद किधौं है। बखत भूप कौ तखत मनौ है॥
नैन बिसाल असित सित राते। कमलदलन पर अलि जनु माते॥
भुजा विसाल जानु लौ आये। भुवभर मानहुँ लेत उठाये॥"[२]

श्रीकृष्ण भगवान् के रूप-लावण्य के कथन में कवि ने एक सुंदर उत्प्रेक्षा का प्रयोग किया है :—

"सुभग स्याम तन मुकुट अति, पीतबसन छबि देत।
जनु घन उभयौ है मनौ, उड़गन तड़ित समेत।"[३]

अतिशयोक्ति—युद्ध के वर्णन में कवि ने अतिशयोक्ति अलंकार की सहायता से कार्य लिया है। निम्नलिखित उक्ति में कल्पना की ऊहात्मक उड़ान है :—

"दौर अनौर कोस दस आवै। धुआँ कोस चालिस लौं आवै।"[४]

कुछ उक्तियों में "भानु का रथ रोक कर युद्ध देखना" इस उपमान की सहायता से इस अलंकार का प्रयोग किया गया है, यथा :—

"लरैं हाँक हिंदू तुरक, झर्‌यौ सार सौं सार।
भये भानु रथ रोक कै, कौतुक देखनहार।"[५]
"नाच्यौ समर बजाइ हर, मच्यौ घोर घमसान।
छके वीर रनरंग में, थके रोपि रथ भान।"[६]
"बिडरतु कटकु भान रथ रोपे, बिडर्‌यौ कटकु कुंवर के कोपे।"[७]

नीचे ऊहात्मक उड़ान से परिपूर्ण अतिशयोक्ति का एक उदाहरण दिया जाता है :—

"छत्रसाल जिहि दिसि पिलै, काढ़ि धोप कर माँहि।
तिहि दिस सीस गिरीस पै, बनत बटोरत नाँहि।"[८]

गूढ़ोक्ति अलंकार—इस रचना में गूढ़ार्थमूलक अलंकारों में से गूढ़ोक्ति अलंकार का एक उदाहरण मिलता है :—

"भुजा भतीजे की बल बाढ़ी खेल्यौ खेल चचा की डाढ़ी।"[९]

---

[१] छत्रप्रकाश, अ० २१, पृ० १३९ [२] वही, अ० ४, पृ० २३ [३] वही, अ० २४, पृ० १५८ [४] वही, अ० १७, पृ० ११९ [५] वही, अ० १८, पृ० १२६ [६] वही, अ० २०, पृ० १३५ [७] वही, अ० ३, पृ० २१ [८] वही, अ० २०, पृ० १३६ [९] वही, अ० २२, पृ० १४२

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त यह सार निकलता है कि गोरेलाल कृत "छत्रप्रकाश" में अलंकारों का प्रयोग अधिक, संयत और स्वाभाविक ढंग से हुआ है। कवि अलंकारों के भार से कविता-कामिनी को भाराक्रान्त करने का पक्षपाती नहीं रहा है। उसने प्रायः प्रचलित उपमानों का ही प्रयोग किया है, पर कहीं-कहीं कुछ उत्तम एवं अनूठे उपमानों की भी कल्पना की है। अन्य कवियों के समान बेसिर पैर की कल्पना का अतिशयोक्ति पूर्ण प्रयोग उसे इष्ट नहीं रहा है।

श्रीधर

अलङ्कार-प्रयोग की दृष्टि से 'जंगनामा' एक साधारण कोटि का ग्रंथ है। उसमें अलङ्कार का समावेश नहीं के बराबर हुआ है। श्रीधर ने इस रचना में साधारणतया अनुप्रास और यमक शब्दालङ्कारों तथा रूपक और उत्प्रेक्षा अर्थालङ्कारों का बार-बार प्रयोग किया है। कुछ स्थलों पर एक ही पद्य में उक्त अलङ्कारों में से दो तक के प्रयोग मिलते हैं।

अनुप्रास गर्भित यमक—नीचे की पंक्तियों में अनुप्रास और यमक का सुंदर प्रयोग हुआ है :—

"साढ़े तीन हाथ कद दस हथा हाथी चढ़्यो।
दोई हाथ होत हैं हजार हाथ जंग मैं।।"[1]

उत्प्रेक्षा—इस कवि का उत्प्रेक्षा अत्यंत प्रिय अलङ्कार है। उसने अधिकांश स्थलों पर उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते समय वर्षा के उपकरणों से उपमान लिए हैं। कुछ उदाहरण ये हैं :—

'तेहि बीच झुकि पर ओर तें तरवारि झम झम झम परी।
झर लगी तीरन की महा मनु लगी सावन की झरी।"[2]

× × ×

"चहुँ ओर फौजनि फौज सो मन मौज मारु महा परी।
हथियार भार दुधार भर मनु मघा मेघत की झरी।"[3]

× × ×

"गड़ादार घेरें सिरी कट्टबंटा। गजैं मेघ मानों बजें घोर घंटा।।"[4]

अनुप्रास गर्भित उत्प्रेक्षा—निम्नलिखित पंक्तियों में अनुप्रास मिश्रित उत्प्रेक्षा का सुंदर प्रयोग किया गया है :—

"अनुराग उपजत राग सुनि सुनि कबित रस के दोहरा।
मनु ढरे साँचे नवल नाचे नटा नट के छोहरा।।"[5]

रूपक—अन्य कवियों के समान युद्ध-वर्णन में वर्षा का रूपक श्रीधर द्वारा प्रयुक्त हुआ है। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :—

"बखतरपोस पखरैत फील स्वारन की,
कारी घटा भारी ज्यों पयोद प्रलै काल को।
श्रीधर भनत गोला बान सर झर भर,
बरखत थाँभैं को करैरी तरवाल को।।"[6]

---

[1] जंगनामा, पृ० ६२ [2] वही, पृ० ४ [3] वही, पृ० ४६ [4] वही, पृ० २३ [5] वही, पृ० २८ [6] वही, पृ० ६०-१

इसी प्रकार उक्त अलङ्कारों के और भी उदाहरण देखे जा सकते हैं।

सदानंद

सदानन्दकृत "रासा भगवन्तसिंह" नामक छोटी रचना में अलंकारों का प्रायः अभाव है। कवि ने अलंकार-योजना के प्रति विशेष अभिरुचि नहीं प्रदर्शित की है। उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अनुप्रास, भ्रम आदि परंपरागत अलंकारों के कतिपय उदाहरण यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं। उक्त अलंकारों के प्रयोग में कवि को साधारण सफलता मिली है, यह बात नीचे दिए हुए उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगी :—

उत्प्रेक्षाः—"छुट्यौ तोपखाना भयो रोर दूनौ।
कहाँ लौं कहौं जो मनो भार भूनौ॥
यही भाँति बीती निसा भो सबारा।
तबै कूच फौजानि बाजे नगारा॥"[1]

अतिशयोक्ति तथा अनुप्रास :—"कंप्यो लोक अवलोकि सोक भय जहँ तहँ बज्यौ।
लखि चरित्र बिधि-हरि-हर-हिय अनुराग उपज्यौ॥
प्रेरित गन चलि बेगि समर अवनी महँ आयौ।
कहि प्रसंग कर जोरि अमियमय वचन सुनायौ॥
अप्सरि सुचारु चहुँ दिसि चमर चारु ढरत आनंद भयो।
राजाधिराज भगवंत जू चढ़ि विमान सुरपुर गयो॥"[2]

भ्रम—सैन्य-प्रस्थान से धूल उड़ने से सूर्य के छिप जाने पर भ्रमालंकार की सदानंद ने एक सुंदर उक्ति कही है :—

"तब ही सर छाँडि मराल गये।
चकई चकवा बहु सोक लये॥
अति हर्ष उलूकन नेत्र खुले।
सकुचे जलजात कुमुंद फुले॥"[3]

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि कवि सदानन्द अलंकारों के पीछे पड़ने के पक्षपाती नहीं हैं। स्वाभाविक ढङ्ग से जो अलंकार आ गए हैं, उनका उसने स्वागत किया है। पर अलंकार प्रयोग की दृष्टि से उसे विशेष महत्त्व नहीं प्रदान किया जा सकता।

सूदन

सूदन ने अपने ग्रंथ में परंपरागत अलङ्कारों का ही प्रयोग किया है, पर उसने अपने काव्य चातुर्य से उनमें सरसता का समावेश कर दिया है। अलङ्कार अपनी स्वाभाविक गति से इनके काव्य में आते गये हैं। नीचे कुछ उदाहरणों द्वारा सूदन के अलङ्कारों के सौंदर्य को स्पष्ट करने की चेष्टा की जा रही है :—

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ५, १९८१ वि०, छं० २६, पृ० ११८-९
[2] वही, भा० वही, छं० १०३, पृ० १२१ [3] वही, भा० वही, छं० १५, पृ० ११६

अनुप्रास—शब्दालंकारों में से अनुप्रास इस कवि को अधिक प्रिय है। ग्रंथ के आरंभ में कवियों की नामावली[१] तथा दिल्ली की लूट में विविध सामग्री की सूची आदि के अवसर पर उसने अनुप्रास की झड़ी लगा दी है।[२] इस अलंकार की सहायता से कवि ने युद्ध का सजीव चित्र अंकित किया है।[३] अनुप्रास की सहायता से वर्णन में कितनी सजीवता आ गई है इसका एक उदाहरण देखिए :—

> **"फिर फेरि झटक्कैं पकरि पटक्कैं सांग सटक्कैं मारु कहैं।**
> **इक इक्क हटक्कैं देत दड़क्कैं सेल तटक्कैं औन बहैं॥**
> **बिन हथ्थ भटक्कैं भरत बटक्कैं मास गटक्कैं देखि रहैं।**
> **इक जात पटक्कैं खग्ग खटक्कैं सीस कटक्कैं दौर गहैं॥"[४]**

इस प्रकार अंग्रेज़ी के 'ऑनो-मोटो-पोइया' नामक अलंकार का उसके द्वारा सफल प्रयोग हो गया है, पर उससे कविता में कहीं-कहीं शिथिलता भी आ गई है।[५]

यमक—सूदन ने इस अलंकार का अपेक्षाकृत कम प्रयोग किया है। इसका केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

> **"काटे तनत्रान निज प्रानन-पयान हेतु।**
> **सूरज ने भेज्यौ बैठ्यौ सूरज के पास में॥"[६]**

उपमा—अर्थालंकारों में से उपमा सूदन को अधिक रुचिकर लगा है। सेना के प्रस्थान तथा युद्ध के वर्णन में कुछ स्थलों पर उन्होंने वर्षा के प्रचलित उपकरणों को ही उपमान रूप में ग्रहण किया है, यथा :—

> **"झरिय सार तिहिं पर अपार मुख मारु मारु रर।**
> **ज्यों पहार पर जलद धार बरसंत सांग सर॥"[७]**
>
> × × ×
>
> **"धद्धरा धद्धरी बद्दरा से गजैं।**
> **लेउ रे लेउ दात्यूर के कीरटा॥**
> **मास आसाढ़ की आपगा सी बढ़ी।**
> **सूर सैना धद्द तोरि दिल्ली तटा॥"[८]**

सूदन ने उपमा देने के लिए कुछ उपमान कृषि-संबंधी पदार्थों से भी लिए हैं जैसे :—

> **"प्रथम दिना पुरइन्द्र दिखायौ साथ कौं।**
> **ज्यौं किसान लहि सगुन करै कृषि हाथ कौं॥"[९]**
>
> × × ×

---

[१] सुजान-चरित्र, जंग १, अंक १, छं० ४-१०, पृ० २-३ [२] वही, जंग ६, अंक द्वितीय, छं० ३२-७, ४१-३, पृ० १७२-३, १७५ [३] वही, जंग वही, अं० ५, छं० १४-९, पृ० १६६-७ [४] वही, जंग २, छं० २, छं० १९, पृ० ३५ [५] वही, जं० प्र०, अं० च०, छं० २, पृ० २०-१; जं० पं०, अं० च०, छं० १४, पृ० १३६-७; जं० ष०, अं० ३, छं० ५, पृ० १८२; जं० वही, अं० वही, छं० ११, पृ० १८६ [६] वही, जं० प्र०, अं० च०, छं० १२, पृ० २६ [७] वही, छं० १०, पृ० ९६ [८] वही, छं० १२, पृ० १९२ [९] वही, छं० २९, पृ० १६२

"एक ओर तैं लूट मचाई, करत किसान खेत ज्यौं लाई।"[१]

कवि के द्वारा प्रयुक्त उपमा के कुछ अन्य उत्तम उपमान ये हैं :—

"तिनके मद्धि सिंह सुजान, नवग्रह जूह जैसे भान।"[२]

× × ×

"जग अंत को अँधियार सौ, रितु सीत को नीहार सौ।"[३]

× × ×

"उततैं राउ मलार जैपुर तें कूँचहि कियौ।
जैसे सलभ अपार उठै प्रजा संहार कौं॥"[४]

रूपक—सूदन ने रूपक अलंकार के अत्यंत सुंदर एवं सजीव चित्र उपस्थित किये हैं। युद्ध का वर्णन करते हुए तीर्थराज का मनोमुग्धकारी रूपक दर्शनीय है :—

"अनी दोऊ बनी घनी लोह कोह सनी धनी
धर्मंनु की मनी बान बीतत निषंग में।
हाथी हटि जात साथी संग न थिरात और
भारती में न्हात गंग कीरति तरंग में।
भानु की सुता सी कवि सूदन निकारी तेग
बाहत सराहत कराहत न अंग में।
वीर रस रंग में यौं आनन्द उमंग में सो
पगु पगु प्राग होत जोधन कों जंग में॥"[५]

युद्ध-भूमि का वर्णन करते हुए काल की वाटिका का कितना मनोरम उत्प्रेक्षा गर्भित रूपक उसने चित्रित किया है :—

"गेंदा से गुलफ़ू गुलमेहंदी से अंतभार
कुण्य कलित तास खोपरी सुभाल की।
नासा गुलवासा मुख सूरजमुखी से भुज
कलगी बधूक ओठ जीव दुति लाल की।
कोकनद कर ज्यौं करन गुल कोकन से
इंदीवर नैन बाल जाल अलि-माल की।
पानी किरवानी सौं हर्यानी कर सूरज के।
पर-भूमि फूली फुलवारी मानौं काल की॥"[६]

जिस प्रकार तुलसीदास ने कवितावली में हनुमान को 'होता' मानकर रूपक लिखा है उसी प्रकार सूदन ने सूरजमल को होता मानकर यह छंद रचा है :—

"धर्म-सुत-धाम जान जमुना निकट मान
सर्व मेदजज्ञ कौ बनायौ बूच्यौंत पूर है।

---

[१] सुजान-चरित्र, छं० ३, पृ० १६३ [२] वही, छं० ८, पृ० १८९ [३] वही, छं० ११, पृ० १८६ [४] वही, छं० ४७, पृ० २४७ [५] वही छं० ३, पृ० २१ [६] वही, छं० ११, पृ० ६७-७

पत्र फल फूल सब औषध समूल रस
पट अनतूल धात धान धन मूर है ।
अंडज जरायुज और स्वेदज उद्भिज हब्बि ।
कर्‌यौ पूरनाहुति चकत्ता कुल मूर है ॥
औज की अगिन इंद्रपुर सों अगिनकुंड ।
होता श्री सुजान जजमान मनसूर है ॥"[1]

इसी प्रकार युद्ध क्षेत्र सरोवर के समान,[2] सेना मेघ और नदी सदृश्य,[3] ससैन्य सूरजभान विराट-पुरुष के तुल्य,[4] दुर्ग-विजय में वसंत आदि श्रृंगारिक सामग्री का रूपक,[5] युद्ध में काली-पूजा का रूपक,[6] कृष्ण द्वारा महाभारत-सागर से पांडवों की रक्षा के रूपक में कृष्ण-स्तुति[7] सूरजभान को कृष्णावतार मानकर गोवर्द्धन उठाने की कथा के रूपक को घटित करना,[8] बन में नगर बसाने का रूपक[9] आदि में रूपक अलंकारों के प्रयोग से सजीवता का समावेश हो गया है ।

उत्प्रेक्षा—अर्थालंकारों में से उत्प्रेक्षा का प्रयोग भी इस कवि को अधिक इष्ट रहा है। इसके सफल प्रयोग को सिद्ध करने के लिए दो उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

"कहूँ सेल सन्नाह कौं फोरि बैठे। मनो भानुजा में फनी जात पैठे ॥"[10]

× × ×

"नूपुर वलय वलयानु रसनानु धुनि। मानहुँ प्रभात पंछी बानी मँडरानी है ॥"[11]

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त, अतिशयोक्ति,[12] लोकोक्ति,[13] संदेह,[14] आदि के प्रयोग भी सुजान-चरित्र में मिलते हैं।

ऊपर जो कुछ भी कहा गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि सूदन ने अलंकार-प्रयोग में पूर्ण सफलता पाई है। यद्यपि उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार इने-गिने ही हैं, पर उनका चित्रण प्रायः निर्दोष हुआ है। ये अलंकार उनकी कविता में स्वाभाविक ढंग से प्रयुक्त हुए हैं। वे उनकी कविता के भूषण हैं, दूषण नहीं।

गुलाब कवि

गुलाब कवि विरचित "करहिया कौ रायसौ" में सुंदर अलंकार-योजना की आशा करना आकाश-कुसुम-चयन करने के सदृश्य है। यदि यह कहा जाये कि इस कवि को अलंकार-शास्त्र का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था, तो इसमें अत्युक्ति न होगी।

---

[1] सुजान-चरित्र, छं० ५१, पृ० १८० [2] वही, छं० ६, पृ० ३६ [3] वही, छं० १०, पृ० ४६ [4] छं० २, पृ० ६२ [5] वही, छं० ७, पृ० ११४, [6] वही, छं० १२, वही, पृ० १८७ [7] वही, छं० १, पृ० २२४ [8] वही, छं० ५७, पृ० २३२ [9] वही, छं० ४०, पृ० २४६ [10] वही, छं० १४, पृ० ५२ [11] वही, छं० २१, पृ० १६८ [12] वही, छं०२८; पृ० २२१ [13] वही, छं० ४२, पृ० ७६; छं० ३६, पृ० १३१; छं० २०, पृ० १६०; छं० २६, पृ० १६२ [14] वही, छं० १६, पृ० २४०

गुलाब ने अनुप्रास,[१] उपमा,[२] उत्प्रेक्षा,[३] लोकोक्ति[४] और संदेह[५] अलंकारों का प्रयोग किया है। उनके उदाहरण साधारण श्रेणी के हैं। इसमें इन्होंने परंपरा का अनुसरण मात्र किया है।

पद्माकर

पद्माकर रीतिकार और कवि थे। अलंकार प्रयोग की दृष्टि से आलोच्य-ग्रंथों में हमें उनके कवि-रूप के ही दर्शन होते हैं, अलंकार-लक्षण-निर्माता के रूप में नहीं। हिम्मतबहादुर-विरुदावली तथा जगद्विनोद (केवल वीर-काव्य संबंधी छंद) में पद्माकर ने सुंदर अलंकार-योजना की है। इनके विशिष्ट प्रिय अलङ्कार अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि हैं।

अनुप्रास—अनुप्रास इनका अत्यधिक प्रिय अलंकार है। हिम्मतबहादुर-विरुदावली के प्रायः प्रत्येक छंद में अनुप्रास प्रयुक्त हुआ है। अन्य अलंकारों का विवेचन करते समय उनके उदाहरणों में अनुप्रास की भरमार मिलेगी। इस पुस्तक में हाथी और घोड़ों के वर्णन[६] तथा राजपूत-जातियों[७] और तलवारों[८] की नामावली गिनाते समय पद्माकर ने अनुप्रास की झड़ी लगा दी है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसे स्थानों पर, विशेषकर तलवारों की सूची के प्रसंग में, अनुप्रास के अधिक और अनावश्यक प्रयोग के कारण कवित्व-शक्ति को भारी धक्का लगा है। यदि पद्माकर को इनकी अनुप्रास-प्रियता के कारण, अनुप्रास-सम्राट् की उपाधि से विभूषित किया जाये, तो अत्युक्ति न होगी।

उपमा—अनुप्रास के पश्चात् उपमा पद्माकर का अधिक प्रिय अलंकार है। घोड़ों के वर्णन के प्रसंग में अतिशयोक्ति मिश्रित उपमा के निम्न उदाहरण में उपमान विचारणीय हैं :—

"बाग लेत अति लेत फलंगनि, जिमि हनुमत्त किय समुद उलंघनि।
जिन पर चढ़त सिंधु ढिग लग्गहिं, मंडल फिरि-फिरि उठत उमग्गहिं।"[९]

अनुप्रास गर्भित उपमालंकार के निम्नलिखित उदाहरण में वर्णन का सजीव चित्र उपस्थित हो गया है :—

"तहँ ढुक्का ढुक्की मुक्का मुक्की डुक्का डुक्की होन लगी।
रन इक्का इक्की झिक्का झिक्की फिक्का फिक्की जोर लगी॥
काटत चिलता हैं इमि असि वाहैं तिनहिं सराहैं वीर बड़े।
टूटैं कटि झिलमैं रिपु रन बिलमैं सोचत दिल में खड़े-खड़े॥"[१०]

रूपक—पद्माकर ने सेना और युद्ध का वर्णन करने के लिए रूपक अलङ्कार की विशेष सहायता ली है। इन स्थलों पर उन्होंने उपमान के लिए वर्षा के परंपरागत प्रचलित उपकरणों को ही अपनाया है। यहाँ पर केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

---

[१] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० १०, १९८६ वि०, छं० २-५, पृ० २७७; छं० ८, पृ० २७८; छं० २२, पृ० २८० [२] वही, छं० ३१, पृ० २८१; छं० ५२, पृ० २८२ [३] वही, छं० १६, पृ० २७९, छं० ४९, पृ० २८७, [४] वही, छं० २८, पृ० २८१, छं० ५१, पृ० २८७, [५] वही, छं० ७, पृ० २७८ [६] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० ४७-५५, पृ० ८-९, [७] वही, छं० २७-३७, पृ० ५-६ [८] वही, छं० १९२-२०१, पृ० ३९-४२, [९] वही; छं० ५५, पृ० ९, [१०] वही, छं० १८४, पृ० ३९

"तहँ रन उतंग मतंग माते उमड़ि बद्दल से रहे।
चहुँ ओर धुरवा से घुमड़ि घर धूरि धारन को थहै॥
झमझम झला से बान वर चपला चमक वरछीन की।
भननात गोलिन की भनक जनु धनि धुकार भिलीन की॥"[1]

उक्त छंद में उपमा और अनुप्रास के एक साथ प्रयोग हो जाने से उसमें अधिक प्रभावोत्पादकता का समावेश हो गया है। रूपक के अन्य उदाहरणों के लिए ये छंद देखे जा सकते हैं।[2]

उत्प्रेक्षा—उत्प्रेक्षा अलंकार भी इस कवि को अधिक प्रिय है। घोड़ों की चंचलता का वर्णन करते हुए एक अच्छी अतिशयोक्तिपूर्ण उत्प्रेक्षा इनके द्वारा प्रयुक्त हुई है :—

"उड़त अमित गति करि करि ताछन, जीतन जनु कुलटान कटाछन।
थिरकत थिरकि चलत अंग अंगनि, जीतत जुमकि पौन मग संगनि॥"[3]

युद्ध का वर्णन करते हुए अनुप्रासयुक्त उत्प्रेक्षा का अनुपम उदाहरण यह है :

"अध अधर चब्बत नहीं दब्बत फूलि फब्बत समर में।
कौंचन उमैठत हरषि पैठत लोह की भर भ्रमर में॥
तहँ घालि बरछी घोर बहु अरिगन गिराये गजन तें।
मानौ गिरे कंचन कलस अर्जुन अजिर के छजन तें॥"[4]

अक्रमातिशयोक्ति—पद्माकर ने अतिशयोक्ति अलंकार के प्रयोग में भी पूर्ण सफलता दिखलाई है। अक्रमातिशयोक्ति का यह कितना सुंदर उदाहरण है :—

"चली चदरें त्यों मचे हैं धड़ाके, छड़ाके फड़ाके खड़ाके सड़ाके।
छुटैं सेर बच्चे भजे वीर कच्चे, तजैं बाल बच्चे फिरैं खात दच्चे॥"[5]

पद्माकर द्वारा प्रयुक्त अन्य अलंकार यमक,[6] संदेह,[7] अनन्वय,[8] व्यतिक्रम,[9] ललितोपमा,[10] लोकोक्ति,[11] तथा उल्लेख[12] आदि हैं। पर ये अलंकार बहुत कम मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। उनकी रुचि प्रायः उन्हीं अलंकारों के प्रयोग करने में अधिक रमी है जिनका ऊपर सविस्तर विवेचन किया गया है।

इस प्रकार पद्माकर का अलंकार-क्षेत्र विस्तीर्ण होने पर भी कुछ विशिष्ट अलंकारों तक ही सीमित है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कुछ स्थलों को छोड़ कर इन्हें अलंकार-योजना में पर्याप्त सफलता मिली है। पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पद्माकर रीतिकाल की बँधी-बँधाई सीमित परंपरा से अपने को मुक्त करने में असफल रहे हैं।

---

[1] हिम्मतबहादुर विरुदावली छं० ८०, पृ० १५ [2] वही, छं० ७६, ८१, पृ० वही; छं०४८-९, पृ० ८ छं० १८२-३, पृ० ३७ [3] वही, छं० ५३, पृ० ९, [4] वही, १४७, पृ० २९, [5] वही, छं० ७०, पृ० १३; (अन्य उदाहरणों के लिए दे० छं० ८७, पृ० १७, छं० ९१, पृ० १७-८) [6] वही, छं० १७५-६, पृ० ३५-६, [7] वही, छं० ६८, पृ० १२-३; छं० ७३, पृ० १३ [8] वही, छं० १३३, पृ० २६-७, [9] वही, छं० ११५, पृ० २२-३ [10] वही, छं० वही, पृ० वही, [11] वही, छं० ११०, पृ० २१-२; छं० ११३, पृ० २२ [12] वही, छं० ६-१४, पृ० २

जोधराज

अलंकार-योजना की दृष्टि से इस कवि का अत्यंत साधारण स्थान है। अलंकार-प्रयोग में उन्होंने परंपरा का अनुकरण मात्र किया है। शब्दालंकारों और अर्थालंकारों में सब से अधिक प्रचलित अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक तथा लोकोक्ति आदि अलंकारों का ही इन्होंने विशेष प्रयोग किया है।

अनुप्रास—यह इनका अधिक प्रिय अलंकार है, एक उदाहरण देखिए :—

"कल कूँजत कोकिल ऋतु बसंत।
सुनि मोहत जहँ तहँ सकल जंत॥
नर नारि भए कामंध अंध।
तजि लाज काज परि काम फंद॥"[1]

यमक—अन्य शब्दालंकार यमक के भी यत्र-तत्र दर्शन हो जाते हैं, यथा :—

"बहु बारन बारन बीर कढ़ै।
गज बाजि सु सिंदन जान चढ़ै॥"[2]

उपमा—अर्थालंकारों में से उपमा के प्रयोग में इस कवि ने कहीं-कहीं पर सुंदर उपमानों का सृजन किया है, यथा :—

"तिहीं काल कविराज उप्पम विचारी।
बहैं स्याम पब्बै सु गेरू पनारी॥"[3]

रूपक—रूपक अलंकार का जोधराज ने अपेक्षाकृत कम प्रयोग किया है। उसके प्रयोग में वही परंपरागत वर्षा, मेघ तथा, बिजली आदि से उपमान लिए गए हैं। हाथियों के वर्णन में से एक उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि की जा रही है :—

"बगपंति सुदंति अनन्त रजे।
धुरवा किर सुंड छुटे भरने॥"[4]

उत्प्रेक्षा—उत्प्रेक्षा कवि का सब से प्रिय अलंकार है। इसका प्रयोग करने में उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई हैं। नीचे कुछ उदाहरण इस कथन की पुष्टि में दिए जा रहे हैं :—

"चढ़े चतुरंग कियो तन कोप।
मनो अरुनोदय भान सु ओप॥"[5]

× × ×

"बहैं सील अंगं परैं पार होई।
मनौं रुंड मैं नाग लपटंत सोई॥
कटारी लगैं अंग दीसंत पारं।
मनौं नारि मुग्धा कढ्यौ पानि वारं॥
छुरी बार सूरं करैं जोर ऐसैं।
मनो सर्पनी पुच्छ दीखंत जैसैं॥

---

[1] हम्मीररासो, छं० १०३, पृ० २१ [2] वही, छं० ४४३, पृ० ६० [3] वही, छं० ८६६ पृ० १७३ [4] वही, छं० ८५८, पृ० १६६ [5] वही, छं० ५१५, पृ० १०४

लगै जोर सों यों विषाणं जवानं ।
हुवै अंग पारं जुटै जोर वानं ॥"[1]

जोधराज ने गम्योत्प्रेक्षा,[2] उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा,[3] अतिशयोक्ति,[4] लोकोक्ति तथा[5] उदाहरण[6] आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

अन्त में यह मानना पड़ता है कि इस कवि ने परंपरागत अलंकार-प्रयोग-पद्धति का अनुकरण किया है। कोई नवीन उपमान अथवा अलंकार संबंधी अन्य विशेषता उसने नहीं अपनाई है। पर अपने सीमित क्षेत्र में उसने अलंकारों की अधिक संख्या अपनाई है।

---

[1] हम्मीररासो, छं० ९०३-४, पृ० १७४-५ [2] वही, छं० १३१, पृ० २७ [3] वही, छं० १३२, पृ० वही [4] वही, छं० ३४०-६, पृ० ६९-७० [5] वही, छं० २१२-३, पृ० ४३-४ [6] वही, छं० १९३, पृ० ३९-४०

अध्याय — ६

छंद[1]

अ–सामान्य-स्थिति—नीचे के पृष्ठों में आलोच्यकालीन कवियों द्वारा प्रयुक्त छंदों की सामान्य-परिस्थिति पर विचार किया जा रहा है। उक्त कवियों ने विविध छंदों का प्रयोग करके रुचि-वैचित्र्य का परिचय दिया है :—

केशव ने १५ प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। चौपही, दोहा, छप्पय, कवित्त, सवैया (मालती), उनके अधिक प्रिय छंद थे। शेष प्रकार के छंद उनके द्वारा अपेक्षाकृत कम प्रयुक्य हुए हैं। मात्रिक छंद उन्हें अधिक रुचिकर थे। केशव ने छंदों में नवीनता लाने और परिवर्त्तन करने का भी प्रयत्न किया है।

जटमल ने सात प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। इसने दोहा और छप्पय को विशेष रूप से अपनाया है। जटमल ने केवल एक ही प्रकार के वर्णवृत्त, मोतीदाम का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त शेष छंद मात्रिक हैं।

मतिराम के ललितललाम में दोहा, कवित्त और मालती सवैया का विशेष और छप्पय का सामान्य रूप से प्रयोग हुआ है।

भूषण ने १२ प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। कवित्त इनका अत्यंत प्रिय छंद है। इन्होंने अलंकारों की परिभाषा तथा अन्य विषयों के लिए दोहे को अपनाया है। इस कवि ने सवैया के चार भेदों का प्रयोग किया है जिनमें से मालती का प्रयोग सब से अधिक मिलता है।

मान कवि द्वारा प्रयुक्त २७ प्रकार के छंद मिलते हैं। इनमें से कवित्त (छप्पय), उद्धोर, कामुकी बाँताण, गीतामालती, गुणबेलि, दोहा, दंडमाली, दंडक, निसानी, पद्धरी, बिज्जूमाला, बृद्धिनाराच, लघुनाराच, मोतीदाम, रसाबल, विअक्षरी, विराज, हनूफाल, हंसचार तथा त्रोटक का अधिक प्रयोग मिलता है। मान ने चंद वरदायी के समान छप्पय के लिए कवित्त नाम लिखा है। इन्होंने राजस्थानी छंदों को अधिक अपनाया है। छंदों में परिवर्त्तन करने और उनके रूप बदलने की प्रवृत्ति इनमें पर्याप्त मात्रा में वर्त्तमान है।

जायसी के पद्मावत और तुलसी के रामचरितमानस के समान गोरेलाल ने छत्रप्रकाश में केवल दोहे और चौपाई का प्रयोग किया है। इस प्रकार इन्होंने यह सिद्ध कर दिया है, कि उक्त छंद, अवधी के ही समान ब्रजभाषा में भी सफलता एवं निर्दोषतापूर्वक प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

श्रीधर ने अपनी रचना में १३ प्रकार के छंदों को स्थान दिया है। इस ग्रंथ में कवित्त, गीता (गीतिका), छप्पय, दोहा, पादाकुल, भुजंगप्रयात, मधुभार, हरिगीतिका, हरिगीता, हुलास, अधिक प्रयुक्य हुए हैं। जंगनामा के इस कवि को मात्रिक छंद अत्यंत प्रिय रहे हैं।

---

[1] **यह प्रकरण दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग (अ) के अंतर्गत आलोच्य काल में छंदों की सामान्य स्थिति तथा द्वितीय खंड (ब) में इस युग में प्रयुक्त छंद सूची एवं तद् विषयक विवरण दिया गया है।**

सदानन्द ने १५ प्रकार के छंदों को अपनाया है जिनमें दोहा, छप्पय, त्रोटक, भुजंगप्रयात, गीतिका, मत्तगयंद, सवैया, चंद्रकला, त्रिभंगी, ससिवदना, संखनारी तथा सर्वकल्यान की संख्या अधिक है। इन्होंने मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। अधिकांश स्थलों पर इनके छंद दोषपूर्ण हैं।

छंदों की विविधता की दृष्टि से इस धारा के कवियों में सूदन का स्थान सर्वोपरि है। इन्होंने १०३ प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। दोहा, सोरठा, हरगीत (हरिगीत), कवित्त, दाव (दौवे), दुपई, पद्धरी, पवंगा, भुजंगी, संजुता, त्रिभंगी, तोमर, अरिल्ल, कड़खा, छप्पय, कुंडलिया तथा मुक्तादाम आदि छंद को सूदन ने अपने काव्य में विशेष स्थान दिना है। इन्होंने मात्रिक सम, मात्रिक अर्द्धसम, मात्रिक विषम, वर्णिक सम, वर्ण मुक्तक आदि सभी प्रकार के छंदों को अपनाया है। सूदन ने आठ मात्रा के छंदों से लेकर चालीस मात्रा तक के मात्रिक छंदों और दो वर्णों से लेकर बत्तीस वर्णों तक के वर्णवृत्तों का प्रयोग किया है। छंदों के रूप-परिवर्त्तन करने और उनके नामों को बदलने की प्रवृत्ति द्वारा इन्होंने अपने पांडित्य एवं आचार्यत्व का परिचय दिया है। इस दृष्टि से केशव के समकक्ष ही नहीं वरन् कतिपय बातों में ये उनसे बढ़कर ठहरते हैं।

गुलाब कवि ने तेरह प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है, जिनमें से दोहा, सवैया (विशेषकर मालती), कवित्त, सोरठा, छप्पय, पद्धरी और चौपाई को विशेष प्रकार से अपनाया गया है। इनके छंद लक्षणों पर प्राय: खरे नहीं उतरते हैं।

पद्माकर ने हिम्मतबहादुर-विरुदावली में छः प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। उनका सर्वप्रिय छंद हरिगीतिका है। तदुपरान्त हाकल, त्रिभंगी, डिल्ला, भुजंगप्रयात तथा छप्पय हैं। जगद्विनोद में कवित्त, छप्पय, तथा दोहा का अधिक प्रयोग मिलता है। जिस प्रकार सूदन ने प्रत्येक जंग के हर एक अंक के अन्त में एक हरिगीतिका की आवृत्ति की है, वैसे ही पद्माकर ने भी इस छंद को प्रयुक्त किया है।

जोधराज ने हम्मीररासो में सत्रह प्रकार के छंदों को स्थान दिया है। प्रयोग की दृष्टि से पद्धरी, भुजंगप्रयात, छप्पय, त्रोटक, चौपाई, हनूफाल, रसावल, मोतीदाम, लघुनाराच तथा नाराच विशेष उल्लेखनीय हैं। इस ग्रंथ में उन्होंने वचनिका को भी स्थान दिया है। मात्रिक छंदों के प्रति जोधराज ने अधिक अभिरुचि प्रदर्शित की है।

चौपाई, पद्धरी, हीर (हीरा, हीरक), गीतिका, गीता, हरिगीतिका, लीलावती, त्रिभंगी, रसावल तथा हनूफाल आदि मात्रिक छंद; दोहा (दोहरा) तथा सोरठा अर्द्धमात्रिक छंद, अमृतध्वनि, कुंडलिया तथा छप्पय, विषम छंदों का तीन अथवा अधिक कवियों ने प्रयोग किया है। तोमर, निसानी पावकुलक (पादाकुल) तथा विग्रक्खरी आदि मात्रिक छंदों का कम से कम दो कवियों ने प्रयोग किया है।

अर्द्धनाराच (लघुनाराच), तोटक (त्रोटक), भुजंगप्रयात, भुजंगी, मोतीदाम (मोतियदाम), नाराच (वृद्धिनाराच), सवैया (विशेष कर मालती, दुर्मिल) वर्ण-सम; कवित्त मुक्तक का कम से कम तीन कवियों द्वारा तथा संखनारी (संखजारी), नगस्वरूपिनी का कम से कम दो कवियों ने प्रयोग किया है।

यह कहना कि विशेष विषय के लिए कुछ विशिष्ट छंदों का ही प्रयोग हुआ है, कठिन

है, क्योंकि प्रायः सभी छंदों के प्रयोग का क्षेत्र विस्तीर्ण रहा है। तो भी कुछ विषयों एवं रसों के लिए कुछ छंदों का विशेष प्रकार से प्रयोग हुआ है। उनका यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है।

स्तुति, वंदना आदि के लिए अधिकतर दोहा, सोरठा, छप्पय, अर्द्धनाराच, नाराच तथा कवित्त का प्रयोग किया गया है।

ऋतु-वर्णन, प्रकृति-चित्रण आदि के लिए पद्धरी, दोहा, छप्पय, अर्द्धनाराच, तोटक, भुजंग-प्रयात, मोतीदाम, वचनिका; नगर, स्थल आदि की शोभा के चित्रण के लिए मोतीदाम, स्वागता, भुजंगी, सवैया, दंडमाली, आदि अधिक प्रयुक्त हुए हैं।

नखशिख तथा रूप-वर्णन करने के लिए दोवै, दोहा, चौपाई, छप्पय, अर्द्धनाराच, गुणा-बेलि, अधिक प्रयुक्त हुए हैं। शृंगार, आभूषण आदि के लिए पद्धरी, दोहा, छप्पय तथा कवित्त अधिक प्रचलित रहे हैं।

हाथियों तथा घोड़ों का वर्णन अधिकतर डिल्ला, त्रिभंगी, तथा कवित्त में हुआ है।

युद्ध-सामग्री, युद्ध तथा वीररस के लिए तोमर, रोला, सोरठा, पद्धरी, निसानी, त्रिभंगी, अमृतध्वनि, कुंडलिया, संजुता, तोटक, भुजंगप्रयात, भुजंगी, मोतीदाम, लछमीधर, सारंग, कंद, चामर, चंचला, नील, नाराच, गंगोदक, नूफा, गीतामालती, हीरक, गगनंगन, छप्पय, कवित्त तथा हनूफाल आदि अधिकतर प्रयुक्त हुए हैं और इन छंदों में सुंदर चित्रण किए गए हैं।

रौद्र रस तथा आतंक का त्रिभंगी तथा छप्पय में अच्छा परिपाक हुआ है। बीभत्स का वर्णन करने के लिए त्रिभंगी, छप्पय, तोटक, भुजंगप्रयात, भुजंगी और कवित्त अधिक अपनाए गए हैं।

चौपही, चौपाई, सोरठा, दोहा, छप्पय, कवित्त, सवैया प्रायः सभी विषयों के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

इनके अतिरिक्त जिन छंदों का उल्लेख ऊपर नहीं किया गया है वे भी प्रयोग की दृष्टि से अपनी विशेषता रखते हैं, पर वे विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

इस काल में एक ही छंद के विविध नाम प्रचलित थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय एक छंद को विभिन्न प्रकार से लिखने तथा मानने की प्रवृत्ति प्रचलित थी। कुछ ऐसे छंदों के भी प्रयोग मिलते हैं जिनके शास्त्र-सम्मत सभी नामों का प्रयोग हुआ है।

कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि छंदों के नाम परिवर्त्तित करने की प्रवृत्ति इन कवियों में वर्त्तमान थी, जैसे चौपाई के नाम जयकरी के लिए करी, मंजुमालिनी के लिए मालिनी रूपघनाक्षरी के लिए रूपघना आदि नामों का प्रयोग हुआ है। अर्थ-साम्य का आश्रय लेकर नवीन नाम देने की प्रवृत्ति भी सूदन के कुछ छंदों में वर्त्तमान है, जैसे विद्युन्माला के लिए चपला, दिगपाल के लिए दुरद, ईश के लिए हरि तथा हरी। इसके अतिरिक्त सूदन ने मनहंस के लिए कलहंस, पदम के लिए मालक्रीड़ा, हंस के लिए हंद, बाला के लिए मोहठा का प्रयोग किया है। इन नवीन नामों से स्पष्ट है कि छंदों संबंधी नवीन नामावलि के सृजन में इन कवियों का अधिक हाथ था।

ये कवि छंदों के प्रचलित लक्षणों में भी परिवर्त्तन कर रहे थे। इनमें से कुछ तो दोषों के अन्तर्गत माने जा सकते हैं तथा कुछ अवश्य ही छंदों के रूपों में नवीनता लाने के लिए और छंद-शास्त्र को नवीन रूप देने के उद्देश्य से किए गए थे।

इस युग में दो छंदों के मेल से बने हुए छंदों का भी प्रयोग होता था जैसे अमृतध्वनि,

कुंडलिया, छप्पय, दातार, अभिराम और हुलास। हुलास (पादाकुलक+त्रिभंगी) और (भुजंग-प्रयात+दोहा) दो प्रकार से बनाया जाता था। सूदन ने एक छंद में कवित्त तथा घनाक्षरी दोनों का रूपक बाँधा है।

इन कवियों ने कुछ प्राकृत छंदों खंधा, घत्ता, घनानन्द, गाहा, करहंची; राजस्थानी, गुणा-बेलि तथा कामुकी वाँताँण आदि का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छंदों के प्रयोग की दृष्टि से इन कवियों का क्षेत्र अधिक व्यापक रहा है। राजस्थानी, प्राकृत, संस्कृत आदि के छंदों को इन्होंने बड़ी उदारता से अपनाया है। प्राचीन समय से बहती हुई चारण-धारा के छंदों, रीतिकाल के संकुचित क्षेत्र में प्रयुक्य छंदों तथा प्रेममार्गी एवं भक्ति-धारा के छंदों को भी इन कवियों ने अपनाया है। यहाँ तक कि वार्त्ता एवं वचनिका को भी स्थान दिया गया है। नवीन नामों का निर्माण एवं लक्षणों में परिवर्त्तन करके इन्होंने छंद-शास्त्र को अग्रसर करने में हाथ बटाया है। इस धारा के कवियों में सूदन का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। सभी कवियों ने इस क्षेत्र में उदारता, दूरदर्शिता एवं समन्वय भावना का परिचय दिया है।

(ब) छन्द-सूची

आलोच्य काव्यों में प्रयुक्त छंदों पर विचार करने की सुगमता की दृष्टि से उनका विभाजन निम्नलिखित वर्गों में किया गया है :—

(१) मात्रिक छंद (अ) सम, (आ) अर्द्धसम, (इ) विषम (षट्पदी), (ई) विषम (चतुष्पदी), (उ) मात्रिक सम दंडक।

(२) वर्णिक छंद (ऊ) सम (ओ) मुक्तक।

(३) अनिश्चित छंद (औ) मात्रिक (अं) वर्णिक।

नीचे इसी क्रम से छंदों पर विचार किया जा रहा है। प्रत्येक चरण में सबसे कम मात्रा अथवा वर्ण की संख्या के अनुसार क्रम रखते हुए छंद के नाम के साथ उसके प्रयोग-कर्त्ता कवि का नाम तथा विशेष विवरण दे दिया गया है।

१. (अ) मात्रिक सम छन्द (चतुष्पदी)

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
१.	मधुभार	सूदन—	(८ मात्रा, अंत में जगण)।[1] सूदन की कृति में इस छंद के चारों चरण एक ही पंक्ति में लिख दिए गए हैं और उसमें विराम चिन्हों का अभाव है। इससे इसके रूप को जानने में पाठक को कठिनाई हो सकती है।
२.	दीपक	सूदन—	(१० मात्रा, अंत में लघु)।[2] यह छंद संस्कृत छंद दीप (१० मात्रा अंत में ।।।ऽ।)[3] से मिलता-जुलता है। सूदन ने अंत में ऽ। रक्खा है, पर अंतिम दो अक्षरों से पूर्व के ।।। के नियम का पालन कतिपय स्थानों

[1] छंद-प्रभाकर, पृ० ४३ [2] प्राकृतपैंगल, श्लोक १८१-२, पृ० २११-२ [3] छंद-प्रभाकर, पृ० ४४

क्र०सं०	छंद	कवि—	विवरण
			पर नहीं किया है। उन्होंने इस छंद के प्राकृत रूप को अधिक अपनाया है। इस छंद में युद्ध का अच्छा वर्णन किया गया है।[1]
३.	आभीर	सूदन—	(११ मात्रा अन्त में जगण)।[2]
४.	तोमर	सूदन— श्रीधर	(१२ मात्रा, अन्त में ऽ।)।[3] इस छंद में सैनिकों की नामावली गिनाई गई है और युद्ध का सुंदर वर्णन एवं वीररस का उत्तम परिपाक हुआ है।
५.	उद्धोर	मान—	(४ न ऽ। = १४ मात्रा। यह मात्रा गण-बद्ध छंद है)[4] इसमें राजसिंह के गुणों का वर्णन किया गया है।
६.	हाकल	पद्माकर—	(१४ मात्रा, अंत में ऽ। हाकल में तीन चौकल के पश्चात् एक गुरु होता है। जहाँ पर चारों पदों में तीन-तीन चौकल न पड़ें, वहाँ पर इस छंद का नाम मानव होता है)।[5] पद्माकर ने इस छंद का प्रयोग करने में लक्षणों का विशेष ध्यान नहीं रक्खा है।[6] कहीं-कहीं पर उनके छंदों में मात्राओं की संख्या कम है, यथा :— **"निज खिलवतिन में हास है, भय रूप दुरजन पास।"**[7] उक्त उद्धरण में रेखांकित अंश में केवल १२ मात्रायें हैं और अन्त में गुरु के स्थान में लघु है। इसी प्रकार छंद ४३ के प्रत्येक चरण के अंत में पद्माकर ने लघु का प्रयोग किया है।[8] इससे विदित होता है कि पद्माकर शास्त्रीय नियमों से स्वतंत्र होने की प्रवृत्ति रखते थे। उक्त स्थानों के अतिरिक्त पद्माकर ने मात्रादि का प्रायः सभी स्थलों पर ध्यान रक्खा है। यह छंद उन्हें अत्यंत प्रिय था। इस छंद में हिम्मतबहादुर की दान-वीरता, प्रशंसा, युद्ध-यात्रा, राजपूत जातियों की सूची आदि का वर्णन किया गया है।[9]
७.	चौपाई, चौपाही,	केशव—	(१५ मा० अंत में ऽ। अन्य नाम जयकरी)[10] केशव ने इस छंद के अंत में ऽ। तथा ।ऽ का प्रयोग किया है।[11] वर्णनात्मक कथा-प्रसंगों तथा अन्य विविध विषयों के लिए इस छंद का प्रयोग किया गया है।
८.	करी	सूदन—	(१५ मा०, अंत में ऽ। अथवा ।ऽ)।[12] यह छंद चौपई के समान

[1] सुजानचरित्र, छं० १८, पृ० ११८-९ [2] छं० प्रभाकर, पृ० ४४ [3] वही, पृ० वही [4] रघुनाथ रूपक गीताँरो, परिशिष्ट, पृ० २८ [5] छंद-प्रभाकर, पृ० ४६ [6] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० १२, पृ० ३ [7] वही, छं० १३, पृ० वही। [8] वही, पृ० ७ [9] वही, पृ० २-७ [10] छं०-प्रभाकर, पृ० ४७ [11] वीरसिंहदेव चरित्र, छं० ४, पृ० १ [12] सुजानचरित्र, छं० ४, पृ० २२४ ५

क० सं० छंद कवि— विवरण

है। संभव है कि सूदन ने चौपाई के अन्य नाम जयकरी[१] का संक्षिप्त रूप 'करी' चौपाई के स्थान पर प्रयुक्त किया हो, तो आश्चर्य की बात नहीं है।

९. चौबोला सूदन—(१५ मा०, अंत में ।ऽ)[२] । कहीं-कहीं पर सूदन ने इसके नियम में परिवर्त्तन करके १५, १४, १६, १७ मात्रा का प्रयोग किया है।[३] इन्होंने कतिपय स्थलों पर एक ही छंद में वीर और शृंगार-रसों का सफल प्रयोग कर दिया है।[४]

१०. अरिल्ल सूदन—(१६ मा०, अंत में ।। अथवा ।ऽऽ)[५] । भरतपुर से प्राप्त सुजान-चरित्र की प्रति में एक स्थल पर इस छंद का नाम अडिल्ल दिया है।[६] युद्ध-वर्णन के अतिरिक्त लूट में प्राप्त आभूषणों की सूची भी इस छंद में दी गई है।[७] सुजान-चरित्र में प्रयुक्त इस छंद का अंत सभी स्थलों पर ।। से हुआ है। इस छंद में कवि की प्रवृत्ति चौकल के नियम को त्याग कर अंत में पूरी मात्रा मानने की रही है।

११. खंधा सूदन—(चतुर्मात्रा के आठ गण, पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में समान रूप)।[८] यह छंद संस्कृत स्कंधम् का प्राकृत रूप है। भानु ने इसे अर्द्ध-सम (१२, २०, १२, २०) माना है।[९]

१२. चौपाई केशव, जटमल, गोरेलाल, सूदन, गुलाब, जोधराज—(१६ मा०, अंत में ऽ। वर्जित)।[१०] केशव तथा सूदन ने इसके प्रति चरण में प्राय: १५ मात्रायें रखकर अन्त में ऽ। का प्रयोग किया है, यथा :—

आसकरन कौं भौ फरमान। बीरसिंह को घालहि मान।

ऽ।।।।ऽ ऽ।।ऽ। ऽ।ऽ।ऽऽ।।ऽ।

१५ मा० १५ मा०

(वीरसिंहदेवचरित्र, छं० १५, पृ० १६)।

तथा

"हय गय सरोपाउ समसेर"

।।।।ऽऽ।।ऽ।

१५ मा०

(सुजान—चरित्र, छं० ६, पृ० १०६)। इसी प्रकार इन कवियों के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं।[११] उक्त छंद

[१] छंदप्रभाकर, पृ० ४७, [२] वही पृ० वही [३] सुजानचरित्र, छं० २२ पृ० १६, [४] वही, छं० ३४, पृ० १४६ [५] छंदप्रभाकर, पृ० ४८, [६] सुजानचरित्र, छं० ३०, पृ० ७६ [७] वही, छं० ४१, पृ० १७४-५, [८] प्राकतपैंगल, श्लोक ७३-४, पृ० १२९-३१; प्राकतपिंगलसूत्राणि, पृ० ३४-५ [९] छंदप्रभाकर, पृ० ६८ [१०] वही, पृ० ४६ [११] वीरसिंहदेवचरित, छं० १६; १८ आदि, पृ० १६; सुजानचरित्र, छं० ६ (पंक्ति २,३,४,७,६,१०,११,१२) पृ० १०६

क्र० सं०	छंद	कवि—	विवरण
			चौपई के नियमों पर खरे उतरते हैं। सम्भव है कि केशव और सूदन ने चौपाई के शास्त्रीय नियमों की शृंखलायें तोड़ने का प्रयत्न किया हो। यह भी हो सकता है कि इन्होंने अपने आचार्यत्व की प्रेरणा से प्रेरित होकर ऐसा प्रयोग किया हो। चौपाई का सबसे अधिक प्रयोग गोरेलाल ने किया है। इन्होंने इसके प्रयोग में शास्त्रीय नियमों का पूर्णरूप से पालन किया है। यह छंद सभी प्रकार के वर्णनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। वर्णनात्मक प्रसंगों में इसका सफल प्रयोग हुआ है। जोधराज तथा गोरेलाल ने विविध रसों और कथा-प्रसंगों में इस छंद को सफलतापूर्वक अपना कर सिद्ध कर दिया है कि इस छंद का ब्रजभाषा में भी अधिकारपूर्वक निर्दोष प्रयोग हो सकता है।
१३.	डिल्ला	पद्माकर—	(१६ मात्रा, अंत में भगण)।[1] पद्माकर ने इस छन्द में हाथियों, अश्वों तथा अन्य विषयों का वर्णन किया है। इस छंद द्वारा उन्होंने वीर के साथ शृंगार-रस का भी सुंदर पुट दिया है।[2]
१४.	पद्धरिय, पद्धरी	मान, सदानंद, सूदन, गुलाब, जोधराज	(१६ मात्रा, अंत में जगण)।[3] इन कवियों ने इस छंद का बहुत प्रयोग किया है। साधारणतया यह वीररस के लिए प्रयुक्त हुआ है। पर मान कवि ने वीररस के अतिरिक्त दहेज में प्राप्त सामग्री, तथा शृंगार के आभूषणों के वर्णन के लिए भी इसका प्रयोग किया है।[4] सूदन ने इस छंद में युद्ध-सामग्री, राजपूतों के वंशों एवं वीरों की नामावली गिनाने के अतिरिक्त युद्ध का निर्दोष वर्णन किया है।[5] युद्ध के सजीव चित्रण और वीररस के परिपाक के कतिपय सुंदर उदाहरण सुजान-चरित्र में मिलते हैं।[6] जोधराज ने इस छंद द्वारा अपने आश्रयदाता का परिचय, सृष्टिरचना, ऋतुवर्णन, हम्मीर-जन्म-वर्णन, युद्ध-सामग्री, पूजा-पाठ, शृंगाररस, उपदेश आदि विषयों का सफल वर्णन किया है।[7] ऐसी परिस्थिति में यह कहना कि इस छंद का प्रयोग केवल वीररस वे प्रतिपादन में ही किया गया है, भ्रामक होगा। वास्तव में इस

[1] छंदप्रभाकर, पृ० ४७ [2] हिम्मतबहादुरविरुदावली, छं० ५३ पृ० ९ [3] छंदप्रभाकर, पृ० ४८ [4] राजविलास, छं० ८५-१०६, पृ० ११८; छं० ६७-८४, पृ० १३०-२ [5] सुजानचरित्र, छं० ६, पृ० २४-५; छं० १४, पृ० ३०-१; छं० २, पृ० १२०-२ [6] वही, छं० ७, पृ० ९५-६; छं० २१, पृ० २१७-८ [7] हम्मीररासो, छं० ४-३३, पृ० २-७; छं० १००-९, पृ० २१-२; छं० १६६-७१, पृ० ३३-४; छं० १७५-८७, पृ० ३५-७; छं० २४०-६२, पृ० ६९-७३; छं० ६०१-२, पृ० १२२; छं० ६३२, पृ० १२९; छं० ९५४-७, पृ० १८६

क्र० सं०	छंद	कवि—	विवरण
			छंद का क्षेत्र अधिक विस्तृत है। केवल इतना ही स्वीकार किया जा सकता है कि इस छंद में वीररस का सफलतापूर्वक निर्वाह किया जा सकता है।
१५.	पावकुलक पावककुलक पादकुल	श्रीधर— सूदन—	(१६ मात्रा, ४ चौकल)[1] इन कवियों ने पादाकुलक छंद को विविध नामों से पुकारा है। कहीं-कहीं पर इन्होंने इसके लक्षणों का पूर्ण रूप से पालन नहीं किया है।[2] सुजान-चरित्र में दो छंदों के नाम पादाकुलक दिए हैं, पर वे वास्तव में पवंगा के नियमों पर खरे उतरते हैं।[3] भरतपुर की प्रति में इनके नाम पवंगा ही दिए हैं।[4]
१६.	चन्द्रायन, चान्द्रायण	मान—	(११, १०=२१। इस छंद की ११ मात्रा जगणान्त और १० मात्रा रगणान्त होती हैं।[5] मान ने कतिपय स्थलों पर प्रत्येक चरण की अंतिम मात्रा को रगणान्त नहीं रक्खा है और उनका अंत ॥ से किया है।[6]
१७.	पवंगा, प्लवंगा	सूदन—	२१ (८, १३, आदि में ऽ अंत में ज ग)। कोई-कोई ११, १० पर भी यति मानते हैं।[7] सूदन ने इस छंद में ११, १० पर यति मानकर आदि में ऽ तथा अंत में ज ग को विकल्प से माना है। इस संबंध में उन्हें जो सुविधाजनक प्रतीत हुआ है, उन्होंने उसी प्रयोग को अपनाया है।[8] सुजान चरित्र में, जैसा कि पावकुलक के प्रकरण में बताया जा चुका है, दो छंदों के नाम पावकुलक मिलते हैं, पर वास्तव में वे पवंगा छंद ही प्रतीत होते हैं।[9]
१८.	निसानी, नीसानी	मान— सूदन—	२३ (१३-११ अंत में ग ग)।[10] सूदन के इस छंद के अंत में ल ग भी मिलता है। सुजान-चरित्र के रचयिता ने इस छंद में मुसलमान पात्रों से उर्दू मिश्रित पंजाबी तथा राजस्थानी भाषा का प्रयोग कराया है। इस छंद द्वारा युद्ध का सुन्दर वर्णन भी किया गया है।[11]
१९.	हीर, हीरा, हीरक	श्रीधर— केशव— सूदन—	२३ मात्रायें (६, ६, ११ आदि में ग अन्त में रगण)।[12] केशव और सूदन ने इस छंद के आरंभ में ग रखने के नियम का पालन नहीं किया है। सूदन के इस छंद में वीररस का अच्छा परिपाक हुआ

---

[1] छंदप्रभाकर, पृ० ४७ [2] सुजानचरित्र, छं० ५, पृ० ७१; जंगनामा, पंक्तियाँ १६१-२३६, पृ० ७-१४ [3] छं० २-३, पृ० २१२ [4] भरतपुर की प्रति, पृ० १४७ [5] छंदप्रभाकर पृ० ५६ [6] राजविलास, छं० ७० (पंक्ति १-४), पृ० ११२; छं० ७२ (पं०क्ति १-२), पृ० ११२; छं० ७६ (चारों पंक्ति), पृ० ११३ [7] छन्दप्रभाकर, पृ० ५५-६ [8] सुजानचरित्र, छं० २०, पृ० १३; छं० १४, पृ० ३६ [9] वही, छं० २-३, पृ० २१२ [10] रघुनाथरूपक गीताँरो, पृ० २६६; वही, परिशिष्ट, पृ० १ [11] सुजानचरित्र, छं० ७, ४४-५; छं० ३१, पृ० ७७; छं० ३, पृ० ८७-८८ [12] छन्दप्रभाकर, पृ० ६०

क्र० सं०	छंद	कवि—	विवरण
			है। श्रीधर द्वारा प्रयुक्त छंद में १४, १४=२८ मात्रा और अंत में ग ल ग का प्रयोग हुआ है। इरविन ने श्रीधर के इस छंद को कवित्त माना है।[1] उनका यह कथन ठीक नहीं है।
२०.	रोला	सूदन—	२४ (११, १३)[2] इस छंद में घोड़ों का वर्णन हुआ है और लूट में प्राप्त सामग्री की सूची दी गई है।[3]
२१.	काव्य	सूदन—	२४ जिस रोला छंद के चारों पदों में ११ वीं मात्रा लघु हो उसे काव्य कहते हैं।[4] भरतपुर की प्रति में इस छंद का नाम "कब्वि" दिया है। सुजान-चरित्र में इस छंद द्वारा ब्रज-वर्णन किया गया है।[5]
२२.	दुरद (दिगपाल)	सूदन—	२४ (१२, १२)[6] ऐसा प्रतीत होता है कि सूदन ने दिगपाल नामक छंद को दुरद (द्विरद) नाम दे दिया है। उनके इस छंद में केवल ७ पंक्तियाँ हैं।[7]
२३.	गगनंगन (गगनांगना)	सूदन—	२५ (१६, ६ अंत में रगण। इस छंद के प्रत्येक पद में ५ गुरु और १५ लघु रहते हैं)।[8] भरतपुर की प्रति में इसका नाम गगनंगन दिया है, जो अशुद्ध है।[9] इस छंद में रौद्र ~~रस का~~ वर्णन हुआ है।[10]
२४.	गीतिका	सदानंद— भूषण सूदन	२६ (१४, १२ अंत में ल ग)।[11] सदानन्द तथा सूदन के छंदों में १४, १४=२८ मात्रायें और अंत में ल ग है।[12] इनके ये छंद हरिगीतिका के बहुत निकट हैं। संभव है कि इन कवियों ने हरिगीतिका के लिए ही गीतिका नाम प्रयुक्त किया हो। यह भी हो सकता है कि उस समय तक गीतिका छंद २८ मात्रा का प्रयुक्त होने लगा हो। भूषण के इन छंदों में १४, १२=२६ मात्रा और अंत में ग ल है। अतः उन्हें गीता मानना अधिक समीचीन होगा। भूषण ने इस छंद में अलंकारों की नामावली का उल्लेख किया है।[13]
२५.	गीता, सुगीतिका	श्रीधर— सूदन	२६ (१४,१२ अंत में ग ल)।[14] श्रीधर ने इस छंद के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ और अंत में ल ग का प्रयोग किया है। इस कारण से यह छंद हरिगीतिका के सामान हो गया है।[15] जंगनामा

---

[1] वीरसिंहदेवचरित्र, छं० ६६, पृ० २३; सुजानचरित्र, छं० १६, पृ० १४३; जंगनामा, पंक्तियाँ १०२०-१२४८, पृ० ५०-१; जनरल आव दी ए० सो० ऑव बं०, १६०० ई०, पृ० २ [2]
[3] छंदप्रभाकार, पृ० ६१, सुजानचरित्र, छं० ४, पृ० ८-६; छं० ३२, पृ० १७२-३ ४६
[4] छदप्रभाकार, पृ० ६१ [5] सुजानचरित्र, छं० ५६, पृ० २३३-४ [6] छन्दप्रभाकर, पृ० ६२
[7] सुजानचरित्र, छं० २६, पृ० २४१ [8] छन्दप्रभाकर, पृ० ६३ [9] भरतपुर की पति, पृ० १५०
[10] सुजानचरित्र, छं० १८, पृ० २१६ [11] छंदप्रभाकर, पृ० ६५ [12] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ५, १६८१ वि०, छं० ४४, पृ० १२१-२; छं० ६२-३, पृ० १२४; सुजानचरित्र, छं० १७, पृ० १६३ [13] भूषण-ग्रंथावली, छं० ३७३-८१, पृ० ६७-६ [14] छन्दप्रभाकर, पृ० ६६ [15] जंगनामा, पंक्तियाँ ६६६-८६५, पृ० २७-३६

क्र० सं०	छं०	कवि	विवरण
			की पंक्ति ३०-६१ के लिए 'छंद' शीर्षक मिलता है। इनमें १४,१२ के विराम से २६ मात्रायें और अंत में ल ग ल अथवा ग ग ल है, अतएव इन पंक्तियों की गणना गीता छंद के अंतर्गत ही करनी चाहिए। इरविन महोदय ने पंक्ति ३०-३८ को तोमर छंद और पंक्ति ३६-६० को दोहरा माना है।[1] उनका यह मत भ्रमपूर्ण है। सूदन ने इस छंद में १४, १२=२६ मात्रा और अंत में ग ल रखा है। संभवतः उन्होंने गीता का अन्य नाम सुगीता माना है।[2]
२६.	दाव (दोवै)	सूदन—२८	(१६, १२ अंत में कर्ण ग ग)।[3] भरतपुर की प्रति में इस छंद का नाम 'दोवै' दिया है।[4] अतएव इस छंद का नाम 'दोवै' ही होना चाहिए। केवल एक छंद के दो पदों को छोड़कर शेष सभी छंदों का अंत ग ग में हुआ है।[5] इस कवि ने इस छंद के द्वारा कृष्ण के रूप, बाल-लीला तथा गोबर्द्धन-कथा आदि का वर्णन किया है।[6]
२७.	ललितपद	सूदन—२८	यह 'दोवै' छंद का अन्य नाम है।[7] इस छंद के नाम से सूदन की एक ही छंद के विभिन्न नामों के प्रयोग करने की प्रवृत्ति विदित होती है।
२८.	हरिगीतिका हरिगीता हरिगीत	श्रीधर—२८ पद्माकर, श्रीधर, सूदन,	(१६, १२ अंत में ल ग)।[8] सूदन ने प्रत्येक जंग के हर एक अंक के अंत में एक हरिगीत अथवा हरगीत की आवृत्ति की है, जिसके तीन चरण तो एक से ही रहे हैं पर चौथा चरण विषय के अनुसार बदलता गया है। पद्माकर ने हिम्मतबहादुर-विरुदावली में हरगीतिका की अनेक स्थलों पर आवृत्ति की है, जिनके प्रथम दो चरण बदलते गए हैं और अन्तिम दो समान रहे हैं।[9] पद्माकर को यह छंद अधिक प्रिय था, यहाँ तक कि सम्पूर्ण ग्रंथ में २११ छंदों में यह छंद १०८ बार प्रयुक्त हुआ है। सूदन ने भी इस छंद को ३० बार अपनाया है। प्रकृति-चित्रण, युद्ध-वर्णन, ईश्वर में विश्वास तथा उपदेश आदि के लिए इस छंद का प्रयोग किया गया है।[10]

---

[1] जंगनामा, पृ० २-३; ज० आव ए० सो० आव बं०, १६०१ ई०, पृ० २ [2] सुजानचरित्र, छं० ३२, पृ० २२७ [3] छंद प्रभाकर, पृ० ६६-७ [4] भरतपुर की प्रति, पृ० १६० [5] सुजान-चरित्र, छं० ४०, पृ० २३० [6] वही, छं० ३७-५७, पृ० २२६-३२ [7] छंद-प्रभाकर, पृ० ६७ [8] वही, पृ० वही [9] सुजानचरित्र, छं० ३०, पृ० १६२; हिम्मतबहादुर-विरुदावती, छं० २, पृ० १-२ [10] सुजानचरित्र, छं० ५, पृ० ८१-८२; हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० ८१-३, पृ०१५-६; छं० ६६-१०३, पृ० १८-२०

क्र० सं०	छंद	कवि—	विवरण
२६.	मरहठा	सूदन—	२६ (१०, ८, ११ अंत में ग ल)।[1]
३०.	ताटक	सूदन—	३० (१६, १४ अन्त में मगण)।[2] सूदन ने इस छंद में १४, १४ और अंत में मगण का प्रयोग करके निश्चित लक्षण के विरुद्ध नवीन प्रयोग की प्रवृत्ति दिखलाई है।[3]
३१.	रुचिरा	सूदन—	३० (१४, १६ अंत में ग)।[4] सूदन ने केवल दो चरणों का एक छंद प्रयुक्त किया है, जिनके दोनों चरणों में क्रमशः ३१, ३२ मात्रायें तथा अंत में ल ग है।[5]
३२.	दुमला	सूदन—	३२ (१०, ८, १४ सों गुरु द्वै)।[6] भरतपुर की प्रति में इसका नाम दुर्मिल्ला दिया है। सूदन ने इस छन्द के अंत में ल ग का प्रयोग किया है।[7]
३३.	लीलावती	सूदन, सदानन्द	—३२ (पद्धरिया का दूना, १६, १६ गुरु लघु का कोई नियम नहीं)।[8]
३४.	त्रिभंगी	मान, सदानन्द, सूदन, पद्माकर, जोधराज	—३२ (१०, ८, ८, ६ अंत में ग)।[9] यह छंद पद्माकर, सूदन, जोधराज तथा मान को अधिक प्रिय था। इन कवियों द्वारा प्रयुक्त इस छंद का अंत ल ग तथा ग ग से किया गया है। हाथियों की सजावट, वस्त्रों की सूची, युद्धों का सुंदर एवं सजीव वर्णन, बीभत्स, रौद्र एवं वीररसों के चित्रण में इन कवियों ने इस छंद का सफल प्रयोग किया है।[10]

सम-द्विपदी छंद

क्र० सं०	छंद	कवि—	विवरण
३५.	दुपई	सूदन—	२८ (अन्त में ग ग)।[11] सूदन के एक दुपई छंद[12] का भरतपुर की प्रति में[13] मोहनी (मात्रिक अर्द्ध सम, १२, ७ अंत में सगण)[14] नाम दिया है। सूदन के उक्त छंद में प्रायः १२, ७ और अंत में ज अथवा त मिलता है। अतएव यह छंद मोहनी (मोहिनी) ही ठीक लगता है।

सूदन के एक दुपई छंद का भरतपुर की प्रति में चौपइया (चार मात्रा के ७ गण रखकर अंत में दो गुरु=३० मात्रा) नाम

---

[1] छंद-प्रभाकर, पृ० ६६ [2] वही, पृ० ७० [3] सुजानचरित्र, छं० २८, पृ० २४२ [4] छंद-प्रभाकर, पृ० ७१ [5] सुजान-चरित्र, छं० ३, पृ० २०० [6] छंद-प्रभाकर, पृ० ७४; प्राकृत-पैंगल, श्लोक १६६-८, पृ० ३१५-८ [7] सुजानचरित्र, छं० १५, पृ० १५; छं० १८, पृ० ७३ [8] छंद-प्रभाकर, पृ० ७३ [9] वही, पृ० ७२ [10] सुजानचरित्र, छं० १३, पृ० १०८; छं० ७-११, पृ० १२४-५; छं० १४-७, पृ० १६६-७; छं० ३८-६, पृ७ १७४; हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० १८६-६८; हम्मीररासो, छं० ७८३-६, पृ० १५४-५; राजविलास, छं० ६-१३, पृ० २०६-८ [11] प्राकृत-पैंगलम्, श्लोक १५२-३, पृ० २५७-६० [12] सुजानचरित्र, छं० १, पृ० ११६-२० [13] भरतपुर की प्रति, पृ० ८२ [14] छंद-प्रभाकर, पृ० ८१

क्र० सं०	छं०	कवि	विवरण
			मिलता है।[1] उक्त छंद चौपइया के नियमों पर खरा उतरता है और उसमें दो पद हैं। सुजान-चरित्र पृष्ठ १८० के छंद ५२ के प्रति चरण की अंतिम दो मात्रायें भरतपुर की प्रति के पाठ में नहीं हैं।[2] यह छंद अपने वर्त्तमान रूप में चौपइया के नियमों के अनुकूल है।
३६.	विद्वनमाल	सूदन	—२८ (मा०) भरतपुर की प्रति में इस छंद का नाम दुपई दिया है जो ठीक प्रतीत होता है।[3] इसीलिए इस छंद को मात्रिक अर्द्ध सम छंदों की सूची में नहीं रक्खा गया है।
३७.	घत्ता	सूदन	—३१ (चतुर्मात्रिक सप्तग गणांतर तीन लघु, द्विपदी)।[4] सूदन ने इस छंद के अंत में ल ग ल अथवा ग ग ल का प्रयोग किया है।[5]
३८.	घनानन्द	सूदन	—३१ (आरंभ में ६ मात्रा रखकर तीन चतुष्कला देकर, ५ मात्रा के पश्चात् दो चतुष्कला रखकर घतानन्द छंद बनता है)।[6] सूदन के इस छंद के अंत में नगण का प्रयोग हुआ है। उन्होंने घतानंद के स्थान पर घनानंद नाम दिया है।[7]

(आ) मात्रिक अर्द्ध-सम

क्र० सं०	छं०	कवि	विवरण
३९.	दोहा	केशव, जटमल, गोरेलाल, श्रीधर, सदानंद, सूदन, गुलाब, पद्माकर, जोधराज, भूषण, मान, मतिराम,	—२४ (विषम चरण में १३ और सम चरण में ११, विषम चरण के आदि में जगण वर्जित तथा अंत में लघु आवश्यक)।[8] यह छंद आलोच्यकालीन सभी कवियों को अत्यंत प्रिय रहा है। उन्होंने सभी विषयों—सरस्वती, गणेश आदि की वंदना, राज्य-वर्णन, ग्रंथ-निर्माण का उद्देश्य, कवि-परिचय, तिथि-कथन, अलंकार-लक्षण, आश्रयदाता का गुण-गान, ऋतु-वर्णन, शृंगार-चित्रण, दुर्भिक्ष, मृगया, युद्ध की तैयारी, विवाह, उपदेश, नीति, सृष्टि रचना आदि का प्रतिपादन करने के लिए इस छंद का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।[9] कथा-
	दोहरा	केशव, मान,	नक को अग्रसर करने और घटना का पाठक को परिचय देने के लिए

[1] सुजानचरित्र, छं० ३२, पृ० १४५; भरतपुर की प्रति, पृ० १००; प्राकृत-पैंगलम्, श्लोक ९७-८, पृ० १६७-९ [2] भरतपुर की प्रति, पृ० १२५ [3] वही, पृ० १६७; सुजानचरित्र, छं० ६-७, पृ० २३८ [4] प्राकृत-पैंगलम्, श्लोक ९९-१०१, पृ० १७०-२ [5] सुजानचरित्र, छं० ४, पृ० १०९ [6] प्राकृत-पैंगल, श्लोक १०२-४, पृ० १७३-६ [7] सुजानचरित्र, छं० ६-८, २०२ [8] छंद-प्रभाकर, पृ० ८२ [9] कुछ उदाहरण ये हैं :—भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ३, ८-९, ११-२, २५-३१-३, ३८२ आदि; राजविलास, छं० १-६, पृ० १; छं० ३३-७, पृ० ७; छं० ११३-७, पृ० १३६; हम्मीररासो, छं० ३४-७, ११०, ११५, १२२, १२४, १६५, १७२-४

क्र० सं०	छंद	कवि—	विवरण
		जोधराज	भी इस छंद को अपनाया गया है। इस प्रकार इस छंद का क्षेत्र अत्यंत विस्तीर्ण रहा है। इस छंद के दोहा और दोहरा दो नाम मिलते हैं। दोहरा राजस्थानी प्रभाव का द्योतक है। केशव के दोहों के साथ में कतिपय स्थलों पर कुछ ऐसे छंद मिलते हैं जो चौपही के नियमों पर खरे उतरते हैं। अतः उन्हें दोहा अथवा दोहरा मानने में संकोच होता है।[1] केशव ने एक स्थान पर दोहे के प्रथम दल में आठ और सोलह पर यति का प्रयोग किया है।[2] जटमल ने एक स्थान पर एक पद्य का नाम छंद लिखा है।[3] संभवतः ये दोहा छंद हैं पर इनमें बहुत से दोष हैं।
४०.	सोरठा	केशव, जटमल, सूदन, गुलाब, जोधराज,	—२४ (विषम चरण में ११, सम में १३, दोहे का उलटा)।[4] सूदन ने एक सोरठे के प्रथम दल में १३ + १३ = २६ मात्राओं का प्रयोग किया है।[5] भरतपुर की प्रति में उक्त दल में (तो) शब्द नहीं दिया है, इस कारण वहाँ पर यह छंद निर्दोष हो गया है। सूदन का यह अत्यन्त प्रिय छंद था। इस छंद का प्रयोग कवि-परिचय, गणेश-वंदना, तंबू आदि की सूची, शृंगार आदि रसों के विवेचन तथा अन्य वर्णनों के लिए हुआ है।[6] सुजान-चरित्र का एक सोरठा भरतपुर की प्रति में अप्राप्य है।[7] सुजान-चरित्र का एक सोरठा भरतपुर की प्रति में दोहा माना गया है, पर वास्तव में वह सोरठा ही है।[8]
४१.	हरिपद	सूदन	— २७ (१६ + ११)।[9]
४२.	उल्लाला	सूदन	—२८ (विषम चरण में १५, सम में १३)[10]। सूदन ने प्रत्येक दल के अंत में गुरु का प्रयोग किया है।[11]

(इ) मात्रिक विषम-छंद (षट्-पदी)

४३. अमृतध्वनि भूषण—(एक दोहा + एक रोला)। इसके रोला में आठ-आठ मात्रा पर

---

[1] वीरसिंहदेवचरित्र, दोहा ६ के उपरान्त छं० ७-१५, पृ० २; दोहा ३८ के उपरांत छं० ३६-४६, पृ० २१-२; दोहा ५३ के उपरांत छं० ५१-५२, पृ० ४४; दोहरा ४६ के उपरांत छं० ४७-६६, पृ० ४८-६ [2] वही, दोहा १२, पृ० ६२ [3] गोराबादल की कथा, छं० १५०, पृ० ३४ [4] छंदप्रभाकर, पृ० ८७ [5] सुजानचरित्र, छं० ६, पृ० १० [6] वही, छं० १०, पृ० ३; छं० १, पृ० १००; छं० ३५-३७, पृ० १७३-४; गोराबादल की कथा छं० १२७-३३, पृ० ३०, हम्मीर-रासो, छं० २२७-६, पृ० ४६ [7] सुजानचरित्र, छं० ३८, पृ० १४७; भरतपुर की प्रति, १०१ [8] सुजानचरित्र, छं० ६४, पृ० २५१ [9] भरतपुर की प्रति, पृ० १७७ [10] छंदप्रभाकर, पृ० ८६ [11] सुजानचरित्र, छं० २३, पृ० १४४

क्र० सं०	छंद	कवि—	विवरण
		सूदन, गुलाब	यति, यमक को तीन बार क्रमकाव के साथ सजाया जाता है। कुल ६ पद तथा १४४ मात्रायें होती हैं।[1] इस छंद का प्रयोग युद्ध-वर्णन और वीर रस के चित्रण के लिए किया गया है।[2]
४४.	कुंडलिया	केशव, जटमल, सूदन, गुलाब,	(दोहा+रोला=६ पद=१४४ मात्रा)।[3] केशव ने कुंडलिया के दो दल के उपरांत ही छंद संख्या डाल दी है और एक स्थल पर एक छंद में केवल चार ही चरण दिए हैं।[4] विभिन्न कवियों ने इस छंद द्वारा नीति तथा युद्ध आदि विषयों का वर्णन किया है।[5]
	कुंडरिया	केशव	
४५.	छप्पय	केशव, जटमल, भूषण, श्रीधर, सदानंद, सूदन, गुलाब, पद्माकर, जोधराज, मतिराम,	(रोला के चार पद+उल्लाला के दो पद। उल्लाला में कहीं पर २६ और कहीं पर २८ मात्राएँ होती हैं। कुल छः पद मिलाकर १४८ अथवा १५२ मात्राएँ होती हैं।[6]) केशव ने इस छंद के लिए छपद नाम भी दिया है। मान कवि ने चंदवरदायी के समान छप्पय के लिए कवित्त नाम का प्रयोग किया है, जो राजस्थानी प्रभाव का द्योतक है। श्रीधर द्वारा प्रयुक्त इस छंद के कुछ स्थल छप्पय की अपेक्षा अमृतध्वनि के नियमों के अधिक निकट पहुँचते हैं। अतएव उन्हें अमृतध्वनि ही मानना चाहिए।[7] छप्पय का प्रयोग स्तुति-वंदना, अवतार, आखेट, अन्न आदि की सूची, प्रकृति-वर्णन, नख-शिख, वात्सल्य, शृंगार, वीर, बीभत्स, रौद्र, शौर्य, आतंक, ऋतु-वर्णन आदि विविध विषयों के लिए हुआ है।[8] अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस छंद का प्रयोग केवल वीररस के वर्णन में ही किया जाता है। केवल इतना ही स्वीकार किया जा सकता है कि इस छंद के द्वारा अन्य विषयों के अतिरिक्त वीर रस का निर्वाह सफलतापूर्वक हो सकता है और हुआ है। सभी कवियों ने सभी विषयों के लिए इसे समान रूप से अपनाया है।
	छप्पै	केशव,	
	छपद	केशव,	
	कवित्त	मान।	

[1] छंद-प्रभाकर, पृ० ९४ [2] सुजानचरित्र, छं० ३०, पृ० १८९-९९; भूषण-ग्रंथावली, छं० ३५६-९, पृ० ६४; करहिया को रायसौ, ना० प्र० प०, भा० १०, १९८६ वि०, छं० ४७, पृ० २८६-७ [3] छंद-प्रभाकर, पृ० ९५ [4] वीरसिंहदेव-चरित, छं० ४३-५, पृ० ७६; छं० २३, पृ० ८१ [5] सुजानचरित्र, छं० ८, पृ० ११४ [6] छंद-प्रभाकर, पृ० ९६ [7] जंगनामा, पंक्तियाँ १४२१-१४, पृ० ५८-९ [8] वीरसिंह देवचरित, छं० ३, पृ० १; छं० २४, पृ० ६८; गोराबादल की कथा, छं० १४, ४१-५, १०६, १२५-८; भूषण-ग्रंथावली, शिवराजभूषण, छं० २, २३, ३६०-१, वही, शिवाबावनी, छं० ३३, मतिराम-ग्रंथावली, जगद्विनोद, छं० ७०५, पृ० २१८-९, सुजान-चरित्र छं० १ पृ० २८; छं० २, पृ० ८; छं० १, पृ० २०, छं० ४६-८, पृ० १७८ ९, छं० ६६, पृ० २५१; हम्मीररासो, छं० २-३, १२३, १४२-३, २२२; राजविलास छं० १०, पृ० २; छं० ३८, पृ० ८; छं ६९, पृ० १२

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
४६.	छप्पै अभिराम	सूदन	—यह छप्पय का एक भेद प्रतीत होता है। सूदन ने इसका एक ही बार प्रयोग किया है।[1]
४७.	कलस—कवित्त	मान	— (रोला+उल्लाला) मान कवि ने एक प्रकार के छप्पय को ही इस नाम से पुकारा है ऐसा अनुमान होता है।[2]
४८.	दातार	जोधराज	—यह छंद छप्पय के लक्षणों पर खरा उतरता है। अतएव यह उसका अन्य नाम अथवा एक भेद प्रतीत होता है।[3]
४९.	हुलास	श्रीधर	—(पादाकुलक+त्रिभंगी)।[4] श्रीधर ने इस छंद के प्रत्येक चरण में विभिन्न मात्राओं का प्रयोग किया है, उदाहरणार्थ पंक्ति ८७० (३८ मात्रा); पंक्ति ८७१ (३४ मात्रा); पंक्ति ८७८ (२८ मात्रा); पंक्ति ९५० (२९ मात्रा)।[5] इस कवि ने भुजंगप्रयात तथा दोहे के सम्मिश्रण से भी हुलास छंद की रचना की है।[6]

(ई) मात्रिक विषम (चतुष्पदी) छंद

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
५०.	गाहा	सूदन	– (१२, १८, १२, १५=५७ मात्रा, आर्या छंद का अन्य नाम।[7]

(उ) मात्रिक सम अथवा विषम दंडक (चतुष्पदी)

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
५१.	कड़खा कड़षा	सूदन	– (८, १२, ८, ९=३७ मात्रा, अंत में य)[8] इस छंद का प्रयोग सूदन अपशकुन तथा युद्ध-सामग्री आदि के वर्णन के लिए हुआ है।[9]
५२.	उद्धत	सूदन	—(१०, १०, १०, १०=४० मात्रा, अंत में ग ल)।[10] सूदन ने इस छंद के द्वारा युद्ध का अच्छा वर्णन किया है।[11]
५३.	मदनहरा	सूदन	—(१०, ८, १४, ८ के विश्राम से ४० मात्रा, आदि में दो लघु और अंत में एक गुरु)।[12] सूदन ने इस छंद के आदि में गुरु लघु तथा लघु लघु दोनों क्रमों को विकल्प से अपनाया है।[13]

(२) वर्णिक छंद

(ऊ) सम चतुष्पदी

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
५४.	मारु	सूदन	—२ वर्ण (ग ल)।[14] भरतपुर की प्रति में इसका नाम सारू मिलता

---

[1] सुजानचरित्र, छं० १०, पृ० ९३ [2] राजविलास, छं० १०३-७, पृ० २६२-३ [3] हम्मीररासो, छं० ३१७-८, पृ० ६४ [4] छंद-प्रभाकर, पृ० ७२ [5] जंगनामा, पंक्ति ८६६-१२१९, पृ० ३६-५० [6] वही, पंक्ति ९७०-५, पृ० ४० [7] छंद-प्रभाकर, पृ० ९८; प्राकृत-पैंगलम्, श्लोक ५४-६१, पृ० १०८-१६; सुजानचरित्र, छं० ३, पृ० ६३ [8] छंद-प्रभाकर, पृ० ७६ [9] सुजानचरित्र, छं० २६-९, पृ० १७-८; छं० ८, पृ० १०९-१० [10] छंद-प्रभाकर, पृ० ७७ [11] सुजानचरित्र, छं० ५, पृ० १९० [12] छंद-प्रभाकर, पृ० ७७ [13] सुजानचरित्र, छं० २६-७ पृ० २०७-८ [14] छंद-प्रभाकर, पृ० ११९

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
	(सारू) (सार)		है। अतएव यही नाम ठीक ज्ञात होता है। सूदन ने केवल एक ही छंद का प्रयोग किया है, जिसके चारों चरण एक ही पंक्ति में लिख दिए गए हैं।[1]
५५.	नारी	केशव—	३ वर्ण (म)।[2]
५६.	हारी (हारीत)	सूदन—	५ (त ग ग)।[3] चारों चरणों के एक ही पंक्ति में लिखे जाने और विराम चिह्नों के अभाव के कारण इसके रूप को जानने में पाठक को भ्रम हो सकता है। इसकी तीसरी पंक्ति में केवल दो ही चरण दिए हैं।[4]
५७.	हंद (हंस)	सूदन—	५ (भ ग ग)। भरतपुर की प्रति में इसका नाम हंस मिलता है। इस छंद का यही नाम वास्तविक प्रतीत होता है।[5]
५८.	तिलक (तिलका)	सूदन—	६ वर्ण (स स)। सूदन ने इसके चारों चरण एक ही पंक्ति में लिख दिए हैं और उसमें विराम-चिह्नों का अभाव है।[6]
५६.	मंथान	सूदन—	६ (त त)।[7]
६०.	मालती	सूदन—	६ (ज ज)।[8]
६१.	विजोहा	सूदन—	६ (र र)।[9] सूदन ने इस छंद में युद्ध की तैयारी का अच्छा वर्णन किया है।[10]
६२.	संखनारी (शंखनारी)	सदानंद—	६ (य य)।[11]
	संखजारी	सूदन—	
६३.	सखिवदना (शशिवदना)	सदानंद—	६ (न य)।[12]
६४.	करहेची (करहंस) करहंची।	सूदन—	७ (न स ल)।[13] सूदन ने इस छंद में अपशकुनों का वर्णन किया है। भरतपुर की प्रति में इसका नाम करहंची दिया है।[14]
६५.	समानिका	सूदन—	७ (र ज ग)।[15]

---

[1] सुजानचरित्र, छं० ७६, पृ० २५४ [2] छंद-प्रभाकर, पृ० ११६ [3] वही, पृ० १२२ [4] सुजानचरित्र, छं० ५३, पृ० २४६ [5] छंद-प्रभाकर, पृ० १२२; भरतपुर की प्रति, पृ० १३२; सुजानचरित्र, छं० ३, पृ० १८६-६० [6] छंद-प्रभाकर, पृ० १२३; सुजानचरित्र, छं० ६, पृ० १६५ [7] छंद-प्रभाकर, पृ० १२४ [8] वही, पृ० वही, [9] वही, पृ० १२३ [10] सुजानचरित्र, छं० ३३, पृ० १४६ [11] छंद-प्रभाकर, पृ० १२३ [12] वही, पृ० १२४ [13] वही, पृ० १२६; प्राकृत-पैंगलम्, श्लोक ६२-३, पृ० २७५-६ [14] सुजानचरित्र, छं० ४६, पृ० २४८ [15] छंद-प्रभाकर पृ० १२५

छं० सं०	छंद	कवि	विवरण
६६.	अर्द्धनाराच, लघुनाराच,	जोधराज, जोधराज, मान	—८ (ज र ल ग) यह छंद प्रमाणिका[1] के समान है। संभवतः इन कवियों ने प्रमाणिका छंद को ही विभिन्न नामों से पुकारा है। इस छंद द्वारा स्तुति, वसंत, नखशिख, राज्याभिषेक आदि का वर्णन किया गया है।[2]
६७.	नगस्वरूपिनी (नगस्वरूपिणी), प्रमानिका (प्रमाणिका)	केशव, सूदन	—८ (ज र ल ग)[3] इन कवियों ने अपनी रुचि के अनुसार इस छंद के दोनों नामों में से एक का प्रयोग किया है। यह छंद अर्द्धनाराच तथा लघुनाराच के समान है। अतः संभव है कि ये सब एक ही छंद के विभिन्न नाम हों।
६८.	निगालिका	सूदन	—८ (ज र ल ग) यह छंद प्रमाणिका के समान है, अतएव यह उसी का अन्य नाम प्रतीत होता है।[4]
६९.	मानक्रीड़ा	सूदन	—८ (न स ल ग) यह छंद पद्म (कमल) के समान है।[5] अतएव यह उसी का अन्य नाम भासित होता है।[6]
७०.	चपला (विद्युन्माला)	सूदन	—८ (म म ग ग)।[7] सम्भवतः सूदन ने विद्युन्माला छंद के लिए नवीन नाम चपला की सृष्टि की है।
७१.	तुंग	सूदन	—८ (न न ग ग)।[8]
७२.	मल्लिका	सूदन	—८ (र ज ग ल)।[9]
७३.	हरि हरी (ईश)	सूदन	—८ वर्ण। यह छंद ईश (स ज ग ग)।[10] के लक्षणों के समान है। ऐसा अनुमान होता है कि सूदन ने ईश के पर्यायी नाम हरि का प्रयोग किया है। यह छंद कहीं-कहीं पर सदोष है।
७४.	महालच्छिमी	सूदन	—९ (र र र)।[11] सूदन के छंद की प्रथम पंक्ति इन नियमों पर पूर्ण रूप से खरी नहीं उतरती है।[12]
७५.	संजुता, संयुता	सूदन	—१० (स ज ज ग)।[13] सूदन ने कहीं-कहीं पर इस नियम का पालन नहीं किया है।[14] इस छंद द्वारा युद्ध की तैयारी और युद्ध के वर्णन का अच्छा चित्रण किया गया है।[15]
७६.	सारवती	सूदन	—१० (भ भ भ ग)।[16] भरतपुर की प्रति में इसका नाम सारवत मिलता है।[17]

---

[1] छंद-प्रभाकर, पृ० १२८ [2] हम्मीररासो, छं० ७४-७, पृ० २५; छं० १३०-४१, पृ० २७-८; राजविलास छं० २-२०, पृ० ८२-३ [3] छंद-प्रभाकर, पृ० १२८ [4] सुजानचरित्र, छं० ७७, पृ० २५४ [5] छंद-प्रभाकर पृ० १२९ [6] सुजानचरित्र, छं० ३९, पृ० २४६ [7] छंद-प्रभाकर, पृ० १२७ [8] वही, पृ० १२९ [9] वही, पृ० १२७ [10] वही, पृ० १२८ [11] वही, १३१ [12] सुजानचरित्र, छं० २०; पृ० १६०-१ [13] छंद-प्रभाकर, पृ० १३५ [14] राजविलास, छं० १३ (प्रथम दो पंक्तियाँ), पृ० ३० [15] वही, छं० ११, पृ० १८५-७ [16] छंद-प्रभाकर, पृ० १३४ [17] भरतपुर की प्रति, पृ० १७३

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
७७.	मोहठा (बाला)	सूदन—१० (र र र ग)।[1]	सूदन रचित इस छंद की ८ वीं पंक्ति के उत्तरार्द्ध को छोड़कर शेष सम्पूर्ण छंद 'बाला' के नियमों के अनुरूप है। अतएव यह बाला का ही अन्य नाम प्रतीत होता है।[2]
७८.	इन्द्रबज्र (इन्द्रबज्रा)	सूदन—११ (त त ज ग ग)।[3]	
७९.	दोधक	सूदन—११ (भ भ भ ग ग)।[4]	
८०.	सालिनी (शालिनी)	सूदन—११ (म त त ग ग)।[5]	
८१.	सुमुखी	सूदन—११ (न ज ज ल ग)।[6]	
८२.	सैनिका	सूदन—११ (गुरु-लघु रूप से ११ वर्ण। सुविधा के लिए इस प्रकार भी कह सकते हैं—र ज र ल ग)।[7]	
८३.	स्वागता	सूदन—११ (र न भ ग ग)।[8]	सूदन ने इस छंद द्वारा ब्रज-शोभा का वर्णन किया है।[9]
८४.	भुजंगी	मान, सूदन, गुलाब,	११ (य य य ग ग)।[10] गुलाब रचित भुजंगी छंद भुजंगप्रयात के समान है।[11] मान ने इस छंद में १२ अथवा अधिक वर्णों का प्रयोग किया है, इसलिए इनका यह छंद भी भुजंगप्रयात के समान है। सूदन कृत इस छंद में १२ अथवा १३ अथवा १४ अक्षर मिलते हैं जो प्रायः भुजंगप्रयात के ही समान हैं।[12] इससे सिद्ध होता है कि इन कवियों ने भुजंगी छंद के रूप में परिवर्तन करना आरंभ कर दिया था। यह भी संभव है कि कालान्तर में भुजंगप्रयात का ही नाम भुजंगी प्रयुक्त होने लगा हो। इस छंद द्वारा युद्ध-वर्णन, ब्रज-चित्रण, बीभत्स-रस आदि का वर्णन किया गया है।[13]
८५.	तोटक त्रोटक	सूदन—१२ (स स स स)।[14] सूदन,	सदानन्द के त्रोटक छंद प्रायः सदोष हैं।[15] इस छंद में सेना-प्रयाण, युद्ध-वर्णन, प्रकृति-चित्रण, वीर, बीभत्स

---

[1] छंद-प्रभाकर, पृ० १३५ [2] सुजानचरित्र, छं० ३७, पृ० २४५ [3] छंद-प्रभाकर, पृ० १४१ [4] वही, पृ० १४६ [5] वही, पृ० १३७ [6] वही, पृ० १४७ [7] प्राकृत-पैंगल, श्लोक ११०-१, पृ० ४२२-३; प्राकृत-पिंगल-सूत्राणि, पृ० १३८; सुजानचरित्र, छं० १८, पृ० २२६ [8] छंद-प्रभाकर, पृ० १३९ [9] सुजानचरित्र, छं० ४०, पृ० २४६ [10] छंद-प्रभाकर, पृ० १३८-९ [11] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० १०, १९८६ वि०, छं० ३८, पृ० २८४ [12] सुजानचरित्र, छं० १२, पृ० ११-२ [13] वही, छं० १३, पृ० ५१-२; छं० ६, पृ० ८२; छं० ६०, पृ० २३४-५, राजविलास, छं० २३-२९, पृ० ८४-७; छं० २७-५१, पृ० १८९-९२ [14] छंद-प्रभाकर, पृ० १५२ [15] ना० प्र० प०, नवीन संस्करण, भा० ५, १९८१ वि०, छं० १३ (तीसरी और चौथी पंक्ति), पृ० ११५; छं० ६४ (प्रथम पंक्ति), पृ० १२४

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
		मान, सदानंद, जोधराज	आदि का सुंदर प्रतिपादन हुआ है।[१] जोधराज के कुछ त्रोटक केवल द्विपदी हैं।[२]
८६.	भुजंगप्रयात	केशव, श्रीधर, सदानंद, सूदन, पद्माकर, जोधराज	—१२ (य य य य)।[३] सदानंद ने इस छंद में कतिपय स्थलों पर १३ वर्णों का प्रयोग किया है। उनका यह छंद अधिकांश स्थलों पर दोषपूर्ण है।[४] जोधराज के कुछ छंद दो पदों के हैं और छंद ५५७ में छः पद हैं।[५] सूदन का एक भुजंगप्रयात दोहे के समान हैं।[६] भरतपुर की प्रति में एक छंद का नाम भुजंगप्रयात के स्थान पर भुजंगी माना गया है।[७] इस छंद का प्रयोग युद्ध, ऋतु, प्रकृति, बीभत्स, वीर आदि के वर्णन के लिए हुआ है।[८]
८७.	मोतीदाम -	जटमल, मान, गुलाब, जोधराज,	—१२ (ज ज ज ज)।[९] भरतपुर की प्रति में एक स्थल पर इसका नाम मुतियकदाम दिया है।[१०] गुलाब कवि ने इस छंद में कहीं-कहीं पर वर्णों का क्रम (स स स स) रखा है।[११] इस छंद में युद्ध, नगर, बाल-लीला, ऋतु आदि विविध विषयों का चित्रण किया गया है।[१२]
	मुक्तादाम-	जोधराज, सूदन,	
	मुतियादाम	सूदन	
८८.	मोदक	सूदन	—१२ (भ भ भ भ)।[१३] सूदन रचित छंद की तृतीय पंक्ति का उत्तरार्द्ध इस नियम के अनुकूल नहीं है।[१४]
८९.	लच्छीधर, लछमीधर	सूदन	—१२ (र र र र)।[१५] युद्ध की प्रस्तुतियों तथा वर्णनों के लिए इस छंद का प्रयोग किया गया है।[१६]

---

[१] सुजानचरित्र, छं० १०, पृ० ४५-६; छं० ५, पृ० ११२-३; छं० १३, पृ० १८७-८; राजविलास, छं० १२-२६, पृ० २३३-५; हम्मीररासो, छं० ११६-२१, पृ० २४-५; छं० ७२६-४६; पृ० १४५-८ [२] वही, छं० ४५४, ५८०, ७४६, ८७८ [३] छंद-प्रभाकर, पृ० १५० [४] ना० प्र० प० भा० ५, १६८१ वि, छं० १६, २१, २२, पृ० ११६-७; छं० २८, पृ० ११८ [५] हम्मीररासो, छं० ६६, २१६, ४८८, ७७८ [६] सुजानचरित्र, छं० १६, पृ० ४७ [७] वही, छं० १५, पृ० ४७ [८] वही, छं० २५, २६, पृ० १६६; हम्मीररासो, छं० १११-४, १६१-२१६, ८८८-६२० [९] छंद-प्रभाकर, पृ० १५४, [१०] भरतपुर की प्रति, पृ० १४० [११] ना० प्र० पत्रिका, नवीन संस्करण भा० १०, १६८६ वि०, छं० ३४ (पंक्तियाँ ६, १०, ११ आदि), पृ० २८२ ३ [१२] सुजानचरित्र, छं० ८, पृ० ३७-८; छं० २, पृ० ८६-७; राजविलास; छं० ८५-१४१, पृ० ४५-५३; छं० १७२-६२, पृ० ५८-६१; हम्मीररासो, छं० १२५-६, पृ० २६-७ [१३] छंद-प्रभाकर, पृ० १५५ [१४] सुजानचरित्र, छं० १०, पृ० २१३-४ [१५] छंद-प्रभाकर, पृ० १५१ [१६] सुजानचरित्र, छं० १६, पृ० १६; छं० ४, पृ० २१-२,

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
९०.	सारंग	सूदन	—१२ (त त त त)।[1] इस छंद द्वारा युद्ध-चित्रण तथा वीररस का पूर्ण परिपाक हुआ है।[2]
९१.	कंद	सूदन	—१३ (य य य य ल)।[3] इसमें युद्ध का अतीव सुंदर वर्णन हुआ है।[4]
९२	तारक	सूदन	—१३ (स स स स ग)।[5]
९३.	वसन्ततिलका	सूदन	–१४ (त भ ज ज ग ग)।[6]
९४.	कलहंस (मनहंस)	सूदन	—१५ (स ज ज भ र)।[7] सूदन द्वारा प्रयुक्त यह छंद 'मनहंस' के समान है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूदन ने मनहंस का नाम कलहंस रखकर छंदों के नाम परिवर्त्तित करने की प्रवृत्ति का परिचय दिया है। उनके इस छंद में कहीं-कहीं पर कुछ दोष भी हैं, जैसे उसकी 'चौथी' और 'पाँचवीं' पंक्ति उक्त नियम पर खरी नहीं उतरती हैं। उनमें १६, १६ अक्षर हैं।[8]
९५.	चामर	सूदन	—१५ (र ज र ज र)।[9] युद्ध-वर्णन।[10]
९६.	निशिपालिका	सूदन	—१५(भ ज स न र)।[11]
९७.	मालिनी (मंजुमालिनी)	सूदन	—१५ वर्ण (न न म य य=८,७)।[12]
९८.	चंचला	सूदन	—१६ (र ज र ज र ल)।[13]
९९.	नील	सूदन	—१६ (भ भ भ भ भ ग)।[14]
१००.	नाराच	केशव, सूदन, जोधराज,	—१६ (ज र ज र ज ग)।[15] जोधराज के कुछ नाराच छंद अर्द्धनाराच प्रतीत होते हैं और एक छंद (२९३) की प्रथम पंक्ति में १७ अक्षरों का प्रयोग हुआ है।[16]
	बृद्धिनाराच	मान, सूदन	सूदन के नाराच छंद ऊपर दिए हुए लक्षणों के समान हैं, पर उनके बृद्धिनाराच उससे भिन्न और (ज र ल ग) के अनुरूप हैं, जिनमें कहीं-कहीं पर कुछ दोष भी आ गए हैं।[17] मान के बृद्धिनाराच उक्त लक्षणों के अनुकूल होते हुए भी यत्र-तत्र सदोष हैं, यथा छंद ४१ की प्रथम पंक्ति गुरु से आरम्भ हुई है।[18] केशव ने ऊपर दी हुई नाराच छंद

---

[1] छंद-प्रभाकर, पृ० १५२, [2] सुजानचरित्र, छं० ७, पृ० ८९-९१; छं० ६, पृ० १८३
[3] छंद-प्रभाकर, पृ० १६१ [4] सुजानचरित्र, छं० ११, पृ० १०२-३; छं० ४२, पृ० १४९-५१; छं० ३५, पृ० २०९-११ [5] छंद-प्रभाकर, पृ० १६२; [6] वही, पृ० १६८, [7] वही, पृ० १७२,
[8] सुजानचरित्र, छं० १९ पृ० १५९-६० [9] छंद-प्रभाकर, पृ० १७२ [10] सुजानचरित्र, छं० ९, पृ० ११५-६ [11] छंद-प्रभाकर, पृ० १७४ [12] वही, पृ० १७५ [13] वही, पृ० १७७
[14] वही, पृ० १७८ [15] रघुनाथरूपक गीतांरो, परिशिष्ट, पृ० २७, [16] हम्मीररासो, छं० २९३, पृ० ५९ छं० ४२०-६, पृ० ८६-७ [17] सुजानचरित्र, छं० २८, पृ० १९६-७ [18] राजविलास, पृ० ८७

क्र० सं० छंद कवि विवरण

की परिभाषा को स्वीकार किया है, पर उनका यह छंद उसके अनुरूप नहीं है। सर्व प्रथम तो यह कि प्रत्येक चरण का आरम्भ ल ग से न करके ग ल से किया है। दूसरे वह अपने वर्त्तमान रूप में विराम-चिह्नों के इस ढंग से प्रयुक्त होने के कारण ८ वर्ण के छंद के समान प्रतीत होने लगता है।[1]

सूदन, जोधराज तथा मान के नाराच छंद पंचचामर (नराच)[2] तथा प्रमाणिका[3] के समान हैं। केशव के नराच की अपनी निजी विशेषता है।

इस छंद द्वारा युद्ध-चित्रण आदि का सुंदर-वर्णन हुआ है।[4]

१०१. चर्चरी सूदन—१८ (र स ज ज भ र=८,१०)।[5]

१०२. सुंदरी (मदिरा) सूदन—२२ (भ भ भ भ भ भ भ ग)। यह छंद मदिरा (मालिनी) सवैया के समान है।[6]

१०३. मालती मत्तगयंद सूदन, केशव, मतिराम भूषण, गुलाब, सदानन्द—२३ (भ भ भ भ भ भ भ ग ग)।[7] सूदन ने सात स्थानों पर सवैया छंद का प्रयोग किया है, जिनमें से पाँच मालती सवैया हैं। भूषण ने शिवराजभूषण में ५० तथा फुटकर छंदों में ५ मालती सवैयों का प्रयोग किया है। उनके इस छंद में एक स्थान पर कुछ दोष आ गए हैं।[8] सदानन्द को इस छंद का मत्तगयंद नाम अधिक प्रिय था। गुलाब द्वारा प्रयुक्त मालती सवैया प्रायः सदोष हैं।[9] केशव द्वारा प्रयुक्त सवैयों में से ३ मालती हैं। उनके एक सवैया के प्रथम दो चरण मालती तथा शेष दो अरसात के समान हैं।[10]

इन सभी कवियों ने इस छंद का प्रयोग शृंगार-रस, दान, प्रशंसा आदि विषयों के लिए किया है।

१०४. अरसात सवैया भूषण-२४ (भ भ भ भ भ भ भ र)।[11]

१०५. किरीट सवैया-भूषण-२४ (भ भ भ भ भ भ भ भ)।[12] भूषण के इस छंद में यत्र-तत्र कुछ दोष आ गए हैं, पर गुरु लघु का ठीक ध्यान रखकर छंद पाठ करने से उसके दोषों का कुछ परिहार हो सकता है।[13]

---

[1] लाला भगवानदीन, केशव-कौमुदी, भा० १, पृ० ३४ (पाद-टिप्पणी) छं० के लक्षण के लिए, वीरसिंहदेव-चरित, छं० १ पृ० ४१, [2] छंद-प्रभाकर, पृ० १७७-८ [3] वही, पृ० १२८ [4] सुजानचरित्र, छं० १४, पृ० ३४; छं० २२, पृ० २१८-२०; राजविलास, छं० ६९-८२, पृ० ७०-७३; हम्मीररासो, छं० ४२०-४२६, पृ० ८६-७ [5] छंद-प्रभाकर, पृ० १८७ [6] छंद-प्रभाकर, पृ० १९९; सुजानचरित्र, छं०१७, पृ० १४२ [7] छंद-प्रभाकर, पृ० २०१-२ [8] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ३५ (प्रथम दो पंक्तियां), पृ०६ [9] ना०प्र०प०, नवीन संस्करण, भा०१०, १९८६ वि०, छं० ३१, पृ० २८१; छं० ४१, पृ० २८५; छं० ४९-५०, पृ० २८७; छं० ६३, पृ० २८९ [10] वीर-सिंहदेवचरित, छं० ७, पृ० १७-८; छं० ५८, पृ० ५५; छं० सवैया, पृ०७३; छं० ३२, पृ० ८५ [11] छंद-प्रभाकर, पृ० २०५ [12] वही, पृ० वही [13] भूषण-ग्रंथावली, छं० ३२२, पृ० ५७

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
१०६.	गंगोदक सवैया	सूदन	-२४ (र र र र र र र र)।[1] युद्ध-वर्णन।[2]
१०७.	दुर्मिल सवैया	भूषण, गुलाब,	-२४ (स स स स स स स स)।[3] गुलाब द्वारा प्रयुक्त दुर्मिल सवैया की प्रथम पंक्ति में २२ वर्ण तथा चतुर्थ पंक्ति में यति भंङ्ग दोष है।[4]
	चंद्रकला	सूदन	सदानंद को इसका चंद्रकला नाम अधिक प्रिय लगा है।
१०८.	मनहरण (मुक्तहरा)	सदानन्द सूदन	—२४ (ज ज ज ज ज ज ज ज)। यह छंद मुक्तहरा का अन्य नाम है।[5]
१०६.	मकुंदडामर	मान	—२४ (स स स स स स स स)। यह छंद दुर्मिल सवैया के समान है।[6]
११०.	सवैया	केशव	—केशव के कुछ सवैयों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :— छंद ४, पृ० ३६, प्रति चरण में ३३, ३१, ३०, ३१ वर्ण हैं। छंद ४१, पृ० ४२, प्रति चरण में ३१, २६, ३१, ३३ वर्ण हैं। छंद ४०, पृ० ४७, प्रति चरण में ३१, ३१, ३१, ३१ वर्ण हैं। छंद २५, पृ० ८३-८४ प्रति चरण में ३१, ३२, ३२, ३१ वर्ण हैं। वीरसिंहदेव-चरित के ऊपर दिए हुए छंदों के वर्णों की गणना से विदित होता है कि उपर्युक्त सभी छंद कवित्त के बहुत निकट पहुँच जाते हैं। संभवतः इस कवि ने इन छंदों की रचना इसलिए की थी कि वे सवैया और कवित्त दोनों को एक ही छंद में मिश्रित कर दें। इस धारणा की पुष्टि इससे भी हो जाती है कि केशव ने एक स्थल पर एक ही छंद के सवैया और कवित्त दोनों नाम दिए हैं, यथा :— (छंद २५, पृ० ८३-८४)।

(ओ) वर्ण-मुक्त-वृत्त

क्र० सं०	छंद	कवि	विवरण
१११.	कवित्त	केशव, भूषण, श्रीधर, सदानंद, सूदन, गुलाब, पद्माकर, जोधराज,	—३१ वर्ण (प्रत्येक चरण में ८, ८, ८, ७ अथवा १६, १५)।[7] यह छंद इन सभी कवियों को बहुत प्रिय था। भूषण की अधिकांश कविता इसी छंद में हुई है। पद्माकर ने इसका प्रयोग जगद्विनोद में किया है। जोधराज ने केवल एक ही छंद लिखा है। सूदन ने ६४ स्थानों पर इसका नाम कवित्त और एक स्थान पर घनाक्षरी दिया है। वीरसिंह-देव-चरित में (पृ० ३७ पर) छंद ६३ कवित्त है और उसके नीचे की पंक्तियाँ चौपई हैं, जिनका अलग से नाम नहीं दिया गया है।

---

[1] छंद-प्रभाकर, पृ० २०३ [2] सुजानचरित्र, छं० १२-४, पृ० १६२-३ [3] छंद-प्रभाकर, पृ० २०३ [4] ना० प्र० प०, नवीन-संस्करण, भा० १०, १९८६ वि०, छं० ५७, पृ० २८८ [5] छंद-प्रभाकर, पृ० २०४; सुजानचरित्र, छं० २५, पृ० २०७ [6] छंद-प्रभाकर, पृ० २०३; सुजानचरित, छं० २८-३८, पृ० १००-३; छं० ७७-६१, पृ० २५६-६०, [7] छंद-प्रभाकर पृ० २१३-६

क्र० सं० छं० कवि— विवरण

मान—मान ने कवित्त नाम का प्रयोग छप्पय के लिए किया है, जिसका
मतिराम उल्लेख छप्पय के अन्तर्गत किया जा चुका है।
घनाक्षरी सूदन।

शृंगार, वंदना, वीरता, दान, हाथी-घोड़े, बीभत्स रस आदि सभी विषयों के लिए इस छंद का प्रयोग हुआ है, जिनके उदाहरण उक्त सभी कवियों के ग्रंथों में भरे पड़े हैं।

११२. सर्वकल्यान-सदानंद—३१ वर्ण (१६, १५)। यह छंद कवित के समान है, पर सदानंद
सर्वकल्याण के छंद ८० की तीसरी पंक्ति में १४, १६ तथा छंद ६८ की प्रथम पंक्ति में १७, १५ पर यति है, शेष चरण कवित्त के समान हैं।[1]

११३. रूपघना सदानंद—(३२ वर्ण अन्त्य लघु)।[2] सूदन ने बत्तीसा कवित्त नाम रूपघनाक्षरी
बत्तीसा कवित्त सूदन के लिए प्रयुक्त किया है। उनके इन छंदों में से छंद १३ रूपघनाक्षरी
(रूपघनाक्षरी) के समान है और छंद १४ मनहरण के अनुकूल।[3]

११४. कवित्त-घनाक्षरी सूदन—सूदन ने एक छंद में कवित्त तथा रूपघनाक्षरी दोनों का रूपक बाँधा
रूपक है, जिसका विवरण इस प्रकार है :—

प्रथम चरण १७, १४=३१ अन्त में लघु,
द्वितीय ,, १८, १४=३२ अन्त में लघु,
तृतीय ,, १७, १४=३१ अन्त में लघु,
चतुर्थ ,, १८, १४=३२ अन्त में लघु।[4]

(३) अनिश्चित छंद

(अ) मात्रिक

११५. रसावल मान—१० मात्रा अन्त में ल ग।
जोधराज १० मात्रा अन्त में ग।
रसाउलो जटमल। प्रथम चरण में १६ मात्रा तथा द्वितीय में १०, अन्त में ग ल।

११६. विराज मान—१० मात्रा अन्त में ल ग ग।

११७. बगहंस सूदन—प्रति चरण में १२ मात्रा।

११८ अधमा श्रीधर—१४ मात्रा।

११६. अर्धक श्रीधर—१४ मात्रा। अन्त में एक चरण (पंक्ति ६५६) को छोड़कर शेष स्थलों पर ल ग है। इरविन ने पंक्ति ६४७-६५६ को दोहरा माना है, जो ठीक नहीं है।[5]

---

[1] ना० प्र० प०, नवीन संस्करण, भा० ५, १९८१ वि०, पृ० १२७-३० [2] छंद-प्रभाकर, पृ० २१६-७ [3] सुजानचरित, पृ० १५ [4] वही, छं० २७, पृ० ७५ [5] जंगनामा, पंक्ति ६४७-६५, पृ० २७; ज० ए० सो० बं०, संख्या LXIX, १९०१ ई०, पृ० २

क्र० सं०	छं०	कवि—	विवरण
			ग्रंथों की सहायता ली जा सकी है उनमें इनके लक्षण नहीं मिलते हैं। अतएव उक्त छंदों की नामावली के साथ कवि द्वारा प्रयुक्त उनके रूपों का विश्लेषण कर दिया गया है जिससे उनका रूप समझने में सहायता मिल सके।
	वचनिका		उपर्युक्त छंदों के अतिरिक्त आलोच्यधारा में वचनिका। (वार्ता) का भी प्रयोग मिलता है। इसके प्रयोग-कर्त्ता जोधराज हैं। उन्होंने इसके वार्त्ता, वचनिका, वार्त्तिक आदि नामों का प्रयोग किया है। उन्होंने इसमें ऋतु-वर्णन, हम्मीर-जन्म आदि का वर्णन किया है।[1]

[1] रघुनाथ रूपक गीतांरो, पृ० २४२-५; हम्मीररासो, पृ० १८, २२-३, ३४, १८०, १८२, १८५-६।

अध्याय ७

प्रकृति-चित्रण

सामान्य परिचय—हिंदी साहित्य में प्रकृति का आलंबन रूप अपेक्षाकृत बहुत कम और उद्दीपन तथा अप्रस्तुत-स्वरूप प्राचुर्य से मिलता है। गिनी-गिनाई वस्तुओं के नाम लेकर अर्थ-ग्रहण-मात्र कराना हिंदी कवियों का अधिकतर काम रहा है। उन्होंने सूक्ष्म रूप-विवरण और आधार-आधेय की संश्लिष्ट-योजना के साथ बिंब-ग्रहण नहीं कराया है।

इसके साथ ही राज-सभाओं में प्रचलित समस्यापूर्त्ति की परिपाटी के परिणामस्वरूप कवि उपमा, उत्प्रेक्षा आदि की बे-सिर पैर की अद्भुत उक्तियों द्वारा वाहवाही लूटते थे। जो कल्पना पहले भावों और रसों की सामग्री जुटाया करती थी वह अब बाज़ीगर का खेलवाड़ करने लगी थी।

केशव के पीछे रीतिकालीन परंपरा में एक प्रकार से प्रबंध काव्यों का बनना बंद सा हो गया था। आचार्य बनना प्रमुख समझा जाने लगा, कवि बनना नहीं। अलंकार और नायिका-भेद के लक्षण-ग्रंथ लिखकर अपने रचे हुए उदाहरण देने में ही कवियों ने अपने कार्य की समाप्ति मान ली थी। ऐसे फुटकर पद्य रचयिताओं की परिमित कृति में प्राकृतिक दृश्य ढूँढ़ना ही व्यर्थ है। श्रृंगार के उद्दीपन के रूप में षट्ऋतु का वर्णन अवश्य मिलता है, पर उसमें बाह्य-प्रकृति के रूपों का प्रत्यक्षीकरण मुख्य नहीं होता, नायक-नायिका का प्रमोद या संताप ही मुख्य होता है। आख्यान-काव्य में दृश्य-वर्णन को बहुत कम स्थान दिया गया है। यदि कुछ वर्णन परंपरा-पालन की दृष्टि से है भी तो वह अलंकार प्रधान है। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि की भरमार इस बात की स्पष्ट सूचना दे रही है कि कवि का मन दृश्यों के प्रत्यक्षीकरण में लगा नहीं है। वह उचट उचट कर दूसरी ओर जा रहा है। भक्ति-धारा के कवियों में तुलसी तथा सूर ने जो प्रकृति-चित्रण किए वे भी परंपरा का अनुसरण मात्र समझे जाने चाहिए।[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि हिंदी में प्रकृति-चित्रण प्रायः उपेक्षित रहा है। वह एक बँधी हुई परंपरा के अंतर्गत चलता रहा है। मध्य-युगीन वीर-काव्यधारा उसी परिपाटी का अनुकरण करती रही है। आचार्य केशव उस परंपरा के संचालक एवं पोषक हुए हैं।

अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि आलोच्य वीर-काव्य-धारा में प्रकृति प्रायः उपेक्षित रही है। उसका जो कुछ भी थोड़ा-बहुत रूप मिलता है, वह एक परंपरागत शैली का अनुकरण मात्र है। इन कवियों में से कुछ—केशव, भूषण, पद्माकर आदि आचार्य और रीति-कवि। अतएव अलंकार, चमत्कार आदि की प्रवृत्ति से उनके प्रकृति-चित्रण आक्रांत हो गये थे। इस धारा के कवियों ने प्रकृति-शैली के पौराणिक रूढ़िगत ढंग को भी अपनाया है। उन्होंने उसे विचित्र-विचित्र

---

[1] **चिन्तामणि, भाग २, पृ० १-४६; हिन्दी-काव्य में प्रकृति, पृ० २०-४४; हिस्ट्री ऑव् संस्कृत लिटरेचर, भाग १, भूमिका, पृ०** CXXVI-CXXIX

कल्पनाओं से सजाया और सँवारा है। प्रकृति को उद्दीपन के रूप में ही उन्होंने देखा है। प्रकृति के सहचरण-रूप को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को इन कवियों ने बहुत कम अपनाया है। संस्कृत-काव्य-परंपरा की ह्रास-शैली के प्रभाव से प्रकृति का उद्दीपन-विभाव रूढ़िवाद होकर मध्ययुग की विभिन्न परंपराओं में उद्दीपन की विभिन्न प्रवृत्तियों से युक्त फैला हुआ है। प्रकृति नितांत अस्वाभाविक स्थिति तक पहुँची हुई है। इसके प्रभाव से प्रस्तुत काव्य-धारा भी अछूती नहीं रह सकी है। ऋतु-वर्णन अपने दोनों रूपों—उत्तापक और उत्तेजक से युक्त है। तथा ऋतु के अवसर पर विलास एवं ऐश्वर्य संबंधी क्रिया-कलापों की योजना की गई है, जिसका प्रकृति से कोई संबंध नहीं रह जाता है। उदाहरणार्थ 'हम्मीर रासो' का प्रकृति-चित्रण इस संबंध में देखा जा सकता है। साथ ही आरोप के क्षेत्र में स्थूलता तथा वैचित्र्य की ओर अधिक प्रवृत्ति पाई जाती है।

इस क्षेत्र के मुक्तक ग्रंथों में परिमित क्षेत्र रहने के कारण प्रकृति को अधिक प्रधानता नहीं मिली है साथ ही प्रबंध-काव्यों में राज-दरबारों के प्रभाव के कारण प्रकृति को अधिक प्रधानता नहीं मिली है। दोनों ही प्रकार के ग्रंथों पर ऐश्वर्य-विलास, युद्ध-वर्णन, नायक की प्रशंसा, शौर्य-चित्रण, युद्ध-सामग्री, वीरों तथा अन्य वस्तुओं की लंबी सूचियों के कारण भी इन ग्रंथों में प्रकृति उपेक्षित रही है। इन कवियों की प्रवृत्ति ठाटबाट की ओर अधिक थी। अपभ्रंश कवियों की साहित्यिक परम्परा में धार्मिक वातावरण और सामन्ती कवियों में श्रृंगारिक भावना अधिक है। इसका भी प्रभाव इस धारा पर स्पष्ट रूप से वर्तमान है।

इन्हीं कारणों से इस धारा में प्रकृति प्रायः उपेक्षित रही है। उसका जो कुछ भी उल्लेख किया गया है वह केवल परम्परा का अनुकरण मात्र है। पर कुछ कवियों ने प्रकृति के अच्छे उदाहरण भी अपने ग्रंथों में रक्खे हैं, जिनका यथास्थान विवेचन कर दिया गया है। ये उदाहरण इस बात के द्योतक हैं कि इन कवियों में प्रकृति-चित्रण संबंधी मौलिकता तथा स्वाभाविकता का एकदम अभाव न था, पर परम्परा, राजनैतिक उथल-पुथल तथा अन्य परिस्थितियों ने उन्हें ऐसा विवश बना दिया था कि प्रकृति की ओर देखने का उन्हें अवसर ही न मिल सका। इन्हीं कारणों से इस धारा में प्रकृति का वह स्वरूप मिलता है जिसकी ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है।

नीचे प्रत्येक कवि द्वारा निश्चित प्रकृति का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है, जिससे इस काव्य धारा के प्रकृति-चित्रण का वास्तविक ज्ञान पाठक को हो सके।

केशव

केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित तथा हिंदी के आचार्य थे। इसीलिए अपनी आचार्यत्व-भावना के वशीभूत होकर संस्कृत-लक्षण-ग्रंथों के आधार पर उन्होंने कवि-प्रिया में वर्ण्यों की एक तालिका उपस्थित की है। उसमें उन्होंने उन वस्तुओं के नाम गिना दिए हैं, जिनका वर्णन कवि को करना चाहिए। अपने इन्हीं लक्षणों के अनुसार परवर्ती संस्कृत-कवियों की शैली के अनुकरण पर केवश ने प्रकृति-चित्रण किए हैं। यद्यपि 'कवि-प्रिया' की रचना उनके आलोच्य ग्रंथों के पश्चात् हुई है, पर उसका आधार संस्कृत-लक्षण-ग्रंथ थे, जिनके सिद्धांत आलोच्य ग्रंथ निर्मित करते समय केशव के मस्तिष्क में वर्तमान थे। इसीलिए 'कवि-प्रिया' में कथित प्रकृति-वर्णन संबंधी विभिन्न उदाहरणों को देते हुए आगे के पृष्ठों में केशव के आलोच्य ग्रंथों के प्रकृति-चित्रण का विवेचन किया जा रहा है, जिससे उनके प्रकृति-वर्णन संबंधी विचार स्पष्ट रूप से पाठक के समक्ष स्पष्ट हो सके।

'वीरसिंहदेव-चरित्र' में सूर्योदय, वेतवा, संगम, वर्षा तथा शरद्-ऋतु के वर्णन मिलते हैं। इन पर नीचे क्रमानुसार विचार किया जा रहा है :—

सूर्योदय—केशव ने सूर्योदय का वर्णन करने के लिए अरुणता, पय-पावनता, मुनिकृत शंख-शब्द, वेद-ध्वनि पंथ पर, यात्रियों का आना-जाना, कोक, कोकनद के संताप का दूर होना, कुवलय, तारा आदि के दुःख का उल्लेख करना माना है।[1]

वीरसिंहदेव-चरित्र मे वर्णित सूर्योदय के कतिपय छंद रामचन्द्रिका में ज्यों के त्यों मिलते हैं।[2] इनका यह सूर्य-वर्णन आलंकारिक है। एक ही पद्य में कतिपय अलंकारों का मिश्रण करके केशव ने वर्णन को गौण बना दिया है। उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, संदेह, श्लेष आदि अलंकारों के फेर में पड़कर कवि कहीं पर सूर्य को "अरुण मुखवाला वानर" और कहीं गगन की अरुणिमा को "बड़वानल ज्वाल" की अद्भुत चमत्कारपूर्ण कल्पना करने मे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठता है।[3] "इस प्रसंग में वह स्वतः सम्भावी कल्पना के आधार पर कालिदास और भारवि का अनुसरण करते हुए प्रतीत होता है। इस वर्णन मे माघ से श्रीहर्ष की ओर जाने की कवि की प्रवृत्ति है। इन समस्त शैलियों के सम्मिश्रण का कारण यही है कि केशव ने इसे सभी संस्कृत कवियों से लेने का प्रयास किया है और साथ ही अलंकारवादी भी हैं।"[4] इस कथन को समझने के लिए सूर्योदय-वर्णन का यह छंद देखिए :—

"अरुन-गात अति प्रात पद्मिनी-प्राननाथ भय।
जनु केसव ह्वै गये कोकनद कोक प्रेममय॥
किधौं सक्र को छत्र मढ़यौ मानिक-मयूष-पट।
परिपूरन सिंदूर पूर कैधौं मंगल घट।
सुभ सोभित कलित कपाल के किल कापालिक काल को।
ललित लाल कैधौं लसत दिग भामिनि के भाल को॥"[5]

इस छंद में सूर्य-वर्णन की इतनी प्रधानता नहीं है जितनी होनी चाहिए थी। कवि ने रूपक तथा संदेह से पुष्ट उत्प्रेक्षा का प्रयोग करने के लिए चमत्कारपूर्ण उक्तियों की ओर अधिक ध्यान दिया है।

नदी-वर्णन—केशव ने नदी के चित्रण के प्रसंग में ये वर्ण्य वस्तुयें मानी हैं :—

"जलचर हय गय जलज तट, यज्ञ कुंड मुनिवास।
न्हान दान पावन नदी, वरणी केसौदास॥"[6]

इसी के आधार पर इन्होंने 'वीरसिंहदेव-चरित' में प्रयाग के संगम और बेतवा नदी का वर्णन किया है।

संगम-वर्णन—केशव ने संगम-वर्णन में नरनारी के स्नान, आरती, वीरसिंहदेव द्वारा किए गए राजसी दान तथा दानार्थ लाए गए सुसज्जित हाथी को जल में प्रविष्ट कराने के पश्चात् विविध उत्प्रेक्षापूर्ण, उक्तियाँ कही हैं।[7] यथा :—

---

[1] कवि-प्रिया, छं० २२-३, पृ० ४२ [2] वीरसिंहदेवचरित्र, छं० २२-६, पृ० ६८-६; रामचंद्रिका, पूर्वार्द्ध, छं० ८-१४, पृ० ४७-६ [3] वीरसिंहदेव-चरित, छं० २६-७, पृ० ६६ [4] काव्य और प्रकृति, पृ० ३६७, [5] वीरसिंहदेव-चरित, छं० २४, पृ० ६८-६ [6] कवि-प्रिया, छं० १२, पृ० ४० [7] वीरसिंहदेवचरित, छं० १२-४३ पृ० ३०-२

"सुभ कैलास सिला के माँह, मानहु सजल जलद की छाँह।
सूरज सेत सेज मन हरै, तापर जनु शनि क्रीड़ा करै ॥"[१]

केशव ने सम्भवतः कालिदास का अनुकरण करते हुए संगम का वर्णन किया है। कालिदास का संगम वर्णन उपमा प्रधान होने पर भी अधिक स्वाभाविक है।[२] केशव का यह चित्रण परिपाटी का अनुसरण मात्र, नगर निकट संबंधी नदी की शोभा एवं राजसी ठाट-बाट से युक्त और अलंकार-प्रधान है।

वेतवा-वर्णन—केशव के वेतवा नदी[३] और रामचंद्रिका के गोदावरी[४] चित्रण में बहुत कुछ साम्य है। इस वर्णन में भी धार्मिक भावों एवं अलंकारों का प्राधान्य है।

वर्षा-वर्णन—केशव ने वर्षा-वर्णन के लिए यह आदर्श माना है :—

"वर्षा हंस पयान बक, दादुर, चातक मोर।
केतक, कंज कदंब जल, सौदामिनि घनघोर ॥"[५]

इसी आधार पर उन्होंने वर्षा का चित्रण किया है। वीरसिंहदेव-चरित[६] का वर्षा-वर्णन 'रामचन्द्रिका'[७] के वर्णन के समान है। दोनों में एक ही भावना को प्रधानता दी गई है। पुराणों में वर्णित वर्षा के समान, अलंकार, उद्दीपन तथा नायिका-वर्णन के आभास से वह युक्त है, जैसा कि नीचे के उदाहरण से सिद्ध होता है :—

"कुसल कालिका सी सोहियैं। नीलकंठ तन मन मोहियैं।
परकीया सी अभिसारिनी। सतमारग की विध्वंसिनी ॥"[८]

शरद्-वर्णन—केशव का शरद्-वर्णन भी परंपरा के संकीर्ण मार्ग में आबद्ध है। इन्होंने इस ऋतु के ये वर्ण्य विषय माने हैं :—

"अमल अकाश प्रकाश शशि, मुदित कमल-कुल कास।
पंथी पितर पयान नृप, शरद सुकेशवदास" ॥[९]

इसी आदर्श के आधार पर इन्होंने शरद्-ऋतु का वर्णन किया है। वीरसिंह-देवचरित[१०] तथा रामचंद्रिका[११] का शरद्-वर्णन एक ही है। यह वर्णन भी अलंकारों पर आश्रित है। शरद् के विविध रूपकों का प्रयोग किया गया है, जैसे सुंदरी युवती तथा नारद-मति आदि, तथा :—

"चिकुर चौंर, रुचि चंदाननी। कुंद दंत दुति मदमोचनी।
भृकुटि कुटिल सुरधनु दुति सनी। खंजरीट चंचल लोचनी ॥
बिंबाधर शुक नासा बनी। तिलक चिलक रुचि जाति न भनी।
अंबर लीन पयोधर धरै। जलज हार मनु हरषित करै ॥"[१२]

---

[१] वीरसिंहदेव-चरित्र पृ० ३१ [२] रघुवंश, सर्ग १३, श्लोक ५४-७, पृ० ४१६-२०, [३] वीरसिंहदेव-चरित, छं० ३०-४, पृ० ६६-७० [४] रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, छं० २३-६, पृ० १७१-३, [५] कवि-प्रिया, छं० ३१, पृ० ५४ [६] वीरसिंहदेव-चरित, छं० १-१५, पृ० ६७-८ [७] रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध छं० ६-२२, पृ० २०४-११ [८] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० ६७ [९] कवि प्रिया, छं० ३३, पृ० ५४ [१०] वीरसिंहदेव-चरित, छं० १५-२१, पृ० ६८ [११] रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, छं० २३-७, पृ० २११-२ [१२] वीरसिंहदेव-चरित, छं० १६-७, पृ० ६८,

इससे प्रत्यक्ष है कि केशव के ऋतु-वर्णन भी उसी प्रकार के हैं, जिस प्रकार के अन्य वर्णन। इन्होंने कहीं पर भी ऋतुओं संबंधित स्वाभाविक प्राकृतिक रमणीयता का काव्योचित वर्णन नहीं किया है, अतएव यह स्पष्ट हो जाता है, कि उनका मन प्रस्तुत प्राकृतिक विषयों की रम्यता में मग्न होना नहीं जानता था। वे अप्रस्तुतों की कौतूहलपूर्ण योजना में लगे रहते थे। विविध अलंकारों, उद्दीपन, नीति आदि की दृष्टि से किए गये 'भागवत' और 'मानस' के समान उनके प्रकृति-चित्रण मिलते हैं। केशव परंपरा के पूरे अनुयायी एवं बाण आदि संस्कृत कवियों से पूर्णरूपेण प्रभावित थे। डा० बड़थ्वाल का यह मत कि 'प्रकृति के बीच में वे आँखें बंद करके जाते थे'[१] ठीक ही है। 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा 'रामचंद्रिका' में एक ही प्रकार के अधिकांश प्राकृतिक चित्रणों का पारस्परिक साम्य इस बात की पुष्टि करता है, कि कवि एक ही परंपरा एवं भावना के वशीभूत था। इसीलिए उक्त ग्रंथों में उससे इस प्रकार की आवृत्ति बन पड़ी है। प्राकृतिक दृश्यों के सौंदर्य की विभिन्न दृष्टियों से प्राप्त अनुभूति का हृदय की रागात्मिका वृत्ति से सामंजस्य स्थापित करके मनोरम प्राकृतिक-चित्रण उपस्थित करने की उनमें लेशमात्र भी क्षमता न थी।

भूषण

भूषण ने भी इस क्षेत्र में अन्य कवियों के समान कवि-परम्परा का अनुकरण किया है। "शिवराजभूषण" में विविध अलंकारों के उदाहरण देते समय उन्होंने प्रकृति का उल्लेख किया है, पर उसे वास्तविक प्रकृति-चित्रण नहीं कहा जा सकता। अपने नायक का यश-सौरभ-विकीर्ण करना ही उनके काव्य का मुख्य उद्देश्य था। उनके प्रकृति वर्णन उद्दीपन एवं अलंकार शैली के अन्तर्गत ही माने जाने चाहिए। उनके रायगढ़ वर्णन में राजसी ठाट-बाट, एवं शृंगारिक वर्णन ही प्रधान हैं, यथा :—

"भूषन भनत जहँ परसि कै मनि पुहुप रागन की प्रभा।
प्रभु-पीतपट की प्रकट पावत सिंधु, मेघन की सभा॥
मुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक-महलन संग मैं।
विकसंत कोमल-कमल मानहुँ अमल-गंग-तरंग मैं॥"[२]

इसी प्रसंग में उपवन का वर्णन करते हुए भूषण ने वृक्षों, लताओं तथा पक्षियों के नाम गिनानेवाली परिपाटी का अनुकरण किया है। उनके नाम गिनाकर उन्होंने अपने कार्य की इतिश्री समझी है। वे वृक्षादि वहाँ उत्पन्न होते हैं या नहीं इससे उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। दाख, दाड़िम सेब आदि उत्तरी भारत के वृक्ष दक्षिण में लगाकर उन्होंने देश-दोष एवं अपने अज्ञान का परिचय दिया है। परम्परागत लकीर का पीटना ही उन्होंने प्रधान कर्त्तव्य माना है, जैसा कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है :—

"कहुँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरुन करवीर हैं।
कहुँ दाख दाड़िम सेब कटहल तूत अरु जंभीर हैं॥
कितहूँ कदंब-कदंब कहुँ हिंताल ताल तमाल हैं।
पीयूष तें मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल हैं॥

[१] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १०, ११८६ वि०, पृ० ३६४ [२] भूषण-ग्रंथावली, छं० १८, पृ० ४

लसत बिहंगम बहु लवनित बहु भाँति बाग महँ।
कोकिल कीर कपोत केलि कल-कल करंत तहँ॥
मंजुल महिर मयूर चटुल चातक चकोर-गन।
पियत मधुर मकरंद करत झंकार भृंग घन॥
भूषन सुवास फल फूल जुत छहूँ रितु बसंत बसंत जहँ।
इम राजदुग्ग राजत रुचिर, सुखदायक सिवराज कहँ॥"[१]

इन उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि भूषण ने आचार्यों की बतलाई हुई आप्त वाक्य वाली परिपाटी का अनुसरण किया है।

अप्रस्तुत-पद्धति—उनके द्वारा चित्रित प्रकृति के रूप अलंकार-परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। विविध अलंकारों के उदाहरणों के लिए शिवाजी के गुणों को चुनकर भूषण ने उपमान आदि प्रकृति से लिए हैं। इस शैली में भूषण ने प्रथम प्रतीप, चतुर्थ प्रतीप, पंचम प्रतीप, उपमेयोपमा, ललितोपमा, रूपक (कलियुग-रूपक, जलधि-रूपक) परिणाम, शुद्धापह्नुति, गम्योत्प्रेक्षा, भाविक, अत्युक्ति, अपह्नुति, यमक, वृत्यानुप्रास, उपमा, विरोधाभास, उदाहरण आदि अलंकारों को लिया है।[२] इतने अलंकारों के उदाहरणों के लिए प्रकृति के विभिन्न उपमानों का ग्रहण करना कवि की इस क्षेत्र में असाधारण प्रतिभा का परिचायक है।

भूषण वीर रस की अनेकरूपता को परिपूर्ण करने के लिए संश्लिष्ट-योजना का सहारा ले सकते थे। पर उन्होंने सब स्थानों पर स्फुट योजना ही का आश्रय ग्रहण किया है। प्रबंध-काव्यों में ही नहीं, स्फुट पद्यों में भी संश्लिष्ट-चित्रण सफलतापूर्वक किए जा सकते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि मुक्तक-रचना में क्षेत्र सीमित रहता है। भूषण ने रीति-कालीन शृंगाररस के प्रभाव से ऊँचे उठकर वीररस प्रधान काव्य-रचना की, पर प्रकृति-चित्रण में उन्होंने केवल परंपराभुक्त-शैली का ही अनुकरण किया; उसमें नवीन योजना कहीं-नहीं की। केवल इतना ही उनके पक्ष में कहा जा सकता है कि अपने नायक का यशगान, अलंकार का प्राधान्य, मुक्तक-शैली तथा परम्परागत परिपाटी के कारण प्रकृति उनके काव्य में उपेक्षित तथा संकुचित सीमा के भीतर प्रयुक्त हुई। पर परिपाटी के अनुसार प्रकृति-चित्रण करने में वे अपनी धारा के एक प्रमुख कवि हैं।

मान

ऋतु-विलास वर्णन—मान कवि ने अपने 'राज-विलास' में ऋतु-विलास[३] का वर्णन किया है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है, पर इस वर्णन में इस कवि ने नाम गिनाने की परिपाटी का ही अनुकरण किया है, यथा :—

---

[१] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० २१-३, पृ० ४-५; (अन्य उदाहरणों के लिए देखिए छं० १६, २०, २२) [२] वही, छं० ४२, पृ० ७; छं० ४८, पृ० ८; छं० ५०, पृ० ८-६; छं० ५४, पृ० ६; छं० ५६, पृ० १०; छं० ६१, पृ० १०-१; छं ६६, पृ० १२; छं० ८१; पृ० १५, छं० १०६, पृ० १६; छं० ३३३-४, पृ० ५६-६०; छं० ३४२ पृ० ६१; शिवा बावनी, छं० २४, पृ० ७८; छं० २६-७, पृ० ७६; छं० ३८-६, पृ० ८३-४; छं० ४५, पृ० ८५-६; फुटकर, छं० ६, पृ० ६४
[३] राजविलास, वि० ४, छं० १-२३; पृ० ७६-८४

"अंबर बिलगि अंब, करनी बहु कदंब । आंबिली तरु असोक, थठ्ठे सु अज्ञान थोक ।।५।।
ऑंविली अगछि अैंन, चंपकइ दोष चैन । अखि अखरोट अति, चारु चार जीह चखि ।।६।।
केतकी रु कचनार, केवेरा प्रमोद कार । षारिक पिंड षजूर, भाषिये अंगूर भूरि ।।८।।
ज्योंजा तूत नालिकेर, गुलतररा गिर मेर । चंदन महकक चारु, दारिम सु देव दारु ।।१०।।"[1]

कवि ने इस वर्णन में दूरदर्शिता से काम नहीं लिया है और कदंब, अशोक, अखरोट, पिंड-खजूर, अंगूर, चंदन, देवदारु आदि वृक्षों को उदयपुर के उपवन में लाकर लगा दिया है। इससे आगे के पद्यों में बादाम, सुपारी आदि का उल्लेख भी मान की असावधानी का परिचायक है। इस कोरी नामावली को परंपरानुसार न गिनाकर कवि उसका बिंब-ग्रहण करा सकता था, पर उस ओर से उसने अपनी आँखें एकदम बंद कर ली हैं।

उस वाटिका के पक्षियों का वर्णन भी परिपाटी के अनुसार ही हुआ है पर चिड़ियों के स्वभाव संबंधी कुछ अच्छी उक्तियाँ इस कवि से बन पड़ी हैं, यथा :—

"कावरि कपोत-पोत कोरि, तू ती फरू लेत तोरि ।
लावारु तीतर लख, चंचु चारु मेवा चख ।।१७।।"[2]

इससे आगे चलकर महल, हाथी, घोड़ा, बंगला आदि का उल्लेख करके इस कवि ने राजसी ठाट-बाट को ही प्रधानता दी है। मान कृत यह संपूर्ण प्रकृति-वर्णन परंपरा का अनुकरण मात्र होते हुए भी अलंकार एवं चमत्कारपूर्ण शैली से सर्वथा मुक्त है। वह राजसी उपवन का चित्रण है। इस दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि इस उपवन-चित्रण में केवल उन्हीं उपकरणों का उल्लेख किया गया है, जिनके ऐसे अवसरों पर उल्लेख करने की परंपरा चली आती थी। इस प्रसंग में पक्षियों के कलरव, पुष्पों के प्रफुल्लित होने, शीतल-मंद-सुगंध वायु के प्रसरण, ऋतु-वर्णन आदि के द्वारा बिंब-ग्रहण कराया जा सकता था, पर मान कवि ऐसा करने में असफल रहे हैं।

वर्षा-वर्णन—'राज विलास' में एक स्थल पर वर्षा-वर्णन अत्यंत स्वाभाविक एवं मनोरम बन पड़ा है।[3] आसाढ़ में आकाश में उठते हुए मेघों का चित्र अंकित करते हुए कवि कहता है :—

"अति पावस उल्हरिय करिय कंठल धुरकाली ।
आसा बंधि असाढ़ हरष करसणि कर हाली ।।
बद्दलं दल बित्थुरिय चारु चपला चमकंतह ।
गज्ज घोष गम्भीर मोर गिरि सोर मचंतह ।।
आदीत सोम छवि आवरिय घण आयौ घमसाण घण ।
बरसंत बुन्द बड़-बड़ विमल जलधर बल्लभ जगत जण ।।३६।।"[4]

कहीं-कहीं पर मान ने प्रकृति-चित्रण सूक्ष्म-निरीक्षण एवं विस्तृत विश्लेषण की प्रतिभा का भी परिचय दिया है, यथा :—

---

[1] राजविलास, पृ० ८०   [2] वही, पृ० ८१   [3] वही, छं० ३५-३७, पृ० ८-१०
[4] वही, पृ० ८

"जल बहत जोर षलहलत खाल, पय धार पतत दगगग मनाल।
पप्पीह चीह पिउ पिउ पुकार, भूररूह विहस्सि अट्ठार भार ॥४३॥
× × ×
टपकंत बुंद तरु पव्व डाल, मंडव सुकीन द्रुम बल्लि माल।
बग टग लगाय पावस बइट्ठ, दारा सु बकी पतिव्रता दिट्ठ ॥५२॥
सारंग करत गायन सुजान, रीझंत जेह सुनि राय राण।
मल्हार घटत माचंत मेह, नर नारि चित्त बाधंत नेह ॥५७॥"[1]

इस संपूर्ण वर्णन द्वारा मान ने वर्षा का बिंब-ग्रहण कराने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है और उसके प्रायः सभी प्रमुख अंगों की विवेचना करके अपनी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय दिया है।

पुराणों में वर्णित कृष्ण द्वारा गोबर्द्धन उठाने के कथानक को लेकर मान कवि ने वर्षा का रूपक बाँधा है। इसका परिगणन परम्परागत पौराणिक ऋतु-वर्णन के अंतर्गत ही किया जाना चाहिए।[2] इसी प्रकार राजसर प्रसंग में वर्षा का केवल उल्लेख भर किया गया है, उसका विस्तृत एवं स्वाभाविक वर्णन नहीं।[3]

देवमूर्त्ति-अर्चना में चंपक, गुलाब आदि सुरभित पुष्पों का चढ़ाया जाना और उन पर भौंरों का मड़राना दिखलाया जाना, कुछ अस्वाभाविक सा लगता है। अच्छा होता यदि भौंरों का उल्लेख किसी वाटिका के प्रसंग में किया गया होता। देवालय प्रसंग में यह कुछ अस्वाभाविक तथा परिपाटी-पालन का परिचायक है।[4]

कवि मान ने चित्रकोट-वर्णन[5] में सरोवरों, कुण्डों आदि; उदयपुर[6] के सुंदर वर्णन; राजसरोवर[7] के बनवाने के प्रसंग में नदी तथा पर्वत आदि का उल्लेख किया है, पर वह सभी प्रासंगिक एवं परंपरागत है। कवि का ध्यान प्रकृति-चित्रण की ओर अधिक नहीं गया है। ऐसा विदित होता है कि उन प्रसंगों में उनकी बुद्धि अपने प्रधान विषयों—उदयपुर, राजसरोवर की नींव, बाँध बाँधने तथा महल बनवाने आदि में अधिक रमी है, क्योंकि उन्होंने इन सभी का वर्णन सूक्ष्म-विस्तारयुक्त किया है।

मान प्रकृति के कोमल एवं मधुर रूप का वर्णन करने में जितने सिद्धहस्त थे, उतने ही चतुर उसके उग्र एवं रुक्ष स्वरूप के चित्रण से भी। मरुभूमि के निवासी इस कवि के लिए यह स्वाभाविक भी था। दुर्भिक्ष[8] का वर्णन करते समय उन्होंने प्रकृति के इसी उग्र रूप को लिया है। वर्षा के न होने से मरुस्थल की दशा नीचे के पद्य में देखिए :—

"पश्चिम पवन प्रचंड बजत-अहिनिसि सु बंध बिनु।
अथिर उतारु आभ प्रात-प्रहरेक बहत पुनि ॥
क्रूर अधिक करि किरन तपत मध्यानहिं तापन।
प्रचलित पश्चिम पहुर अनिल शीतल असुहावन ॥

[1] राजविलास, पृ० ६-१०; (देखिए अध्याय ५, अलंकारांतर्गत रूपक का उदाहरण, पृ० १०८) [2] राजविलास, छं० ५८, पृ० १२८ [3] वहीं, छं० १४६, पृ० १४२ [4] वही, छं० ८१-२, पृ० १३२ [5] वही, छं० २-३, पृ० १६ [6] वही, छं० ६०-१४७, पृ० ४३-५४ [7] वही, छं० १०५-११, पृ० १३५-६

निशि तार नक्षत्र निम्मल निखरि बद्दल विद्युत गाज बिन।
भय भीत चिन्ह दुरभक्ष के देखि सकल जग भौ दुमन॥"[1]

मान ने 'नख-शिख' वर्णन में प्रकृति से उपमान लेने की पद्धति का भी अनुकरण किया है, जैसा कि इस उदाहरण से स्पष्ट है :—

"अरबिंद पुष्प कि मीन अक्ष सु मचल षंजन पेषियं।
सारंग शिशु दृग सरिस सुन्दर रेह अंजन रेषियं॥
संभृत्त जुग जनु सुधा संपुट विश्व सकल विहारनी।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी॥२४॥"[2]

सेना के प्रयाण में हाथियों की उपमा मेघों से देना, सेना को भादों की मेघ-माला मानना, तथा मद चूते हुए हाथियों के पास भौरों का गुंजारना आदि परंपरागत-अप्रस्तुतों का प्रयोग भी मान कवि ने किया है।[3]

अप्रस्तुत में अतिशयोक्ति के प्रयोग का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

"महियल जितै मंडान देखियें जिते दिगन्तह।
सूर जिते संचरैं पवन जिते पसरत्तह।
जिते दीप अरु जलधि जानि ससि तारक जहँ लग।
जिते वृष्टि जलधार जिते नर नारि रूप जग॥
इल जितीक अष्ट कुली अचल बसुमति देखिय सम विषम।
कवि मान कहे, दिट्ठो न कहुँ सरवर राज समुद्द सम॥१७२॥"[4]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि मान ने प्रकृति के विविध रूपों को विभिन्न दृष्टियों से देखने और समझने का प्रयत्न किया है। इन्होंने परम्परागत नाम गिनाने की परिपाटी, नखशिख-वर्णन में प्राकृतिक उपमान, अप्रस्तुत-पद-योजना, प्रकृति के उग्र-रूप तथा आलंबन आदि सभी स्वरूपों को अपनाया है। पर उनके द्वारा चित्रित प्राकृतिक विवरण अधिकांश परम्परागत ही है। किंतु, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उनमें संश्लिष्ट योजना की योग्यता थी, जिसका इन्होंने यथाअवसर परिचय भी दिया है। परम्परा के अनुकरण में उन्होंने केशव और भूषण की अलंकार-प्रधान शैली को नहीं अपनाया है। इन कवियों ने जिस अलंकृत पद्धति का अनुकरण किया है, उसमें अलंकारों के दुर्वह भार से दबकर प्रकृति का रूप विकृत हो गया है। मान ने उनके विपरीत अपनी सीधी-सादी, सरल शैली में प्रकृति-चित्रण किया है और ऊहात्मक काल्पनिक उड़ान का प्रायः कम आश्रय लिया है। इतना होते हुए भी यह कहना ही पड़ेगा, कि यह कवि अपने ग्रंथ में प्रकृति को अधिक स्थान दे सकता था, पर उसने ऐसा नहीं किया। सम्भवतः इसको कारण यह हो कि वह चरित्र-काव्य लिख रहा था, प्रकृति-चित्रण उसका प्रधान विषय नहीं था। तो भी उसके कथानक में ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जहाँ पर प्रकृति

[1] राजविलास छं० ११८, पृ० १३६ [2] वही, पृ० ५; (अन्य उदाहरणों के लिए देखिए, छं० १९-२०, पृ० ३-६; छं० ६-२२, पृ० १०४-६) [3] वही, छं० ८७, पृ० १६१-१; छं० ७, ३०, पृ० १८६ [4] वही, पृ० १४८

के सुन्दर चित्र चित्रित किए जा सकते थे, जिनकी ओर से कवि प्रायः उदासीन रहा है। इन दोषों और अभावों के होते हुए भी प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से मान अपनी धारा में एक प्रमुख कवि हैं, इसके मानने में किसी को संकोच नहीं हो सकता।

श्रीधर

श्रीधर ने अपने छोटे से काव्य 'जंगनामा' में प्रकृति की उपेक्षा की है। यत्र-तत्र सेना और युद्ध के वर्णन में प्रचलित वर्षा, मेघ, घटा आदि के रूपक लेकर उसने अप्रस्तुत की आयोजना की है, यथा :—

"बखतर पोस पखरैत फील स्वारन की,
कारी घटा भारी ज्यों पयोद प्रलै काल को।
श्रीधर भनत गोला बान सर झर भर,
बरखत थाँभै को करैरी तरबाल को॥"[1]

श्रीधर ने हाथियों का वर्णन करते समय उत्प्रेक्षा की सहायता से अप्रस्तुत का सुंदर आयोजन नीचे दी हुई पंक्तियों में किया है :—

"गड़ादार घेरें सिरी कट्ट बंटा। गजे मेघ मानों बजें घोर घंटा॥"[2]

तथा

जनु घटा असाढ़ी फौजें वाढ़ी फंतह सु ठाढ़ी पुर गाजैं।"[3]

एक स्थल पर श्रीधर ने युद्ध में स्रवित होते हुए रक्त को झरना और नदी का रूपक देकर अच्छी उत्प्रेक्षा संबंधी उक्ति कही है :—

"मदभरे अमत खरे अवाइ अवाइ करिवर थरि अरै।
सिर सरत श्रोनित धार मानहुँ पहार सों झरना झरै॥
बढ़ि चली लोहुन की नदी लहरैं लखें कहि को तरै।
तेहि तीर दलदल मास को बल ठान काहू को परै॥"[4]

अन्त में श्रीधर के संबंध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इन्होंने प्रकृति की अवहेलना की है और जो कुछ प्रासंगिक रूप से उसका उल्लेख किया है वह परिपाटी का अनुसरण-मात्र है।

सूदन

सूदन ने अपने काव्य में प्रकृति-चित्रण, ऋतु-वर्णन आदि को कोई विशेष स्थान नहीं दिया है। इस ग्रंथ में प्राकृतिक वर्णन के अभाव का कारण कथानक की इतिवृत्तात्मकता तथा युद्ध-वर्णन की प्रमुखता है। यद्यपि सूदन ने अन्य क्षेत्रों में अपनी रुचि-वैचित्र्य तथा बहुज्ञता का परिचय दिया है, पर प्रकृति के प्रति उन्होंने उपेक्षा-भाव ही प्रदर्शित किया है। इन्होंने प्रासंगिक ढंग से परम्परागत अप्रस्तुत-योजना तथा नख-शिख-वर्णन में प्रचलित उपमानों को ही सुजान-चरित्र में अपनाया है।

---

[1] जंगनामा, पंक्ति १४६१-६४, पृ० ६०-६१ [2] वही, पंक्ति ५४१-२, पृ० २३ [3] वही, पंक्ति १२०८, पृ० ४६ [4] वही, पंक्ति १४०१-४, पृ० ५७

सेना के प्रयाण तथा युद्ध-वर्णन में वर्षा-मेघ आदि के प्रचलित रूपक का उत्प्रेक्षा आदि के साथ सूदन ने बहुत प्रयोग किया है, यथा :—

"जब कूंच कियौ इस वीर सनं। तब पीत पताकन सोभ बनं॥
जनु चंचल दामिन सोभ घनं। हय टापन सौं कहुँ होत ठनं॥
\+ \+ \+
बहु सेनु दरेरनु देति चली। मनु सावन की सरिता उभली॥
अहि सैल मनौ मुख काढ़ि रहे। अरु ढालनु कच्छप रूप गहे॥
× \+ ×
जल जोरि तुरंगम देखि रहे। मनु मीन जहाँ धुज देह लहे॥
द्रुम ज्यौं द्रुम ढाहति आवत है। इन सैन नदी सु कहावत है॥"[1]

युद्ध-वर्णन में प्रयाग के रूपक का कतिपय स्थलों पर इन्होंने सुंदर प्रयोग किया है।[2]

युद्ध-क्षेत्र को काल की वाटिका मानकर कवि ने एक अत्यंत सुंदर एवं स्वाभाविक उत्प्रेक्षा-युक्त रूपक बाँधकर प्रकृति-वर्णन किया है।[3]

युद्ध में बसंत ऋतु की कल्पना भी कवि ने उत्तम ढंग से की है, यथा :—

"गोली भौंर सी भननात। पिक ज्यौं गाल कुहकत जात॥
धूवां त्यौं पराग उड़ात। गंधक गंध सौरभ गात॥
टुट्टत तरवरन की डार। सोई होतु है पतझार॥
देखैं ए उदीपन साज। गढ़ ज्यौं सदन है रितुराज॥
तासौं ह्वै सकाम सरीर। धाए सामुहैं जदुवीर॥
गढ़ की भूमि सो नव नारि। भूखन वस्त्र शस्त्र विचारि॥
बुरजैं उरज ही के भाइ। तिनकौं गह्यौ चाहतु धाइ॥"[4]

कहना न होगा कि युद्ध के वर्णन में प्रकृति का पुट देकर उद्दीपन की दृष्टि से कवि द्वारा यह छंद लिखा गया है। अन्यत्र श्लेष की सहायता से बसंत का रूपक भी अच्छा बन पड़ा है।[5] कृष्ण-रूप-वर्णन में इस कवि ने परम्परागत प्राकृतिक उपमानों को अपनाया है, यथा :—

"लोचन नील कमल से सोहैं भौंहैं अलि-अवली सी।
जो ब्रज वधू निहारति उर मैं सो रहि जात छली सी॥"[6]

"तहां कूप कासार बापी जु सूझै। सबै मानसर की प्रभा कौं न बूझै॥

---

[1] सुजानचरित्र, छं० १०, पृ० ४६; (वर्षा संबंधी रूपक तथा उत्प्रेक्षा के अन्य उदाहरणों के लिए देखिए छं० ६, पृ० २४; छं० ७, पृ० ३२; छं० ४, पृ० ७१; छं० १३, पृ० १८७; छं० १२, पृ० १६२; छं० १३, पृ० २०३; छं० २४, पृ० २०६) [2] देखिए अध्याय ५, अलंकारांतर्गत रूपक का प्रथम उदाहरण, पृ० ११४ [3] वही, पृ० वही, उदाहरण द्वितीय; (अप्रस्तुत रूप में प्रकृति के प्रयोग के अन्य उदाहरण देखिए छं० ४, पृ० ८; छं० ३, पृ० ६३; छं० १०, पृ० ६६; छं० ७, पृ० १००; छं० १, पृ० २२४ [4] वही, छं० ७, पृ० ११४ [5] वही, छं० ३५, पृ० २२३ [6] वही, छं० ३७, पृ० २२६; (अन्य उदाहरणों के लिए देखिए छं० ३६-४०, पृ० २३०; छं० ८०, पृ० २५५)

सूदन ने ब्रज का वर्णन भी किया है, पर उसमें भी परम्परा का अनुकरण किया है। उन्होंने नाम गिनाने की साधारण परिपाटी ही अपनाई है। उस वर्णन में नगर, दुर्ग आदि के चित्रण की ही प्रधानता है, पर उसमें कुछ पंक्तियाँ उत्तम भी बन पड़ी है, जैसे :—

> तहाँ कूप कासार बापी जु सूझै। सबै मानसर की प्रभा कौं न बूझै॥
> जहाँ आठहुँ भाँति के कंज फूलैं। मनौं नीर आकाश तारे अडूलैं॥
> तहां हंस हंसी चकी चक्क डोलैं। किते अंड-जाती करै हैं कलोलैं॥
> तहँ बाग हैं राग के भौन मानौ। फूलैं फूलो दैवी जिन्हें जी सुहानौ॥"[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कवि का मन अधिकतर युद्धवर्णन में ही रमा है। उसी के लिए उसने परम्परागत अप्रस्तुत की सहायता ली है। रूप-वर्णन में भी परिपाटी अपनाई गई है। पर उसने केशव और भूषण की अलंकार-प्रधान शैली को नहीं लिया है। उसके सभी प्राकृतिक वर्णन स्वाभाविक तथा परम्परागत और रस-विकास में सहायक हैं। बँधी हुई सीमा के भीतर ही उसने प्राकृतिक चित्रों को सजाया है।

पद्माकर

पद्माकर के अन्य ग्रंथों के देखने से विदित होता है कि उन्होंने प्रकृति-वर्णन में शृंगारी कवियों की शैली अपनाई है। उनके ऋतु-वर्णन में वर्षा और वसंत का चित्रण उत्तम हुआ है। पर उनके वीर रस के ग्रंथों में प्रकृति-चित्रण नगण्य है। सेना और युद्ध-वर्णन में इन्होंने वर्षा के सुंदर रूपक बाँधे हैं।[2] निम्नलिखित उदाहरण से इस कथन की पुष्टि होती है :—

> "दिसि दिसन दादुर से उमगि सुनकीव दूँदि मचावहीं।
> कलकीर कोकिल से तहाँ ढाढ़ी महाधुनि छावहीं॥
> रम रङ्ग तुंग तुरङ्ग गण सत्वर उड़त मयूर से।
> तहँ जगमँगानी जामगी जुगनू नहूँ के पूर से॥८१॥"[3]

'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' में उन्होंने अन्य स्थलों पर हाथियों, अस्त्र-शस्त्रों आदि युद्ध-सामग्री तथा वर्षा के विविध उपकरणों से उपमान लेकर तथा उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, संदेह तथा भ्रम आदि की सहायता से युद्ध-वर्णन किए हैं, जिनके उदाहरणों के लिए ये छंद देखे जा सकते हैं।[4]

प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से पद्माकर को इस धारा के कवियों मे विशेष महत्त्व नहीं दिया जा सकता। उन्होंने प्रचलित अप्रस्तुतों का प्रयोग करके पिष्ट-पेषण का ही कार्य किया है। इसका एक कारण ग्रंथ का संक्षिप्त आकार भी हो सकता है। पर उनके शृंगार-रस-संबंधी ग्रंथों के प्रकृति-वर्णन से स्पष्ट है, कि वे परम्परा-भुक्त कवि थे। मानव-स्वभाव आदि के चित्रण की ओर ही उनका ध्यान अधिक जाता था।

---

[1] सुजान-चरित्र, छं० ६०, पृ० २३५; (अन्य उदाहरण के लिए देखिए छं० ५६, पृ०२३३-४
[2] देखिए अध्याय ५, अलंकारांतर्गत रूपक का उदाहरण, पृ० ११७, [3] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० ८१, पृ० ८१ [4] वही, छं० ४१, पृ० ७; छं० ४७-६, पृ० ८, छं० ६४, पृ० ११; छं० ७३, पृ० १४; छं० ७६, पृ० १५; छं० ८२-३, पृ० १६; छं० ११५, पृ० २२; छं० १४७, पृ० २६, छं० २१०, पृ० ४४

जोधराज

जोधराज ने 'हम्मीररासो' में ऋतु-वर्णन किया है। उन्होंने बसंत-ऋतु से आरंभ करके षट्-ऋतु-वर्णन करके पुनः वसंत का चित्रण किया है।[1] इस संपूर्ण वर्णन में उर्वशी द्वारा पद्म ऋषि को च्युत करने के प्रयत्न दिखलाए गए हैं। अतएव इस वर्णन का मुख्य उद्देश्य उद्दीपन ही है। इस वर्णन को देखकर पृथ्वीराजरासो के 'इकसठवें' समय कनवज्ज-समय में वर्णित षट्-ऋतु का स्मरण हो आता है।[2] जोधराज ने ऋतुओं का वही क्रम रक्खा है, जो चंद का है। दोनों ग्रंथों के वर्णन उद्दीपन प्रधान हैं। पर चंद के वर्णन अधिक विस्तृत हैं। यह विशेषता जोधराज में नहीं आने पाई है। ऐसा विदित होता है कि जोधराज चंद के ऋतु-वर्णन से परिचित थे।

वसंत-ऋतु के वर्णन मे उद्दीपन के ही उपकरण गिनाए हैं, जैसे :—

संगीत भाव गावैं अनन्त। सुर नर सुनन्त बसि होत मंत॥
वन उपवन फुल्लहि अति कठोर। रहे जोंर भौंर सर अंब मौर॥१०२॥[3]

इन्होंने अन्यत्र वसंत-वर्णन[4] के बहाने से उर्वशी के नख-शिख एवं शृंगारिक चेष्टाओं का उत्प्रेक्षा आदि की सहायता से चित्रण किया है। कुछ उदाहरण ये हैं :—

"कपोल गोल आदसं, कि भौंह भौंर सादसं।
प्रफुल्लि कंज लोचनं, मृगाच्छि गर्व्व मोचनं॥१३७॥
सुहंत स्याम अल्लकं, भ्रमत भौंर वल्लकं।
अरुन्न रेख बेसयं, पियूष कोस देखयं॥१४०॥"[5]

ग्रीष्म-ऋतु-वर्णन मे उसकी प्रखरता आदि का विवेचन न करके एक आश्रम की कल्पना करते हुए उष्णता से बचने तथा उद्दीपन के उपकरणों का उल्लेख किया है, यथा :—

"इक आश्रम सुंदर अति अनूप। तिय गान करत सुंदर सरूप॥
सौरभ अपार मिलि मंद पौन। मृग मद कपूर मिल करत गौन॥१०७॥
श्रीखंड मेद केसर उशीर। तिहिं परिस ताप मिट्टत सरीर॥
गंधर्व और किन्नर सुबाल। मिलि अंग रंग पहरें सुमाल॥१०८॥"[6]

वर्षा-वर्णन में भी उपर्युक्त प्रवृत्ति लक्षित होती है, जैसे :—

"घने घोर गज्जंत वर्षंत पानी, कलापी पपीहा रहै भूरि बानी।
तहाँ बाल झूलंत गावंत झीनी, रही जाय आश्रम भई काम भीनी॥११२॥"[7]

शरद्-ऋतु-वर्णन भी उद्दीपन प्रधान है। प्रारम्भ तो प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से ठीक किया है, यथा :—

"बहु खंजन रंजन भृंग भ्रमैं, कल हंस कलानिधि बेद भ्रमैं।
बसुधा सब उज्जल रूप कियं, सित वासन जानि बिछाय दियं॥११७॥"[8]

---

[1] हम्मीररासो, छं० १००-२६, पृ० २०-७ [2] पृथ्वीराजरासो, छंद १-७२, पृ० १२७७-८८ [3] हम्मीररासो प० २१, (अन्य उदाहरण के लिए देखिये अध्याय ४, अलंकार प्रकरणांतर्गत अनुप्रास का उदाहरण, पृ० ११८) [4] वही, छं० १३०-६३, पृ० २७-३२ [5] वही, पृ० २८ [6] वही, पृ० २२ [7] वही, पृ० २३ [8] वही, पृ० २४

पर आगे चलकर बाला के हाव-भाव वर्णित किए गए हैं ।[1] हेमन्त तथा शिशिर-वर्णन में भी उसी एक भाव की प्रधानता है, जैसे :—

बहै बहु भाँति त्रिबिद्धि समीर, रहै नहिं धीरज होत अधीर ।
लता तरु भेंटत संकुल भूरि, भए तृण गुल्म हरे जड़ मूरि ॥"[2]

अलाउद्दीन के आखेट[3] तथा राव हम्मीर के वाटिका-वर्णन[4] में जोधराज ने नाम गिनाने की परम्परागत शैली ही का अनुकरण किया है। आखेट-वर्णन में उद्दीपन भाव की भी प्रधानता है। उनकी इस प्रवृत्ति के कुछ उदाहरण ये है :—

"कहूँ रहे केवरा जुही जाय, संदुप्प और संभो सु आय ।
आचीन नगगस और असोक, पाटल सचमोलिय बोलि कोक ॥"
एला लवंग अंगूर बेलि, माधुज्ज लता माधुरी केलि ॥"
तरु ताल तमाल रुताल और, ता मध्य कमल अरु कुमुद भौर ॥३६०॥"[5]

युद्ध तथा सेना के वर्णन में पावस, वर्षा आदि के प्रचलित रूपकों का प्रयोग करके उत्प्रेक्षा आदि के उदाहरण भी इस कवि ने दिए हैं।[6]

इस प्रकार जोधराज ने परम्परागत प्रकृति-वर्णन को ही अपनाया है। सम्पूर्ण धारा में जोधराज ही ने सभी ऋतुओं का वर्णन किया है, पर उनमें परिपाटी-पालन तथा उद्दीपन की ही अधिक प्रधानता है। उसके संपूर्ण प्रकृति-वर्णन में कोई नवीन बात नहीं, परिपाटी का अनुकरण-मात्र है।

अन्य कवि

प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से इस धारा के अन्य कवियों का स्थान अत्यंत साधारण है। इनमें से केवल गोरेलाल ही उल्लेखनीय हैं। उन्होंने स्वामी प्राणनाथ के उपदेशान्तर्गत प्रकृति-चित्रण की ओर कुछ ध्यान दिया है, पर यह वर्णन भी भागवत के उपदेशात्मक ढंग पर लिखा गया है। इस में नख-शिख, शृंगार तथा जुगलकिसोर-किसोरी के कुञ्ज-विहार की ही प्रधानता है।[7]

शेष कवियों—जटमल, मतिराम (केवल आलोच्य छंदों में), सदानंद तथा गुलाब का इस संबंध में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। इन कवियों की रचनाओं में प्रासंगिक रूप से यत्र-तत्र प्रकृति के उल्लेख आ गये हैं, जो उद्दीपन एवं अप्रस्तुत-पद-योजना के ही अंतर्गत माने जाने चाहिए।

सारांश यह है कि इन कवियों ने प्रकृति की ओर से एकदम आँखें बंद कर ली थीं। यही कारण है कि यहाँ पर इनके काव्य पर अलग से विचार नहीं किया गया है।

---

[1] हम्मीररासो, छं० ११८-२१, पृ० २४-५ [2] वही, पृ० २६ [3] वही, छं० १९७-२०९, पृ० ४०-३ [4] वही छं० ३५५-३७९, पृ० ७२-३ [5] वही, पृ० ७२-३ [6] वही छं० ४८०, पृ० ९७; छं० ५४०, पृ० १०९; छं० ७३३-४, पृ० १४५; छं० ७७०, पृ० १५१; छं० ८५८, प० १६६ [7] छत्रप्रकाश, पृ० १५३—१५४।

अध्याय ८

शैली और भाषा

सामान्य-परिचय— आलोच्य ग्रंथों के अवलोकन से विदित होता है, कि इस धारा में विविध प्रकार की काव्य-शैलियाँ प्रचलित थीं। विभिन्न कवि प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार की शैलियाँ अपनाया करते थे।

अधिकतर कवियों ने वर्णनात्मक-शैलियों का प्रयोग किया है, पर संवादों का समावेश करके इन्हें सरसता प्रदान करने की भी चेष्टा की गई है। कुछ कवियों ने शीघ्रातिशीघ्र छंदों में परिवर्तन करके अपने ग्रंथों को रोचक बनाया है। जिन कवियों ने ऐतिहासिक घटनाबली को अधिक प्रधानता दी है उनकी रचनाओं में गद्यवता का भी समावेश हो गया है।

कुछ कवियों ने संयुक्ताक्षर एवं नादात्मक शैली का वहिष्कार किया है। पर अधिक संख्या उन कवियों की है, जिन्होंने उक्त शैलियों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। परिणाम यह हुआ है कि उनकी रचनाओं के वे अंश नीरस और अरुचिकर हो गए हैं। कतिपय कवियों ने वस्तुओं की लम्बी-लम्बी सूचियों तथा व्यक्तियों के नामों की आवृत्ति स्वतंत्रतापूर्वक की है, जिसके कारण उन ग्रंथों में शुष्कता का समावेश हो गया है। कुछ ऐसे भी ग्रंथ मिलते हैं जिनमें आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से प्रशंसा की गई है। ऐसी रचनाओं में अस्वाभविकता का अधिक सम्मिश्रण हो गया है। गोरेलाल जैसे कवियों ने प्रेममार्गी पद्धति का आश्रय लेकर दोहे, चौपाई में अपनी रचना की है। जोधराज आदि ने 'पृथ्वीराजरासो' तथा 'रामचरितमानस' आदि ग्रंथों की शैलियों से भी लाभ उठाया है।

कुछ कवि प्रलोभन के वशीभूत होकर अपने काव्य का चरित्र-नायक साधारण व्यक्ति को ही चुन लिया करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि न तो रस का परिपाक ही हो पाता था था और न शैली ही प्रभावोत्पादक बन पाती थी, जैसा कि 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' से सिद्ध होता है।

भाषा की दृष्टि से प्रायः इन सभी ने ब्रज को ही अपनी रचना का साधन बनाया है। उसमें अधिकांश कवियों ने फ़ारसी, अरबी तथा तुर्की आदि विदेशी तथा बुंदेलखंडी, बैसवाड़ी, अंतर्वेदी, एवं मराठी राजस्थानी आदि सभी भाषाओं के शब्दों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया है। तत्सम और तद्भव दोनों ही प्रकार के शब्दों का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त बोल-चाल के स्थानीय शब्दों को भी अपनाया गया है।

प्राचीन अप्रचलित शब्दों के भी प्रयोग किए गए हैं। जिन कवियों ने संयुक्ताक्षर और नादात्मक शैली को अपनाया है अथवा प्रशंसात्मक पद्धति का प्रयोग किया है, उनकी भाषा में अस्वाभाविकता और शब्दों की तड़क-भड़क अधिक मिलती है। शब्दों की तोड़-मरोड़ भी इन कवियों द्वारा की गई है।

इन रचनाओं में मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया गया है, जिसके कारण से भाषा की शक्ति अधिक बढ़ गई है।

अधिकांश कवियों ने 'सु' तथा 'जु' जैसे निरर्थक शब्दों का उपयोग करके अपनी रचनाओं को अधिक अरोचक बना दिया है। भूषण आदि कुछ कवियों की भाषा में खड़ी बोली के रूप भी मिलते हैं।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस धारा की शैली और भाषा पर तत्कालीन प्रचलित सभी साहित्यिक शैलियों का प्रभाव है। इन कवियों में से अधिकतर दरबारी एवं लोभी कवि थे, जिन्होंने अपनी बँधी-बँधाई परिपाटी का ही अनुकरण किया है। कुछ ऐसे भी कवि थे, जो अपने पांडित्य-प्रदर्शन और चमत्कार के जाल में बुरी तरह से फँसे हुए थे। इनकी रचनाओं मे शैली और भाषा संबंधी संकीर्णता और नीरसता का वर्तमान रहना स्वाभाविक था। पर कुछ ऐसे कवि भी थे जो इन प्रलोभानों और संकीर्णताओं से ऊँचे उठ सके थे। उनकी कविताओं में शैली और भाषा का अधिक निखरा हुआ सरस और परिमार्जित रूप दृष्टि-गोचर होता है। भूषण और गोरेलाल के नाम इस दृष्टि से लिये जा सकते हैं।

'वीरसिंहदेव-चरित' तथा 'रत्नबावनी'

केशव ने 'वीरसिंहदेव-चरित' में वर्णनात्मक शैली का अनुकरण किया है, पर उसमें संवादों की भी प्रधानता है। इन संवादों के कुछ स्थल व्यर्थ के तर्क और उपदेश से परिपूर्ण हैं।[1] जहाँ पर कवि ने उपदेशात्मकता का बहिष्कार किया है, वहाँ पर नाटकीय त्वरा का समावेश हो जाने के कारण ग्रंथ सरस हो गया है।

सबसे बड़ी विशेषता केशव की शैली की यह है कि उन्होंने वीर-काव्य की परंपरागत सूची गिनाने की पद्धति का बहिष्कार किया है, जिसके फलस्वरूप ग्रंथ नीरस नहीं होने पाया है। पर इतिहास की इतिवृत्तात्मकता के कारण 'वीरसिंहदेव-चरित' में शुष्कता का समावेश अवश्य हो गया है।

इस ग्रंथ में केशव ने न तो संयुक्ताक्षर-शैली का अधिक अनुकरण किया है और न 'रामचंद्रिका' के समान अलंकार, चमत्कार आदि के फेर में बुरी तरह से पड़े हैं। इसी कारण 'वीरसिंहदेव-चरित' की स्वाभाविक सरसता की बड़ी सीमा तक रक्षा हो गई है। बीच-बीच में शृंगार आदि के रूपक बाँधकर केशव ने इसे सरस बनाने की भी चेष्टा की है।[2]

पर 'रत्नबावनी' में 'वीरसिंहदेव-चरित' की अपेक्षा रस-परिपाक की दृष्टि से केशव अधिक सफल हुए हैं। उन्होंने 'रत्नबावनी' मे संयुक्ताक्षर-शैली का प्रयोग करके उसे शब्दावली की तड़क भड़क से युक्त करने की भी चेष्टा की है।[3] साथ ही युद्धक्षेत्र मे कुमार और विप्र के लंबे वार्त्तालाप भी कुछ अस्वाभाविक हो गये हैं।[4]

केशव ने अपनी रचना ब्रजभाषा में की है। इनकी काव्य-भाषा पर बुंदेलखंडी का अधिक प्रभाव है। भाषा की दृष्टि से 'वीरसिंहदेव-चरित' को एक साधारण ग्रंथ मानना ही समीचीन होगा।

---

[1] वीरसिंहदेव-चरित्र, पृ० २-१४ [2] वही, पृ० ७३-४ [3] केशव-पंचरत्न, रतन-बावनी छं० ३७, पृ० ६ [4] वही, वही, छं० ६-२०, पृ० २-५

यद्यपि इस ग्रंथ मे ऐसे स्थलों का अभाव नहीं है, जहाँ पर भाषा के साहित्यिक रूप के दर्शन[१] होते हैं, पर कवि की भाषा संबंधी नीति इस ग्रंथ की सरलता की ओर अधिक झुकी हुई है। अधिकांश स्थानों पर भाषा गद्य का रूप लिए हुए है।

'वीरसिंहदेव-चरित्र' में सरल संस्कृत-शब्दावली का भी प्रयोग किया गया है, पर लम्बे-लम्बे समस्त-पद वहिष्कृत किए गये हैं। केशव ने इस ग्रंथ में लोकोक्तियों को भी यथास्थान प्रयुक्त किया है, जैसे :—

बिहना फूल्यौ अंग न माइ,[२] अगिहाई जरै,[३] ओली ओड़,[४] गाइ न जानै नाचि माँगि आवै नहिं मोही।[५]

इस ग्रंथ में फ़ारसी-अरबी के शब्द अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त हुए हैं। भाषा-प्रयोग की दृष्टि से केशव 'रत्न-बावनी' में अधिक सफल हुए हैं। उनकी इस रचना में भाषा और शैली का अधिक निखरा हुआ और ओजस्वी रूप देखने में आता है। नादात्मक निरर्थक पदावली से रहित शैली और भाषा का स्वाभाविक दर्शन इनकी इस रचना में मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन का अभिप्राय यह है कि आलोच्य वीर-काव्यों में केशव की शैली और भाषा क्लिष्टता और कृत्रिमता के अस्वाभाविक दोषों से रहित है। यद्यपि 'वीरसिंहदेव' में कवि को इन दृष्टियों से उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई है, जितनी होनी चाहिए थी, पर 'रत्न-बावनी' में वे पर्याप्त मात्रा में सफल हुए हैं, इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता।

गोराबादल की कथा

जटमल ने 'गोराबादल की कथा' में प्रचलित वीर-काव्य शैली का प्रयोग किया है, पर नाम गिनाने, नादात्मक और द्वित्व-वर्ण वाली पद्धति को प्रायः नहीं के बराबर अपनाया है। ऐसा करने से ग्रंथ की रोचकता में वृद्धि हुई है। पर अनुप्रास के फेर में पड़ने के कारण 'गोराबादल की कथा' कहीं-कहीं पर नीरसता और अरोचकता से युक्त हो गई है।[६] जहाँ पर जटमल ने नाम गिनाने[७] की चेष्टा की है, वहाँ पर भी काव्य-गत गुणों की न्यूनता वर्तमान है। कहीं-कहीं पर शब्दों की तड़क-भड़क ही के जाल में दृष्टि फँस जाती है, यथा :—

"सुभट सुभट सूँ लड़गि, पड़गि जहँ खड़ग भड़ाभड़।
जुड़गि जुड़गि तहँ जुड़गि जुड़गि तहँ खड़ग धड़ाधड़॥
मुड़गि मुड़गि जहँ मुड़गि, मुड़गि कोउ अंगन मोड़िग।
गहर गहर गजदन्त, भजत भुइपति गहतो डिग॥
संग्राम राम रावण सु परि, जुड़े जान ऐसी जुगति।
सलसले सेस सायर सलल, धड़हड़ कंप्यो धवल हरि॥"[८]

इस ग्रंथ में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है, पर उस पर सर्वत्र राजस्थानी का प्रभाव वर्त्तमान है। यदि यह कहा जाये कि 'गोराबादल की कथा' की भाषा कतिपय स्थलों पर राजस्थानी के भार

---

[१] वीरसिंहदेव-चरित्र, पृ० ७३-४ [२] वही छं०, ६, पृ० ३६ [३] वही, छं० ६३, पृ० १० [४] वही, छं० ५०, पृ० ६० [५] वही, छं० ७, पृ० ७७ [६] गोराबादल की कथा, छं० ४८-५५ [७] वही, छं० ७२ [८] वही, छं० १२५

से इतनी दब गई है कि उसके वास्तविक स्वरूप का जानना कठिन हो गया है, तो अनुचित न होगा।

जटमल ने संस्कृत की शब्दावली के अपभ्रंश रूपों का भी प्रयोग किया है, जैसे खेत (क्षेत्र),[1] लक्खण (लक्षण),[2] प्रापत (प्राप्त),[3] इत्यादि। इसके साथ ही फ़ारसी-अरबी आदि के अमली (शासक),[4] हरम,[5] दीदार,[6] आदि शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार जटमल की शैली और भाषा कतिपय दोषों और त्रुटियों से युक्त होते हुए भी काव्योचित गुणों से ओत-प्रोत है। उसमें ऐसे स्थलों का अभाव नहीं है, जहाँ पर कवि को अपने काव्य के कला-पक्ष में पूर्ण सफलता मिली है।

ललित ललाम

"मतिराम की रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसकी सरसता अत्यंत स्वाभाविक है, न तो उसमें भावों की कृत्रिमता है, न भाषा की। भाषा शब्दाडम्बर से सर्वथा मुक्त है—केवल अनुप्रास के चमत्कार के लिए अशक्त शब्दों की भरती कहीं नहीं है। जितने शब्द और वाक्य हैं वे सब भाव-व्यंजना में ही प्रयुक्त हैं। रीति-ग्रंथ वाले कवियों में इस प्रकार की स्वच्छ, चलती और स्वाभाविक भाषा कम कवियों में मिलती है, पर कहीं-कहीं वह अनुप्रास के जाल में बेतरह जकड़ी पाई जाती है। सारांश यह है कि मतिराम की सी रस-स्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा-रीति का अनुसरण करनेवालों में बहुत ही कम मिलती है।

...रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में पद्माकर को छोड़ और किसी कवि में मतिराम की-सी चलती भाषा और सरल व्यंजना नहीं मिलती।"[7]

मतिराम की वीरकाव्य संबंधी रचना में उपर्युक्त प्रायः सभी विशेषताएँ वर्तमान हैं।

भूषण-ग्रंथावली

भूषण की रचना-शैली मुक्तक है। उसमें प्रबंध-काव्य की सी वर्णनशैली की आशा करना भूषण के साथ अन्याय करना होगा। फिर भी संपूर्ण काव्य में शिवाजी के जीवन की प्रमुख एवं विस्तृत घटनाओं का समावेश हो जाने के कारण फुटकर काव्य होते हुए भी, उसमें वर्णन की विविधता के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त हो गया है।

साधारणतः भूषण की शैली विवेचनात्मक तथा संश्लिष्ट है। विवरणात्मक-प्रणाली का इन्होंने बहुत ही कम उपयोग किया है। रायगढ़ के वर्णन[8] में भूषण ने इसी शैली का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि दरबारी और मुक्तक-रचना करनेवाले कवि होने के नाते भूषण ने विवरणात्मक-शैली का बहुत कम प्रयोग किया है, पर जितना उन्होंने इस प्रणाली का अनुसरण किया है, उसमें इन्हें अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है।

भूषण की सबसे अधिक मँजी हुए शैली विवेचनात्मक है। इसके उदाहरण 'शिवराज-भूषण' में प्रचुर मात्रा में वर्त्तमान हैं।[9]

---

[1] गोराबादल की कथा, छं० २ [2] वही, छं० ४५ [3] वही, छं० ३२ [4] वही, छं० ३ [5] वही, छं० ६१ [6] वही, छं० ६३ [7] रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी-साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण, पृ० २४२-३; मतिराम-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ७२-८६ [8] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० १५-२३ [9] वही छं० ६३, ७३, २८०

इसी प्रकार भूषण को संश्लिष्ट शैली का प्रयोग करने में भी पूर्ण सफलता मिली है।[1] इनकी इस प्रकार की शैली से इनके ग्रंथ भरे पड़े हैं।

इनकी रचनाओं में अलंकार अनायास आते गये हैं। इनके कारण भाषा और भाव के प्रवाह में कोई बाधा नहीं पड़ी है, वरन् वे भाव अधिक स्पष्ट करने के लिए ही आये हैं। भूषण ने युद्ध के बाहरी साधनों का ही वर्णन करके संतोष नहीं कर लिया है, वरन् मानव हृदय में उमंग भरने वाली भावनाओं की ओर उनका सदैव लक्ष्य रहा है। शब्दों और भावों का सामंजस्य भूषण की रचना का विशेष गुण है।[2]

भूषण ने अपने समय में प्रचलित साहित्य की सामान्य काव्य-भाषा ब्रज का प्रयोग किया है। यह स्मरण रखना चाहिये कि भूषण ने विदेशी शब्दों का अधिक प्रयोग मुसलमानों के ही प्रसंग में किया है। साथ ही दरबार के प्रसंग में भाषा का खड़ा रूप भी देख पड़ता है।

इन्होंने विदेशी शब्दों से क्रियापद अवश्य बनाये हैं, पर उनके प्रयोग प्रायः परम्परा-भुक्त ही हैं। क्रियाओं के नये प्रयोग उन्होंने कम रक्खे हैं। भूषण ने विदेशी शब्दों में भाषा के प्रत्यय तो लगाये हैं, पर संस्कृत के प्रत्यय बहुत कम दिखाई देते हैं। मुगलेटे, पठनेटे, आदि शब्द भूषण ने बनाये हैं। संस्कृत प्रत्यय या उपसर्ग लगाकर 'अनचैत' आदि शब्द कहीं लिखे हैं। विदेशी प्रत्यय देशी शब्दों में भी कहीं-कहीं देखे जाते हैं जैसे :—'दलदार'।

भूषण ने अरबी-फ़ारसी और तुर्की के शब्द अधिक प्रयुक्त किये हैं। ऐसा करने में उन्होंने तत्कालीन मराठी की प्रवृत्ति को ग्रहण किया है। बेदिल, गैरमिसिल आदि शब्द भूषण की भाषा में मराठी से हो होते हुए आये हैं। भूषण ने बुन्देली के शब्दों का भी प्रयोग किया है यथा :—

'धीर *धरबी* न धरा कुतुब के धुर की।'

इन्होंने बैसवाड़ी एवं अंतर्वेदी शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है जैसे :—

(क) *कालिह* के जोगी *कलींदे* को खप्पर।'
(ख) 'गजन की ठेल-पेल सैल *उसलत* हैं।'
(ग) 'तेरी तरवार स्याह नागिन तें *जासती*।'

भूषण की भाषा का रूप साहित्यिक दृष्टि से बहुत परिष्कृत और ग्राह्य तो नहीं है, पर व्यावहारिक दृष्टि से बुरा भी नहीं कहा जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराष्ट्र देश-वासियों के लिए अपनी कविता को बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से ही भूषण ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है।

कहीं-कहीं पर भूषण ने अप्रचलित शब्द रख दिये हैं, जिनका अर्थ साधारण जनता नहीं जान सकती। साथ ही उन्होंने विदेशी शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है, उदाहरणार्थ फ़ारसी के तकिया (आश्रय), तनाय (तनाब=डोर), बगार (बलग़ार=दुर्गम घाटी) आदि शब्द; अरबी के सरजा (शरजः=सिंह) तथा अबस (व्यर्थ) एवं तुर्की के तुरमती आदि प्रस्तुत किये जा सकते हैं। भूषण ने तत्सम शब्दों का प्रयोग कम किया है। उनकी रचना में तद्भव रूप ही अधिक मिलते हैं।

---

[1] **विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० २८, ६८** [2] **वही, छं० ४१, ४६, ६६, ८१, १६१**

पर कहीं-कहीं पर ऐसे तद्भव एवं ठेठ शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—ओत (आश्रय), गारो (गर्व) आदि। कहीं-कहीं पर दो-एक क्रियाएँ संस्कृत के मूल रूप से भी ले ली गई हैं :— जैसे, 'सिदति है' आदि।

अपभ्रंश-काल से पुरानी हिन्दी में कुछ शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं। उनका प्रयोग भूषण ने बहुत कम किया है। उन्होंने जो ऐसे शब्द लिये हैं, वे बहुत चलते हैं, जैसे बयन, पैज आदि। इससे स्पष्ट है कि भूषण की भाषा मिश्रित भाषा है।

इन्होंने शब्दों को अपेक्षाकृत कम तोड़ा है, यथा :—

'महिमावान' को 'महिमेवाने', 'अंबरीष' को 'अंबरीक।'

भूषण की कविता में ओज पर्याप्त मात्रा में है। प्रसाद का भी अभाव नहीं है। 'शिवराज-भूषण' के आरम्भ के वर्णन में और शृंगार के छंदों में माधुर्य बहुत है।

भूषण ने मुहावरों का कम प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

मुहावरे—(क) मीरन के अवसान गए मिट।

(ख) नाह दिवाल की राह न धाओ।

लोकोक्ति—(ग) सौ सौ चूहे खाय कै बिलाई बैठी जप के।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह धारणा स्थिर हो जाती है, कि यद्यपि भूषण की भाषा साहित्यिक दृष्टिकोण से उखड़ी हुई है, पर उसके इस विकृत रूप के अनिवार्य कारण हैं। अवसर के अनुरोध और समय के प्रभाव से भाषा को यह रूप जान-बूझकर दिया गया है। भूषण की भाषा बहुत मुहावरेदार एवं परिष्कृत न होने पर भी अव्यावहारिक नहीं है।[1]

सारांश यह है कि शैली तथा भाषा की दृष्टि से भूषण को जितनी सफलता मिली है, उतनी इस धारा के अन्य कवियों को अपेक्षाकृत कम प्राप्त हुई है।

राजविलास

मान ने 'राज-विलास' में दरबारी कवियों की अतिशयोक्तिपूर्ण शैली का अवलम्बन किया है। इसीलिये उसने कतिपय घटनाओं का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर चित्रण किया है। मान की कविता में रीति-कालीन-दरबारी कवियों की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। इसीलिये इनके वर्णन प्रायः अस्वाभाविक हो गये हैं।

सूची परिगणन की प्रथा में यह सूदन से पीछे नहीं रहे हैं। घोड़ों,[2] लूट की सामग्री[3], बाज़ार की वस्तुओं[4] तथा अस्त्र-शस्त्रों[5] आदि की लम्बी-लम्बी सूचियों की ग्रंथ में अनेक स्थलों पर भरमार है।

कहीं-कहीं पर शब्द-नाद के कृत्रिम प्रयोगों तथा अलंकारों के बलात् दिग्दर्शन से भी 'राज-

---

[1] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; भूषण-ग्रंथावली, भूमिका पृ० ६०-७०, ८३-९; हिंदी-भवन लाहौर; वही, वही, पृ० ८४-१०४; मिश्रबंधु; वही, वही, पृ० ६०-७८; ब्रजरत्नदास; वही, वही, पृ० १२२-६; भगीरथप्रसाद दीक्षित; भूषण-विमर्श, पृ० १३४-५७; उदयनारायण तिवारी, वीर-काव्य, पृ० २६७-७०; रामचन्द्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० २५६-७ [2] राजबिलास, छं० ८-१०, पृ० ९७ [3] वही, छंद २४, पृ० १०१ [4] वही, छं० ९९-१४७, पृ० ४७-५४ [5] वही, छं० २७ पृ० ९९-१००

विलास' में अस्वाभाविकता का समावेश हो गया है, जैसा कि नीचे की पंक्तियों से सिद्ध होता है :—

"ठनकि गज घंटा सु ठननन भनकि भेरि नफेरि भननन।
षनकि षग्ग उनग्ग वननन, झनकि ज्यों झल्लरी झननन॥"[1]

'राजविलास' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि को शृंगार तथा शांत रसात्मक स्थलों पर वीररसात्मक स्थानों से अधिक सफलता मिली है।[2] इसमें कुछ ऐसे स्थल हैं, जहाँ पर भावोत्कर्ष उत्कृष्ट कोटि का बन पड़ा है।[3]

कहने की आवश्यकता नहीं है, कि 'राजविलास' में ऐसे स्थल बहुत कम हैं, जहाँ पर कवि को अपनी प्रतिभा निर्दोष रूप से दिखाने का अवसर मिला है, अन्यथा यह ग्रंथ अरुचिकर पद्यों से भरा पड़ा है। व्यक्तियों के नामों की सूचियों ने इसे और भी नीरस बना दिया है।[4]

'राज-विलास' की भाषा ब्रज है, जिसमें राजस्थानी के शब्दोंकी भरमार है। उसने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया है।[5] साथ ही स्थान-स्थान पर अपनी रचना को ओजस्विनी बनाने के लिये कवि ने कृत्रिम डिंगल का भी प्रयोग किया है।[6]

'राज-विलास' में अरबी-फ़ारसी के शब्दों की संख्या अत्यल्प है। मान ने 'सु' का प्रयोग अधिक किया है, यहाँ तक कि शब्द के बीच में भी कहीं-कही पर 'सु' लगा दिया है, यथा :—

माधव 'सु' सिंह चौड़ा मरद। रावर सु बोलि जस करन रंग।[7]

मान की रचना में लोकोक्तियों का बहुत कम प्रयोग हुआ है, जैसे कि :—

कोटिक किए कलाप। दूध फट्टो न होय दहि॥[8]

'राजविलास' के देखने से विदित होता है कि मान ने कहीं-कहीं पर दूसरे कवियों के छंदों से भी लाभ उठाया है, विशेष कर तुलसी के 'रामचिरत-मानस' से जैसा कि नीचे दिए हुए छंदों से स्पष्ट होता है :—

मान :— **"मनु मद पीबो मक्वडहि, डसि वृश्चिक लसि भूत।**
किं किं कौतुक ना करै, सो दिल्लीपति सूत॥"[9]

तुलसी :— **ग्रह ग्रहीत पुनि बातवस तेहि पुनि बीछी मार।**
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु कौन उपचार॥[10]

ऊपर किये गये विवेचन के पश्चात् यह परिणाम निकलता है कि शैली और भाषा की दृष्टि से मान की कविता सदोष होते हुए भी शुद्ध कवित्व-शक्ति, भाषा-सौष्ठव, ओज तथा स्वाभाविकता से ओत-प्रोत है। अतएव इस दृष्टि से इस धारा के कवियों में मान का एक विशेष स्थान है।

---

[1] राजविलास, छं० १०६, पृ० ३० [2] वही, छं० १४, पृ० ३ [3] वही, छं० ८०, पृ० १६० [4] वही, छं० ५५-६८, पृ० १९३-५; वही, छं० ८१-५, पृ० १९८-९ [5] वही, छं० ३१, पृ० ७ [6] वही, छं० २४, पृ० २१५-६ [7] वही, छं० ५६, पृ० १९३ [8] वही, छं० ६२, पृ० १५६-७ [9] वही, छं० ११०, पृ० २०२ [10] डा० माताप्रसाद गुप्त; श्री रामचरितमानस, दो० १८०, पृ०२५६

छत्रप्रकाश

गोरेलाल ने 'छत्र-प्रकाश' की रचना जायसी के 'पद्मावत' और तुलसी के 'रामचरित-मानस' की दोहे-चौपाई की शैली में की है। इसमें वर्णन की विशदता तथा प्रसाद गुण की प्रधानता है। उन्होंने टकार-डकारादि लोमहर्षक वर्णों को अस्वाभाविक रूप में प्रयुक्त करने का प्रयत्न नहीं किया है। सरल से सरल और स्वाभाविक से स्वाभाविक रचना द्वारा भावों का समुचित उत्कर्ष दिखलाने में गोरेलाल पूर्णरुप से सफल हुए हैं।

इस प्रकार की सफलता कवि को चौपाइयों की अपेक्षा दोहों में अधिक मिली है। वस्तुओं की सूची परिगणन के अनावश्यक वर्णन-विस्तार में यह नहीं पड़े हैं। पर युद्ध-क्षेत्र में व्यक्तियों के नामों की दीर्घ सूची के कारण अवश्य अरुचि उत्पन्न होती है।[1]

लाल कवि ने निम्न कोटि के शब्द-नाद का प्रयोग केवल वैचित्र्य लाने के लिये नहीं किया है। बहुत थोड़े ही ऐसे स्थल हैं जहाँ पर ऐसे प्रयोग मिलते हैं, किन्तु उनसे किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं प्रकट होती है, यथा :—

'छूटे बान कुहु-कुहु बोला। नभ गजनाइ उठे गुरू गोला।[2]

× × ×

तथा 'झिलझिल फौज ठिलाठिल धावै।[3]

दोहा-चौपाई में रचना करने वाले प्रायः सब कवियों ने अवधी को अपनाया है, परंतु लाल कवि ने ब्रज-भाषा में रचना की है और उसमें बुंदेली का भी पर्याप्त मिश्रण मिलता है।[4]

इसके अतिरिक्त उसमें अरबी शब्दों के हीसा (हिस्सा=भाग),[5] तगीरी (तग़यीरी=तबादला),[6] तथा फ़ारसी-अरस (अर्श=आकाश)[7] आदि, अपभ्रंश रूप भी मिलते हैं। संस्कृत के अन्यत्र से अंत (दूसरे स्थल पर)[8] जैसे प्रयोग भी वर्त्तमान हैं। गोरेलाल ने मुहावरों और कहावतों का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है, यथा :—

खेत खपाये,[9] बल दीन्हो, हाहा करना,[10] चूमन लगे सबन की दाढी,[11] पानी रखना[12] तथा आनन मनौ मजीठन माजे[13] इत्यादि।

इसके फलस्वरूप भाषा अधिक प्रौढ़ और भाव अधिक स्पष्ट हो गये हैं। कहीं-कहीं पर लाल ने तुलसी का भी अनुकरण किया है, यथा :—

लाल— 'रन रस फूल भीम छबि लूटी। करकर करी कवच की टूटी।[14]

तुलसी— 'एतना कहत नीतरस भूला। रनरस बिटपु पुलक मिस फूला॥[15]

इस ग्रंथ में कहीं-कहीं पर खड़ी बोली के भी दर्शन होते हैं, यथा :—

जान प्रवीन तुम्है हम भेजा। तुम तौ दिया जलाइ कलेजा।[16]

इस प्रकार शैली और भाषा के विचार से लाल कवि अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

---

[1] छत्रप्रकाश पृ० १०१-२०, १२५, १२८ १३३-४ [2] वही, पृ० ५६ [3] वही, पृ० ५६ [4] वीरकाव्य, पृ० ३१०-१६; हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३३-४ [5] छत्रप्रकाश, पृ० ५ [6] वही, पृ० ४१ [7] वही, पृ० १६ [8] वही, पृ० ५८ [9] वही, पृ० ६ [10] वही, पृ० ३३ [11] वही, पृ० ४६ [12] वही, पृ० ६५ [13] वही, पृ० १३३ [14] वही, पृ० १३४ [15] श्री रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, पृ० २७७ [16] छत्रप्रकाश, पृ० १२४

रीति और चारण-शैली को न अपना कर उन्होंने अपना मार्ग अलग ही निश्चित किया है, जिसमें उन्हें पूर्णरूप से सफलता मिली है।

जंगनामा

श्रीधर ने 'जंगनामा' की रचना के लिये वीररसात्मक काव्य-पद्धति को अपनाया है। वीर-रस के उपयुक्त छंदों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के छंदों का भी उसने प्रयोग किया है। छंदों की इस विविधता और परिवर्तनशीलता के कारण 'जंगनामा' में किन्हीं अंशों में सरसता का समावेश हो गया है।

श्रीधर ने युद्ध में सम्मिलित होने वाले अमीरों और नवाबों की लम्बी-लम्बी सूचियाँ दी हैं,[1] जिनमें उनके नामों तथा गुणों की बार-बार आवृत्ति की गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यह ग्रंथ उन स्थलों पर नीरस और शुष्क हो गया है।

इसके अतिरिक्त संयुक्ताक्षर एवं नादात्मक वर्ण-प्रयोग[2] के कारण 'जंगनामा' का अधि-कांश भाग शैली की दृष्टि से निरर्थक, अरुचिकर तथा अत्यंत साधारण श्रेणी का हो गया है। सौभाग्य की बात है, कि श्रीधर ने इस प्रकार के शब्द-नाद का अधिक उपयोग नहीं किया है। इन त्रुटियों के रहते हुए भी श्रीधर ने कहीं-कहीं पर अच्छी शैली का[3] प्रयोग किया है, जिसके फलस्वरुप काव्य सरस और सौष्ठवपूर्ण हो गया है।

'जंगनामा' की भाषा परिष्कृत तथा व्याकरण-सम्मत ब्रज है, पर उसमें डिंगल और बुन्देली के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। इसकी भाषा में अवधी का भी पुट पाया जाता है। इनकी भाषा अधिकांश स्थलों पर अधिक गम्भीर और प्रभावशाली हो गई है।[4]

उपर्युक्त कथन का सार यह है कि बहुत सी त्रुटियों के वर्त्तमान रहते हुए भी 'जंगनामा' में ऐसे अधिकांश स्थल हैं, जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीधर में शैली और भाषा का सफल प्रयोग करके अपनी कविता को उत्तम एवं निर्दोष बनाने की अनुपम प्रतिभा वर्त्तमान थी। प्रशंसात्मक शैली को छोड़कर यदि वे स्वतंत्र-रूप से कविता करते तो उन्हें 'जंगनामा' में शैली और भाषा की दृष्टि से अधिक सफलता प्राप्त हुई होती।

रासा भगवन्तसिंह

सदानन्द को अपने काव्य 'रासा भगवन्तसिंह' में शैली और भाषा की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। उनकी यह कृति, यद्यपि आकार में छोटी है, तथापि छंदों की अधिक संख्या प्रयुक्त होने के कारण उसमें रोचकता का सम्मिश्रण हो गया है। वीररस की रचना होते हुए भी उसमें संयुक्ताक्षर शैली का नहीं के बराबर प्रयोग हुआ है। साथ ही नादात्मक शैली का तो कवि ने एक दम बहिष्कार किया है। परिणाम यह हुआ है कि यह ग्रंथ सरस और प्रभावोत्पादक बना रहा है।

---

[1] जंगनामा, पंक्तियाँ ५२-६०, ७४-८२, १७४-२१२, २३३-३४५, ४१३-३४, ८६७-१२४६
[2] वही, पंक्तियाँ १४२१-५०, १५६३-७४ [3] वही, पंक्तियाँ ६७४-९० [4] वीरकाव्य, पृ० ३३७-४२; जरनल ऑव् रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, संख्या LXIX, १९०० ई०, पृ० १-२

इसके अतिरिक्त पात्रों के संवादों के कारण उनमें नाटकीय त्वरा का समावेश हो गया है। कवि ने पात्रों के अनुरूप भाषा का रूप बदलने का भी प्रयास किया है।

मुसलमान पात्रों के वार्त्तालाप में इनके द्वारा उर्दू-प्रधान भाषा का प्रयोग कराया गया है।[1]

यद्यपि इस कवि ने व्रजभाषा का प्रयोग किया है तथापि उसमें संस्कृत तथा फ़ारसी आदि के प्रचलित शब्दों के प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, यथा :—

संस्कृत—बारन[2] आदि।

फारसी—ख़त[3] आदि।

इसके अतिरिक्त इस रचना में फ़ारसी शब्दों के अपभ्रंश रूप भी मिलते हैं; जैसे—बकसीस।[4] उसमें कहीं-कहीं पर साधारण बोलचाल के प्रयोग भी मिलते हैं, यथा :—

तिसै।[5]

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन का सार यह है कि शैली और भाषा दोनों के विचार से सदानंद का अपनी धारा के कवियों में एक विशिष्ट स्थान है।

सुजान-चरित्र

सूदन ने 'सुजान-चरित्र' में केशव की 'रामचंद्रिका' के समान विविध प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। छंदों में शीघ्रता से परिवर्तन करने के कारण ग्रंथ की शैली में रोचकता का समावेश हो गया है। उसने प्रत्येक अंक के अंत में इस हरिगीतिका छंद की आवृत्ति की है :—

**"भूपाल-पालक-भूमिपति बदनेस नंद सुजान हैं। जानैं दिलीदल दक्खिनी कीने महाकलिकान हैं॥
ताकौ चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइ कै। कहि देव ध्यान कवीस नृप-कुल प्रथम अंक सुनाइ कै॥[6]"**

प्रत्येक स्थान पर इस छंद के प्रथम तीन पद वही रहते हैं, पर चतुर्थ पद अध्याय की वर्णित कथा के अनुसार बदलता गया है।

सूदन ने विविध वस्तु-सूची[7] और व्यक्तियों[8] के नामों को गिनाने की शैली को अधिकता से अपनाया है; जिसके कारण 'सुजानचरित्र' के उक्त स्थल नीरस एवं शुष्क हो गए हैं।

इसके अतिरिक्त सूदन ने संयुक्ताक्षर[9] तथा नादात्मक[10] शैलियों का जी खोलकर प्रयोग किया है, जिसके फलस्वरूप वे स्थल शब्दों की तड़क-भड़क से परिपूर्ण हो गये हैं। इन स्थानों पर कवि की शैली के प्रति पाठक को विवश होकर उदासीनता प्रदर्शित करनी पड़ती है। इन स्थलों पर भाव और विषय अस्पष्ट और भाषा बच्चों का खेलवाड़ हो गई है। डिंगल की इस पद्धति पर लिखे गये काव्य में बाहरी उमंग की ही प्रधानता है।

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ५, १९८१ वि०, छं० २०-३, पृ० ११७ [2] वही, वही, छं० ७, पृ० ११५ [3] वही, वही, छं० ६, पृ० ११४ [4] वही, वही, छं० ४७, पृ० १२२ [5] वही, वही, छं० १९, पृ० ११६ [6] सुजान-चरित्र, छं० ३४, पृ० ७ [7] वही, छं० ३१-४८, पृ० १७१-९ [8] वही, छं० १३, पृ० ४६-७; छं० ४०, पृ० ५३-४; छं० २८, पृ० ७५-६; छं० २-६, पृ० १२०-४; छं० ६, पृ० १३२-३; छं० ९-१२, पृ० १३४-५; इत्यादि [9] वही, छं० ४, पृ० २१-२; छं० १८, पृ० ३५, छं० ७, पृ० ८६-९१ [10] वही, छं०, २ पृ० २०-१; छं० १४, पृ० १३५-७; छं० १६, पृ० १४३; छं० ११ पृ० १८५-७

सूदन ने अपने ग्रंथ में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया है। इस संबंध में दिल्ली की लूट-वाला अंश[1] विशेष उल्लेखनीय है। नाना देश की स्त्रियों का विविध प्रकार की भाषाओं में विलाप बड़ा मनोरंजक हो गया है। पर इस प्रकार का भाषा के साथ खिलवाड़ कहीं-कहीं सीमा का भी अतिक्रमण कर गया है, जिससे कृत्रिमता दृष्टिगोचर होने लगती है।

इसके अतिरिक्त सूदन ने अपनी कविता में 'जु' और 'सु' का निरर्थक प्रयोग अत्यधिक किया है। यहाँ तक कि नामों के दो खंड करके उनके बीच में भी 'सु' अथवा 'जु' भिड़ा दिया है। यथा:—

'फर्रुक जु सेर' (फर्रुखसियर), 'मीराँ जु साहि'[2] 'सु पाइक।'[3]

इस प्रकार के प्रयोगों के कारण ग्रंथ में शैथिल्य दोष का समावेश हो गया है। कहीं-कहीं पर तो इसके कारण अर्थ का अनर्थ हो गया है।

सूदन की भाषा साहित्यिक ब्रज-भाषा है, यद्यपि उसमें अन्य भाषाओं का पुट भी यत्र-तत्र मिलता है। इनके अधिकांश कवित्तों तथा सवैयों में ब्रजभाषा का सौंदर्य स्वभावत: निखर आया है, परन्तु भुजंगप्रयात, भुजंगी और कड़खा इत्यादि छंदों में जहाँ शब्द नाद की उद्भावना की चेष्टा की गई है, वहाँ डिंगल और मारवाड़ी के रूप घुस आये हैं और भाषा की स्वाभाविक मृदुता नष्ट हो गई है। इनकी भाषा में ब्रजभाषा का पूर्ण प्रभाव रहते हुए भी पंजाबी,[4] मारवाड़ी[5], बैसवाड़ी तथा पूर्वी[6] के प्रयोग प्रचुर परिमाण में आ गये हैं। साथ ही उर्दू-मिश्रित-भाषा[7] का प्रयोग भी सूदन ने अधिकता के साथ किया है।[8]

सूदन की भाषा की उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त एक उल्लेखनीय गुण यह भी है, कि उन्होंने मुहावरों का प्रचुरता से प्रयोग किया है, जिससे भाषा अधिक प्रौढ़ और व्यापक बन गई है, यथा:—

'डाढ़ी की लाज,'[9] 'करत किसान खेत ज्यौं लाई'[10] 'बिस्वा बीस' ॥[11]

कहीं-कहीं पर 'सुजान-चरित्र' में आल्हा की शैली का भी प्रयोग किया गया है।[12] इसके कुछ वर्णनों को देखकर भूषण की शैली का स्मरण हो आता है।[13] साथ ही उसमें ग्रामीण प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे:—

'नगीच',[14] 'लोग बाग',[15] 'तिस',[16]।

ऊपर के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूदन ने विविध शैलियों और विविध प्रकार की भाषाओं को अपनी रचना में स्थान दिया है। बहुत सी त्रुटियों के होते हुए भी उन्हें इस क्षेत्र में आशातीत सफलता मिली है। इस दृष्टि से उनका स्थान बड़े महत्त्व का है।

---

[1] सुजानचरित्र, छं० १६-२०, पृ० १६७-७१ [2] वही, छं० १२ पृ० १५६ [3] वही छं० ६, पृ० ३७ [4] वही, छं० २२, पृ० १६८ [5] वही, छं० २३, पृ० वही [6] वही, छं० २७, पृ० १६६-७० [7] वही, छं० २६, पृ० १६६ [8] वीरकाव्य, पृ० ३८४-६०; हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३६३-४; मिश्र-बंधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ७०६, ७१४-७; सुजानचरित्र, कवि-परिचय, पृ० १, ४-६ [9] वही, छं० २६, पृ० १६२ [10] वही, छं० ३, पृ० १६३ [11] वही, छं० ५, पृ० १८२ [12] वही, छं० ११, पृ० २१४ [13] वही, छं० ४७, पृ० १५२; भूषण-ग्रंथावली, शिवा-बावनी, छं० २० [14] सुजान-चरित्र, छं० ३३, पृ० ६८; छं० १६, पृ० ७३ [15] वही, छं० ३७, पृ० ३६ [16] वही, छं० १६, पृ० १४०

'करहिया को रायसो'

गुलाब कवि ने अपने 'करहिया को रायसो' नामक काव्य में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। छंदों के बार-बार परिवर्तित करने के कारण इसमें रोचकता आ गई है। इस ग्रंथ में यत्र-तत्र नाम गिनाने की प्रवृत्ति का भी अनुकरण किया गया है।[1]

इस कवि ने अधिकांश स्थानों पर चारणों की संयुक्ताक्षर शैली का प्रयोग किया है। इस कारण कहीं-कहीं पर शैली और भाषा बच्चों का खेलवाड़ बन गई है, जैसा कि इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है :—

"भुंडड्डुरिंग प्रचंड ड्डिढ करि भुंड ड्डरिपिय। भुस्सुं ड्डिढ करि तुंड्डु डुभ कि भ चमंड्डुड डुगरिय॥
रुंडद्धरिन अरिंद ड्डुड्डुरिय अरंभम्भुज पर। रंभग्गन किय भग्गग्गति चल कद्दद्दसिवर॥[2]

हर्ष की बात यह है कि उक्त रचना में इस प्रकार के स्थल अपेक्षाकृत कम हैं।

गुलाब ने अपनी कविता ब्रजभाषा में की है। भावानुकूल भाषा जुटाने में उन्हें यथेष्ट मात्रा में सफलता प्राप्त हुई है। उन्होंने फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है, यथा-जंग, जालिम।[3]

सारांश यह है कि शैली और भाषा की दृष्टि से गुलाब कवि को यथेष्ट मात्रा में सफलता मिली है।

'हिम्मतबहादुर-विरुदावली'

पद्माकर की 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' की शैली वर्णनात्मक है। इस ग्रंथ के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इसे कतिपय अध्यायों में विभाजित किया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में सूदन के समान पद्माकर ने एक हरिगीतिका छंद की आवृत्ति की है, जिसकी प्रथम दो पंक्तियाँ विषयानुसार परिवर्तित होती गई हैं और अन्तिम दो पंक्तियाँ प्रत्येक स्थान पर समान रही हैं।[4] पर इस छंद की आवृत्ति करने में इस कवि ने कथावस्तु के समुचित अनुपात से विभाजन का ध्यान नहीं रक्खा है और न इस ग्रंथ के किसी भी संस्करण में इस प्रकार के वर्गीकरण का संकेत ही है।

पद्माकर की इस कृति में नाम गिनाने की शैली[5] के कारण काव्य के सौंदर्य का रूप विकृत हो गया है। साथ ही संयुक्ताक्षर और द्वित्व वर्णात्मक[6] प्रयोग करके इन्होंने चारण-परंपरागत शैली का अनुकरण किया है, जिसके कारण शब्दों की तड़क-भड़क के दर्शन तो हो जाते हैं, पर उससे काव्य की आत्मा का हनन हो गया है। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में यत्र-तत्र नादात्मक पंक्तियों के भी प्रयोग[7] मिलते हैं, जिनका प्रयोग किसी भी दृष्टि से काव्यानुकूल नहीं माना जा सकता। इस संबंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि पद्माकर ने केवल परिपाटी मात्र का अनुसरण करके ही इसका उपयोग किया है। सौभाग्य की बात यह है कि इस प्रकार की शैली के उदाहरण अपेक्षाकृत कम ही हैं।

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १०, १९८६ वि०, छं० २१-२३ पृ० २७९-८० [2] वही, वही, वही, छं० ४७ पृ० २८७ [3] वही, वही, वही, छं० ५ पृ० २७७ [4] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० २, ४६, ९२, ७७, १८१, २१२ [5] वही, छं० २७-३७, १९२-५ [6] वही, छं० ७, ६१ [7] वही, छं० १३०, १८६

पद्माकर के वीर-काव्य की भाषा ब्रज है। भाषा की दृष्टि से इन्हें अधिक सफलता मिली है। इनकी भाषा में विभिन्न भाषाओं के अपभ्रंश शब्दों के प्रयोग मिलते हैं, यथा :—

अरबी शब्द—करद (क़स्द), कहर (क़ार = गहराई), हैरत, नव्जै।[1]

फारसी शब्द—खिलवतिन (ख़िलवती = अंतरंग सखा), महूम (मुहिम्म = आक्रमण), गलीम (ग़नीम = शत्रु), फ़ते (फ़तह = विजय)।[2]

बुंदेलखंडी—खंडी (= चौथ), पसर करना (= आक्रमण करना), पैरी (= पीढ़ी), कुहचान (= हाथ की कलाई)।[3]

अन्तर्वेदी—हरबरे, बुट्टै (= भाग जाते हैं), उराउ (= उत्साह)।[4]

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से ज्ञात होता है कि पद्माकर ने कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करके तथा उसको अधिक व्यापकता प्रदान करने की चेष्टा करके भाषा-प्रयोग संबंधी संकीर्णता का परित्याग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'सु' जैसे व्यर्थ के शब्द को भी अपनी कविता में स्थान दिया है।[5]

ऊपर किए गये विवेचन से स्पष्ट है कि कवि पद्माकर ने प्रचलित शैली[6] का अनुकरण करते हुए भी भाषा को अधिक उदारतापूर्वक प्रयुक्त किया है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उन्हें इतनी सफलता नहीं मिली है, जितनी भाषा की दृष्टि से। व्यंग्यपूर्ण-उक्तियों और उत्साहपूर्ण संवादों का 'विरुदावली' में सर्वथा अभाव है। इसमें कवि ने बाह्याडम्बरों का आश्रय लिया है। यह होते हुए भी भाषा प्रयोग की दृष्टि से पद्माकर अपना एक विषिष्ट स्थान रखते हैं।

'हम्मीररासो'

शैली और भाषा की दृष्टि से जोधराज का एक विषिष्ट स्थान है। उन्होंने अपने काव्य की रचना के लिये 'पृथ्वीराजरासो' की शैली को अपनाया है, पर एकदम उसी का अनुकरण न करके अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है। विषय और भाव के अनुरूप उन्होंने शैली और भाषा में परिवर्तन करके अपने काव्य को सरस और रोचक बनाने में यथेष्ट मात्रा में सफलता प्राप्त की है। सबसे अधिक महत्व की यह बात है कि वीर-काव्य की संयुक्ताक्षर शैली और द्वित्व वर्णात्मक शैली का इन्होंने नहीं के बराबर प्रयोग किया है।[7] इस प्रकार की शब्दों की भड़ाभड़ और तड़ातड़ से युक्त शब्दावली का बहिष्कार करके अपने विषय का प्रतिपादन करने में जोधराज को पर्याप्त सफलता मिली है।

जोधराज के ग्रंथ को देखने से विदित होता है कि वे गोस्वामी तुलसीदास की शैली से भी बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित हुए हैं। कतिपय स्थलों पर तो तुलसीदास की कुछ पंक्तियाँ ज्यों की त्यों हम्मीररासो में मिलती हैं, यथा :—

---

[1] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, देखिये क्रमशः छंद ६५, ६६, १२६, १८७, (पाद-टिप्पणियों सहित) [2] वही, देखिये क्रमशः छंद १२ १४, १५, २०६, (पाद-टिप्पणियों सहित) [3] वही, वही छंद १६, ६२, १०७, ११३ (पादटिप्पणियों सहित) [4] वही, वही, छंद १६, ७१, १५४ (पाद-टिप्पणियों सहित) [5] वही, छंद ८३, १२४ [6] वीरकाव्य, पृ० ४५३-७; काव्य-साधना, पृ० ६७-७३; पद्माकर-पंचामृत, आमुख, पृ० ६६-१२। [7] हम्मीररासो, छंद १३०-४१, ३६८, ४८०-३

(क) जोधराज—"का नहिं पावक जरि सकै, का नहिं सिंधु समाय।
का न करै अबला प्रबल, किंहि जग काल न खाय॥"[१]
तुलसी—"काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ॥"[२]

(ख) जोधराज "सुनि वजीर के बचन सुहाये। मीर जमालखान बुलवाये"।[३]
"सुनि गभरू के बचन सुभाये। महिमा फूल खेत में आये"।[४]
तुलसी "जामवंत के बचन सुहाये। सुनि हनुमंत हृदय अति भाये"।[५]

(ग) जोधराज "चारि दरा घाटी जितो। कीने घाटा रोह"।[६]
तुलसी "अस बिचारि गुह ज्ञाति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथ वासहु बोरहु तरनि कीजिए घाटा रोह"॥[७]

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हम्मीररासो की रचना करते समय कवि ने 'रामचरितमानस' तथा अन्य ग्रंथों की ज्यों की त्यों उक्तियों को स्वतंत्रतापूर्वक स्थान ही नहीं दिया है, वरन् उनकी शैली का प्रभाव उसके ग्रंथ के अधिकांश अंश पर वर्त्तमान है।

जोधराज ने बीच-बीच में गद्य की वचनिका का प्रयोग किया है, जिससे उसमें रोचकता आ गई है।

'हम्मीररासो' में ब्रज-भाषा के साहित्यिक रूप के दर्शन होते हैं, पर कहीं-कहीं पर उसने बोल-चाल की भाषा का रूप धारण कर लिया है। उसकी भाषा में कोमल-कांत-पदावली के भी दर्शन होते हैं। विशेषकर श्रृंगाररस वर्णन में।[८]

जोधराज ने फारसी के शब्दों का तद्भव रूप में प्रयोग किया है, जैसे—हुरम (फा० हरम)[९] उज्जीर (वज़ीर)।[१०] इसी प्रकार संस्कृत के 'स्यंदन' के लिए सिंदन,[११] कुंवर के लिए 'कौर'[१२] का उसने प्रयोग किया है। इस कवि ने कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं—

विश्वा बीस,[१३] अहि ज्यूँ गहि छछूंदरी[१४]।

इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा उसने भाषा को अधिक सबल, व्यापक एवं प्रौढ़ शक्ति प्रदान करने की चेष्टा की है। कहीं-कहीं पर सबरे (सब)[१५] सुद्धा' (सहित)[१६] जैसे ग्रामीण शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं। साथ ही 'सु'[१७] जैसे निरर्थक शब्दों को भी इस रचना में स्थान दिया गया है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि जोधराज अपने समय तक की प्रचलित शैलियों से प्रभावित हुए हैं। भाषा पर जोधराज का पूर्ण अधिकार था, इसी कारण भावानुकूल भाषा जुटाने में उसे पर्याप्त मात्रा में सफलता मिली है।

---

[१] हम्मीररासो, छंद १५८ [२] डा० माताप्रसाद गुप्त : श्री रामचरितमानस' अयोध्याकांड, दो० ४७, पृ० १६६ [३] हम्मीररासो छंद ५३७ [४] वही, छंद ८३५ [५] श्रीरामचरितमानस, सुंदरकाण्ड, पृ० ३७१ [६] हम्मीररासो, छं० ७६१ [७] श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकांड, दो० १८६, पृ० २६६ [८] हम्मीररासो, छंद २४१-२, [९] वही, छंद २४६ [१०] वही, छंद ३१६ [११] वही, छंद ४४३ [१२] वही, छंद ५१६ [१३] वही, छंद ६४४ [१४] वही, छंद ६४५ [१५] वही, छंद ६४१ [१६] वही, वचनिका, पृ० १८२ [१७] वही, छं० ३५१, ४२६

द्वितीय-खंड

ऐतिहासिक अध्ययन

सामान्य परिचय

ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किये गए ग्रंथों पर विचार करने से विदित होता है कि इन ग्रंथकारों की विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक प्रवृत्तियाँ थीं। सर्वप्रथम इस बात का पता चलता है कि घटनाओं की तिथियों के उल्लेख की ओर बहुत कम कवियों का ध्यान गया है। जिन कवियों ने घटनाओं की तिथियों का उल्लेख किया है, उनमें से अधिकांश तिथियाँ अशुद्ध हैं और इतिहास ग्रंथों में दी हुई तिथियों से मेल नहीं खाती हैं। इनमें से कुछ ऐसे कवि भी हैं, जिन्होंने तिथियों की प्रामाणिकता और शुद्धता का समुचित ध्यान रक्खा है।

अपने आश्रयदाताओं के वंश और उनके पूर्वजों का विवरण देने में भी इन कवियों ने दो प्रकार की परंपराओं का परिचय दिया है। कुछ ऐसे कवि हैं जिन्होंने इस संबंध में पौराणिक दंत-कथाओं, चारण-परंपराओं तथा काल्पनिक घटनाओं का निःसंकोच भाव से प्रयोग किया है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी ग्रंथकार मिलते हैं, जिन्होंने इस संबंध में शुद्ध ऐतिहासिक घटनावली का ही आश्रय लिया है।

पात्रों की दृष्टि से जब इन ग्रंथों की जाँच की जाती है, तो ज्ञात होता है, कि कुछ ग्रंथों में पात्रों की संख्या अत्यधिक न्यून है, तथा कुछ में उनके नामों की भरमार है। कुछ ग्रंथों को छोड़कर अधिकांश रचनाओं में प्रयुक्त पात्रों के नाम ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक हैं। यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इन ग्रंथों में स्त्री-पात्रों का न्यूनतम उल्लेख किया गया है।

घटनावली का वर्णन करने में कुछ कवियों ने ऐतिहासिक प्रामाणिकता और इतिवृत्तात्मक घटना-चित्रण के ऊपर अधिक ध्यान दिया है। ऐसे ग्रंथों का भी अभाव नहीं है, जिनमें घट-नाओं का रूप स्वतंत्रतापूर्वक विकृत किया गया है तथा मनगढ़न्त काल्पनिक घटनावली का पुट दिया गया हैं।

यही बात सेनाओं की संख्या के संबंध में भी कही जा सकती है।

यह सब होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से इस धारा का विशेष महत्त्व है। इन ग्रंथों में से कुछ ऐसे हैं जो अपने चरित्र-नायकों के जीवन से संबंधित विस्तृत एवं सूक्ष्म विवरण देने में सफल हुए हैं। यदि क्षीर-नीर-विवेक से इन ग्रंथों का अध्ययन किया जाये, तो इन ग्रंथों में से बहुत कुछ नवीन एवं मौलिक ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सकती है, जिसकी सहायता से तत्कालीन ऐसी घट-नायें, जो अभी तक अंधकार-गर्त में निहित है, प्रकाश में आ सकती हैं। इस दृष्टि से इस धारा का विशेष महत्त्व है। आगे के पृष्ठों में अध्ययन किये गये ग्रंथों पर अलग-अलग सविस्तर विचार किया जा रहा है, जिससे ऐतिहासिक दृष्टि से इनका वास्तविक मूल्यांकन हो सके।

अध्याय—१

वीरसिंहदेव-चरित

नीचे के पृष्ठों में 'वीरसिंहदेव-चरित' की ऐतिहासिकता पर विचार किया जा रहा है। सर्व प्रथम बुंदेल-वंशोत्पत्ति और पात्रों पर विचार करने के पश्चात् ग्रंथ के प्रकाशों के क्रम से अन्य घटनाओं का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है।

बुंदेल-वंशोत्पत्ति

केशव के मतानुसार सूर्यवंशावतंस भगवान् राम के पुत्र कुश के वंशज एक राजकुमार ने आकर काशी में अपने राज्य की स्थापना की।[1]

काशी के उक्त राज्य-संस्थापन की तिथि निश्चित करना कठिन है। इसके संबंध में बाबू ब्रजरत्नदास का मत है कि काशी के गहरवार राज्य की स्थापना का समय ११९४ ई० में मुसलमानों के हाथों कन्नौज के प्रतापी गहरवार वंश का राज्य नष्ट हो जाने के पश्चात् से मानना चाहिए।[2] ब्रजरत्नदास के इस अनुमान का क्या आधार है, यह ज्ञात नहीं। इसके अतिरिक्त ११९४ ई० में चंदवार और इटावा के मध्य राठौरों की सेना को पराजित करने के अनन्तर मुसलमानों ने काशी पर भी विजय प्राप्त कर ली थी।[3] ऐसी दशा में वहाँ पर गहरवार क्षत्रिय कुमार अपने राज्य की स्थापना कर सका होगा, इसमें संदेह है। उनका यह कथन कि 'अयोध्या से ११९२-११९६ ई० के उपरांत भाग कर आए हुए राजकुमार को काशी के गहरवारों ने सजातीय समझकर राजा मान लिया होगा'[4] कोरा अनुमान ही लगता है। प्रथम तो यह कि काशी पर उस समय तक मुसलमान अपना अधिकार स्थापित कर चुके थे। दूसरे, छीना-झपटी के उस युग में सजातीयता के ही कारण किसी अपरिचित कुमार को राजा चुन लेना साधारण समझ में आने वाली बात नहीं प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त केशव के कथन से यह भी स्पष्ट नहीं होता है कि अयोध्या के राज्य के नष्ट हो जाने से उसका अभिप्राय हिंदुओं द्वारा नष्ट कर देने से है अथवा मुसलमानों के हाथों से। ऐसी परिस्थितियों में केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि काशी के गहरवार क्षत्रिय अपने को सूर्यवंशी मानते थे और अयोध्या से आकर उन्होंने वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था।

निश्चित-पात्र

हिंदू-पात्र—*वीरभद्र*-इसका विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। गहरवार शाखा के अंतिम शासक का नाम चैत-कर्ण बतलाया जाता है, जिसको कृष्ण नारायण ने वीरभद्रसिंह संज्ञा दी है।

---

[1] वीरसिंहदेव-चरित्र, प्र० २, छं० ८४-७, पृ० १४ [2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ३, १९७९ वि०, पृ० ४१४-५ [3] डा० ईश्वरीप्रसाद, हिस्ट्री ऑव मेडीवल इंडिया, पृ० १३६ [4] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ३, १९७९ वि०, पृ० ४१५

बुंदेल-चरित्र में इसके राज्य की आय एक करोड़ रुपए बतलाई गई है। 'छत्रप्रकाश' में इसके पिता का नाम अर्जुनदेव दिया है।[1]

वीर—केशव ने वीरभद्र के पुत्र का नाम वीर माना है। छत्रप्रकाश तथा अन्य इतिहास ग्रंथों के अनुसार वीरभद्र के पुत्र पंचम के लड़के का नाम वीर बुंदेला था। इन विद्वानों के मत में १२१४ ई० में पंचम को मृत्यु हो जाने पर वीर बुंदेला राजा बना। उसने १२३१ ई० में कालपी, मुहौनी और कालिंजर के भोजवर्मन चंदेल को जीता। उसका राज्य रीवाँ, अवध और दो-आब तक फैला हुआ था। उसकी विजयों का विस्तृत विवरण बुंदेल-चरित्र में दिया है।[2]

करन (कर्ण)—"यह वीर बुंदेल के पश्चात् गद्दी पर बैठा। इसने नीमराणा के चौहान राजा की पुत्री से विवाह किया और बनारस में कर्ण-तीर्थ मंदिर बनवाया।"

अर्जुनपाल—"यह १२५६ ई० में मुहौनी में आए और गढ़-कुंडार को विजय किया और और ग्वालियर के तुँवर (तोमर) राजा की पुत्री से विवाह किया।"[3] केशव के अनुसार सर्व प्रथम इन्होंने ही मुहौनी को राजधानी बनाया, पर ऊपर बतलाया जा चुका है कि विद्वानों के मतानुसार वीर बुंदेला ने मुहोनी को जीता था। इन्होंने मऊ, कालपी आदि पर शासन किया था।

साहनपाल—(सहनपाल, सोहनपाल) इन्होंने अपने पिता की आज्ञा से कटेरागढ़ विजय किया और अपना विवाह गनेशखेरा के धंधेरा की पुत्री से किया। इसने करहरा के जागीरदार की सहायता से नाग राजा को आमंत्रित करके छल से मार कर गढ़ कुंडार पर अपना अधिकार लिया"।[4] स्मिथ का अनुमान है कि गढ़ कुंडार और महोबे पर बुदेलों का अधिकार १३४३ ई० (१४०० वि०) में हुआ।"[5] ऊपर कहा जा चुका है कि केशव के मत से गढ़ कुंडार को इसके पिता अर्जुनपाल ने जीता था।

सहजइन्द्र—(सहजेन्द्र) "१२९९ ई० में गद्दी पर बैठे।
नौनगदेव—(नौनिकदेव) १३२६ ई० में राजा बने।
पृथ्वीराज—(पृथीराज) १३६० ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ।"[6]

उक्त शासक के उपरांत 'कवि-प्रिया'[7] और 'छत्रप्रकाश'[8] में रामसिंह और रामचंद्र दो शासकों के नाम मिलते हैं, पर 'वीरसिंहदेव-चरित्र' में उक्त दोनों नामों का उल्लेख नहीं हैं। इस संबंध में व्रजरत्नदास का कथन है कि "शायद एक चौपाई के दो चरण ही नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक चौपाई के चार चरण होने चाहिए सो इसमें कहीं नहीं हैं।"[9] संभव है कि ऐसा ही हो, पर

---

[1] सिलब्रेड : जरनल ऑव् ऐशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, सं० LXXI, भा० १, अंक २, १९०२ ई०, पृ० १०१; छत्रप्रकाश; पृ० ४; पॉगसन : हिस्ट्री ऑव् दी बुन्देलाज़, पृ० ५ वीरसिंहदेव-चरित, प्र० २, पृ० १४। [2] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० वही; छत्रप्रकाश, पृ० ७-८; ज० ए० सो० ऑव् बंगाल, सं० LXXI, भा० १, १९०२ ई० पृ० १०५ [3] वही, वही, पृ० वही [4] वही, सं० वही, भा० वही, पृ० १०५-६ [5] वही, १८८१ ई०, पृ० ४७ [6] वही, सं० LXXI, भा० १, १९०२ ई०, पृ० १०६ [7] कविप्रिया, छं० १२, पृ० ३ [8] छत्रप्रकाश, पृ० १० [9] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० ३, १९७९ वि०, पृ० ४२३

जब तक 'वीरसिंहदेव-चरित' की अन्य प्रति प्राप्त न हो तब तक इस मत को अनुमान ही मानना पड़ेगा।

रामसिंह—यह १३९६ वि० (१३३९ ई०) में गद्दी पर बैठा और १४३२ वि० (१३७५ ई०) में इसकी मृत्यु हुई।

रामचंद्र—इसने १३७५ ई० से १४५१ वि० (१३९४ ई०) तक राज्य किया।

मेदिनीमल्ल (मेदनीपाल)—१४०० ई० में गद्दी पर बैठे।

अर्जुनदेव—इन्होंने १४४३ ई० से १४७५ ई० तक शासन किया।

मलखान (मल्लखान)—यह १४७५ ई० में राजा बने। इन्होंने १४८२ ई० में बहलोल लोदी (१४५१-१४८८ ई०) से युद्ध किया था। इनकी मृत्यु १५०७ ई० में हुई थी।

प्रताप-रूद्र (रुद्रप्रताप)—ब्रजरत्नदास के अनुसार प्रतापरुद्र १५०१ ई० में और सिलब्रेड के विचार से १५०७ ई० में गद्दी पर बैठे। इन्होंने १५३०-१५३१ ई० में ओड़छा की नीव डाली। १५३१ ई० में यह परलोकवासी हुए।

भारतीचंद—प्रतापरुद्र के मरने के उपरान्त यह १५३१ ई० में सिंहासनारूढ़ हुए। इन्होंने शेरशाह के पुत्र सलीमशाह से १५४५ ई० में कालिंजर-दुर्ग छीना था। २३ वर्ष राज्य करने के पश्चात् १५५४ ई० में इनकी मृत्यु हुई।[1]

मधुकर साहि (मधुकरशाह)—'भारतीचंद के निस्संतान मरने पर उसके द्वितीय भ्राता मधुकरशाह राजा बने। इन्होंने मुग़लों के सरदार नियामत खाँ को पराजित किया। इनके पुत्र रामसाहि ने अलीकुली खाँ को हराया था। इसके पश्चात् इन्होंने जामकुली खां को चेलरा पर हराया और १५६८ ई० में शेखकुली खाँ को पराजित किया। सन् १५७४ ई० में सैय्यद मुहम्मद बारहा ने आक्रमण करके मधुकरसाहि को पराजित किया और ग्वालियर से सिरौंज तक मुग़लों का आधिपत्य स्थापित कर दिया। कुछ समय के उपरान्त इन्होंने अपने खोए हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। अकबर ने पुनः आसकरन, कासिम अली खाँ तथा सादिक़ अली खाँ की अध्यक्षता में सेना भेजी। युद्ध हुआ और राजकुमार होरिल मारे गए। मधुकरसाहि ने पुनः ओड़छा पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् सैय्यद राजे बारा खाँ के साथ सेना आई, पर वह हारकर भाग गया। १५८४ ई० में मुराद आदि ओड़छा के निकट पहुँचे। भयंकर युद्ध के उपरांत दोनों में संधि हो गई। १५९२ ई० में इनकी मृत्यु हुई। कुछ विद्वानों ने इनकी मरण-तिथि १५८३ ई० मानी है। इनके आठ पुत्र थे।'[2]

रामसाहि—मधुकरसाहि के मरने के उपरान्त उनके ज्येष्ठ पुत्र रामसाहि गद्दी पर बैठे। १६०७ ई० में यह पकड़कर जहांगीर के दरबार में लाए गए और इनका राज्य वीरसिंहदेव को दे

---

[1] बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १२३-२४; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० ३, १९७९ वि०, पृ० ४२३-५; जरनल ऑव् ए० सो० ऑव् बं०, संख्या LXXI, १९०२ ई०, पृ० १०७८; लेटर मुग़लस्, भा० २, पृ० २१७-८ [2] मआसिरूल् उमरा, भा० १, पृ० २७५-९; अकबरनामा, भा० ३, फ़ेसीकुलस IV, अध्याय XLI, पृ० ३२४-६; वही, वही, अध्याय XLV, पृ० ३७९; वही, वही, अध्याय XCV, पृ० ८०३; ज०ए० सो० बं०, १९०२ ई०, पृ० १०८-१०

दिया गया। इन्होंने १६०६ ई० में अपनी पुत्री का विवाह जहाँगीर के साथ कर दिया। १६२० ई० में यह स्वर्गवासी हुए।[1]

होरिलराय—यह मधुकरसाहि के द्वितीय पुत्र थे। यह बड़े वीर थे। ऊपर मधुकरसाहि के विवरण में बतलाया जा चुका है कि सन् १५७८ ई० में सादिक़ खाँ का सामना करके इन्होंने वीर-गति प्राप्त की थी। फ़ारसी इतिहासों में इनका नाम हौंदलराय भी लिखा मिलता है।[2]

रत्नसेन—यह भी मधुकरसाहि के पुत्र थे। १५८२ ई० में अकबर की सेना बंगाल का विद्रोह शांत करने के लिए भेजी गई थीं। सम्भवतः इसी अवसर पर रत्नसेन भी साथ गये थे और वहीं उनकी मृत्यु हुई थी।[3]

इंद्रजीत—यह रत्नसेन के भाई थे। कछोवा की जागीर इन्हें मिली थी। केशव इन्हीं के दरबार में रहते थे।[4]

वरीसिंहदेव—यह मधुकरसाहि के सब से छोटे पुत्र थे। इनसे युद्ध करते हुए अबुल्फ़ज़ल् मारा गया। यह अकबर के जीवन-पर्यन्त उसके दाँत खट्टे करते रहे। जब जहाँगीर दिल्ली का सम्राट् बना तो उसने वीरसिंहदेव को १६०७ ई० में संपूर्ण बुंदेलखंड का शासक नियत कर दिया। इनकी मृत्यु १६२७ ई० में हुई। इनके ग्यारह पुत्र थे।[5]

जुझारसिंह—यह वीरसिंहदेव के सबसे बड़े पुत्र थे। अपने पिता की मृत्यु पर यह राजा बने। शाहजहाँ के राजत्वकाल में इन्होंने विद्रोह किया। महाबत खां इन्हें पकड़कर सम्राट् के सामने लाया। प्रार्थना किए जाने पर वे क्षमा कर दिए गए। कुछ समय के पश्चात् जुझारसिंह ने चौरागढ़ के भीमनारायण पर आक्रमण करके उसे मार डाला। इस पर शाहजहाँ ने पुनः उसके विरुद्ध सेनाएँ भेजीं। यह इधर-उधर जंगलों में मारे-मारे फिरते रहे। अन्त में गोंडों ने इनको १६३५ ई० में मार डाला।[6]

पहाड़सिंह—यह वीरसिंहदेव के पुत्र थे। एक बार यह अपने भाई जुझारसिंह के विरुद्ध अबदुल्लाह खां के साथ भेजे गए थे। शाहजहाँ के शासन काल के तीसरे वर्ष इन्हें राजा की पदवी दी गई थी। दौलताबाद, परेंदा आदि के युद्धों में इन्होंने बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। सम्राट् (शाहजहाँ) के शासन के १५वें वर्ष इन्हें चंपतिराय के विरुद्ध भेजा गया। चंपतिराय इनसे मिलने आए। बलख और बदख्शां की लड़ाई में इन्होंने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। २४वें वर्ष यह चौरागढ़ का जागीरदार नियत हुआ। १६५४ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।[7]

अमरसिंह—राणा अमरसिंह मेवाड़ के वीर महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र थे। यह १५९७ ई० में यह गद्दी पर बैठे। कुछ समय तक जहाँगीर का सामना करते रहे। अन्त में उसकी आधीनता स्वीकार कर ली।[8]

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ३, १९७९ वि०, पृ० ४३१ [2] देखिये पृ० १७६; मआसिरूल उमरा, भा०१, पृ०२७८ (पाद-टिप्पणी २) [3] वही, वही, पृ० २७९ (पाद-टिप्पणी) [4] वही, वही, पृ० वही [5] वही, पृ० ३९६-९ [6] वही, वही, पृ० १८४-७; इलियट, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ७, पृ०६-७, १०,४७-५२; सरकार, औरंगज़ेब, भा० १, पृ० १६-२८; लेटर मुगल्स्, भा० २, पृ० २२०-२ [7] मआसिरूल् उमरा, भा० १, पृ० २२४-८ [8] कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भाग ४, पृ० १५८

जगन्नाथ—केशव ने संभवतः यह नाम राजा भारमल के पुत्र के लिए प्रयुक्त किया है। अकबर के शासन के २१वें वर्ष प्रताप के विरुद्ध इन्होंने बड़ी वीरता प्रदर्शित की और जयमल के पुत्र रामदास को मार डाला। २६वें वर्ष इसने राणा का कोष लूट लिया। ३६वें में यह मुराद के साथ दक्षिण गया। जहाँगीर के शासन के ४ थे वर्ष इसने पाँच हज़ारी ३००० सवार का मंसब पाया।[1]

टोडरमल—यह लाहौरी खत्री थे। अकबर की कृपा से चार हज़ारी मंसब और अमीरी और सरदारी की पदवी तक पहुँचे। १६वें वर्ष यह बङ्गाल में मुनइम खाँ की सहायता के लिए नियत हुए। इन्होंने बङ्गाल, गुजरात आदि के सुप्रबन्ध में बड़ी निपुणता प्रदर्शित की थी। २७वें वर्ष में टोडरमल प्रधान आमात्य नियत हुए थे। १५६० ई० में इनकी मृत्यु हुई।[2]

तिपुर—(विक्रमाजीत रायरायाँ) फ़ारसी इतिहास ग्रंथों में रायरायाँ पतरदास विक्रमाजीत का जो विवरण मिलता है, उसका वीरसिंहदेव से संबधित अंश केशव कथित विवरण से बिल्कुल मिलता-जुलता है। ऐसा विदित होता है कि इसका नाम वास्तव में तिपुर ही था। फारसी लिपि से अँगरेज़ी में अनुवाद करते समय तिपुर (दास) को पतरदास पढ़ लिया गया हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि फारसी लिपि में दोनों तिपुर (تپر) और पतर (پتر) एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं। ईलियट ने इस नाम को इरदास पढ़कर वैसा ही अनुवाद कर दिया है। इसका जीवन चरित्र नीचे दिया जाता है।

यह जाति का खत्री था। १२वें वर्ष में चित्तौड़ गढ़ दुर्ग के घेरे में यह बादशाही मोर्चे का प्रबंधक हुआ। यह क्रमशः बङ्गाल और बिहार का दीवान रहा। इसने बांधव दुर्ग जीता। यह कई वर्ष तक वीरसिंहदेव से युद्ध करता रहा। ४६वें वर्ष पाँच हज़ारी मंसब और राजा विक्रमाजीत की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। जहाँगीर के समय में यह तोपख़ाने का मुख्य अध्यक्ष नियत हुआ।[3]

बलवीर—(वीरबल)—महेशदास उपनाम वीरबल अकबर के नवरत्नों में से थे। यह बड़ी अच्छी कविता करते थे। यह अपने वाक्चातुर्य और हँसोड़पन के लिए प्रसिद्ध थे। यह १५८६ ई० में एक युद्ध में मारे गए।[4]

बासकि, बासकी—(राजा बासू)—यह मऊ और पठानकोट का ज़मीदार था। आरंभ में यह अकबर का स्वामिभक्त सेवक था। कालांतर में इसने कई बार विद्रोह किया पर दबा दिया गया। फिर यह सलीम की शरण में चला गया। ४६वें वर्ष सलीम के साथ आगरे तक आया। शाहज़ादा के पकड़े जाने का समाचार ज्ञात होने पर यह भाग गया। बादशाह बनने पर जहाँगीर ने इसे साढ़े तीन हज़ारी मंसब दिया। १६१२ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[5]

भारामल—यह पृथ्वीराज कछवाहा के पुत्र और आमेर के शासक थे। राजपूतों में यह प्रथम राजा थे, जिन्होंने अकबर की आधीनता स्वीकार की थी। इन्होंने अपनी पुत्री अकबर को

---

[1] मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० १४६-५१ [2] वही, वही, पृ० १६०-६ [3] वही, वही, पृ० २८०-२ [4] वही, वही पृ० २४४-५० [5] वही, वही, पृ० २२४-७

दी। अकबर ने उसे पाँच हज़ारी मंसब प्रदान करके सम्मानित किया था। इनकी मृत्यु १५६६ ई० के लगभग हुई थी।[१]

भगवानदास—(भगवंतदास)—यह भारामल कछवाहा के पुत्र थे। १५७२ ई० में सरनाल के युद्ध में इन्होंने अच्छी वीरता प्रदर्शित की थी। अकबर के राज्य काल के २३वें वर्ष यह पञ्जाब का सूबेदार नियुक्त हुए। २६वें वर्ष इनकी पुत्री का विवाह सलीम के साथ हुआ। १५८६ ई० में इनकी लाहौर में मृत्यु हो गई।[२]

भारथवीर (भारतसाहि) बुंदेला—यह रामसाहि बुंदेला का पौत्र था। इसके पिता का नाम संग्रामसाहि था। जहाँगीर के शासन काल के ७वें वर्ष (१६१२ ई०) में उसे योग्य पद और राजा की पदवी से सम्मानित किया गया। जहाँगीर की मृत्यु हो जाने पर शाहजहाँ ने इसका मंसब ५०० सवार बढ़ाकर तीन हज़ारी २५०० सवार का करके झंडा और घोड़ा प्रदान किया। यह इटावा का फ़ौजदार नियत हुआ था। तेलिंगाना आदि के आक्रमणों में इसने बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। १३६४ ई० में तेलिंगाना की सीमा पर इसकी मृत्यु हुई।[३]

मानसिंह—यह भगवंतदास के भाई जगत्सिंह के पुत्र थे। निस्संतान होने के कारण आमेरपति भगवंत ने इन्हें गोद ले लिया था। यह अकबर के राज्य के स्तम्भों और सरदारों के अग्रणी थे। १५७६ ई० के अन्त में यह महाराणा प्रताप को दंड देने के लिए नियत हुए। फिर यह काबुल के शासक नियुक्त हुए जहाँ इन्होंने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। ३४वें वर्ष में इनके पिता की मृत्यु होने पर इन्हें राजा की पदवी और पाँच हजारी मंसब मिला। अकबर ने इन्हें क्रमशः बिहार और बङ्गाल का सूबेदार नियुक्त किया था। इन्होंने उक्त सूबों में बड़ी योग्यतापूर्वक शासन किया था। बङ्गाल से लौटने पर राजा मानसिंह सात हजारी ७००० सवार का मंसब पाकर सम्मानित हुए। जहाँगीर के शासन के ६वें वर्ष (१६१४ ई०) में इनकी मृत्यु हुई।[४]

आसकरन—यह आमेर के राजा भारामल के भाई थे। अकबर के राज्यकाल के २२वें वर्ष यह सादिक़ खाँ के साथ राजा मधुकर (साहि) को दंड देने के लिए नियुक्त हुआ था। २४वें वर्ष में राजा टोडरमल के साथ बिहार में नियत हुआ। ३०वें वर्ष इसे हज़ारी मंसब मिला। ३३वें वर्ष में शहाबुद्दीन अहमदखाँ में साथ राजा मधुकर को दंड देने गया और लौटते समय इसकी मृत्यु हो गई।

राजा राजसिंह कछवाहा—यह उक्त आसकरन का पुत्र था। बहुत दिनों तक दक्षिण की चढ़ाई में नियत रहा। ४४वें वर्ष यह ग्वालियर के दुर्गाध्यक्ष नियुक्त किए गए। ४७वें वर्ष में रायान पतरदास (तिपुर) के साथ वीरसिंह देव बुंदेला का पीछा करने पर नियत हुए। ५०वें वर्ष में इनका मंसब चार हज़ारी ३००० सवार तक पहुँच गया और डंका भी मिला। १६१४ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

रामदास—यह राजा राजसिंह कछवाहा के पुत्र थे। इनको हज़ारी ४०० का मंसब मिला। जहाँगीर के १२वें वर्ष में इन्हें राजा की पदवी भी प्राप्त हो गई। उसी वर्ष के अंत में इनका मंसब बढ़कर डेढ़ हज़ारी ७०० सवार का हो गया।[५]

---

[१] **मआसिरुल उमरा, भाग १, पृ० ३६४-७** [२] **वही, वही, पृ० २४३-६** [३] **वही, वही, पृ० २६१-३** [४] **वही, वही, पृ० २६१-३०३** [५] **वही, वही, पृ० ३२६-७**

भोज—यह राय सुर्जन हाड़ा का छोटा पुत्र था। यह बहुत समय तक मानसिंह के आधीन रहा। शेख अबुलफ़ज़ल् के साथ नियुक्त होकर दक्षिण के युद्धों में साहस का कार्य करता रहा। १६०८ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।[1]

केसवदास, (केसौदास)—संभवतः वीरसिंहदेव-चरित के रचयिता ने इस नाम से अपनी ओर संकेत किया है।[2]

मुस्लिम पात्र — अकबर, जलालुद्दीन—(जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर) यह सम्राट् हुमायूँ का पुत्र था। इसका जन्म १५४२ ई० में हुआ था। इसने १५५६ ई० से १६०५ ई० तक भारतवर्ष पर शासन किया। यह अत्यंत प्रसिद्ध मुग़ल शासक था, जिसके कार्य-कलापों का विवरण इतिहास विदित है।[3]

सलीम, जहाँगीर—यह अकबर का ज्येष्ठ पुत्र था। यह ३० अगस्त १५६६ ई० में उत्पन्न हुआ था। अकबर की मृत्यु के उपरांत इसने १६०५ ई० से १६२७ ई० तक शासन किया।[4]

खुसरो सुलतान—सुलतान खुसरो सम्राट् जहाँगीर का ज्येष्ठ पुत्र था। इसकी मृत्यु जनवरी १६२२ ई० को हुई थी।[5]

मुरादसाहि—शाहज़ादा मुराद सम्राट् अकबर का द्वितीय पुत्र था। इसका जन्म ७ जुलाई सन् १५७० ई० को हुआ था। यह अधिक समय तक दक्षिण में युद्ध करता रहा और वहीं १२ मई १५९९ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[6]

अबुलफ़जल्—अल्लामी फ़हामी शेख़ अबुलफ़ज़ल् शेख़ मुबारक नागौरी का द्वितीय पुत्र था। इसका जन्म १४ जनवरी, १५५१ ई० को हुआ था। यह अकबर का प्रमुख अमीर, मित्र, आज्ञाकारी एवं विश्वास-पात्र सेवक था। ४३वें इलाही वर्ष में यह दक्षिण भेजा गया। इसने दक्षिण में बड़ी वीरतापूर्वक कई युद्ध किये। सलीम के विद्रोह के अवसर पर अकबर ने इसे आगरे बुलाया। लौटते समय मार्ग में अगस्त १६०२ ई० को इसकी मृत्यु हुई।[7]

कुतुबुद्दीन खाँ—आईन-इ-अकबरी में इस नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। इस नाम का एक व्यक्ति शाहज़ादा सलीम का अतालीक़ था। दूसरे फ़तहपुर सीकरी के शेख़ ख़ूबू को कुतुबुद्दीन खाँ-इ-चिश्ती की उपाधि मिली थी।[8] यह निर्णय करना कठिन है कि केशव ने किस व्यक्ति विशेष की ओर संकेत किया है।

बैरमषां (खानखानान बैराम खाँ) यह हुमायूँ के प्रमुख सरदारों में से था। यह अकबर का शिक्षक और संरक्षक था। पानीपत के द्वितीय युद्ध में इसने हैमू बक्काल को पराजित

---

[1] मआसिरुल उमरा, भाग १, पृ० २७३-४ [2] विशेष विवरण के लिए देखिए प्रथम खण्ड, अध्याय १, पृ० २१-२ [3] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ० ३९, ६७-१५३ [4] वही, भा० वही, पृ० १०२; १४४, १५१-५३, १५५-८२ [5] वही, भा० वही, पृ० १५०, १५२, १५६-८, १६०-१, १६४-५, १६८-७० [6] वही, भा० वही, पृ० १०२, १२७-८, १४०-४ [7] मआसिरुल् उमरा; भा० २, पृ० ४३-५६ [8] आईन-इ-अकबरी, भा० १, पृ० ३३३-४ (संख्या २८); वही, भा० वही, पृ० ४९६-७ (सं० २७५)

प्रकाश ३

वीरसिंहदेव की प्रारम्भिक विजय—वीरसिंहदेव ने बड़ौन की जागीर मिल जाने के उपरान्त कई स्थानों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। आशकरन, रामसाहि और जंगमनि की सेनाओं से भयंकर युद्ध किया। दौलत खाँ से संधि करके उसके साथ दक्षिण की ओर चल दिए पर वे मार्ग से ही लौट आए और बड़ौन पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[1]

केशव द्वारा वर्णित उक्त घटनाओं का इतिहास में विस्तृत विवरण अप्राप्य है। पर यह निश्चित है कि महान् महत्वाकांक्षी वीरसिंहदेव चुप बैठनेवाले व्यक्ति न थे। उन्होंने यह युद्ध अवश्य लड़े होंगे। स्थानीय घटनायें होने के कारण इतिहास में उनका लेखकों ने उल्लेख करने की ओर ध्यान नहीं दिया होगा। यह भी सम्भव है कि इनमें से अधिकाश युद्धों में मुसलमानों की पराजय होने के कारण मुसलमानों ने उनका विवरण नहीं दिया हो।

प्रकाश ४

मुराद की मृत्यु और अकबर की यात्रा—केशव ने मुराद की मृत्यु और अकबर की दक्षिण यात्रा का चौथे प्रकाश में उल्लेख किया है।[2]

इतिहास-ग्रंथों से विदित होता है कि शाहज़ादा मुराद दक्षिण में शाही सेना का संचालन कर रहा था। वहीं पर २ मई १५९९ ई० को उसकी मृत्यु हुई। इस दुःखद घटना के पश्चात् अकबर अस्सी सहस्र अश्वारोहियों के साथ दक्षिण को रवाना हुआ। (२९ सितम्बर, १५९९ ई०)[3]

इस ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि मुराद की मृत्यु के कई मास के उपरान्त अकबर दक्षिण-यात्रा प्रारम्भ कर सका था। केशव ने दोनों घटनाओं का चलता हुआ वर्णन साथ-साथ ही कर दिया है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि केशव ने अपने ग्रंथ की घटनावली को अग्रसर करने के लिए उक्त दोनों घटनाओं का एक साथ सांकेतिक वर्णन कर दिया है, क्योंकि उनका विस्तृत वर्णन करना केशव का लक्ष्य नहीं था।

इन घटनाओं के पश्चात् केशव ने रामसाहि की अकबर से भेंट, रामसाहि और राजसिंह के वीरसिंह से विविध युद्धों आदि का वर्णन किया है।[4] इन घटनाओं का इतिहास में वर्णन अप्राप्य है।

प्रकाश ५

सलीम का मेवाड़ से लौटना, विद्रोह, और अकबर का दक्षिण से आगरे आना—केशव ने सलीम और मानसिंह के मेवाड़ से लौटने तथा अकबर के क्षुब्ध होकर दक्षिण से आगरे आने की घटना का वर्णन पाँचवें प्रकाश में किया है।[5]

---

[1] वीरसिंहदेव-चरित्र, पृ० १७-२३ [2] वही, पृ० २३ [3] ईलियट एंड डाउसन, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ६, पृ०९७; अकबरनामा, पृ० ८०३; तुज़क-इ-जहाँगीरी, भा० १, पृ० ३४, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ० १४४-५; अकबर दी ग्रेट, पृ० २७१; जहाँगीर, भा० १, पृ० ४४ [4] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० २३-८ [5] बीरसिंहदेव-चरित, पृ० २८-९

उक्त घटनाओं का इतिहास में यह विवरण मिलता है :—

सलीम और राजा मानसिंह मेवाड़ के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे। सलीम ने अपनी सेना युद्ध-भूमि में भेज दी थी और स्वयं अजमेर में पड़ा रहा था। बङ्गाल में अफ़ग़ानों ने विद्रोह किया। वहाँ शांति स्थापित करने के लिए मानसिंह को जाना पड़ा। मेवाड़-युद्ध में सलीम को विशेष सफलता नहीं मिली। वह महाराणा को केवल पार्वतीय प्रदेश को भगा सका था। अंत में सलीम ने विद्रोह करने का निश्चय किया। वह जुलाई, १६०० ई० में आगरा होता हुआ प्रयाग जा पहुँचा और एक स्वतंत्र दरबार की स्थापना की। इन सब समाचारों के ज्ञात होने पर अकबर दक्षिण से लौटकर २३, अगस्त, १६०१ ई० को आगरे पहुँचा।[1]

केशव ने उक्त घटनाओं के वर्णन में सलीम और मानसिंह के मेवाड़ से एक साथ लौटने का उल्लेख किया है। यह उनकी भूल है। इतिहास के ऊपर दिए हुए उद्धरण से स्पष्ट है कि मानसिंह बङ्गाल को पहले ही चले गये थे और सलीम उसके पश्चात् लौटा था।

वीरसिंहदेव की सलीम से भेंट—उस समय अकबर की दक्षिण और मेवाड़ में लड़ाइयाँ हो रही थीं। अकबर और मानसिंह में वैमनस्य था और सलीम ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था। अकबर को इस प्रकार विपत्ति-ग्रस्त देखकर वीरसिंददेव ने प्रयाग में पहुँचकर सलीम से मित्रता स्थापित की।[2] इनमें से वीरसिंहदेव और सलीम की भेंट के अतिरिक्त शेष घटनाओं का ऊपर के ऐतिहासिक विवरण से आभास मिल जाता है। वीरसिंददेव ने सलीम से अवश्य ही मैत्री स्थापित की होगी इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

अबुल्फ़ज़ल् की हत्या—"सलीम के विद्रोह करने पर अकबर ने अबुल्फ़ज़ल् को दक्षिण से बुलाया। सलीम ने वीरसिंहदेव को, उसे जीवित पकड़ लाने अथवा मार डालनें की आज्ञा देकर, रवाना किया। वीरसिंहदेव और सैय्यद मुज़फ़्फ़र साथ-साथ इस कार्य को सम्पादित करने के लिए गए। पराइछे के निकट अबुल्फ़ज़ल् की सेना से युद्ध हुआ। गोला लगने से शेख़ की मृत्यु हो गई। उसका शिर चंपतराय बड़गूजर के हाथ प्रयाग भेज दिया गया। प्रसन्न होकर सलीम ने वीरसिंहदेव को राजा घोषित कर दिया।"[3]

असद्बेग ने, जो अबुल्फ़ज़ल् के साथ दक्षिण से सिरौंज तक आया था और जिसने अकबर की आज्ञा से इस घटना के संबंध में जाँच की थी, 'विक़ाया-इ-असद्बेग' में इस घटना के संबंध में लिखा है :—

वह महान् व्यक्ति सराय बरार नामक स्थान पर शुक्रवार १६ अगस्त, १६०२ ई० को मारा गया। जब हम (अबुल्फ़ज़ल्, असद्बेग आदि) सिरौंज पहुँचे तब गोपालदास (नकटा) ने दक्षिण से साथ आई हुई सेना को आराम करने और असद्बेग के साथ सिरौंज में इंद्रजीत बुंदेला से युद्ध करने के लिए छोड़ देने और उसकी सेना को अपने साथ रक्षार्थ ले जाने के लिए उसे फुसला लिया। जब वह चलने के लिए प्रस्तुत हुआ तो मैं भी सवार हुआ पर उसने मुझे ऐसा करने से रोका। जब वह सराय-बरार में आया तो एक साधु ने कहा कि आगामी दिन उस पर नरसिंह

---

[1] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, पृ० १४६-८; अकबर दी ग्रेट, पृ० ३०१-४; जहाँगीर, भा० १, पृ० ४४-५ [2] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० २६-३३ [3] वही, पृ० ३३-७

(वीरसिंह) बुँदेला द्वारा आक्रमण किया जानेवाला था, पर उसने उसे पुरस्कार देकर विदा कर दिया। दूसरे दिन शुक्रवार को ज्यों ही वह चलने को उद्यत हुआ त्योंही सराय के पीछे से बुंदेलों की सेना उस पर टूट पड़ी। शेख़ के साथियों ने द्रुतगति से चलने की सम्मति दी, पर उसने न माना। नरसिंह (वीरसिंह) की सेना के लगभग पाँच सौ अश्वारोही निकट आ पहुँचे। गदाई ख़ाँ वीरता से युद्ध करता हुआ मारा गया। उसी समय एक साथी ने कहा "लुटेरे सशस्त्र हैं और आपके साथी निहत्थे हैं। हम लोगों को पहाड़ी की ओर चले जाना चाहिए, संभव है कि प्राणों की रक्षा हो जाय।" ऐसा कहकर उसने शेख़ के घोड़े की बाग पकड़ी और लौट पड़ा। उसी समय लुटेरे प्रत्येक मनुष्य को भाले से मारने लगे। एक राजपूत ने पीछे आकर शेख़ को भाला मारा जो उसके वक्षस्थल से होकर निकला। पास ही एक नाला था। शेख़ ने उसे पार करना चाहा, पर वह इस प्रयत्न में गिर पड़ा। जब्बार ने, जो एक दम पीछे था, उस राजपूत को मार डाला। फिर घोड़े के नीचे से शेख़ को निकालकर सड़क से एक ओर ले गया, परंतु वह घाव घातक था। शेख़ पृथ्वी पर गिर गया।

उसी समय अन्य राजपूतों के साथ नरसिंह (वीरसिंह) आया अतः जब्बार एक वृक्ष के पीछे छिप गया। जैसे ही नरसिंह (वीरसिंह) ने उसे देखा, वह घोड़े से उतरा और उसके शिर को अपने घुटने पर रखकर अपने वस्त्र से उसके मुख को पोंछने लगा। यह देखकर कि नरसिंह (वीरसिंह) का हृदय द्रवित हो चला था, जब्बार ने आगे आकर प्रणाम किया। उसी समय शेख़ ने अपने नेत्र खोले। नरसिंह (वीरसिंह) ने बैठे ही बैठे अभिवादन किया और अपने साथियों से फ़रमान (आज्ञापत्र) लाने को कहकर शेख़ से नम्रतापूर्वक कहा "सर्व-विजेता-स्वामी (सलीम) ने आपको कृपापूर्वक बुला भेजा है।" शेख़ इससे क्षुब्ध हुआ। नरसिंह ने उसे सलीम के पास सुरक्षित स्थान पर ले जाने का शपथपूर्वक आश्वासन दिया। शेख़ ने सक्रोध उसे अपशब्द कहने आरंभ कर दिए। तब नरसिंह (वीरसिंह) के साथियों ने उससे कहा कि उसके (शेख़ के) घाव घातक थे, अतः उसको ले जाना असंभव था। यह सुनते ही जब्बार ने अपनी तलवार खींची और कई राजपूतों को मारकर, नरसिंह (वीरसिंह) के निकट तक जा पहुँचा। उसी समय उन्होंने उसको मारकर गिरा दिया। फिर नरसिंह(वीरसिंह) शेख़ के शिर पर से उठा और उसके साथियों ने उसे समाप्त करके उसका शिर काट लिया। तदुपरांत अन्य किसी को छेड़े बिना, यहाँ तक कि बन्दियों तक को भी छोड़कर वे लोग चले गए।[१]

उक्त उद्धरण और केशव-कथन की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उन दोनों में बहुत साम्य है। शेख़ के साथ वीरसिंह के दूत गुप्त वेश में आ रहे थे, इसकी ओर केशव ने संकेत किया है और असद्बेग का नकटा प्रसंग से भी यही अभिप्राय है। केशव ने भी एक मनुष्य द्वारा उसके घोड़े की बाग पकड़ने का उल्लेख किया है और असद्बेग का भी यही मत है। केशव के वर्णन में भी शेख़ को पकड़ लाने अथवा मार डालने का उल्लेख किया गया है और घायल शेख़ से वीरसिंह की बातचीत द्वारा असद्बेग ने भी यही सिद्ध किया है। इसीलिए फ़रमान लाने की बात लिखी गई है। वीरसिंह के द्रवीभूत होने, अपने रूमाल से उसके मुख को पोंछने आदि

---

[१] हिस्ट्री आव् इंडिया, भा० ६, पृ० १५४-६०; अकबर दी ग्रेट, पृ० ३०४-७; जहाँगीर, भा० १, पृ० ४२-४

से उनकी द्रवणशीलता और शेख़ की दयनीय दशा को देखकर दुःखी होने का आभास मिलता है। यदि जब्बार उस समय उतावलेपन और अदूरदर्शिता का परिचय न देता, तो सम्भव था कि शेख़ के प्राणों की रक्षा हो जाती। केशव ने शेख़ की मृत्यु गोला लगने से तथा असद्बेग ने वीरसिंह के साथी के भाले से घायल होने और शिर काटे जाने से मानी है। इस प्रकार वीरसिंह ने अन्तिम समय तक शेख़ को जीवित पकड़ने का प्रयत्न किया पर दुर्भाग्यवश उसकी मृत्यु हो गई। ऐसी परिस्थितियाँ आ उपस्थित हुईं कि और कोई उपाय रह ही नहीं गया था। इस प्रकार केशव और असद्बेग दोनों के वर्णनों में बहुत साम्य है। साथ ही वीरसिंह ने अपने हाथ से शेख़ को नहीं मारा। अतः उसके ऊपर उसकी हत्या का दोषारोपण नहीं किया जा सकता। ईलियट ने वीरसिंह के स्थान पर नरसिंह लिखा है, जो फ़ारसी लिपि की कृपा का दुष्परिणाम है।

अबुल्फ़ज़ल् की मृत्यु के संबंध में जहाँगीर का कथन भी विचारणीय है। वह लिखता है कि, 'मेरे पूज्य पिता (अकबर) के शासन के अन्तिम वर्षों में शेख़ अबुल्फ़ज़ल् ने, जो बुद्धिमता एवं विद्वत्ता में भारतीय शेखज़ादों में अद्वितीय था, स्वयं को स्वामि-भक्ति-रत्न के बाह्य रूप से देदीप्यमान कर लिया था और उस रत्न को अकबर के हाथों अत्यधिक मूल्य पर बेचा था। मेरे प्रति दुष्कृत भावना रखने के कारण वह एकान्त तथा प्रकट में मेरी निन्दा किया करता था। उसे दक्षिण से बुलाया गया था। इस समय, जब कि विद्वेषाग्नि-प्रज्वलित्त-कर्त्ताओं की कृपा से मेरे पिता के विचार मेरे विरूद्ध हो गए थे, यह निश्चित था कि यदि वह उससे (अकबर) भेंट कर लेता तो इससे झगड़ा बढ़ जाता और मैं अपने पिता के दर्शनों से वंचित रह जाता। उसका दरबार-प्रवेश रोकना नितान्त आवश्यक हो गया। वीरसिंहदेव का प्रदेश उसके मार्ग में पड़ता था और वह उस समय एक विद्रोही था। मैंने उसके पास यह संदेशा भेजा कि यदि वह उस विद्रोही (अबुल्-फ़ज़ल्) को रोक कर मार डालेगा तो वह मेरी प्रत्येक कृपा को प्राप्त करने का अधिकारी होगा। ईश्वर की कृपा से, जब शेख अबुल्फ़ज़ल् वीरसिंहदेव के देश से होकर निकल रहा था, राजा ने उसका मार्ग रोका ओर साधारण युद्ध के पश्चात् उसको मार डाला। उसने उसका शिर मेरे पास इलाहाबाद भेजा।[1]

सलीम ने अपने कथन द्वारा सारा दोष शेख़ ही के मत्थे मढ़ा है। सच बात तो यह है कि इस अपराध के लिए सलीम भी एक बड़ी सीमा तक उत्तरदायी था। सलीम के विवरण से यह भी विदित होता है कि उसने शेख़ को मारने का संदेश वीरसिंहदेव के पास भेजा था पर केशव का मत है कि दोनों ने प्रयाग में मिलकर सारी योजना बनाई थी।

तकमील-इ-अकबरनामा के लेखक तथा केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया के अनुसार वीरसिंहदेव कुछ समय तक सलीम की नौकरी में रहा था।[2] पर वीरसिंहदेव-चरित्र, विकाया-इ-असद्बेग तथा तुज़ुक-इ-जहाँगीरी से उक्त कथन की पुष्टि नहीं होती है।

उपर्युक्त विवेचन का परिणाम यह निकलता है कि केशव का इस घटना-संबंधी विवरण ऐतिहासिक है। साथ ही वीरसिंहदेव को अबुल्फ़ज़ल् की हत्या के लिए एकदम दोषी नहीं ठह-

---

[1] तुज़ुक-इ-जहाँगीरी, भा० १, पृ० २४-५ [2] अकबरनामा, अध्याय CL, पृ० १२१७; केम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भा० ४, पृ० १४६; हिस्ट्री आव् इंडिया, भा०६, पृ० १०७

राया जा सकता। उन्होंने अकबर को हानि पहुँचाने, और भारत के भावी सम्राट् जहाँगीर(सलीम) को प्रसन्न करने के लिए एक सच्चे मित्र और दूरदर्शी राजनीतिक के समान इस कार्य में हाथ डाला और अंतिम समय तक इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि अबुल्फ़ज़ल् के प्राणों की रक्षा हो जाये और उसे जीवित ही पकड़कर सलीम के पास भेज दें; पर परिस्थितिवश उसकी मृत्यु हो गई।

प्रकाश ६

वीरसिंह देव और अकबर में युद्ध—अबुल्फ़ज़ल् की मृत्यु का समाचार सुनकर अकबर अत्यन्त शोक बिह्वल हुआ। उसने प्रतिशोध-भावना से प्रेरित और क्रुद्ध होकर विशाल सेना भेजी। इस पर सलीम के परामर्श से वीरसिंहदेव दतिया चले गए। शत्रुओं के वहाँ पहुँचने पर यह ऐरछ जा पहुँचे फिर वहाँ से भी निकल भागे और 'दूनी' होते हुए दतिया में सलीम से जा मिले। इंद्रजीत को ऐरछ गढ़ देकर रायरायाँ आगरे चले गए। अन्त में इंद्रजीत भी आगरे को रवाना हो गए।[1]

इस घटना के विषय में इतिहास का विवरण निम्नलिखित है :—

अबुल्फ़ज़ल् की मृत्यु का समाचार ज्ञात होने पर अकबर अत्यन्त शोकाकुल हुआ। वह तीन दिन तक दरबार में नहीं आया। उसने क्रुद्ध होकर रायरायाँ की अध्यक्षता में एक सेना वीरसिंह को दंड देने के लिए भेजी। उसने वीरसिंहदेव का भांडेर तक पीछा किया। वह वहाँ से बेतवा नदी के किनारे पर स्थित ऐरछ गढ़ में चले गए। वह बाहर निकले पर पुनः दुर्ग में खदेड़ दिए गए। इस पर वे रात्रि के समय दीवार काटकर जंगल की ओर निकल भागे। उनका हाथी मार डाला गया पर वे बच गए। इन युद्धों में अकबर की सेना के प्रमुख संचालक रायरायाँ (पतरदास=तिपुर), अबदुर्रहमान तथा ग्वालियर के राजा राजसिंह कछवाहा आदि थे।[2]

ऊपर दिए गए केशव और इतिहास के विवरणों में अत्यधिक साम्य है। दोनों का मत है कि ऐरछ गढ़ में वीरसिंहदेव घिर गए थे, पर निकल भागे थे। इस प्रकार वे एक स्थान से दूसरे को भाग जाते और शत्रु के हाथ नहीं आते थे। प्रमुख सेनापतियों के नाम भी दोनों विवरणों में प्रायः एक ही हैं। दोनों में ही अकबर के दुःखी एवं क्रुद्ध होने का उल्लेख है। अतः केशव कथित उक्त विवरण ऐतिहासिक ही मानना चाहिए।

प्रकाश ७

केशव ने इस प्रकाश में सलीम के आगरे जाने, खड्गराय की मृत्यु, सलीम के प्रयाग चले जाने, तिपुर को विक्रमाजीत की उपाधि देकर वीरसिंह के विरुद्ध भेजने, बेगम खाँ की मृत्यु, सलीम के पुनः आगरे आने, अकबर द्वारा उन्हें पीड़ा देने तथा वीरसिंह के अन्य युद्धों का वर्णन किया है।[3]

---

[1] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० ३८-४१ [2] हिस्ट्री आव् इंडिया, भा० ६, पृ० १६०-२; वही, भा० वही, पृ०१०८-११३; मआसिरुल् उमरा, भा०१, पृ० ३२६-७, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ० १४१-५०; जहाँगीर, भा० १, पृ० ४४-५; अकबर दी ग्रेट, पृ० ३०७

[3] वीरसिंहदेव-चरित पृ० ४४-६

उक्त घटनाओं के संबंध में ऐतिहासिक उल्लेखों का सार नीचे दिया जाता है :—

सलीम का आगरे में आगमन—सुलताना सलीमा बेगम, अकबर की सम्मति से सलीम को मनाने के लिए प्रयाग पहुँची। उसके प्रयत्न से सलीम आगरे आने को प्रस्तुत हो गया। उसने अप्रैल १६०३ ई० में आगरे पहुँच कर अपने पिता से क्षमा-याचना की। इस प्रकार दोनों में सन्धि हो गई।

१४ अक्टूबर, १६०३ ई० में अकबर ने सलीम को मेवाड़ के युद्ध को पूरा करने के लिए वहाँ जाने की आज्ञा दी। अन्यमस्क होकर सलीम फ़तेहपुर सीकरी के आस-पास पड़ा रहा। उसने मेवाड़-आक्रमण के लिए अपनी अपरिमित आवश्यकताएँ बतलाईं, जिनकी पूर्ति करना अकबर की समझ में व्यर्थ था। अन्त में अकबर की आज्ञा से वह प्रयाग लौट गया। (१०नवंबर, १६०३ ई०)।

मरीयम मकानी की मृत्यु और सलीम का पुनः आगरा आगमन—केशव ने बेगम खाँ का जो उल्लेख किया है, उससे उनका अभिप्राय अकबर की मृत्यु की माता के देहावसान से है, ऐसा प्रतीत होता है। अकबर की माता हमीदा बानू बेगम उपनाम मरीयम मकानी की मृत्यु २६ अगस्त १६०४ ई० को हुई थी। इस दुर्घटना से अकबर को महान् शोक हुआ था और सारे दरबार में उदासी छा गई थी। इस समाचार को सुनकर सलीम अत्यन्त दुःखी हुआ और अपने पिता के साथ संवेदना प्रदर्शित करने की इच्छा से वह ६ नवम्बर, १६०४ ई० को आगरे पहुँचा। अकबर ने दश दिन पर्यन्त उसे कारागार में रखने के उपरांत छोड़ दिया। इस अवसर पर मऊ का राजा, जो सलीम का साथी था उसके बन्दी होने का समाचार सुनकर, भाग गया। आगरे आते समय वह प्रयाग का कार्य भार शरीफ़ खाँ को सौंप आया था।

१६०४ ई० में अकबर ने रायरायाँ को विक्रमाजीत की उपाधि से विभूषित करके वीरसिंह-देव के विरुद्ध भेजा पर उन्होंने युद्धों में लकीर पीटने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया।[१]

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण और केशव के वर्णन में एकदम समानता है। केवल एक घटना के संबंध में कुछ मतभेद है। केशव के मतानुसार शरीफ़ खाँ भाग गया था पर इतिहास से स्पष्ट है कि सलीम उसे प्रयाग का प्रबंध सौंप आया था। संभव है कि सलीम के बन्दी होने के समाचार को सुनकर वह प्रयाग से इधर-उधर चला गया हो। यह तो निर्विवाद ही है कि सलीम के कारागार में डाल दिए जाने के समाचार के ज्ञात होने पर उसके सभी सहायक अपनी रक्षा की चिन्ता करने लगे थे।

इस प्रकाश की अन्य घटनाओं का उल्लेख इतिहास के पृष्ठों में अप्राप्य है, पर वे सभी अवश्य ही घटित हुई होंगी। उनमें से अधिकांश का संबंध वीरसिंहदेव और अकबर की सेना के विविध युद्धों से है। सभी इतिहास लेखक यह स्वीकार करते हैं कि मुग़ल सेना वीरसिंहदेव को अन्त तक न पकड़ सकी थी। इन्हीं विस्तृत विवरणों का उल्लेख केशव ने किया है। इसी के आधार पर उनकी सत्यता और वास्तविकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

---

[१] जहाँगीर, भा० १, पृ० ५५-८, ६३, ६८-९; अकबर दी ग्रेट, पृ० ३१०-२, ३१७, ३१९; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया भा० ४, पृ० १४९-५१

प्रकाश ८

वीरसिंह और मुग़ल सेना का ओड़छा-युद्ध—अकबर की आज्ञा से विक्रमाजीत वीरसिंह को दबाने के लिए रवाना हो गया था यह बात ७वें प्रकाश में बतलाई जा चुकी है। उसकी सहायता के लिए अबदुल्लाह ख़ाँ और राजसिंह कछवाहा भी उसके साथ थे। इस युद्ध में शाही सेना को हारना पड़ा था।[1]

केशव कथित उक्त युद्ध के संबंध में फ़ारसी इतिहासों से विदित होता है कि शेख़ अबूदुर्रहमान और ख्वाजा अबदुल्लाह ने यह समाचार भेजा कि ओड़छा जीत लिया गया और वीरसिंहदेव को जंगल की ओर भगा दिया गया है। थोड़े समय के पाश्चात् इन्हीं व्यक्तियों से फिर यह समाचार आया कि शत्रुओं ने कुओं में विष डलवा दिया है और ज्वर से पीड़ित होकर एक सहस्र मनुष्य मर चुके हैं, अतः हमें ओड़छा छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा है। अंत में राजा जयसिंह ने उसका पीछा करके उसके बहुत से साथियों को मारकर उसे घायल कर दिया तो भी वह निकल भागा।[2]

तकमीला-इ-अकबरनामा के आधार पर दिये हुए उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन्हीं घटनाओं का वर्णन केशव ने अपने ग्रंथ के उक्त प्रकाश में किया है। थोड़े से अंतर के साथ प्रायः सभी बातों में परस्पर समानता है।

प्रकाश ९

अकबर की मृत्यु और जहाँगीर का राज्याभिषेक—नवें प्रकाश में केशव ने लिखा है कि उक्त पराजय का समाचार ज्ञात होने पर अकबर ने उसके विरुद्ध और सेना भेजी। इसके कुछ समयोपरांत अकबर का देहांत होने पर सलीम जहाँगीर के नाम से सम्राट् बना।[3]

इतिहास से ज्ञात होता है कि वीरसिंहदेव के सौभाग्य से १७/२७ अक्टूबर, १६०५ ई० को अकबर की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर सलीम जहाँगीर के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। (२४ अक्टूबर, १६०५ ई०)।[4]

वीरसिंहदेव जहाँगीर द्वारा सम्मानित—इस प्रकार अबुल्फ़ज़ल् की मृत्यु (अगस्त १६०२ ई०) से लेकर अकबर के मरने के समय तक मुग़ल सेना वीरसिंहदेव को दंड देने के लिए प्रयत्न करती रही। जहाँगीर ने सम्राट् बनते ही उसे आगरे बुलाया। वीरसिंहदेव के आगरे पहुँचने पर जहाँगीर ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। वह संपूर्ण बुन्देलखंड का राजा घोषित कर दिया गया। इसके फलस्वरूप वीरसिंहदेव और रामसिंह में विद्वेष और वैमनस्य की ज्वाला धधकने लगी।[5]

जहाँगीर द्वारा वीरसिंहदेव के सम्मानित किये जाने के प्रसंग में इतिहास लेखकों का कथन है कि अकबर की मृत्यु के पश्चात् बनों से निकलकर वीरसिंह बुंदेला ने आगरे में उपस्थित होकर तीन हजारी मंसब प्राप्त किया तथा अपने संरक्षक पर अपना पर्याप्त प्रभाव भी डाला। वीरसिंह-

---

[1] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० ४६-५५ [2] हिस्ट्री आव् इंडिया, भा० ६, पृ० ११३-४ [3] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० ५५-६ [4] जहाँगीर, भा० १, पृ० ७५, १३०; अकबर दी ग्रेट, पृ० ३११ [5] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० ५६-६१

देव जहाँगीर का विशेष कृपा-पात्र था इस कारण से उसका ज्येष्ठ भ्राता रामचंद्र बुन्देला विद्रोही बन गया।[1]

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण को ही केशव ने अपने ग्रंथ के इस प्रकाश में अधिक विस्तार से लिखा है।

प्रकाश १०

शाहज़ादा .खुसरो का विद्रोह—वीरसिंहदेव और रामसाहि की पारस्परिक शत्रुता भयंकर रूप धारण कर रही थी कि उसी समय शाहज़ादा .खुसरो ने विद्रोह किया और जहाँगीर उसके पकड़ने के लिए उसके पीछे लगा।[2]

उक्त घटना के विषय में इतिहास में यह उल्लेख मिलता है :—

.खुसरो के विद्रोह के विशेष कारण थे। अकबर के शासन के अंतिम दिनों में राजा मानसिंह और अज़ीज़ कोका ने .खुसरो को अकबर का उत्तराधिकारी बनाने के विफल प्रयत्न किये थे। उसी समय से जहाँगीर और .खुसरो—पिता और पुत्र-में शत्रुता थी। ६ अप्रैल, १६०६ ई० को .खुसरो सिकन्दरे में अकबर की समाधि की पूजा करने के बहाने से निकल गया और फिर न लौटा। दूसरे दिन जहाँगीर स्वयं उसका पीछा करने के लिए आगरे से चल पड़ा। इधर-उधर भागने के पश्चात् .खुसरो २७ अप्रैल, १६०६ ई० को पकड़ा गया। जहाँगीर ने उसे निबिड़तम बंदीगृह में डाल दिया।[3]

इसी ऐतिहासिक घटना की ओर केशव ने .खुसरो संबंधी विवरण में संकेत किया है।

प्रकाश १०-१४

अबदुल्लाह खाँ का ओड़छा पर आक्रमण—वीरसिंह और रामसाहि की शत्रुता उग्र रूप धारण करती गई। दोनों में बड़ी-बड़ी राजनीतिक चालें चली गईं। परस्पर आये दिन युद्ध भी होते रहते थे। जब बात बहुत बढ़ गई तो अबदुल्लाह खाँ ने वीरसिंहदेव की सहायतार्थ ओड़छे पर आक्रमण कर दिया। भयंकर युद्ध के उपरांत अबदुल्लाह ने रामसाहि को बंदी बना लिया और वह उन्हें जहाँगीर के पास ले गया। राज्य की उचित व्यवस्था करके वीरसिंहदेव रामसाहि को छुड़ाने के लिए आगरे को गए और उन्हें मुक्त कराने में वे सफल हुए।[4]

केशव द्वारा लिखे गये उक्त विवरण के संबंध में जहाँगीर लिखता है :—

इस समय यह समाचार मिला कि विजया दशमी के अवसर पर कालपी के जागीरदार अबदुल्लाह खाँ ने बुंदेलखंड पर आक्रमण करके बड़ी वीरता दिखलाई और मधुकर के पुत्र रामचंद्र (रामसाहि) को बंदी बनाकर कालपी ले गया क्योंकि उसने बहुत समय से उस दुर्गम प्रदेश को अशांति और विद्रोह का केन्द्र बना रक्खा था।...(२७ ज़िल्क़दा १०५० हि० = १५ मार्च, १६०७ ई०) को अबदुल्लाह रामचंद्र बुंदेला को हथकड़ियाँ पहनाकर मेरे पास लाया। मैंने उसकी बेड़ियाँ

---

[1] जहाँगीर, भा० १, पृ० १३४ ५; तुज़ुक-इ-जहाँगीरी, भा० १, पृ० २४ [2] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० ६२-३ [3] तुज़ुक-इ-जहाँगीरी, भा० १, पृ० ५१-७२; जहाँगीर, भा० १, पृ० ६८-७३, १३८-५५; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया; भा० ४, पृ० १५२, १५६-७ [4] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० ६३-८७

दूर करने की आज्ञा दी और वस्त्रादि से सम्मानित करके उसे राजा बासुदेव को सौंप दिया कि वह उसे तथा उसके अन्य संबंधियों को, जो पकड़े गए थे, अपने उत्तरदायित्व पर मुक्त कर दे। यह मेरी अनुकम्पा और दयालुता के कारण हुआ। जैसी कृपा दिखलाई गई उसकी उसे आशा नहीं थी।[1]

जहाँगीर द्वारा दिए हुए इस विवरण से रामसाहि के विद्रोह का पता चलता है। केशव ने रामसाहि को छुड़ाने के लिए वीरसिंहदेव के जाने का उल्लेख किया है, पर जहाँगीर के कथनानुसार उसने अपनी दयालुता से प्रेरित होकर उसे राजा बासुदेव को सौंप दिया था। हो सकता है कि वीरसिंहदेव के आगरे पहुँचने से पूर्व ही जहाँगीर ने रामसाहि को मुक्त कर दिया हो। यह भी सम्भव है कि वीरसिंहदेव आगरे को जहाँगीर से मिलने के लिए गए हों और केशव ने कल्पना करके रामसाहि को छुड़ाने के लिए उनके वहाँ जाने का कारण बतला दिया हो। इस प्रसंग में वर्णित अन्य घटनाओं—बुन्देलखंड में होने वाले स्थानीय युद्ध आदि—का वर्णन इतिहास-ग्रंथों में अप्राप्य है। पर वे अवश्य ही लड़े गए होंगे, क्योंकि उस समय वीरसिंहदेव और रामसाहि में शत्रुता और फूट अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी।

वीरसिंह का बुन्देलखंड में पुनः लौटना—वीरसिंहदेव के आगरे चले जाने पर बुन्देलखण्ड में पुनः अशान्ति और अव्यवस्था फैल गई, पर जब वे फिर लौट आए तो सारी परिस्थितियाँ सुधर गईं। वे ओड़छा के राजा घोषित कर दिए गए। उन्होंने ओड़छा का नाम जहाँगीरपुर रक्खा और मधुकरशाहि का सारा राज्य उन्हें दे दिया गया। उन्होंने ओड़छा को अपनी राजधानी बनाया।[2]

केशव के इस कथन की परीक्षा करने के लिए ऐतिहासिक सामग्री अप्राप्य है।

इस प्रकार केशव विरचित वीरसिंहदेव-चरित की ऐतिहासिकता पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें वर्णित प्रायः सभी विवरण ऐतिहासिक हैं। डाक्टर बेनीप्रसाद[3] जैसे इतिहास विशेषज्ञ का इस ग्रंथ को ऐतिहासिक दृष्टि से एक दम हेय एवं तुच्छ, अतः त्याज्य मानना न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता। सच बात तो यह है कि नीर-क्षीर-विवेक से कवित्व को इतिहास से पृथक् कर देने पर 'वीरसिंहदेव-चरित' नवीन मौलिक एवं महत्वपूर्ण प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री पाठकों के सामने रखता है जिसका दिग्दर्शन अन्यत्र दुर्लभ प्रतीत होता है। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर इस ग्रंथ-रत्न का मूल्य बहुत बढ़ जाता है।

---

[1] तुज़ुक-इ-जहाँगीरी, भा० १, पृ० ८२-७ [2] वीरसिंहदेव-चरित, पृ० ८७-८ [3] हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर, भा० १, पृ० ४३ (पाद-टिप्पणी)

अध्याय २

गोरा बादल की कथा

आगामी पृष्ठों में जटमल कृत 'गोराबादल की कथा' में वर्णित युद्ध-समय, रत्नसेन के वंश का नाम, पात्र, आलाउद्दीन का सिंहल की ओर प्रस्थान, चित्तौड़ पर आक्रमण के कारण, युद्ध-वर्णन, युद्ध का अन्त, सैन्य-संख्या, सिंहल-द्वीप, पद्मावती की कथा, आदि की ऐतिहासिकता पर विचार किया गया है।

युद्ध का समय—जटमल ने युद्ध तिथि का उल्लेख नहीं किया है। उसने केवल इतना ही लिखा है कि अलाउद्दीन चित्तौड़ को बारह वर्ष तक घेरे पड़ा रहा।[१]

जायसी ने इस युद्ध का समय आठ वर्ष बतलाया है।[२] पर अमीर खुसरो, जो इस लड़ाई में सुलतान के साथ था, अपनी 'तारीख-इ-अलाई' में लिखता है कि ८ जमादि-उस्सानी हि० स० ७०२ (वि० सं० १३५६ माघ सुदि ६=ता० २८, जनवरी ई०सन् १३०३) को सुलतान अलाउद्दीन चित्तौड़ लेने के लिए रवाना हुआ...सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० स० ७०३=वि० सं० १३६०, भाद्रपद सुदि १४=ता० २६ अगस्त, ई० सन् १३०३ को क़िला फ़तह हुआ।"[३] इसके अनुसार चित्तौड़ का युद्ध लगभग सात मास तक होता रहा। फ़रिश्ता लिखता है कि छः महीने के घेरे के उपरान्त चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया।[४]

अतएव जटमल द्वारा दिया हुआ बारह वर्ष का समय इतिहास के प्रतिकूल ठहरता है।

राणा रत्नसेन के वंश का नाम—जटमल ने राणा रत्नसिंह को चहुँवाण (चौहान) राजपूत माना है।[५] जायसी ने भी इन्हें चौहान ही लिखा है।[६]

श्री ओझा जी मेवाड़ राजवंश के संबंध में लिखते हैं कि फिर उस वंश में (कुश के वंश में) वि० सं० ६२५ (ई० सन् ५६८) के आसपास मेवाड़ में गुहिल नामक प्रतापी राजा हुआ, जिसके नाम से उसका वंश गुहिल वंश कहलाया........पीछे से इस वंश की एक शाखा सीसोदा गाँव में रही जिससे उस शाखा वाले उस गाँव के नाम पर सीसोदिया कहलाए। इस समय इसी सीसोदिया शाखा के वंशधर उदयपुर के महाराणा हैं।

उदयपुर का राजवंश वि० सं० ६२५ (ई० सन् ५६८) के आस-पास से लगाकर आजतक समय के अनेक हेर-फेर सहते हुए उसी प्रदेश पर राज्य करता चला आ रहा है।[७]

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि चित्तौड़ के महाराणा 'गुहिल' अथवा 'सीसोदिया' कुल के सूर्य-वंशी राजा हैं, न कि चौहान-कुल के।

श्री ओझाजी मेवाड़ के शासक राव जैत्रसिंह (शासन काल १२१३-१२५२ ई०) के नाडौल के चौहानों के साथ के युद्ध का विवरण देते हुए कहते हैं......

---

[१] गोरा बादल की कथा, छं० ७४, पृ० १६ [२] जायसी-ग्रंथावली, पृ० २७१ [३] उदयपुर का इतिहास, खं० २, पृ० ४८४ [४] वही, खंड वही, पृ० ४८७ [५] गोराबादल की कथा, छं० २४, पृ० ७ [६] जायसी-ग्रंथावली, पृ०१३० [७] राजपूताने का इतिहास, भा० १, पृ० ३६६-७१

नाडौल के चौहानों के वंशज कीतू (कीर्त्तिपाल) ने मेवाड़ को थोड़े समय के लिए ले लिया था। जिसका बदला लेने के लिए जैत्रसिंह ने नाडौल पर चढ़ाई की हो।[1]

सम्भव है कि चौहानों के चित्तौड़ पर इस अल्पकालीन अधिकार हो जाने ही के कारण यह प्रवाद चल पड़ा हो कि वहाँ के शासक चौहान वंश के हैं। पर उक्त जैत्रसिंह से पहले से ही वहाँ पर गुहिल-राजपूतों का राज्य था। अतएव राव रत्नसिंह (१३०३ ई०) गुहिल अथवा सीसोदिया था, न कि चौहान।

चारणों आदि में प्रचलित उक्त प्रवाद से ही प्रभावित होकर जायसी तथा जटमल ने उक्त भूल कर डाली है। जटमल की यह ऐतिहासिक भूल है। उन्होंने सुनी सुनाई घटना का ही आश्रय लिया है। उसमें नाम-मात्र को भी तथ्य नहीं है।

निश्चित पात्र

हिन्दू-पात्र—रत्नसिंह—यह रावल समरसिंह के पुत्र थे। यह १३०३ ई० में सिंहासनारुढ़ हुए। इन्हें शासन करते हुए थोड़े ही महीने हुए थे, कि इतने ही में अलाउद्दीन ने आक्रमण करके इन्हें मारकर चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। मेवाड़ के कुछ ख्यातों, राज-प्रशस्ति महाकाव्य तथा टाड के राजस्थान में रत्नसिंह का नाम तक नहीं दिया है। पर कुम्भलगढ़ के शिलालेख (१४६० ई०) और एकलिंग महात्म्य से सिद्ध है कि वह समरसिंह के पुत्र थे और उस युद्ध में मारे गए थे।[2]

गोरा बादल—जटमल ने गोरा बादल को दो विभिन्न सामन्त माना है। उनके मतानुसार बादल गाजण-सुत था और गोरा उसका चाचा था।[3]

जायसी ने बादल को गोरा का पुत्र मानकर दोनों को रत्नसिंह का विश्वासपात्र सरदार बतलाया है।[4]

टाड के मत में गोरा पद्मिनी का चाचा और बादल गोरा का भतीजा था।[5]

श्री ओझाजी ने इन वीरों के इतिहास के संबंध में नवीन प्रकाश डालने का, जो प्रयत्न किया है, उसका सारांश नीचे दिया जाता है :—

उदयपुर राज्य के छोटी सादड़ी गाँव से दो मील दूर एक पहाड़ी पर के 'भमरमाता' मन्दिर से प्राप्त एक शिलालेख से विदित होता है कि 'गौर' वंशीय शासक यशगुप्त ने जनवरी, के ४९१ ई० को पहाड़ पर अपने माता पिता के पुण्य के निमित्त देवी का मन्दिर बनवाया। इस लेख से विदित है कि 'गौर' नामक क्षत्रिय वंश वि० संवत् छठी शताब्दी के मध्य में मेवाड़ में विद्यमान था और छोटी सादड़ी के आस-पास के प्रदेश पर उसके वंश वालों का राज्य था। महाराणा रायमल के समय में (१४८८ ई० में) वर्त्तमान गौर वंशीय क्षत्रिय उक्त माहाराणा की सेवा

---

[1] राजपूताने का इतिहास, खं० २, पृ० ४६१-२ [2] वही, खं० वही, पृ० ४८४ [3] गोराबादल की कथा, छं० ७, पृ० २; छं० १६, पृ० २४ [4] जायसी-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० २७; वही, गोरा बादल-युद्ध-खंड, पृ० ३२७ [5] वही, भूमिका पृ० २१; टाड, राजस्थान, भा० १, पृ० २०३

में थे और बड़ी वीरता से लड़े थे। विक्रमीय संवत् की १४वीं शताब्दी में गौर वंशीय राजपूत मेवाड़ के राजाओं की सेना में थे। चित्तौड़ के किले पर पद्मिनी के महलों से दूर दक्षिण पूरब में दो गुंबजदार मकान हैं जिनको लोग गोराबादल के महल कहते हैं।

……जायसी के पद्मावत (रचना-काल १५४० ई०) और जटमल कृत गोरा बादल की कथा (रचनाकाल १६२३ ई०) में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है परन्तु ये दोनों पुस्तकें गोरा बादल की मृत्यु से क्रमशः २३७ और ३२० वर्ष पीछे बनी हैं। इतने दीर्घ काल में नामों में भ्रम होना संभव है। गोरा और बादल दो पुरुष नहीं, किंतु एक ही पुरुष का नाम होना संभव है, जैसा कि राठौर दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि, जिसका पहला अंश (गोरा) वंश-सूचक और दूसरा अंश (बादल) व्यक्तिगत नाम है। गोरा-बादल का वास्तविक अभिप्राय गौरा (गोर) वंश के बादल नामक पुरुष से हो सकता है। वंश सूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखकों ने भ्रम से दो नाम अलग-अलग मान लिए होंगे।[1]

उपर्युक्त उद्धरण पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से विदित होता है, कि ओझा जी ने गोरा-बादल के संबंध में हमारे सामने एक नवीन सुझाव रक्खा है। उनके उक्त निर्णय का आधार 'गौर-वंश' संबंधी उक्त शिलालेख है। पर उस शिलालेख में गोरा-बादल संबंधी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में कोई उल्लेख नहीं आया है। आदरणीय ओझा जी का उक्त निश्चय गौर वंश के परिचय तथा अन्य व्यक्तियों के नाम-साम्य पर ही अवलम्बित है। अतएव उनका उक्त निर्णय नवीन और संभावित होते हुए भी, ठोस प्रमाणों के अभाव में, सत्य तथा अन्तिम निर्णय नहीं माना जा सकता।

फ़ारसी इतिहास लेखकों तथा इतिहासों बरनी, इसामी, अमीर-ख़ुसरो, इब्न बतूता, 'तारीख़-इ-मुहम्मदी', एवं 'तारीख़-इ-मुबारक-शाही', फ़रिश्ता, हाजीउद्दवीर आदि में भी गोरा बादल संबंधी विशेष विवरण नहीं मिलता है और न अभी तक कोई ऐसा शिलालेख ही मिला है जो उनके जीवन पर विशेष प्रकाश डाल सके।

ऐसी परिस्थितियों में केवल इतना ही स्वीकार किया जा सकता है कि गोरा बादल चित्तौड़ राज्य के विश्वास-पात्र तथा स्वामि-भक्त सामंत थे, जो राणा रत्नसिंह के साथ शत्रु का सामना करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे।

पद्मिणी—(पद्मिनी) पद्मिनी का जो कुछ भी विवरण गोरा बादल की कथा तथा अन्य काव्य-ग्रंथों में मिलता है उसमें से अधिकांश काल्पनिक है। केवल इतना ही निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि वह चित्तौड़ के राव रत्नसिंह की एक रानी थी।[2] उसके संबंध में अधिक प्रामाणिक विवरण देना कठिन है।[3]

मुसलमान-पात्र अल्लावदी—(अलाउद्दीन)।[4]

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन-संस्करण, भा० १३, १९८९ वि०, पृ० ७-११ [2] उदयपुर राज्य का इतिहास, भा० २, पृ०४११ [3] पद्मिनी-कथा के बिस्तृत ऐतिहासिक विवेचन के लिए देखिए पृ० १९६-२०२ [4] देखिए, अध्याय ११ के अन्तर्गत हम्मीररासो की ऐतिहासिकता में अलाउद्दीन का विवरण

अनिश्चित पात्र

हिंदू-पात्र—गाजण, वीरभाण, राघव चेतन, परभावती (प्रभावती)।

अलाउद्दीन का सिंहल की ओर प्रस्थान—जटमल ने पद्मिनी की प्राप्ति के लिए अलाउद्दीन के सिंहल की ओर प्रस्थान करने का उल्लेख किया है।[1] कहने की आवश्यकता नहीं है कि कवि का यह विवरण एक दम काल्पनिक है।

आक्रमण का कारण—जटमल के मतानुसार पद्मिनी की प्राप्ति की इच्छा से प्रेरित होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था।[2] इतिहासज्ञ इस बात से भली प्रकार परिचित हैं कि अलाउद्दीन एक महत्त्वाकांक्षी, उद्दंड और दूरदर्शी सुलतान था। दिल्ली में शांतिपूर्वक शासन करने के लिए यह आवश्यक था कि वह राजपूताने पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य को विस्तृत एवं निष्कंटक बनाए। यही कारण था कि उसने राजस्थान के विविध राज्यों पर आक्रमण किये। उसे शनैः शनैः अपने उद्देश्यों में सफलता भी मिलती गई। सफलता से प्रोत्साहित होना मानव स्वभाव है। रणथंभौर जैसे अजेय दुर्ग को अधिकृत करने से उसका उत्साह अधिक बढ़ गया। अतः राजस्थान में नवीन विजय-प्राप्ति की कामना से प्रेरित होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर अपनी सेनायें भेजीं।[3] इससे स्पष्ट है कि जटमल ने चित्तौड़ पर आक्रमण का जो कारण बताया है वह एकदम काल्पनिक और निराधार है।

युद्ध-वर्णन—चित्तौड़ के युद्ध के विस्तृत विवरण का अभाव है। इस दुर्ग के घेरे के अवसर पर बहुत से भयंकर युद्ध लड़े गए होंगे और राजनीतिक चालें चली गई होंगी। पर इनका विस्तृत वर्णन किसी भी तत्कालीन अथवा उत्तरकालीन इतिहास लेखक ने नहीं किया है। घेरा अधिक समय तक पड़ा रहा था। इसी से यह सिद्ध हो जाता है कि राजपूतों ने एक भी प्राणी जीवित रहने के समय तक उसकी रक्षा करने का निश्चय कर लिया होगा।

चित्तौड़ दुर्ग की भव्यता का वर्णन करते हुए अमीर ख़ुसरो कहता है कि "दुर्ग जो एक पहाड़ी को काटकर बनाया गया था, अद्‌भुत था। अपने वीर नेता रत्नसेन के नेतृत्व में शूर राजपूत आठ मास पर्यन्त आक्रमणकारियों का सामना करते रहे। 'राय' भाग गया परंतु पीछे से स्वयं शरण में आया और तलवार की बिजली से बच गया। तीस हज़ार हिन्दुओं को कत्ल करने की आज्ञा देने के पश्चात् उस (सुलतान) ने चित्तौड़ का राज्य अपने पुत्र खिज्र खाँ को दिया और उस चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद रक्खा।" ज़िया बरनी अपकी 'तारीख़-इ-फ़ीरोज़शाही' में लिखता है कि "सुलतान अलाउद्दीन ने चित्तौड़ घेरा और थोड़े ही अरसे में उसे आधीन कर लिया। घेरे के समय चातुर्मास में सुलतान की फ़ौज को बड़ी हानि पहुँची।" आस-पास के सरदारों ने इस युद्ध में भाग लिया अथवा नहीं इसका कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। परंतु तत्कालीन पारस्परिक वैमनस्य एवं उदासीनता-भाव को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चित्तौड़ के राजा को अकेले ही युद्ध करना पड़ा होगा। संवत् १५१७ वि० (१४६० ई०) के एक शिलालेख में,

---

[1] गोराबादल की कथा, छं० ६१-६, पृ० १५-७ [2] वही, छं० ६६-७०, पृ० १७

[3] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ८१

जो उदयपुर म्युज़ियम में सुरक्षित है, लिखा है कि सीसोदिया जागीर के महाराणा लक्ष्मणसिंह अपने सात पुत्रों के साथ इस युद्ध में मारे गए। इसी से स्पष्ट है कि चित्तौड़ का युद्ध बहुत भयंकर हुआ था। सभी मुसलमान इतिहास लेखकों ने भी इसको स्वीकार किया है।

गढ़ के ऊपर मुसलमानों का अधिकार होने से पूर्व राजपूत रमणियों ने जौहर-व्रत द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा की। रत्नसिंह इस युद्ध में मारा गया और ख़िज्रख़ाँ वहाँ का शासक नियुक्त हुआ।[1]

सेनायें

राव रत्नसिंह की सेना—जटमल ने इनकी सेना का उल्लेख नहीं किया है; पर 'गोरा बादल की मंत्रणा' के प्रसंग में पाँच सौ डोलियों में दो-दो वीरों के बैठने और चार-चार शूरों के कन्धा लगाने का उल्लेख आया है।[2] इसके अनुसार उनकी सेना की संख्या तीन सहस्र मानी जा सकती हैं। इस संख्या को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। मुसलमान लेखकों ने भी राव की सेना की संख्या का उल्लेख नहीं किया है। पीछे बतलाया जा चुका है कि अमीर ख़ुसरो ने 'तारीख़-इ-अलाई' में अलाउद्दीन द्वारा 'तीस सहस्र' हिंदुओं के क़त्ल करने का उल्लेख किया है।[3] हो सकता है कि यह संख्या संग्राम में काम आने वाले वीरों की हो। छः मास तक लड़े गए युद्ध में सहस्रों राजपूत वीर काम आए होंगे। जटमल द्वारा दी हुई उक्त संख्या को काल्पनिक मानना चाहिए। यह भी हो सकता है कि गोरा बादल के साथ जानेवाली सेना की यह संख्या रही हो। यह भी संभव है कि परंपरानुगत परिपाटी के अनुसार जटमल ने अपने चरित्र-नायक के शौर्य और वीरत्व को द्विगुणित करने के लिए राजपूत सेना की संख्या कम और मुसलमानों की अत्यधिक बतला दी हो।

अलाउद्दीन की सेना—अलाउद्दीन की सेना का वर्णन करते हुए जटमल ने दो स्थानों पर दो भिन्न-भिन्न संख्याएँ दी हैं। सिंहल की ओर प्रयाण करती हुई सेना की संख्या उन्होंने 'नौ लाख त्रिगुण तुरंग तथा सोलह सहस्र मैगल (हाथी)' बतलाई है।[4] उसके पश्चात् ही चित्तौड़ की ओर चल पड़ने पर उसकी संख्या तीन लाख अश्वारोही तथा हाथियों के पचरन हलके (झुंड) मानी है।[5]

इतिहास के साक्ष्य से सिद्ध है कि अलाउद्दीन की स्थायी सेना पौने पाँच लाख थी।[6] जटमल द्वारा दी हुई दो विभिन्न संख्याएँ इस बात का पर्य्याप्त प्रमाण हैं कि वह उसके संबंध में संदिग्ध थे। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा दी हुई प्रथम संख्या अत्युक्तपूर्ण है तथा दूसरी संख्या

---

[1] उदयपुर राज्य का इतिहास, खं० २, पृ० ४८४-६; ईलियट, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ३; पृ० ७६-७, १८६; आर्क्यालॉजीकल सर्वे रिपोर्ट, १६२५-२६ ई०, पृ० १४६; अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ८१-६ [2] गोराबादल की कथा, छं० ६८, पृ०२५ [3] देखिए पृ० १६४; राजपूताने का इतिहास, भा० २, पृ० ४८५ [4] गोराबदल की कथा, छं० ६५, पृ० ६१ [5] वही, छंद ७२, पृ० १७-८ देखिए अध्याय ११, हम्मीररासो की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत अलाउद्दीन की सेना का विवरण।

भी ठीक नहीं मानी जा सकती। सन् १३०३ ई० में अलाउद्दीन को सेना का एक भाग बङ्गाल की ओर भेजना पड़ा और उसका कुछ भाग राजधानी में भी रखना पड़ा होगा। इतनी विशाल सेना चित्तौड़ भेज देने पर उसकी सेना उक्त स्थानों के लिए कम रही होगी। पर साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि चित्तौड़ पर एक विशाल सेना लेकर अलाउद्दीन ने आक्रमण किया होगा। इस प्रकार कवि जटमल द्वारा दी हुई दोनों संख्याओं को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

सिंहल द्वीप—जटमल ने पद्मिनी को सिंहल द्वीप का माना है और सिंहल की स्थिति उदधि के पार बतलाई है।[1] इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है "पद्मिनी क्या सचमुच सिंहल की थी? पद्मिनी सिंहलद्वीप की नहीं हो सकती। यदि 'सिंहल' नाम ठीक मानें तो वह राजपूताना या गुजरात का कोई स्थान होगा।"[2]

इस संबंध में श्री ओझा जी का मत है कि "चित्तौड़ से करीब चालीस मील पूर्व में सिंगोली नाम का प्राचीन स्थान है, जिसके विस्तृत खंडहर और प्राचीन किले के चिह्न अब तक विद्यमान हैं। अतएव पद्मिनी का पिता सिंगोली का स्वामी होगा। सिंगोली और सिंहल (सिंहल द्वीप) नाम परस्पर मिलते हुए होने के कारण 'पद्मावत' और 'गोराबादल की कथा' के रचयिताओं ने भ्रम में पड़कर सिंगोली को सिंहल (सिंहल द्वीप) मान लिया हो, यह संभव है। रत्नसिंह के राज्य करने का जो अल्प समय निश्चित है उससे यही माना जा सकता है कि उसका विवाह सिंहल द्वीप अर्थात् लंका के राजा की पुत्री से नहीं किन्तु सिंगोली के सरदार की कन्या से हुआ हो।"[3]

सिंहल द्वीप की स्थिति के संबंध में श्रद्धेय ओझा जी ने उक्त लेख द्वारा प्रकाश डालने का पर्याप्त प्रयत्न किया है। पर विचारपूर्वक देखने से विदित होता है कि उनके निष्कर्ष अधिकतर नाम-साम्य के अनुमान ही पर निर्भर हैं। जब तक और सामग्री न मिले तब तक उक्त सुझाव से संतोष करते हुए भी उसे एकदम ठीक एवं अंतिम निर्णय नहीं माना जा तकता।

उपर्युक्त संक्षिप्त ऐतिहासिक परीक्षा के उपरांत 'गोरा बादल की कथा' के संबंध में यही कहा जा सकता है कि जटमल ने उसमें जायसी कृत पद्मावत के समान बहुत सी सुनी-सुनाई तथा प्रचलित बातों को स्थान दिया है, पर जायसी के पद्मावत और इसमें कई बातों में भेद है। कवि जटमल ने अपनी रचना में चारणों द्वारा प्रचलित की हुई अनैतिहासिक बातों को भी स्थान दे दिया है। यह सब होते हुए भी यह मानना पड़ता है कि इस कवि ने चारणों के समान अत्यधिक कल्पना से काम नहीं लिया है। उसने ऐतिहासिक घटनावली में परिवर्तन किए हैं और कल्पना की भी पर्याप्त सहायता ली है। पर यह सब कुछ होने पर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह संक्षिप्त काव्य वीररस की एक ऐसी कृति है जिसका कलेवर ऐतिहासिक एवं तथ्यपूर्ण घटनावली के आधार पर अवलंबित है। अतएव यह अपने ढंग की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना है।

(अ) पद्मिनी की कथा की ऐतिहासिकता

नीचे के पृष्ठों में 'गोरा बादल की कथा' में उल्लिखित पद्मिनी की कहानी की वास्तविकता और ऐतिहासिकता पर विचार किया जा रहा है :—

---

[1] गोरा बादल की कथा, छं० ६४; पृ० १६ [2] जायसी-ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ३३ [3] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १३, १९८९ वि०, पृ० १४-६

अब तक के अनुसंधानों के आधार पर इसका प्रथम रूप हिंदी में पद्मावत (रचना-काल १५४० ई०) में मिलता है।[1] इसके पश्चात् दूसरा साहित्यिक रूप जटमल की गोरा बादल की कथा है।[2]

फ़रिश्ता ने अपनी पुस्तक 'तारीख़-इ-फ़रिश्ता' में चित्तौड़ का विवरण दो स्थानों पर दिया है। प्रथम स्थल पर चित्तौड़ के शासक का नाम नहीं दिया है और दूसरे स्थान पर हि० स० ७०४ (१३०४ ई०) के प्रसंग में लिखता है कि 'इस समय चित्तौड़ का राजा राय रत्नसेन, जब से सुलतान ने उसका क़िला छीना तब से क़ैद था, अद्भुत रीति से भाग गया। अलाउद्दीन ने उसकी एक लड़की के अलौकिक सौंदर्य और गुणों का हाल सुनकर उससे कहा कि भाई तू अपनी लड़की मुझे सौंप दे तो तू बंधन से मुक्त हो सकता है। राजा ने, जिसके साथ क़ैद में सख्ती की जाती थी, इस कथन को स्वीकार कर अपनी राजकुमारी को सुलतान को सौंपने के लिए बुलाया। राजा के कुटुम्बियों ने इस अपमानसूचक प्रस्ताव को सुनते ही अपने वंश के गौरव की रक्षा करने के लिए राजकुमारी को विष देने का विचार किया, परंतु उस राजकुमारी ने ऐसी युक्ति निकाली जिससे वह अपने पिता को छुड़ाने तथा और अपने सतीत्व की रक्षा करने को समर्थ हो सकती थी। तदनुसार उसने अपने पिता को लिखा कि आप ऐसा प्रसिद्ध करदें कि मेरी राजकुमारी अपने सेवकों सहित आ रही है और अमुक दिन दिल्ली पहुँच जायेगी।......उसकी युक्ति यह थी, कि अपने वंश के राजपूतों में से कई एक को चुनकर डोलियों में सुसज्जित बिठला दिया और राजवंश की स्त्रियों की रक्षा के योग्य सवारों तथा पैदलों के दल-बल के साथ वह चली...उसकी सवारी दिल्ली पहुँची। उस समय रात पड़ गई थी, सुलतान की खास परवानगी से उसके साथ की डोलियाँ क़ैदखाना में पहुँची और वहाँ के रक्षक बाहर निकल आए। भीतर पहुँचते ही राजपूतों ने डोलियों से निकलकर अपनी तलवारें सम्हालीं और सुलतान के सेवकों को मारने के पश्चात् राजा सहित वे तैयार रक्खे हुए घोड़ों पर सवार होकर भाग निकले। सुलतान की सेना आने न पाई, उसके पहले ही राजा अपने साथियों सहित शहर से बाहर निकल गया और भागता हुआ अपने पहाड़ी प्रदेश में पहुँच गया, जहाँ उसके कुटुम्बी छिपे हुए थे। इस प्रकार अपनी चतुर राजकुमारी की युक्ति से राजा ने क़ैद से छुटकारा पाया और उसी दिन वह मुसलमानों के हाथ में रहे हुए अपने मुल्क को उजाड़ने लगा। अंत में सुलतान ने चित्तौड़ को अपने अधिकार में रखना निरर्थक समझ खिज्र खां को हुक्म दिया कि क़िले को खाली कर उसे राजा के भांजे (मालदेव सोनगरा) की सुपुर्द कर दे।[3]

पद्मावत की कथा से फ़रिश्ता के उक्त कथन की तुलना करने पर स्पष्ट हो जायेगा कि इसका मुख्य आधार वही कथा है। फ़रिश्ता ने उसमें कुछ घटा बढ़ा करके ऐतिहासिक रूप में उसे रख दिया है और पद्मिनी को रानी न कहकर बेटी बतलाया है।

---

[1] इसके कथानक के लिए देखिए रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित, जायसी-ग्रंथावली, भूमिका पृ० १६-२८ [2] देखिए गोरा बादल की कथा, भूमिका, पृ० ४-५ [3] राजपूताने का इतिहास, भा० २, पृ० ४६२-३

...पद्मिनी के दिल्ली जाने की बात ही निर्मूल है। दूसरी बात यह भी है कि अलाउद्दीन जैसे प्रबल सुलतान की राजधानी की क़ैद से भागा हुआ रत्नसिंह बच जाय तथा मुल्क को उजाड़ता रहे और सुलतान उसको सहनकर अपने पुत्र को चित्तौड़ खाली करने की आज्ञा दे दे यह असंभव प्रतीत होता है। हि० स० ७०४ (वि० संवत् १३६१=ई० सन् १३०४) में खिज्र खाँ के क़िला छोड़ने और मालदेव को देने की बात भी निर्मूल है।[1]

श्री ओझा जी का यह कथन कि "अलाउद्दीन जैसे प्रबल सुलतान की राजधानी की क़ैद से भागा हुआ रत्नसिंह बच जाय तथा मुल्क को उजाड़ता रहे और सुलतान उसको सहनकर अपने पुत्र को चित्तौड़ ख़ाली करने की आज्ञा दे दे असंभव प्रतीत होता है।" कुछ विशेष महत्त्वशाली नहीं लगता। अलाउद्दीन एक शक्तिशाली एवं उद्दण्ड सुलतान था इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता, पर रणथंभौर, चित्तौड़ तथा अन्य गढ़ों के युद्धों से वह राजपूतों की वीरता का लोहा मानने लगा था, यह स्पष्ट है। उसके पश्चात् उससे अधिक शक्ति-शाली सम्राट् अकबर दिल्ली की गद्दी पर बैठा। वह महाराणा प्रताप को वश में न कर सका और आजन्म वे उसे नाकों चने चबाते रहे। औरंगज़ेब जैसे शक्तिशाली एवं कूटनीतिज्ञ सम्राट् के बंधन से आगरे से छूटकर शिवाजी सकुशल दक्षिण जा पहुँचे। ये दो प्रमाण इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि सुलतान पर राजपूतों का आन्तक अवश्य छागया होगा। अतः ओझा जी का यह कथन अधिक ठीक नहीं है। पर उन्होंने अपने कथन की प्रामाणिकता में जो अन्य प्रमाण दिए हैं, वे ठोस हैं।

हाजीउद्दबीर ने गुजरात में रहकर अपनी पुस्तक ज़फ़रुलवली की रचना की थी। उसमें उसने लिखा है कि "चित्तौड़-विजय के पश्चात् वहाँ के हिन्दू-राजा को चित्तौड़ के सुरक्षित स्थान पर बंदी बनाकर अलाउद्दीन ने दिल्ली से उसके पास यह संदेश भेजा कि यदि वह सुलतान के पास अपनी रानी (जिसमें कुछ गुण थे) को भेज दे तो उसे मुक्ति मिल सकती है।[2] ऐसी स्त्री को पद्मिनी कहते हैं।" दूसरे स्थल पर इस अरबी इतिहास लेखक ने लिखा है कि चित्तौड़ छोड़ने से पहले अलाउद्दीन ने पद्मिनी लेने और बदले में उसे छोड़ने की आज्ञा दी। इस प्रकार यह संभव है कि जब सुलतान देहली को लौट रहा था तो राजा कदाचित् उसके साथ था।

हो सकता है कि उस समय राजा ने उससे उसको मेवाड़ देश में छोड़ दिए जाने की प्रार्थना की हो, जिससे वह उसके लिए अपनी पत्नी भेज सकता और वह उसे उस मनुष्य को सौंप देता जिसके लिए बादशाह आज्ञा देता, और फिर सुलतान के रक्षकों के साथ वह देहली चला आता। रानी पाने की कामना से सुलतान ने उसको वहाँ मुक्त कर दिया और स्वयं देहली को चला गया। राजा ने अपने विश्वस्त सामन्तों और नौकरों को गोपनीय आज्ञायें भेज दीं और वे २५०० की संख्या में पालकियों में आए और उन सैनिकों से लड़े जिन्हें सुलतान ने राजा की रक्षा के लिये, नियुक्त किया था। वह भाग गया। यह सुनकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़-राणा की भानजी (बहिन की पुत्री), जिसका विवाह सुलतान के साथ हुआ था, को दे दिया, पर वह राजा के मन्त्री के

---

[1] राजपूताने का इतिहास भा० २, पृ० ४१३ [2] हाजीउद्दबीर ने यहाँ पद्मिनी का व्यक्तिवाचक के रूप में नहीं वरन् अलौकिक गुण संपन्न स्त्री के विशेष्य के रूप में प्रयोग किया है (क़ब्बाज़ा)।

द्वारा शीघ्र ही मारी गई। इसके बाद वह हिंदू-राजा अपने देश को लौट आया और वहाँ पर अपनी सत्ता स्थापित की। यह दशा हि० स० ६४१ में गुजरात के शासक बहादुर बिन मुज़फ़्फ़र द्वारा इस प्रदेश के जीते जाने तक रही।[1]

कर्नल टॉड ने, प्राचीन परम्परा, भाटों और चारणों के कथन के आधार पर पद्मिनी का जो विवरण दिया है, उसका सारांश यह है :—

"सं० १३३१ (ई० सन् १२७४) में लखमसी (लक्ष्मणसिंह) चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। उसका चाचा भीमसी (भीमसिंह) उसका रक्षक बना। भीमसी ने सिंहल द्वीप (सीलोन, लंका) के राजा हमीरसिंह चौहान की पुत्री पद्मिनी से विवाह किया जो बड़ी रूपवती और गुणवती थी। अला-उद्दीन ने उसके लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी, परन्तु उसमें सफल न होने से उसने केवल पद्मिनी का मुख देख कर लौटना चाहा और अंत में दर्पण में पड़ा हुआ उसका प्रतिबिम्ब देखकर लौट जाना तक स्वीकार कर लिया। वह थोड़े से सिपाहियों के साथ क़िले में चला आया और पद्मिनी के मुख का प्रतिबिंब देखकर वह लौट गया। लौटते समय दुर्ग के नीचे मुसलमानों ने छलकर भीमसी को पकड़ लिया और पद्मिनी के सौंपने पर उनको छोड़ना चाहा। यह समाचार सुनकर पद्मिनी के चाचा गोरा और उसके पुत्र बादल की सम्मति से ७०० डोलियाँ तैयार की गईं जिनमें से प्रत्येक में एक एक वीर राजपूत सशस्त्र बैठ गया और कहारों का वेष धारण किए शस्त्रयुक्त छः छः राजपूतों ने प्रत्येक डोली को उठाया। सुलतान के डेरों पर पहुँचने पर पद्मिनी को अपने पति से अंतिम भेंट करने के लिए आधा घंटा दिया गया। कहारों का भेष धारण किए कई राजपूत भीमसिंह को डोली में बिठाकर वहाँ से चल पड़े........डोलियों में से वीर राजपूत निकल आए और युद्ध करने लगे। अलाउद्दीन ने फिर चित्तौड़ घेरा, परंतु उसे हारकर लौटना पड़ा। कुछ समय के अनंतर वह नई सेना के साथ चित्तौड़ के लिए दूसरी बार चढ़ आया और राजपूतों ने भी वीरता से उसका सामना किया। अंत में जब उन्होंने यह देखा कि क़िला छोड़ना ही पड़ेगा, तब जौहर करके रानियों तथा अन्य राजपूत-स्त्रियों को अग्नि के मुख में अर्पण कर दिया। फिर वे मुसलमानों पर टूट पड़े और वीर-गति को प्राप्त हुए। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को आधीन कर लिया, परंतु जिस पद्मिनी के लिए उसने इतना कष्ट उठाया था, उसकी तो चिता की अग्नि ही उसे दृष्टिगोचर हुई।"[2]

"कर्नल टाड ने यह कथा विशेषकर भाटों के आधार पर लिखी है और भाटों ने उसको विशेषकर 'पद्मावत' से किया है। भाटों की पुस्तकों में समरसिंह के पीछे रत्नसिंह का नाम न होने से टॉड ने पद्मिनी का संबंध भीमसिंह से मिलाया और उसे लखमसी (लक्ष्मणसिंह) के समय की घटना मान ली। ऐसे ही लखमसी का बालक और मेवाड़ का राजा होना भी लिख दिया, परंतु लखमसी न तो मेवाड़ का कभी राजा हुआ और न बालक था, किंतु सीसोदे का सामन्त (सरदार) था और उस समय वृद्धावस्था को पहुँच चुका था, क्योंकि वह सात पुत्रों सहित अपना नमक अदा करने के लिए रत्नसिंह की सेना का मुखिया बनकर अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में

---

[1] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० २४६ [2] टाड, राजस्थान, जि० १, पृ० २०७-११; राजपूताने का इतिहास, भाग २, पृ० ४६३-४

मारा गया था, जैसा कि वि० स० १५१७ (ई० सन् १४६०) के कुंभलगढ़ के शिलालेख में बताया गया है।"[1] "इसी प्रकार भीमसी (भीमसिंह) लखमसी (लक्ष्मणसिंह) का चाचा नहीं कन्तु दादा था, जैसा कि राणा कुंभकर्ण के समय के 'एकलिंगमहात्म्य' से पाया जाता हैं। ऐसी दशा में कर्नल टाड का कथन विश्वास योग्य नहीं हो सकता।"[2]

"फ़रिश्ता ने चित्तौड़ के शासक का नाम नहीं लिखा है क्योंकि उसका आधार अमीर ख़ुशरो था जिसने स्वयं उसका नाम नहीं दिया है। फ़रिश्ता को यह निश्चय नहीं था कि पद्मिनी रत्नसिंह की पुत्री थी अथवा पत्नी"[3]। उसने एक स्थान पर (पृ० ११५ पर) लिखा है :—

"ब समग्रः बादशाह रसानीदन्द कि दरमियाने ज़नाने राजा-इ-चित्तौर ज़नेस्त पद्मिनी नाम"

जिसका लक्षण से यह भाव होता है कि वह रत्नसेन की रानी थी। इसके पश्चात् कतिपय स्थानों पर उसने "ज़न" शब्द का प्रयोग किया है पर बाद को लिखता है कि राय की लड़की (जिसका उसने नाम नहीं दिया है) (दुख़्तर राय की ब फ़हम व अक़्ल मशहूर ख़ेश व क़बील-इ-ख़ुद बबूद)"ने एक अद्भुत उपाय निकाला। वह देहली को गई और अपने पिता को बचाया।

हाजीउद्दवीर का पद्मिनी का विवरण भी भ्रमात्मक है। उसने रत्नसेन के नाम का उल्लेख नहीं किया है। "पद्मिनी" से उसका अभिप्राय विशेष-गुण-सम्पन्न स्त्री से है न कि किसी प्रमुख व्यक्ति से। राजा की मुक्ति का उपाय उसने राजा के चातुर्य को माना है न कि पद्मिनी की बुद्धिमत्ता को। उसके मतानुसार राय को बंदी बनाकर देहली में नहीं रक्खा गया था और उसे यह भी निश्चय नहीं था कि चित्तौड़ पर विजय हो जाने से पूर्व अथवा सुलतान द्वारा रत्नसिंह के बन्धन में डाले जाने के पश्चात् पद्मिनी की माँग की गई थी। उसने खिज़्रख़ाँ का नाम नहीं दिया है, यद्यपि तत्कालीन लेखकों के मतानुसार चित्तौड़ पर अधिकार हो जाने के पश्चात् वह वहाँ का शासक नियुक्त किया गया था।

इस प्रकार फ़रिश्ता, हाजीउद्दवीर तथा अन्य फ़ारसी इतिहास-लेखकों एवं राजपूताने के भाटों द्वारा कथित पद्मावती की कथा में बहुत कुछ साम्य है। यत्र-तत्र केवल साधारण सा अन्तर है तथा जायसी कृत पद्मावत पर आधारित है। यहाँ तक कि जायसी के "पद्मावत" में १६००, फ़रिश्ता में ७००, हाजीउद्दबीर में ५०० तथा जटमल में ५०० डोलियों का उल्लेख है। जायसी और फ़रिश्ता के अनुसार राजा देहली में बन्दी था। पर हाजीउद्दबीर एवं जटमल के मतानुसार वह चित्तौड़ में, उसके डेरों में ही क़ैद था, जिससे वह पद्मिनी को अलाउद्दीन के पास जाने के लिए फुसला सकता। जायसी और जटमल के अनुसार पद्मावती की बुद्धिमत्ता से राजा का छुटकारा हुआ। फ़रिश्ता के अनुसार वह रत्नसिंह की पुत्री थी और हाजीउद्दवीर के मत में राणा ने स्वयं ही उपाय निकाला था। अतः केवल थोड़ी से सूक्ष्म अन्तरों के अतिरिक्त सभी भाटों, चारणों एवं फ़ारसी लेखकों की दी हुई कथा जायसी की दी हुई कथा से मिलती है।"[4]

'पद्मावत' लिखते समय जायसी का यह उद्देश्य नहीं था कि वह रत्नसेन अथवा पद्मावती की जीवनी लिखे। उसने "कथा की समाप्ति पर" सारी कथा को एक अन्योक्ति बतलाकर लिखा है:—

---

[1] राजपूताने का इतिहास, भाग २ पृ० ४८४ [2] वही, भा० २ पृ० ४६४-५ [3] बाँकीपुर पुस्तकालय में 'बे हरूलनज' नाम के हस्तलिखित इतिहास (१८वीं शताब्दी की कृति, में भी इसका उल्लेख है। [4] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० २६०-६२

"चौदह भुवन जो तर उपराहीं, ते सब मानुष के घट माहीं ।
तन चितउर, मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल, बुधि पद्मिन चीह्ना।
गुरू सुआ जेह पंथ दिखावा, बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।
नागमती यह दुनिया धंधा, बाँचा सोइ न एहि चित बंधा ?
राघव दूत सोई सैतानू, माया अलादीन सुलतानू ।
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु, बूझि लेहु जौ बूझै पारहु ।"[1]

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि जायसी कृत 'पद्मावत' एक अन्योक्ति है, न कि ऐतिहासिक ग्रंथ। "यह हो सकता है कि जायसी के समय में सन् १५३४ ई० में गुजरात के शासक बहादुर शाह के चित्तौड़ पर किए गए आक्रमण के अवसर की हृदय-विदारक जौहर का उन पर कुछ प्रभाव पड़ा हो। भारतीय मुसलमान इतिहास लेखकों ने जायसी कृत इस कहानी को बिना संकोच के अपनी पुस्तकों में लिख दिया जैसा कि उन्होंने अन्य फ़ारसी इतिहासों की प्रतिलिपि ज्यों की त्यों अपनी रचनाओं में कर ली। चित्तौड़ के आक्रमण के २३७ वर्ष और अलाउद्दीन की मृत्यु के २२४ वर्ष पश्चात् जायसी के ग्रंथ 'पद्मावत' की रचना हुई। इससे पूर्व किसी भी इतिहास लेखक—फ़ारसी अथवा राजस्थानी—ने पद्मिनी के विषय में नहीं लिखा।"

"मेवाड़ की परम्परा के अनुसार यह कहानी बहुत प्राचीन है......कहा नहीं जा सकता कि जायसी से पूर्व यह कहानी प्रचलित थी अथवा उसके पश्चात् इसकी प्रसिद्धि हुई। हो सकता है कि चित्तौड़ के भयंकर युद्ध से प्रभावित होकर जायसी को पद्मावत के कथानक की उसी प्रकार सूझ प्राप्त हो गई हो जैसी कि फ्रांस की राज्य-क्रांति के अवसर पर डिकिंस् को 'ए टेल ऑव् टू सिटीज़' के कथानक की प्राप्ति हो गई थी। एक बार इस प्रकार की कथाओं का प्रचार होना आरम्भ हो जाता है तो जनता घटा बढ़ा कर उसका प्रचार करने लग जाती है। इसका विस्तार एवं प्रचार इतना बढ़ा कि न केवल फ़रिश्ता और हाजीउद्दवीर वरन् 'मनूची' तक अकबर के चित्तौड़ के आक्रमण के प्रसंग में उल्लेख करते हुए कहता है कि 'पद्मावती राजा जयमल की रानी थी जिसको डोलियों के उपाय द्वारा सम्राट् के कारागार से छुड़ाया गया।" इसके विपरीत तत्कालीन इतिहास-लेखकों, कवियों तथा यात्रियों-बरनी, इसामी, अमीर ख़ुसरो, इब्नबतूता तथा "तारीख़-इ-मुहम्मदी" एवं "तारीख-इ-मुबारक शाही" ने पद्मावती के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। "चित्तौड़ की इस घटना के विषय में जान बूझकर मौन धारण करने का दोषी इन सबको नहीं ठहराया जा सकता......पद्मावती की कथा केवल जायसी कृत पद्मावत, (गोराबादल की कथा), परम्परागत विवरणों एवं उन इतिहासों और रचनाओं में मिलती है, जो इनके ऊपर अवलम्बित हैं। पद्मिनी की कथा की परम्परा की प्राचीनता का वास्तविक ज्ञान हमें अभी तक नहीं हैं। केवल इसी तर्क के आधार पर कि यह बहुत प्राचीन परम्परागत कथा है इसे सत्य नहीं माना जा सकता।"[2]

'पद्मावत' में वर्णित कथा की अनैतिहासिकता का विवेचन करते हुए ओझा जी लिखते हैं :—

"उसके (रत्नसिंह के) समय में सिंहल द्वीप का राजा गंधर्वसेन नहीं, किन्तु राजा कीर्ति-

[1] जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३४१ [2] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० २६२-३

निश्शंकु देव पराक्रमवाहु चौथा (या भुवेकवाहु तीसरा) होना चाहिए। सिंहलद्वीप में गंधर्वसेन नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। उस समय तक कुंभलनेर (कुम्भलगढ़) आबाद ही नहीं हुआ था, तो देवपाल वहाँ का राजा कैसे माना जाय?"[1] इस संबंध में उनका यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि "पद्मावत की कथा का कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यों पर खड़ा किया गया है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर छः मास के घेरे के अनंतर उसे विजय किया, वहाँ का राजा रत्नसिंह इस लड़ाई में लक्ष्मण सिंह आदि कई सामन्तों सहित मारा गया, उसकी रानी पद्मिनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी, इस प्रकार चित्तौड़ पर थोड़े से समय के लिए मुसलमानों का अधिकार हो गया। बाक़ी की बहुधा सब बातें कल्पना से खड़ी की गई हैं।"[2]

---

[1] राजपूताने का इतिहास भा० २, पृ० ४९१ [2] वही, भाग वही, पृ० ४९५

अध्याय ३

भूषण-ग्रंथावली की ऐतिहासिकता

नीचे भूषण के ग्रंथों में वर्णित वंश, पात्र तथा घटना-चित्रण आदि पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जा रहा है :—

राजवंश-वर्णन—भूषण ने शिवा जी के पूर्वजों का वर्णन करते हुए लिखा है कि "दिन-राज-वंश में कंस-मथन-प्रभु बार-बार अवतीर्ण हुए। उसी वंश के एक राजा ने ईश को शीश देकर सीसोदिया विरद प्राप्त किया।"[१]

भूषण ने शिवाजी को सूर्य-वंशावतंस बतलाया है। कंसारि-श्रीकृष्ण ने यदु-कुल में जन्म धारण किया था। यादव चंद्र-वंशी-क्षत्रिय हैं। भूषण ने कंस-संहारक प्रभु का बार-बार उसी कुल में अवतार लेना माना है। इस कथन से उनका केवल यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण, श्रीराम आदि अवतार एक ही सता-विष्णु के रूप थे, अन्यथा उनका उक्त कथन इतिहास विपरोत ठहरेगा।

शिर देने के कारण सीसोदिया नाम पड़ने का उल्लेख करके भूषण ने चारण-कथित परंपरा को स्वीकार किया है, जो इतिहास के प्रतिकूल एवम् भ्रमात्मक है। वास्तव में सीसोदिया-वंश का नाम सीसोदे-निवासी होने के कारण पड़ा था।[२]

भौंसिले नामकरण—भूषण ने मालमकरंद के 'रन-भू-सिला' होने के कारण भौंसिला नाम पड़ने की कल्पना की है।[३] इतिहास को ज्ञात होता है कि "सज्जनसिंह अथवा सुजानसिंह (मृत्यु १३५०ई०) की ५वीं पीढ़ी में उग्रसेन का जन्म हुआ जिनके कर्णसिंह और शुभ-कृष्ण नामक दो पुत्र थे। कर्णसिंहात्मज भीमसिंह के वंशधर 'घोरपदे' तथा शुभ-कृष्ण के वंशज 'भोंसले' कहलाए'। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'भोंसले' शब्द द्वारसमुद्र के शासक 'होयसाल' राज-वंश का विकृत रूप है। यह होयसाल यादव क्षत्रियों की एक शाखा थे। जीजाबाई यदुवंशीय थीं और यादवों की उसी शाखा में पाणिग्रहण नहीं हो सकता, अतः भोंसला उत्पति की यह कल्पना निराधार है।"[४] कहने की आवश्यकता नहीं है कि भूषण का कथन इस विवरण के एकदम प्रतिकूल पड़ता है।

भूषण ने मालोजी की अन्य उपाधियों-सरजा तथा खुमान का भी उल्लेख किया है।[५]

---

[१] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ४-९ [२] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ४, राज-विलास की ऐतिहासिकता के अंतर्गत वंश-नाम शीर्षक [३] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ८ [४] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भाग १, पृ० ४५-७ (पृ०४६ पर दी हुई पाद टिप्पणी २ के सहित) [५] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ८

पात्रों की ऐतिहासिकता

निश्चित-पात्र

हिंदू-पात्र मालमकरंद, मालोजी—यह बाबा जी भोंसले के पुत्र थे। इनका जन्म १२५२ ई० में हुआ था। देवगिरि के प्राचीन राज-वंश के उत्तराधिकारी लूख जी उन दिनों अहमदनगर के निज़ाम-शाह की सेवा में रहते थे। इन्होंने उन्हीं के यहाँ नौकरी कर ली। ४ फ़रवरी, १६१६ ई० को रोशनगाँव में मलिक अंबर की अध्यक्षता में निज़ाम-शाही सेना ने मुग़लों का सामना किया। मालो जी भी इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। १६१७ ई० में यह युद्ध समाप्त हुआ। इसमें मुग़ल विजयी हुए। १६२१ ई० में पुनः शाहजहाँ चढ़ आया पर मार्च १६२२ ई० में संधि करके लौट गया।

निज़ामशाह ने मालोजी को पूना और सूपा की जागीर प्रदान की। इनकी मृत्यु १६२० ई० में हुई।[1]

मालोजी प्रारंभ में कतिपय वर्ष तक लाखूजी की सेवा में रहे। अंत में उसके मुग़लों से मिल जाने पर भी वे निज़ामशाह के प्रति स्वामि-भक्ति प्रदर्शित करते रहे। अतः भूषण का यह कथन कि वे देवगिरि के आधार-स्तम्भ और निज़ामशाह के मित्र थे[2] सत्य और ऐतिहासिक है।

साहिजी—यह मालोजी के पुत्र थे। इनका विवाह लखूजी जाधव की पुत्री जीजाबाई से ५ नवम्बर, १६०५ ई० को हुआ था। १६२५ ई० के लगभग शाहजी निज़ामशाह की नौकरी छोड़कर आदिलशाह की सेवा में चले गए। नवम्बर, १६३० ई० से मार्च १६३३ ई० तक शाहजी शाहजहाँ की सेवा में रहे। इसके उपरांत वे फिर बीजापुर की नौकरी में चले गए। १६३६ ई० में मुग़लों और बीजापुर में संधि हो जाने पर यह अकेले ही मुग़ल-शत्रु रह गए। अक्तूबर, १६३६ ई० में इन्होंने बीजापुर की सेवा में रहना फिर स्वीकार कर लिया। शनिवार २३ जनवरी, १६६४ ई० को शाह जी का देहान्त हो गया[3]

शिवा, सिवराज, सिवराजसिंह—यह शाहजी के पुत्र थे। जीजाबाई के छः लड़के उत्पन्न हुए जिनमें से केवल दो—शंभाजी और शिवाजी जीवित रहे। शंभाजी का जन्म १६१६ ई० में और शिवाजी ६ अप्रैल, १६२७ ई० (अथवा १६, फ़रवरी, १६३० ई०) को हुआ था। इनकी मृत्यु ३ अप्रैल, १६८० ई० को हुई थी।[4]

संभाजी—(शंभूजी)—ये शिवाजी के पुत्र थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् यह गद्दी पर बैठे। औरंगजेब के राज्य के ३०वें वर्ष शंभाजी पकड़े गए और ३१वें वर्ष मार डाले गए।[5]

साहू—ये महाराज शंभाजी के पुत्र थे। इनका लालन-पालन औरंगजेब के दरबार में हुआ था। औरंगजेब की मृत्यु के अनंतर यह अपने देश गए। इनके मंत्रियों ने मुग़लों के राज्य में लड़ाई और लूट-मार प्रारंभ कर दी। साहू १७४७ ई० में निस्संतान मर गए।[6]

---

[1] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भाग १, पृ० ४७, ४६-५१, ५३ [2] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण छं० ७ [3] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भाग १, पृ० ५३, ५५, ५६, ६५, ८४ [4] वही, भाग वही, पृ० ५३, ८७, २५६, मआसिरुल् उमरा, भाग, १, पृ० ४११-८ [5] वही, भाग वही, पृ०४१८-६ [6] वही, भाग वही, पृ० ४१६-२१

बाजीराव—यह प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ के पुत्र थे। पिता के मरने पर यह पेशवा नियुक्त हुए। इसने क्रमशः १७३३ ई० और १७३४ ई० में उत्तरी भारत पर आक्रमण किए। मुग़लों ने इसे मालवा का प्रबंध सौंप दिया। इसके उपरांत इसने भदावर को जीता। समय पाकर इसने दिल्ली और आगरे पर भी आक्रमण किए थे। १७४० ई० में इसकी मृत्यु हो गई।[१]

बीरबर (बीरबल), भगवंत (भगवान्दास), मान (मानसिंह)।[२] चंपति (चंपतिराय), छत्रसाल (छत्रसालसिंह, छत्ता), जयसिंह (मिर्ज़ा राजा जयसिंह), जसवंत (जसवंतसिंह), छत्रसाल हाड़ा, सुजानसिंह,[३] भगवंतराय।[४]

भाऊ—यह राव छत्रसाल हाड़ा के पुत्र थे। इन्होंने शुजा के युद्ध तथा दक्षिण में महाराज जसवंतसिंह, मिर्ज़ा राजा जयसिंह, दिलेरखाँ आदि के साथ रहकर बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। १६७७ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[५]

राव-बुद्ध—यह राव भाऊसिंह के भाई भगवंतसिंह के पौत्र और कृष्णसिंह के पुत्र अनिरुद्ध सिंह के आत्मज थे। औरंगज़ेब के मरने पर उत्तराधिकार युद्ध में इन्होंने बहादुरशाह की सहायता की थी। इससे प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें मोमीदाना और कोटा की जागीरें दीं।[६]

अमरसिंह चंद्रावत—रामपुरा के राव दुर्गा सिसोदिया के प्रपौत्र, राव चंद्राभान के पौत्र तथा हरिसिंह के पुत्र थे। यह १७०७ वि० (१६५० ई०) में शाहजहाँ की सेवा में आया। औरंगज़ेब के साथ कंधार गया। धर्मत के युद्ध में महाराज जसवंतसिंह के साथ था, पर बिना युद्ध किए स्वदेश लौट गया। शुजा का पीछा करने पर नियुक्त हुआ। १७२३ वि० (१६६६ ई०) में सलेहरि-युद्ध में मारा गया।[७]

मोहकमसिंह—यह उक्त अमरसिंह चंद्रावत का पुत्र था। सलेहरि-युद्ध में बंदी हुआ। कुछ समय पश्चात् छूटने पर राव की पदवी मिली। १६६० ई० के लगभग इसकी मृत्यु हुई।[८]

किशोरसिंह—कोटा-नरेश माधौसिंह के पाँच पुत्रों में यह सबसे छोटे थे। धर्मत युद्ध में जसवंतसिंह का साथ दिया और घायल हुए। १७२६ वि० (१६६६ ई०) में गद्दी पर बैठे। यह दक्षिण ही में बराबर नियुक्त रहे। १७२२ वि० (१६८५ ई०) में अरकाट दुर्ग के घेरे के समय मारे गए।[९]

करन—(राव कर्ण) यह बीकानेर के राजा थे। अपने पिता राव सूरसिंह भुरटिया के मरने पर यह १६३१ ई० में गद्दी पर बैठे। परेंदा, दौलताबाद, बीजापुर, जवारि आदि दुर्गों के जीतने में इन्होंने पर्याप्त वीरता प्रदर्शित की थी। यह १६६५ ई०में पुरंधर के घेरे में जयसिंह के साथ वर्त्तमान थे। औरंगाबाद में इनकी मृत्यु हुई।[१०]

---

[१] मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० ४२२-४ [२] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय १, वीरसिंहदेव-चरित की ऐतिहासिकता, पृ० १७८-१७६ [३] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ५, छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता के अंतर्गत पात्रों का ऐतिहासिक विवरण [४] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ७, रासा भगवंतसिंह की ऐतिहासिकता के अंतर्गत पात्रों का विवरण [५] मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० २४७-६ [६] वही, वही, पृ० २४६-६० [७] ब्रजरत्नदास, भूषण-ग्रंथावली, परिशिष्ट (च) पृ० १०२ [८] वही, वही, परिशिष्ट वही, पृ० १२१ [९] वही, वही, पृ० १०७ [१०] वही, वही, वही, पृ० १०४-६; मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० ८४-६

रामसिंह—यह मिर्ज़ा राजा जयसिंह के पुत्र थे। १६६७ ई० में पिता की मृत्यु पर राजा हुए। उसी वर्ष यह आसाम में नियुक्त हुए जहाँ से नौ वर्ष के अनन्तर लौटने पर १६७६ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।[१]

जगत्सिंह—यह आमेर के राजा मानसिंह कछवाहा के सबसे बड़े पुत्र और अकबर के एक प्रसिद्ध सेनापति थे। १५६६ ई० में यह बङ्गाल के सहकारी प्रांताध्यक्ष नियुक्त हुए, पर आगरे से चलने से पहले ही युवावस्था ही में मर गए।[२]

महासिंह—यह उक्त जगत्सिंह के पुत्र थे। पिता की मृत्यु के अनन्तर इन्हें बङ्गाल भेजा गया। मदिरा पान की अधिकता के कारण युवावस्था में इनकी मृत्यु हो गई।[३]

उदैभान—उदयभानसिंह कोंदाना (सिंहगढ़) का दुर्गाध्यक्ष था। यह राठौर था। १६७० ई० के आरंभ में तानाजी मालुसरे से युद्ध करते हुए मारा गया।[४]

मुसलमान-पात्र बब्बर (बाबर)—इसने १५२६ ई० में मुग़ल-साम्राज्य की नींव डाली। १५३० ई० में इसका देहांत हो गया।[५]

हिमायूँ (हुमायूँ)—यह बाबर का ज्येष्ठ पुत्र था। १५३० ई० में गद्दी पर बैठा। १५५६ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[६]

अकब्बर (अकबर), जहांगीर[७], साहजहां (शाहजहां), औरंगजेब, दारा, मुराद, शाहशुजा तहवरखान (तहव्वर खान)।[८]

अफ़ज़ल ख़ाँ—इसका नाम अब्दुल्ला खाँ भटारी पठान था। यह बीजापुर का एक बड़ा सरदार था। यह १६५६ ई० में शिवाजी के हाथ से मारा गया।[९]

अबूबास—शाह अब्बास द्वितीय फ़ारस का बादशाह था। औरंगजेब के सिंहासनारुढ़ होने पर इसने उसको बधाई दी थी। इसका राजदूत २२ मई, सन् १६६१ ई० को प्रथम बार मुग़ल दरबार में पहुँचा। इस बादशाह ने औरंगजेब को फटकार से पूर्ण एक पत्र भी लिखा था जो उसे सितम्बर, १६६६ ई० को मिला था।[१०]

एदिल साहि (आदिलशाह)—बीजापुर के आदिलशाही वंश की उपाधि आदिलशाह थी। ४ नवम्बर १६५६ ई० से ४ दिसम्बर, १६७२ ई० तक अली-आदिलशाह द्वितीय राज्य करता रहा। इसके पश्चात् सिकन्दर आदिलशाह गद्दी पर बैठा।[११]

---

[१] ब्रजरत्नदास, भूषण-ग्रंथावली, परिशिष्ट (च), पृ० १२२; मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० ३४२-५ [२] वही भाग वही, पृ० १४३-४; ब्रजरत्नदास, भूषण-ग्रंथावली, परिशिष्ट (च), पृ० ११० [३] मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० १४४ [४] ब्रजरत्नदास: भूषण-ग्रंथावली, परिशिष्ट (च), पृ० १०५ [५] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ० १-२० [६] वही, भा० वही, पृ० २१-४४ [७] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय १, वीरसिंहदेव-चरित की ऐतिहासिकता, पृ० १८० [८] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ५, छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता के अंतर्गत पात्रों का विवरण [९] ब्रजरत्नदास, भूषण-ग्रंथावली, परिशिष्ट (च), पृ० १०१-२ [१०] विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, पृ० २४७ [११] वही, वही, पृ० २४६; केम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भा० ४, पृ० २०१, २५३-५, २७०-५, २८६

कुतुबसाह—यह गोलकुंडा के शासकों की उपाधि थी। अब्दुल्लाह .कुतुबशाह के २४ .फरवरी, १६६७ ई० को मर जाने पर अबुल्हसन .कुतुबशाह गोलकुंडा का शासक बना।[1]

ख़वासखाँ—(दौलतखाँ)—यह बीजापुर का एक सरदार था। वह बीजापुर के अल्पवयस्क शासक सिकन्दर आदिलशाह का संरक्षक बना (४ दिसम्बर, १६७२ ई०)। अन्त में यह मार डाला गया।[2]

ख़ान दौरा-नवसेरी ख़ान (नौशेरी .खाँ)—नौशेरी .खाँ अथवा नसीरी .खाँ 'खानदौराँ' उपाधि से विभूषित किया गया था। यह दक्षिण का मुग़ल सूबेदार था। १६५७ ई० में अहमदनगर के पास शिवाजी से इसका घोर युद्ध हुआ था।[3]

तलबखाँ (कारतलब खाँ उजबक)—१६५७ ई० में जुनेर के पास थानेदार नियुक्त हुआ। ३ .फरवरी, १६६१ ई० को शिवाजी ने इसे पराजित किया। १६७० ई० में इसे ख़िलअत, घोड़ा, जमधर, आदि मिले।[4]

दलेजख़ान, दिलेर महमद (दलेरखाँ)—इसका नाम जलाल .खाँ था और यह दाऊदज़ई अफ़ग़ान था। १६६४ ई० में यह जयसिंह के साथ दक्षिण में नियत हुआ और पुरंधर तथा रूद्रमाल दुर्गों को विजय किया। १६६७ ई० में शाहज़ादा मुअज़्ज़म के साथ नियत हुआ। १६८३ ई० में उसका देहान्त हुआ।[5]

बहलोल खान, बहलोलिया—(बहलोल .खाँ) यह बीजापुरी पठान सेनापति था। १६७३ई० के आरंभ में इसने प्रताप राव गूजर को परास्त किया। पर उसी वर्ष के अन्त में प्रतापराव गूजर ने उसे मार भगाया। इसके अनन्तर आनन्द राव ने इसे फिर पराजित किया। इसके पश्चात् वह बीजापुर का प्रधान आमात्य हुआ (१६ नवम्बर, १६७५ ई०)। २३ दिसम्बर, १६७७ ई० को इसकी मृत्यु हुई।[6]

बहादुर ख़ाँ, बहादुर खान (.खान जहाँ बहादुर)—यह गुजरात का सूबेदार था। औरंगज़ेब ने बहादुर खाँ को दिलेरखा के साथ दक्षिण भेजा था। शिवाजी ने इन दोनों को मार भगाया। (१६७२ ई०)। बगलाना से हार कर वह गुजरात चला गया। कुछ समय के उपरान्त वह दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया गया।[7]

---

[1] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया भाग ४, पृ० १६६, २५३, २५४-५ २६१, २६६, २६६, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २८६, २८७, २६० [2] वही, भा० वही, पृ० १८८, १६०, १६५, १६६, २७४, २७५; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भाग १, पृ० १५१, १५२, २१६, २४७ [3] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, पृ० २५५; केम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इडिया, भाग ४, पृ० १६४, २६६, २६७, २६८ [4] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, पृ० २५३; व्रजरत्नदास, वही, परिशिष्ट (च), पृ० १०६; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १३७-६ [5] व्रजरत्नदास, भूषण-ग्रंथावली; परिशिष्ट (च), पृ० ११२-३; मआसिरुल् उमरा, भा० ३, पृ० ४५६-७० [6] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १३०, १८२ २०२, २०३, २१६, २४७, २४६; विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, पृ० २६८, व्रजरत्न-दास, वही, परिशिष्ट (च), पृ०११५-६ [7] वही, वही, परिशिष्ट वही, पृ०११६; विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वही, पृ०२६६; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ० २२३, २२७, २५३, २५५, २५६, २७५-८

बादरखान—भूषण ने यह नाम संभवतः उक्त बहादुर खाँ के लिए ही प्रयुक्त किया है।

फत्ते खान(फ़तेह खाँ)—यह जंजीरा के सीदियों का एक सरदार था। शिवा जी से कई बार परास्त होने पर उनसे संधि की बातचीत कर रहा था, कि उसके सहकारियों ने उसे मार डाला और वे औरंगज़ेब से संधि करके उसके अधीनस्थ सरदार बन गए (१६७४ ई०)।[1]

फ़तेह खाँ—इस नाम का एक बीजापुरी सेनापति भी था जिसे शिवाजी ने १६४६ ई० में पराजित किया था। संभव है भूषण ने इसी व्यक्ति की ओर संकेत किया हो।[2]

रुस्तमे जमा—इसका वास्तविक नाम "रनदौला" था। बीजापुर की ओर से उस राज्य के दक्षिण-पश्चिम भाग का सूबेदार था। इसकी राजधानी मिराज थी। अफ़ज़ल खाँ के मारे जाने पर इसने शिवाजी पर चढ़ाई की। परनाला (पन्हाला) के स्थान पर वह पराजित हुआ (२८ दिसम्बर, १६५६ ई०)।[3]

निज़ाम साहि बहरी—(निज़ाम शाह)—यह अहमदनगर के सुल्तानों की पदवी थी। इनकी बहरी अर्थात् समुद्री भी उपाधि थी। कुछ विद्वानों का कथन है कि निज़ामुल्मुल्क बहमनी राज्य के बहरी (शिकारी बाज़ों) की देख-रेख किया करता था, इसी से उसे 'बहरी' उपाधि मिली थी। १६३३ ई० में इस राज्य का अंत हो गया और अंतिम निज़ाम शाह हुसेन कारागार में मरा।[4]

साइतखान, साइत खाँ, सासतखाँ, सइस्तखान—(शाइस्ता खाँ)—इसका वास्तविक नाम अबूतालिब मिर्ज़ा मुराद था। यह शाहजहाँ के प्रधान मंत्री आसफ़ खाँ का पुत्र तथा मुमताज़ महल बेगम का भाई था। १६४१ ई० में यह मंत्री नियत हुआ। १६५६ ई० में यह दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। १६६३ ई० में शिवाजी पूना में इसके महल में घुस गए। यह भयभीत होकर भाग गया। इसके अनंतर यह बंगाल की सूबेदारी पर भेज दिया गया। ३१ मई, १६६४ ई० को ६३ वर्ष की अवस्था में इसका देहांत हुआ।[5]

अनवरखाँ—यह मुग़ल दरबार में एक सरदार था, जो छत्रसाल के विरुद्ध भेजा गया था। वह युद्ध में हारकर भाग गया। बहादुरशाह तथा फ़र्रुख़सियर के समय में यह बुरहानपुर का फ़ौजदार था। यह उसी नगर का एक शेख़ज़ादा था।[6]

अमीं खाँ—(अमीन खाँ मुहम्मद)—औरंगज़ेब के समय तथा उसके पश्चात् के दो प्रसिद्ध अमीन खाँ ज्ञात हैं :—

(१) मुहम्मद सैय्यद मीर जुमला का पुत्र जो पाँच हज़ारी मंसबदार था। गुजरात के अहमदाबाद में १६८२ ई० में इसकी मृत्यु हुई।

(२) निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह के भाई बहाउद्दीन का पुत्र था, जो औरंगजेब के समय

---

[1] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, पृ० २६६-७; ब्रजरत्नदास, वही परिशिष्ट (च), पृ० ११४ [2] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १०३ [3] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, पृ० २७७; ब्रजरत्नदास, वही, परिशिष्ट (च), पृ० १२२-३; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १२१, १३१, १३८ [4] ब्रजरत्नदास, भूषण-ग्रन्थावली, परिशिष्ट (च), पृ० ११३; विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वही, पृ० २६४ [5] वही, वही, पृ० २७८-६; ब्रजरत्नदास, वही, परिशिष्ट (च), पृ० १२३ [6] वही, वही, पृ० १०१ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वही, पृ० २४६

में दरबार आया। सैय्यद भ्राताओं के मारे जाने पर यह मुहम्मदशाह का प्रधान-मंत्री हुआ, पर कई महीने के पश्चात् इसकी मृत्यु हो गई।[1]

अबदुल्ल समद, समद, अब्दुस्समद (सैफ़ुद्दौला नवाब अबदुस्समद खाँ बहादुर दिलेर जंग)—इसने सिक्खों के विरुद्ध बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। क़सूर के एक विद्रोही अफ़ग़ान हुसेन खाँ को परास्त करके मार डाला था। इसने बुंदेलखंड पर चढ़ाई की थी, पर वहाँ सफल-प्रयत्न नहीं हो सका था।[2]

महमद बंगस (मुहम्मद खाँ बंगश)—यह अफ़ग़ान था। फ़र्रुख़सियर के समय में फ़र्रुखाबाद को अपनी राजधानी बनाया। १७२५ ई० में इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त हुआ। १७२७ ई० में बुंदेलों के विरुद्ध उसे कई सफलतायें मिलीं; पर १७२६ ई० में छत्रसाल ने बाजीराव की सहायता से उसे पराजित किया। इसी प्रकार उसे मालवा से भी मुँहकी खानी पड़ी। वह इलाहाबाद का पुनः सूबेदार नियुक्त किया गया। यह अपने समय का एक प्रसिद्ध सेनापति एवम् राजनीतिज्ञ था।[3]

सहादत—(बुर्हानुल्मुल्क सआादत खाँ)।[4]

दाऊद खाँ—यह १६५४ ई० में दक्षिण में नियत हुआ। पुरंधर के घेरे में यह उपस्थित था। १६७० ई० में यह वानी डिंडोरी युद्ध में मराठों से परास्त हुआ। १६७२ ई० में राजधानी चला गया।[5]

महाबत खाँ—इसका पिता ज़मानाबेग बिन गोरबेग काबुली था, जिसे महाबत खाँ की पदवी मिली थी। इसी ने जहाँगीर को बंदी बनाया था। इसकी मृत्यु के आठ वर्ष के अनन्तर इसके द्वितीय पुत्र लहरास्प को सन् १६३४ ई० में महाबत खाँ की पदवी मिली। यह दो बार काबुल का सूबेदार हुआ। १६७० ई० के अंत में यह दक्षिण का प्रधान-सेनापति नियुक्त हुआ। सन् १६७२ ई० के मध्य में यह उत्तर लौटा। १६७४ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[6]

सेर खाँ लोदी (शेर खाँ लोदी)—बीजापुरी करनाटक का दक्षिणी आधा भाग शेर खाँ लोदी के अधिकार में था। यह एक पठान था। इसकी राजधानी वालीगंडपुरम् (वर्त्तमान पांडुचेरी ज़िले में) थी। तीरूवाडी के पास शिवाजी ने इसे पराजित किया। ५ जुलाई १६७२ ई० को इसने शिवाजी से संधि कर ली।[7]

---

[1] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली पृ० २४७-८; ब्रजरत्नदास, वही, परिशिष्ट (च) पृ०१०२-३; मआसिरुल् उमरा, भ० ,पृ० २३४-४ [2] वही, भा० वही, पृ० २१०; ब्रजरत्नदास; भूषण-ग्रन्थावली, परिशिष्ठ (च), पृ०१२४; विश्वनाथप्रसाद मिश्र; वही, पृ० २८० [3] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ०३५२-३, ३५४; ३५५, ३५६, ३८२, ४०२, ४२६; बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २०६, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २३७, २४०-२४१; जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी आव् बंगाल, भा० XLVII, १८७८ ई०, पृ० २८४-३०२ [4] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ७, रासा भगवन्त सिंह के पात्रों की ऐतिहासिकता [5] ब्रजरत्नदास : भूषण-ग्रन्थावली, परिशिष्ट (च), पृ० ११२; विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वही, पृ० २४१, २६२; मआसिरुल् उमरा, भा० ३, पृ० ४०६-१० [6] ब्रजरत्नदास; भूषण-ग्रंथावली, परिशिष्ट (च), पृ०११६; विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वही, पृ० २७४ [7] वही, वही, पृ०२७६-८०

सिरजे खाँ (शरजा खाँ) —यह बीजापुर का एक प्रसिद्ध सरदार था। २४ दिसंबर १६६५ ई० को इसका शिवाजी के साथ युद्ध हुआ था।[1]

अनिश्चित पात्र

हिन्दू-पात्र—अमरेस, अनिरुद्ध, रुंड़ी-खुंडी (?), हृदयराम-सुत-रुद्र, अवधूतसिंह।

मुसलमान पात्र—आंकुस (अंकुश खाँ), अल्लि फ़ते, आकुत (याकूत ख़ाँ एक बीजापुरी सरदार), सफ़जंग (संभवतः किसी की उपाधि),[2] सैद अफगन, सेर अफगन, बहलोत (निश्चित पात्रों में जिस बहलोत ख़ाँ का उल्लेख किया गया है, उससे यह भिन्न है), सुतरुदीन, निज़ाम बेग, तुराब खान।[3]

जावली-विजय (१६५५ ई०)—भूषण ने शिवाजी द्वारा जावली पर अधिकार करने का उल्लेख कतिपय छंदों में किया है।[4] इतिहास-ग्रंथों से विदित है कि जावली सतारा प्रान्त के उत्तर पश्चिम कोने में स्थित है। १६वीं शताब्दी में मोर नामक मराठा परिवार ने बीजापुर के शासक से यह राज्य प्राप्त किया था। यहाँ के शासक की परंपरागत उपाधि चंद्रराव थी। संस्थापक से आठवीं पीढ़ी में कृष्णजी बाजी हुए, जो १६५२ ई० में गद्दी पर बैठे।

शिवाजी ने रघुनाथ बल्लाल कोरडे को चंद्रराव के पास उसकी लड़की का अपने साथ विवाह करने के प्रस्ताव को लेकर भेजा। एकांत में कोरड़े ने चंद्रराव को मार डाला। यह समाचार पाकर शिवाजी ने आक्रमण कर दिया। चंद्रराव के परिवार के सदस्य बंदी कर लिए गए। सम्पूर्ण जावली पर शिवाजी का अधिकार हो गया (अक्टूबर, १६५५ ई०)। जावली से दो मील पश्चिम में शिवाजी ने प्रतापगढ़ दुर्ग को बनवाकर वहाँ पर भवानी की मूर्ति स्थापित की।[5]

अहमदनगर एवं जुन्नार की लूट तथा खाँ दौरा नौसेरी, (नौशेर खाँ)-पराजय—इसके अनंतर शिवाजी ने अहमदनगर को लूटा तथा खाँ दौरा नौशेरी खाँ को पराजित किया।[6] इन घटनाओं के संबंध में इतिहास का कथन है कि 'अवसर पाकर शिवाजी ने मुग़ल-दक्षिण में लूट मार आरंभ कर दी। उनके सेनापति मिनाजी भोंसले और काशी ने अहमदनगर तक के भागों को लूटा (मार्च, १६५७ ई०)। इसी समय एक रात्रि को शिवाजी रस्सों की सीढ़ी से जुन्नार में प्रविष्ट हुए, पहरेदारों को काट डाला और बहुत सी लूट की सामग्री अपने साथ ले गए।

फिर वह अहमदनगर को लूटने लगे। मई, १६५७ ई० के अन्त तक नसीर खाँ आ पहुँचा। उसने शिवाजी की सेना को घेर लिया। बहुत से मराठे मारे गए, बहुत से घायल हो गए और शेष भाग खड़े हुए। मुग़ल सेना ने थके होने के कारण उनका पीछा नहीं किया। शिवाजी लूट मार का अवसर ताकते रहे और मुग़ल भी सतर्क रहे। अन्त में जनवरी, १६५८ ई० में शिवाजी और नसीर खाँ में संधि हो गई।[7]

---

[1] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, पृ० २८२. [2] वही, वही, पृ० २८०; ब्रजरत्नदास : वही, परिशिष्ट (च), १२४ [3] द्वितीय खंड, अध्याय ७, रासा भगवंतसिंह के पात्रों की ऐतिहासिकतांतर्गत 'अनिश्चित पात्र-सूची [4] भूषण-ग्रन्थावली, शिवराज-भूषण, छं० ६३, ९८, २०७; वही, शिवा-बावनी, छं० ३४, ३७ [5] सरकार, शिवाजी, पृ० ५०-७; औरंज़ेब, भा० ४, पृ० २६-३०; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १११-४ [6] भूषण-ग्रन्थावली, शिवराज-भूषण, छं० १०२, १०८; शिवा-बावनी, छं० ३७ [7] शिवजी, पृ० ५६-६७

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण में शिवाजी के भागने की बात का उल्लेख किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐतिहासिकों ने अतिशयोक्ति से काम लिया है। शिवाजी खुले में आकर युद्ध नहीं करते थे। छिपकर शत्रु को मारना और उसके आने पर अपनी रक्षा के लिए स्थान खोजना यही उनकी नीति थी। इस बात को ध्यान में रखने से भूषण का वर्णन इतिहासानुकूल सिद्ध हो जाता है।

शिवाजी और अफ़ज़ल् खाँ-बध—इस घटना का वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है :—

"आदिलशाह ने जावली में अफ़ज़ल् .खां को भेजा। जावली के पार प्रतापगढ़ के नीचे दोनों में मिलना निश्चित हुआ। शिवाजी उससे भेंट करने के लिए वहाँ पर जा पहुँचे। शिवाजी उससे वैर करना चाहते ही थे कि उसने कटार से उन पर चोट की। वे क्रुद्ध होकर उस पर टूट पड़े। शिवाजी के द्वारा चलाए गए बिछुआ के घाव से क्षत-विक्षत होकर अफ़ज़ल्खां गिर पड़ा। शिवाजी उसकी छाती पर जा बैठे और उसको मार डाला। यह देखकर उसके साथी आकुत (याक़ूत .खाँ) और अंकुश (आँकुश खाँ) वहाँ से भाग गए। उनके इस कार्य का यश दूर-दूर तक फैल गया।[1]

उक्त घटनाओं के संबंध में इतिहास-वेत्ताओं का जो मत है, वह नीचे दिया जाता है :—

"अबदुल्लाह भटारी उपनाम अफ़ज़ल् खाँ बीजापुर के शासक मुहम्मदशाह का अनौरस पुत्र एवं प्रथम श्रेणी का सरदार था। उसका स्वभाव अत्यन्त दुष्टतापूर्ण था। बीजापुर के अल्प-वयस्क शासक आदिशाह की माता, बड़ी साहिबा, ने उसे कृत्रिम-मैत्री-प्रदर्शन द्वारा शिवाजी के पकड़ लाने अथवा मार डालने की आज्ञा दी।

उचितानुचित सभी उपायों द्वारा शिवाजी को अधीनस्थ करने का दृढ़ निश्चय करके अफ़ज़ल् खाँ सितम्बर, १६५६ ई० में बीजापुर से चल पड़ा और प्रतापगढ़ से १६ मील पर 'वाई' नामक स्थान पर पहुँचकर अपना डेरा डाल दिया।

उधर शिवाजी उसकी गति-विधि से अपने को भली प्रकार अवगत करते रहे। गगन-चुम्बी-पर्वत-मालाओं और अगम्य उपत्यकाओं से परिपूर्ण वाई और जावली के निकटवर्ती प्रदेशों में अफ़ज़ल्खाँ का सामना करने का निश्चय करके वे महाबलेश्वर के पश्चिम में पारघाट नामक पर्वतीय मार्ग के ऊपर अवस्थित प्रतापगढ़ दुर्ग में निवास करने लगे।

अफ़ज़ल् खाँ ने कृष्णजी भास्कर को शिवाजी के पास एकान्त में भेंट करने के लिए आमंत्रित करने के उद्देश्य से भेजा। उसकी बातों से वे अफ़ज़ल् खाँ के गुप्त षडयंत्र को ताड़ गए।

अंत में प्रतापगढ़ दुर्ग के नीचे बाह्य प्राचीर के निकट दोनों में भेंट होने का निश्चय किया गया। वाई से प्रतापगढ़ तक सघन बन में एक मार्ग निर्मित हुआ। स्थल-स्थल पर अफ़ज़ल् खाँ की सेना के लिए पेय एवं खाद्य सामग्री का आयोजन किया गया। महाबलेश्वर पठार के बंबई-बिंदु के नीचे रत्तौंदी दर्रे से चलकर अफ़ज़ल् खाँ प्रतापगढ़ के नीचे दक्षिण ओर अवस्थित 'पार'

[1] भूषण-ग्रन्थावली, शिवराज-भूषण, छं० ४२, ६३ ६८, १५६, १६१, १७४, २०७, २४१, २५३, ३१३, ३३६; वही, शिवा-बावनी, छं० ३४, ३७; वही, फुटकर, छं० ३६; वही, फुटकर, संदेहात्मक, छं० ४, ५, ७, ६

ग्राम में पहुँचा और कोइना नदी के उद्गम के निकट गंभीर घाटी में यत्र-तत्र उसकी सेना ने डेरा डाला।

गुरुवार १० नवंबर, १६५६ ई० दोनों की मिलन-तिथि निश्चित हुई। शिवाजी ने अपने वस्त्रों के भीतर लौह कवच और पगड़ी के नीचे शिरस्त्राण धारण किए। उन्होंने वाम कर में बघनखा और दक्षिण हस्त में बिछुआ लेकर ऊपर से दीर्घ बाहों वाला ढीला-ढाला श्वेत अंगरखा पहिना, जिससे गुप्त अस्त्र-शस्त्र दिखलाई न पड़ें। अपनी माता से आशीर्वाद लेकर और जीवमहल एवं शंभू जी काबजी नामक अंगरक्षकों के साथ वे चल पड़े।

उधर अफ़ज़ल्खाँ एक सहस्र से अधिक सैनिकों को कुछ व्यवधान पर छोड़कर, दो सैनिक तथा गोपीनाथ और कृष्ण जी को साथ में लेकर मिलन स्थान पर पहले से ही शिवाजी की प्रतीक्षा कर रहा था।

थोड़ी देर में शिवाजी निःशस्त्र विद्रोही के समान अफ़ज़ल् खाँ के सामने जा पहुँचे। ख़ान की कटि पर उस समय भी एक तलवार लटक रही थी। आगे बढ़कर शिवाजी ने उसे अभिवादन किया। वह अपने स्थान से उठा और आगे बढ़कर शिवाजी से भेंटने के लिए अपनी प्रलंब भुजायें प्रसारित कीं। बात की बात में उसने शिवाजी को कस लिया, वाम हस्त से उनकी ग्रीवा को दृढ़ता-पूर्वक पकड़ा और सीधी धारवाली कटार से उन पर प्रहार किया, पर शिवाजी के गुप्त कवच ने उनकी रक्षा की। दम घुटने के कारण उन्हें पीड़ा का अनुभव होने लगा। परंतु, तुरंत ही सँभल-कर उन्होंने अपना बायाँ हाथ अफ़ज़ल् खाँ की कमर में डालकर बघ-नखा से उसकी आँतें बाहर निकाल दीं। फिर दायें हाथ से उसके बिछुआ भोंक दिया। घायल अफ़ज़ल् ने उन्हें छोड़ दिया। वे चबूतरे से कूदकर अपने साथियों की ओर भाग गए। ख़ान के अंगरक्षक शिवाजी की ओर झपटे पर वे मार डाले गए। अफ़ज़ल खाँ के सेवक उसको पालकी में रखकर ले जाने को प्रस्तुत हुए पर उनका काम तमाम कर दिया गया। शिवाजी के साथियों ने अफ़ज़ल् खाँ के शिर को काट लिया और उसको ले जाकर दुर्ग में गुम्बज के ऊपर बाँस पर लटका दिया।

प्रतापगढ़ में पहुँचकर शिवाजी ने तोप दागी। उसको सुनते ही झाड़ियों में छिपे हुए शिवाजी के सैनिक शत्रु-सैन्य पर टूट पड़े। ख़ान के लगभग तीन सहस्त्र व्यक्ति काट डाले गए। अफ़ज़ल् का पुत्र फ़ज़ल अपने साथियों के साथ भाग गया। रुस्तम-इ-ज़मा आदि पकड़ कर छोड़ दिए गए।[१]

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि अफ़ज़ल् खाँ क्रूर, धूर्त्त, विश्वास-घातक एवं शक्तिशाली सैनिक था। शिवाजी को जीवित पकड़ना अथवा मार डालना ही उसका एक मात्र लक्ष्य था। इसी उद्देश्य की सफलता के लिए कपट-मैत्री-प्रदर्शन द्वारा एकान्त में भेंटने का उसने जाल फैलाया था।

शिवाजी एक चतुर एवं दूरदर्शी राजनीतिज्ञ वीर थे। वे अफ़ज़ल् ख़ाँ की धूर्त्तता से भली प्रकार परिचित थे। इसी कारण से अपनी रक्षा के लिए उन्होंने कवच, शस्त्र आदि धारण किए थे।

---

[१] शिवाजी, पृ० ६८-८२; औरंगज़ेब, भा० ४, पृ० ३३-४०; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़् भा० १, पृ० १२३-३०

आत्म-रक्षा करते समय उन्हें अफ़ज़ल् पर प्रहार करने पड़े जिसके फलस्वरूप उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

भूषण के कथन का भी यही अभिप्राय है। उन्होंने भी अफ़ज़ल् के दुष्ट स्वभाव की ओर संकेत किया है। उनके मत में भी शिवाजी ने अपनी रक्षा के उद्देश्य से ही शत्रु पर चोट की थी। उनके कथन से यह भी विदित होता है कि शिवाजी और अफ़ज़ल् ख़ाँ दोनों ही अपनी-अपनी घात में थे, पर शिवाजी के समक्ष आत्मरक्षा का प्रश्न प्रमुख था। इस प्रकार भूषण का उक्त कथन ऐतिहासिक तथ्य की भित्ति पर ही अवलम्बित है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

कुछ विद्वानों के विचार में अफ़ज़ल् ख़ाँ निर्दोष था और वह शिवाजी को मार डालने के उद्देश्य से नहीं आया था। ऐसे बुद्धि-मार्तंडों के विचारार्थ मिर्ज़ा राजा जयसिंह द्वारा औरंगज़ेब के प्रधान-मंत्री ज़फ़रख़ाँ को, १६६६ ई० में शिवाजी के आगरे से निकल भागने के पश्चात् लिखे गए, पत्र का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। यद्यपि इस पत्र का प्रस्तुत घटना से प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, पर अप्रत्यक्षरूप से इसको पुष्ट करने में सहायक होगा। पत्र लिखते समय राजा जयसिंह कहते हैं :—

"मैं एक ऐसा आयोजन करने वाला हूँ जिससे शिवाजी मुझसे मिलने आयेगा। उसके आते अथवा जाते समय मार्ग में, सुअवसर पाकर, मेरे साथी उसकी हत्या कर देंगे। यदि सम्राट् स्वीकृति दें तो मैं प्रशंसा अथवा निंदा की चिंता न करके शाहंशाह के प्रति अपनी अगाध स्वामि-भक्ति प्रदर्शनार्थ, अपने पुत्र का विवाह शिवाजी की पुत्री से करने का प्रस्ताव रक्खूँगा। शिवाजी नीच जाति का है। हम उसका स्पर्श किया हुआ भी नहीं खा सकते (विवाह संबंध तो दूर की बात है) वह इस प्रस्ताव को अवश्य स्वीकार कर लेगा।"

इस पत्र से १७वीं शताब्दी के राजनैतिक आचार-विचार पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। स्वयं को पवित्र और उच्च कुलीन समझने वाले राजा जयसिंह एक सजातीय बंधु को जाल में फँसाने और विधर्मी औरंगज़ेब के प्रति स्वामि-भक्ति प्रदर्शित करने के लिए अपने परिवार की परंपरागत प्रतिष्ठा नष्ट करने के लिए प्रस्तुत थे,[1] तो भला, अफ़ज़ल् ख़ाँ जो बीजापुर के शासक का निकट संबंधी भी था, अपने स्वामी के कल्याणार्थ एक शक्तिशाली हिंदू-शत्रु को नष्ट करने की कामना से प्रेरित होकर नहीं आया था, यह बात साधारण समझ से बाहर की प्रतीत होती है।

इस प्रसंग में भूषण ने आकुत (याक़ूत ख़ाँ) का जो उल्लेख किया है उसे कुछ विद्वान् अनैतिहासिक बतलाते हैं। उनके ऐसा मानने का कारण यह है कि "ज़ंजीरा के सिद्दियों को याकूत ख़ाँ की उपाधि १६७० ई० के पश्चात् मिली थी। परंतु 'शिवा-चरित्र-निबन्धावली' तथा 'शिवा-जी निबन्धावली' आदि ग्रंथों से सिद्ध होता है कि उक्त घटना के अवसर पर प्रतापगढ़ से याकूत ख़ाँ, आंकुश ख़ाँ आदि योद्धा भागे थे। वे पुनः रूस्तम-इ-ज़माँ के साथ कोल्हापुर के पास परास्त हुए थे।"[2] इसके अतिरिक्त एक बात और भी विचारणीय है। 'शिवराज-भूषण' की रचना २६ अप्रैल, सन् १६७३ ई० को हुई थी।[3] उस समय तक ज़ंजीरा के सिद्दियों को याकूत ख़ाँ की

---

[1] शिवाजी, पृ० १६७-८ [2] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; भूषण-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० २७६ [3] देखिए प्रथम खंड, अध्याय १, शिवराज-भूषण की रचना-तिथि, पृ० २५-६

उपाधि मिल चुकी थी। इतिहास से सिद्ध होता है कि जंज़ीरा का शासक फ़तेह खाँ १६५६ ई० में मराठों के विरुद्ध गया था, पर अफ़ज़ल् की दुर्दशा का समाचार ज्ञात होने पर वह लौट गया था।[1] संभव है कि भूषण ने इसी घटना की ओर संकेत करते समय फ़तेह खाँ के वास्तविक नाम का उल्लेख न करते हुए, 'शिवराज-भूषण'-रचना के समय तक प्रचलित जंज़ीरा के शासकों की उपाधि याकूत् खाँ, जो उन्हें १६७० ई० के पश्चात् मिल चुकी थी, से ही पुकारा हो। यह भी संभव है, कि भूषण का अभिप्राय जंज़ीरा के सिद्दियों से न हो। हो सकता है, कि अफ़ज़ल् खाँ की सेना में याकूत खाँ नाम का कोई अन्य सैनिक रहा हो।

भूषण ने इस घटना का स्थान जावली और प्रतापगढ़ को बतलाया है। इसकी पुष्टि उपर्युक्त ऐतिहासिक उल्लेख से हो जाती है। 'जावली' बम्बई प्रांतान्तर्गत सतारा ज़िले में उत्तरी ताल्लुका है और १७° ३२' तथा १७° ५६' उ° एवं ७३° ३६' और ७३° ५६' पूर्व के मध्य में अवस्थित है। प्रतापगढ़ दुर्ग जावली ताल्लुके में १७° ५५' उ° और ७३° ३५' पूर्व में महाबलेश्वर के दक्षिण-पश्चिम में आठ मील पर स्थित है। जावली नगर से प्रतापगढ़ दो मील पश्चिम में है।[2]

उपर्युक्त विवेचन के अनन्तर यह निष्कर्ष निकलता है कि भूषण ने इस घटना का जो विवरण दिया है वह संक्षिप्त किन्तु इतिहासानुकूल, सजीव एवं तथ्यपूर्ण है।

रुस्तमें ज़माँ पराजय—(उक्त घटना के कुछ समय के पश्चात्) रुस्तमे-ज़माँ शिवाजी से पराजित होकर भागा।[3] अफ़ज़लख़ाँ की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र फ़ज़लखाँ और रुस्तम-इ-ज़माँ (रनदौला) शिवाजी का सामना करने के लिए आये। उन्होंने इन दोनों को पन्हाले के स्थान पर २८ दिसम्बर, १६५६ ई० को पराजित करके बीजापुर के फाटक तक खदेड़ा।

इस युद्ध से पूर्व ही (२८ नवंबर, ६५६ ई०) शिवाजी के भेजे हुए ऑना जी दत्तो पन्हाला पर अपना अधिकार स्थापित कर चुके थे। रुस्तम-इ-ज़माँ की पराजय के उपरांत आदिलशाह ने सिद्दी जौहर (सलावत खाँ), रुस्तम-ई-ज़माँ, आदि के साथ सेना भेजी (मई, १६६० ई०)। लगभग चार मास तक घेरा पड़ा रहा। शिवाजी और सलावत खाँ के मध्य गुप्त संधि हो जाने के समाचार को सुनकर आदिलशाह स्वयं पन्हाला की ओर चला। यह समाचार ज्ञात होने पर दुर्ग के पिछले फाटक से निकलकर शिवाजी वीसलगढ़ की ओर चले गए और पन्हाले पर आदिलशाह का अधिकार हो गया (२५ अगस्त, १६६० ई०)।

इस समय से पन्हाला बीजापुर के अधिकार में ही बना रहा। कालांतार में आनाजी दत्तो के प्रयत्न से ६ मार्च, १६७३ ई० में शिवाजी का पन्हाला पर पुनः अधिकार हो गया।[4]

इस प्रकार परनाला (पन्हाला) पर शिवाजी ने दो बार विजय प्राप्त की। प्रथम विजय के

---

[1] देखिए इसी अध्याय में आगे वर्णित फ़तेह खाँ- पराजय [2] इम्पीरियल गज़ेटियर, भा० १४, पृ० ८५; वही, भा० २०, पृ० २१६-७; शिवाजी, पृ० ५५ [3] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण छं० २४१ [4] वही, छं० १०६, १७१, २०५, २०८, ३५१; शिवा-बावनी, छं० २१, ३७; शिवाजी, पृ० ८६-६०, २२७; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १३०-३, २०१-२

उपरांत पन्हाला उनके अधिकार में लगभग छः सात मास तक रहा। भूषण ने शिवाजी के इन्हीं परनाले (पन्हाले) के युद्धों की ओर संकेत किया है। यह कहना कठिन है कि भूषण ने उक्त दोनों विजयों में से किसका उल्लेख किया है, पर संभावना यही प्रतीत होती है कि उनका अभिप्राय प्रथम युद्ध से ही है। कुछ भी हो, घटना ऐतिहासिक है।

तलब खाँ (कारतलब खां) को लूटना—शिवाजी ने कारतलब खाँ को युद्ध में मार भगाया था।[1] शाइस्ता खाँ के आदेश से कारतलब खाँ पूना से जनवरी, १६६१ ई० में शिवाजी के विरुद्ध चला। उसने लोहागढ़ निकटस्थ उंबर-खंड में तंग मार्ग से पश्चिमी घाट को पार किया। जब मुग़ल सेना इस मार्ग को पार कर रही थी तब शिवाजी की सेना ने इसके दोनों द्वारों को घेर लिया। कारतलब खाँ के सैनिक दम घुटने और प्यास के कारण मरने लगे। बचने का कोई उपाय न पाकर उसने शिवाजी से रक्षा करने की प्रार्थना की। मराठों ने उससे बहुत सा धन लेकर मार्ग छोड़ दिया। मुग़ल मरणासन्न अवस्था में पूना पहुँचे।[2]

सिंगारपुर (श्रृंगारपुर)-विजय—उक्त घटना के कुछ समयोपरांत शिवाजी ने श्रृंगारपुर के सूर्यराव सूरवे पर आक्रमण किया। यह समाचार ज्ञात होते ही वह अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए भाग गया। शिवाजी ने श्रृंगारपुर पर अपना अधिकार कर लिया (२६ अप्रैल, १६६१ ई०)।[3]

रायगढ़-वर्णन—भूषण ने रायगढ़ का वर्णन करते हुए लिखा है कि "शिवाजी ने रायगढ़ को राजधानी बनाया। यहाँ पर उनके मणि-खचित गगनचुंबी राजप्रासाद शोभित होते हैं। मणि-मालाओं, मुक्ताओं, हीरा, पुष्पराग आदि मणियों की छटा से वह नगर देदीप्यमान हो रहा है। विविध प्रकार के सर, कूप, वृक्ष तथा पुष्प आदि उसकी शोभा को द्विगुणित कर रहे हैं।"[4]

उक्त दुर्ग के संबंध में अन्य ग्रंथों से यह विवरण उपलब्ध होता है :—

"रायगढ़ का प्राचीन नाम रायरी है। यह कोलाबा ज़िले के महाद ताल्लुके में, पूना से ३२ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इसकी ऊँचाई सागर की सतह से २,८५१ फ़ीट है। १६४८ ई० में इस पर शिवाजी का अधिकार हो गया था। १६६२ ई० में इसका नाम रायगढ़ रखकर शिवा-जी ने इसे अपनी राजधानी बनाया। इसमें विविध प्रकार के लगभग तीन सौ पाषाण-निर्मित भवन थे। १६६४ ई० में सूरत की लूट के धन से यह नगर और भी धन-धान्यपूर्ण हो गया था। इसी दुर्ग में १६७४ ई० में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ था।[5]

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि भूषण ने रायगढ़ के ऐश्वर्य एवं वैभव का जो उल्लेख किया है वह यथातथ्य है। इस वर्णन में इन्होंने कल्पना से अधिक काम नहीं लिया है।

शिवाजी और शाइस्ता खाँ—(५ अप्रैल, १६६३ ई०) भूषण लिखते हैं कि "शाइस्ता खाँ दक्षिण को दबाकर पूना में जा बैठा। शिवाजी ने दो सौ साथियों को लेकर सौ सहस्र के मनसब-दार के महलों में महाभारत मचा दिया। इस घटना के अवसर पर शाइस्ता खाँ ने अपना एक

---

[1] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० १०२ [2] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १३७-८ [3] वही, पृ० १३८-६; भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० २०७; वही, शिवा-बावनी, छं० ३७ [4] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० १५-२४, २८६ [5] इंपीरियल गज़ेटियर ऑव् इंडिया, भा० २१, पृ० ४७-८; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० ८३

पुत्र और एक हाथ गँवा दिया। वह अपने प्राण बचा कर भाग गया और पूना पर शिवाजी का अधिकार हो गया।"[1]

"जुलाई, १६५६ ई० में शाइस्ता ख़ाँ दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। २५ फ़रवरी, १६६० ई० में वह अहमदनगर से चला और पूना आदि पर अधिकार कर लिया (मई, १६६० ई०)। वहाँ से चाकन पर आक्रमण करके पुनः वह पूना को लौट गया और शिवाजी के राज-प्रासाद में डेरा डाला (अगस्त, १६६० ई०)।

सिंहगढ़ से चलकर शिवाजी रात्रि में पूना पहुँच गए और वे मुग़ल शिविर में प्रविष्ट हुए। नवाब की पाकशाला की ओर से दीवार में द्वार बनाकर शाइस्ता ख़ाँ के शयनागार में जा पहुँचे। शाइस्ता ख़ाँ जाग गया। शिवाजी ने अपनी तलवार से उसका अँगूठा काट डाला। उसी समय किसी स्त्री ने दीपक बुझा दिया। इस अंधकार में शाइस्ता ख़ाँ की दासियाँ उसे सुरक्षित स्थान में ले गईं, पर मराठे वहाँ पर बड़ी देर तक मार काट करते रहे। उधर अन्तःपुर के बाहर बाबाजी बापूजी ने शेष दो सौ सैनिकों के साथ पहरेदारों को बड़ी संख्या में मार डाला। शाइस्ता ख़ाँ का एक पुत्र, अबुल्फ़तेह, अपने पिता की सहायता के लिए आया पर मारा गया। सारी सेना के जग जाने और सजग हो जाने के कारण अपने साथियों को एकत्रित करके के शिवाजी वहाँ से चल दिए।

इस आक्रमण में मराठों के केवल छः वीर मारे गए। शिवाजी ने शाइस्ता ख़ाँ के एक पुत्र, एक सेनापति, चालिस सेवक, छः पत्नियाँ एवं दासियाँ जान से मार डालीं तथा उसके दो पुत्रों, आठ अन्य स्त्रियों और स्वयं शाइस्ता ख़ाँ को घायल कर दिया।

शाइस्ता ख़ाँ खिन्न-मनः और लज्जित होकर औरंगाबाद को चला गया। औरंज़ेब ने अप्रसन्न होकर उसको बंगाल के लिए स्थानान्तरित कर दिया।"[2]

ऊपर दिए हुए भूषण एवं इतिहास के विवरणों में परस्पर बहुत समता है। उस समय शाइस्ता ख़ाँ पूना में था। शिवाजी उसके अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए; शाइस्ता ख़ाँ की उँगली कट गई, उसका एक पुत्र मारा गया और वह पूना को अरक्षित स्थान समझकर औरंबाद को चला गया आदि सभी बातें समान हैं अतः ऐतिहासिक हैं। शाइस्ता ख़ाँ अमीर-उल्-उमरा था, इसी-लिए भूषण ने अत्युक्ति के साथ उसे सौ सहस्र का मनसबदार माना है।

शिवाजी और जसवंतसिंह--भूषण कहते हैं कि "शिवाजी ने जसवंतसिंह को दुःशासन के के समान समझकर पराजित किया।"[3]

"जिस समय शिवाजी शाइस्ता ख़ाँ पर आक्रमण करने के लिए पूना गए उस समय पूना से कुछ दूर दक्षिण में सिंहगढ़ की ओर जानेवाली सड़क के उस पार महाराज जसवंतसिंह पड़े हुए थे। शिवाजी उस सड़क से निकले पर जसवन्तसिंह में उधर कुछ ध्यान नहीं दिया। शाइस्ता

[1] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ३५, ७७, १०२, १७४, १६०, ३२५, ३३६, ३४०, ३६६ [2] शिवाजी, पृ०८६, ९०, १०४; औरंज़ेब, भा० ४, पृ०४३-५१; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १४२-४ [3] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ३५, ७७, ३६६; शिवा-बावनी, छं० ४०

.खाँ के लौट जाने पर ये राजकुमार मुअज्ज़म के साथ दक्षिण में नियुक्त हुए। इन्होंने नवम्बर, १६६३ ई० में सिंहगढ़ घेर लिया। यह छः मास तक घेरा डाले पड़े रहे। इस युद्ध में इनके बहुत से सिपाही मारे गए परन्तु दुर्ग हाथ नहीं आया। अन्त में जून, १६६४ ई० में घेरा उठा लिया गया और वह औरंगाबाद को लौट गये।"[1]

ऊपर दिए हुए ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि जसवन्तसिंह ने शाइस्ता .खाँ प्रसंग में तटस्थता की नीति का अनुसरण किया था। अतः भूषण का उस घटना से अभिप्राय नहीं प्रतीत होता वरन् उनका कथन जसवंतसिंह के सिंहगढ़ के घेरे में असफल होने की ओर संकेत करता है, ऐसा जान पड़ता है।

शिवाजी और भाऊसिंह हाड़ा-पराजय—"शिवाजी ने भाऊ को द्रोण के समान समझकर पराजित किया।"[2] इतिहास से ज्ञात होता है कि भाऊ सिंह हाड़ा शिवाजी से लड़ने के लिए दक्षिण भेजे गए थे। सिंहगढ़ के उपर्युक्त घेरे में (नवम्बर, १६६३ ई०—जून, १६६४ ई०) असफलता मिलने के कारण जसवंतसिंह और भाऊ सिंह में पराजय के उत्तरदायित्व पर अनबन हो गई थी। अंत में वे महाराजा जसवंतसिंह के साथ औरंगाबाद चले गए।[3] भूषण ने अपने वर्णन में संभवतः उक्त घटना की ही ओर संकेत किया है।

शिवाजी और सूरत की लूट—भूषण लिखते हैं "शिवाजी ने सूरत पर आक्रमण करके दिल्ली की सेना को मार भगाया। इन्होंने सूरत को लूटकर जलाया और नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उस नगर की सारी शोभा जाती रही। लाखों की मूल्य के हीरा और मणि-माणिक्य मकानों की मूल को खोदकर वे ले गए। होली के समान जलाकर सारे नगर को बिगाड़ दिया, और भिलाये को मिट्टी में मिला दिया। नगरवासी भड़ौच को भाग गए। इस पराजय के कारण औरंगज़ेब का मुख कलंक-कालिमा से कलंकित हो गया और वह रात-दिन उस नगर को शिवा-सैन्य से घिरा हुआ समझने लगा।"[4]

शिवाजी ने सूरत को दो बार लूटा था। उनका प्रथम आक्रमण ६ जनवरी से १० जनवरी, १६६४ ई० तक रहा था। उन दिनों सूरत एक सर्व-संपन्न बंदरगाह था। ५ जनवरी १६६४ ई० को शिवाजी के आगमन की सूचना पाकर वहाँ के निवासी तासी नदी को पार करके भागने लगे। वहाँ का मुग़ल सूबेदार इनायत खाँ तथा अन्य धनाढ्य व्यक्ति दुर्ग में जा छिपे। बुधवार ६ जनवरी, १६६४ ई० को प्रातःकाल ११ बजे शिवा जी सूरत जा पहुँचे। नगर में प्रविष्ट होते ही मराठों ने लूटना और आग लगाना आरंभ कर दिया। चार दिन तक सर्वनाश का यह कार्य होता रहा। परिणामस्वरूप सहस्त्रों घर जलकर भस्म हो गए और दो-तिहाई नगर नष्ट हो गया। एक अंगरेज़ चैप्लेन (Chaplain) के शब्दों में "गुरुवार और शुक्रवार की रात्रियाँ अग्नि-दाह की दृष्टि से अत्यंत भयंकर थीं। अग्नि ने रात्रि को उसी प्रकार दिन में परिवर्तित कर दिया था, जिस

---

[1] शिवाजी, पृ० ८८-९, १०२-३; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १४४, १५० [2] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ३५, ७७, ३४८ [3] न्यू हिस्ट्री आव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० १४४ [4] भूषणग्रंथावली; शिवराज-भूषण, छं० २०१, ३३६, ३५६; वही, फुटकर, छं० ११, ३३, ३४, ३५; फुटकर संदेहात्मक, छं० २

प्रकार पहले दिन के समय धूम ने घने मेघ-खंड का रूप धारण कर सूर्य को आच्छादित करके दिवस को रात्रि में परिणत कर दिया था।"

इस लूट में शिवाजी को एक करोड़ रूपए के मूल्य का सोना, चाँदी, मोती, हीरे आदि प्राप्त हुए। उनके इस आक्रमण का मुख्य उद्देश्य लूट मार करना, औरंगज़ेब से प्रतिशोध लेना तथा विदेशी व्यापारियों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना था। रविवार, ११ जनवरी, १६६४ ई० को शिवा जी कोंकण की ओर चले गए।

सूरत की दूसरी लूट—(अक्टूबर, १६७० ई०) शिवाजी की प्रथम लूट तथा उसके पश्चात् की अन्य स्थानों की विजयों का सूरत पर बहुत आतंक छा गया था। ता० ३ अक्टूबर, १६७० ई० को शिवाजी ने सूरत पर दूसरी बार आक्रमण किया। नगर के भारतीय व्यापारी और सरकारी कर्मचारी पहले ही भाग चुके थे। अँगरेज़ी, डच, और फ्रांसीसी फेक्ट्रियों आदि को छोड़कर सारे नगर पर मराठों का अधिकार हो गया।

मराठों ने बड़े-बड़े घरों को लूटा और सर्वत्र आग लगाई। फलस्वरूप लगभग आधा नगर जलकर मिट्टी में मिल गया। ५ अक्टूबर को शिवाजी सूरत से लौट पड़े, यद्यपि मुग़ल सेना के आगमन की कोई भी संभावना न थी।

इस बार की लूट में शिवाजी लगभग ६६ लाख रुपए का माल अपने साथ लेते गए। इस लूट के परिणामस्वरूप सूरत का व्यापार प्रायः नष्ट हो गया। शिवाजी के चले जाने के पश्चात् एक मास तक वहाँ न कोई शासक था और न कोई सरकार। कतिपय वर्षों तक शिवाजी के आगमन की आशंका से सूरत काँप उठता, व्यापारी अपना सामान जलयानों पर भेज देते और नगरवासी ग्रामों को भाग जाते थे।[1]

भूषण ने सूरत की लूट का जो सजीव चित्र अंकित किया है, वह सूरत की दोनों लूटों के ऐतिहासिक विवरण से बहुत कुछ साम्य रखता है। नगर का लूटना, आग लगाना, मकानों की जड़ें तक खोद डालना, नगर-निवासियों का ताप्ती के उस पार भड़ोच आदि को भागना, विदेशी व्यापारियों का भयभीत रहना, शिवाजी के पुनः आक्रमण की आशंका एवं भय आदि के वर्णन में अत्यधिक साम्य है। अतएव भूषण का सूरत की लूट का वर्णन ऐतिहासिक ही नहीं अपितु सजीव एवं वास्तविक भी है।

भूषण ने दोनों लूटों में से किसका वर्णन किया है, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। भूषण कृत प्रथम लूट का वर्णन और उक्त अँगरेज़ी चैप्लेन का विवरण परस्पर अत्यधिक साम्य रखते हैं। वैसे तो उक्त दोनों लूटों के अवसरों पर सूरत की भारी दुर्दशा हुई थी, पर प्रथम लूट के समय उस नगर को अधिक हानि उठानी पड़ी थी। भूषण का वर्णन दोनों बार की घटनाओं के सामूहिक रूप का चित्रण करता हुआ सा प्रतीत होता है। संभव है उन्होंने दोनों ही घटनाओं को एक ही मानकर उनका वर्णन किया हो। यद्यपि उनका वर्णन प्रथम लूट से अधिक समता रखता है, पर निश्चयात्मक रूप से यह कहना, कि उन्होंने उसी का वर्णन किया है, कठिन है। संभवतः भूषण

---

[1] शिवाजी, पृ० १०४-१८, २१६-२८; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा०१, पृ० १४४-६, १६२-४

उपर्युक्त भूषण कथित और ऐतिहासिक विवरण में परस्पर बहुत वैषम्य है। इतिहास के अनुसार उक्त संधि के अवसर पर शिवाजी के पास कुल पैंतीस दुर्ग थे, जिनमें से उन्होंने २३ दुर्ग मुगलों को देकर शेष अपने पास रख लिए थे। भूषण ने संभवतः पैंतीस दुर्ग से शिवाजी के कुल दुर्गों की संख्या की ओर संकेत किया है। यदि उनका अभिप्राय उन दुर्गों की संख्या से है, जो शिवाजी ने जयसिंह को दिए थे, तो उनका कथन इतिहास के प्रतिकूल पड़ता है।

इसके अतिरिक्त जयसिंह को समर्पित किए गए जिन दुर्गों के नामों का भूषण ने उल्लेख किया है, वे इतिहास में दिए हुए नामों से मेल नहीं खाते। भूषण कथिक उक्त नामधारी दुर्ग उस समय शिवा जी के अधिकार में थे, यह निर्णय करने वाली सामग्री का भी अभाव है। केवल इतना ही ज्ञात है, कि शिवाजी ने कल्याण को २६ जनवरी, १६५६ ई० (अथवा २४ अक्तूबर, १६५७ ई०) को लूटा था। रामगिरि औरंगज़ेब को गोलकुंडा से १६६५ ई० में प्राप्त हुआ था (न कि शिवाजी से)। बेदर (बीदर) पर मुग़ल-सम्राट् १६५७ ई० में अपना अधिकार स्थापित कर चुका था। परेन्हा नाम से भूषण का क्या अभिप्राय है, यह निर्णय करना दुष्कर है। भागनगरी (हैदराबाद) भी उस समय शिवाजी के अधिकार में नहीं था।[1]

भूषण का यह कहना कि शिवाजी ने यश प्राप्त करने के लिए प्रसन्नतापूर्वक, उक्त दुर्ग जयसिंह को दिए, असंगत है। उस समय दक्षिण में शिवाजी के जितने शत्रु थे वे सब मुग़लों की सहायता कर रहे थे। उनकी सम्मिलित सेना का सामना करना असम्भव समझ कर, पुरंधर में घिरे हुए मराठा परिवारों और बचे हुए राज्य की रक्षा करने की कामना से प्रेरित होकर ही उन्होंने आत्म-समर्पण किया था। हाँ, यह संधि दोनों ओर से सम्मानपूर्वक की गई थी। इस संधि को स्वीकर करने में शिवाजी ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया था। भूषण के संबंध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे पुरंधर की संधि से कुछ परिचित अवश्य थे। अपने नायक की उक्त पराजयों को अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से प्रशंसा के रूप में उन्होंने वर्णित किया है, पर उनके कथन का अधिकांश अंश इतिहास के विवरण के विपरीत पड़ता है।

शिवाजी और कर्ण—भूषण एक स्थल पर लिखते हैं कि "शिवाजी ने कर्ण को कर्ण सदृश्य समझकर पराजित किया।"[2] उनके इस कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्होंने अपने वर्णन में किस घटना की ओर संकेत किया है। इतिहास बतलाता है कि १६६५ ई० के पुरंधर के घेरे में राव कर्ण जयसिंह की सेना के दक्षिण भाग में युद्ध कर रहे थे।[3] यदि भूषण ने इसी घटना की ओर संकेत किया है तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका उक्त कथन इतिहास के विपरीत पड़ता है; क्योंकि, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पुरंधर के घेरे के अवसर पर शिवाजी ने आत्म-समर्पण कर दिया था।

शिवाजी और सरजे ख़ां—भूषण के काव्य से विदित होता है कि शिवाजी ने सरजे ख़ाँ

---

[1] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ० २४२; विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० २४२, २६४, २७१, २७२, २७६ [2] भूषण-ग्रंथावली; शिवराज-भूषण, छं० ३४, ७७ [3] शिवाजी, पृ० ११६

नामक एक वीर को युद्ध में पराजित किया था।[१] शिवाजी और मिर्ज़ा राजा जयसिंह में पुरंधर की संधि हो जाने के उपरांत मुगल सेना ने बीजापुर पर आक्रमण किया था। बीजापुर की सेना ख़वास ख़ाँ एवं शरजा ख़ाँ के सेनापतित्व में मुग़लों का सामना करने के लिए आई। दिलेर ख़ाँ और शिवाजी ने बीजापुरी सेना को पराजित करके पीछे लौटा दिया (२४ दिसम्बर, १६६५ ई०)।[२] भूषण ने शिवाजी और शरजे ख़ाँ के इसी युद्ध की ओर संकेत किया है, ऐसा ज्ञात होता है।

शिवाजी और औरंगज़ेब में भेंट—भूषण शिवाजी और औरंजेब की भेंट का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि "शिवाजी को लाकर औरंगज़ेब के दरबार में पाँच हज़ारी मंसबदारों के बीच खड़ा किया गया था। इस अपमान से क्रुद्ध होकर उन्होंने औरंगज़ेब को न तो अभिवादन किया और न उसकी कोई आज्ञा ही स्वीकार की। उन्होंने रामसिंह के समझाने पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया। उस समय उनके पास अस्त्र-शस्त्र नहीं थे। इसीलिए औरंगज़ेब के प्राणों की रक्षा हो गई। अन्त में सरदारगण समझा बुझाकर उन्हें दरबार से बाहर ले गए।"[३]

इस भेंट के प्रसंग में उनके कुछ पद्यों में ऊपर दिए हुए विवरण के विपरीत उल्लेख भी मिलते हैं, जिनका सार यह है :—

"शिवाजी से भेंट करते समय औरंगज़ेब ने राजा जसवंतसिंह आदि को अपनी रक्षार्थ अपने पास खड़ा कर लिया था। शिवाजी को छः हज़ारी मंसबदारों के मध्य खड़ा किया गया था। इससे क्रुद्ध होकर शिवाजी ने (तलवार की) मूंठ पर हाथ रक्खा, जिससे औरंगज़ेब का मुख श्याम और सेना का पीला पड़ गया।[४] दिल्ली-दरगाह में जाकर शिवाजी ने औरंगज़ेब से शत्रुता कर ली।[५]

इतिहास से ज्ञात होता है कि औरंगज़ेब से मिलने के लिए शिवाजी ने १६६६ ई० की मार्च के तृतीय सप्ताह में उत्तर भारत की यात्रा आरंभ की थी और वे ६ मई को आगरे के निकट पहुँचे थे।

१२ मई, १६६६ ई० को औरंगजेब की ५०वीं वर्षगांठ थी। आगरा दुर्ग का दीवान-इ-आम सर्वोत्तम ढङ्ग से सुसज्जित किया गया था। सहस्रों की संख्या में अमीर एवं अन्य पदाधिकारी अपने-अपने पद के अनुकूल श्रेणी-बद्ध खड़े थे।

दीवान-इ-आम में कुँवर रामसिंह ने शिवाजी, उनके पुत्र शंभूजी, तथा दस पदाधिकारियों को साथ लाकर उपस्थित किया। उनकी ओर से १५०० मोहर भेंट और छः सहस्र रुपए न्यौछावर में दिए गए। औरंगज़ेब ने सौजन्यतापूर्वक कहा 'शिवाजी राजा आओ' सिंहासन के निकट पहुँच कर उन्होंने तीन बार अभिवादन किया। फिर सम्राट् के संकेत पर वे तृतीय श्रेणी के सरदारों की पंक्ति में ले जाए गए, दरबार का कार्य आरंभ हो गया और वे भुला दिए गए।

शिवाजी इस प्रकार के उपेक्षापूर्ण रुक्ष व्यवहार के लिए प्रस्तुत नहीं थे। सर्व प्रथम नगर के बाहर २५०० के मंसबदार रामसिंह तथा मुख़लिस ख़ाँ जैसे साधारण पदाधिकारियों ने उनका

---

[१] भूषण-ग्रंथावली, फुटकर, छं० ३१ [२] शिवाजी, पृ० १२८-६६; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़्, भा० १, पृ० १६१-२ [३] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ३४, ३८, ७६, १८७, १६६, २०४, २१०, २६६, ३१०, ३११ [४] वही, शिवा-बावनी, छं० ४०, ४१, ४२ [५] वही, फुटकर, छं० २०४

स्वागत किया। सिंहासन के सामने नतमस्तक होने के उपरांत न पुरस्कार अथवा उपाधि दी गई और न मृदु शब्द ही बोले गए। उन्हें अमीरों की कई पंक्तियों के पीछे खड़ा किया गया। रामसिंह से शिवाजी को ज्ञात हुआ कि वे पाँच हज़ारी मंसबदारों में खड़े किए गए हैं। यह सुनते ही वे चिल्लाने लगे कि मेरा पुत्र और नेता जी दोनों पाँच हज़ारी मंसबदार हैं। क्या मैं इतनी दूर इतने छोटे पद की प्राप्ति के लिए आया हूँ? अपने सामने राजा जयसिंह के अधीनस्थ रायसिंह सीसोदिया§ को खड़ा जानकर भी वे क्रोध में आ कर बड़बड़ाने लगे और आत्म-हत्या करने की सोचने लगे॥। उनको शांत करने के लिए रामसिंह के सारे उपाय असफल हुए। क्रोध और दुःख की अधिकता के कारण वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। दरबार में खलबली मच गई। सम्राट् के पूछने पर रामसिंह ने चातुर्यपूर्ण उत्तर दिया कि चीता जंगली पशु है। तपन की अधिकता के कारण बीमार हो गया है। उन्हें दरबार के शिष्टाचार से अपरिचित बतलाकर सम्राट् से क्षमा-प्रदान करने की भी प्रार्थना की गई। औरंगज़ेब की आज्ञा से वे पास के एक कमरे में ले जाए गए। वहाँ गुलाब जल छिड़क कर उनकी मूर्च्छा भंग की गई। तब दरबार बंद होने से पूर्व ही वे अपने निवास-स्थान को भेज दिए गए।"[1]

भूषण और इतिहास के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि शिवाजी और औरंगज़ेब की भेंट विशेष सजधज के साथ हुई थी। उस समय बादशाह ने विशाल दरबार किया था। रामसिंह शिवाजी के साथ थे। भूषण का यह कहना कि उन्होंने सम्राट् को अभिवादन नहीं किया, अत्युक्ति-पूर्ण लगता है। शिवराज-भूषण का यह मत कि 'वे पाँच हज़ारी मंसबदारों की पंक्ति में खड़े किए गए थे ठीक जान पड़ता है।' इस संबंध में शिवा-बावनी की छः हज़ारी मंसबदारों की पंक्ति में उन्हें खड़े किए जाने की उक्ति इतिहास विरुद्ध लगती है। दरबार में औरंगजेब के अपमान-जनक व्यवहार से क्रुद्ध होकर कटु वचन कहने लगना शिवाजी जैसे वीर-पुंगव के लिए अत्यन्त स्वाभाविक रहा होगा। शिवा-बावनी का मूंठ पर हाथ रखने वाला उल्लेख इतिहास के विपरीत ज्ञात होता है। संभवतः उस समय शिवाजी के पास हथियार नहीं थे, अन्यथा उनके लिए यह कार्य भी दुष्कर न होता।

जयपुर के तत्कालीन पत्रों के आधार पर इस घटना के विषय में सर देसाई लिखते हैं:—

"औरंगज़ेब और शिवाजी की भेंट दीवान-इ-ख़ास में हुई थी। शिवाजी को राजा रायसिंह के सामने ताहिर खाँ के स्थान पर खड़ा किया गया था। सम्राट् की वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में बँटे हुए पानों में से एक शिवाजी को भी मिला। शाहज़ादों, वज़ीर ज़फ़र ख़ाँ तथा जसवंतसिंह को ख़िलअत दी गई। इस पर क्रुद्ध होने के कारण शिवाजी के नेत्र रक्त-वर्ण हो गए। कुंवर रामसिंह को भला बुरा कहकर सिंहासन की ओर पीठ फेर कर चले गए। कुँवर ने उनका हाथ पकड़ा, पर उन्होंने

---

§मराठों के मतानुसार वे जसवंतसिंह थे, पर वे सप्त हज़ारी मंसबदार होने के कारण दो पंक्ति आगे खड़े किए गए होंगे। अन्य स्थान पर वह राठौर कहे गए हैं।

॥सभासद (४९) के अनुसार उन्होंने जसवंतसिंह को मारने के लिए रामसिंह से कटार माँगी।

[1] शिवाजी, पृ० १६६-७७

झटक कर छिना लिया और एक ओर आकर बैठ गए। कुँवर ने आकर उन्हें समझाना चाहा पर उन्होंने एक न सुनी और जसवंतसिंह से नीचे खड़े किए जाने आदि अपमानों की ओर संकेत करते हुए कटु शब्दों द्वारा चिल्लाने लगे।"[1]

इस कथन में शिवाजी के मूर्च्छित होने का उल्लेख नहीं किया गया है। सम्भव है कि उन्होंने दरबार से बाहर जाने के विचार से मूर्च्छित बनकर राजनीतिक चाल चली हो। मूर्च्छा-प्रसंग के संबंध में भूषण भी मौन हैं। सरकार ने दोनों की भेंट का स्थान दरबार-इ-आम और सर देसाई ने दरबार-इ-ख़ास माना है। भूषण ने ग़ुसलख़ाना (ग़ोसलख़ाना) शब्द का प्रयोग किया है, जो दरबार-इ-ख़ास का पर्यायवाची प्रतीत होता है।

शिवराज भूषण के एक छंद से यह विदित होता है कि उक्त भेंट दिल्ली में हुई थी।[2] इस प्रकार का भ्रमात्मक कथन प्राचीन मौलिक 'सभासद' का आश्रय लेकर रानाडे तथा ग्राँड डफ़ ने भी अपनी पुस्तकों में मान लिया था। आधुनिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हो गया है कि यह ऐतिहासिक मिलन आगरे में हुआ था, न कि दिल्ली में। उस समय आगरा और दिल्ली दोनों ही भारत की राजधानी माने जाते थे। २२ जनवरी, १६६६ ई० को शाहजहाँ की मृत्यु हो जाने के उपरान्त औरंज़ेब सर्व प्रथम १२ मई, १६६६ ई० को आगरे के क़िले में सिंहासनारूढ़ हुआ था। उससे पूर्व वह दिल्ली से ही राज्य-कार्य-संचालन करता रहा था। ऐसी परिस्थितियों में राजधानी-वार्ता चलाते समय व्यक्तियों को दिल्ली का नाम अनायास ही स्मरण हो आता होगा। सम्भवतः भूषण ने इसी प्रकार की उक्ति का आश्रय लेकर 'दिल्ली-दरगाह' शब्द का प्रयोग कर दिया है। कुछ भी हो, उनका उक्त कथन इतिहास के विपरीत है।

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत यह सार निकलता है कि भूषण के ये कथन—शिवाजी और औरङ्गज़ेब का आगरे के दरबार-इ-ख़ास में मिलना, पाँच हज़ारी मंसबदारों के मध्य शिवाजी का खड़ा किया जाना, अपमानित होने के कारण क्रोधोन्मत्त होकर उनका मनमानी बातें कहने लगना, औरंगज़ेब का अपनी रक्षा के लिए विशेष प्रबंध कर रखना आदि इतिहासानुकूल हैं और शेष-दिल्ली में भेंट होना, छः हज़ारी मंसबदारों की श्रेणी में खड़ा किया जाना आदि बातें इतिहास के प्रतिकूल हैं।

शिवाजी का आगरे से लौटना—आगे चलकर भूषण लिखते हैं कि "शिवाजी आगरे के दरबार में रंग में भंग डालकर, पहरेदारों से घिरे हुए नगर और चौकियों को पार करके अपने घर लौट आये और नर्मदा नदी को अपने राज्य की सीमा बनाया।"[3]

इस घटना के संबंध में इतिहास बतलाता है कि "शिवाजी को आगरे के जयपुर-भवन में बंदी बनाकर रक्खा गया था। अवसर पाकर उन्होंने बीमारी का बहाना कर दिया। प्रत्येक दिन संध्या समय वे टोकरियों में मिठाई भेजने लगे, जो साधुओं और ब्राह्मणों को बाँटी जाती थी। १६ अगस्त, १६६६ ई० (सर देसाई के मतानुसार १६ अगस्त, १६६६ ई०) को वह स्वयं और उनका पुत्र दो टोकरियों में बैठकर मिठाई की अन्य टोकरियों के साथ चले गये। आगरे से बाहर टोक-

---

[1] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़् भा० १, पृ० १७०-१ [2] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० २०५ [3] वही, वही, छं० ७६

रियों से निकलकर भस्मधारी साधुओं के वेश में मथुरा की ओर चल पड़े। दूसरे दिन तीन बजे के लगभग पहरेदारों को वास्तविकता का पता चला। औरंगज़ेब ने शिवाजी को पकड़ने के लिए चारों ओर सेना दौड़ाई। वे मथुरा, प्रयाग, काशी, गया, पुरी, गोलकुंडा आदि स्थानों पर होते हुए १६६६ ई० के दिसंबर के अंत में (सर देसाई के मत से १२ सितंबर, अथवा २० नवम्बर) रायगढ़ पहुँचे।"[1]

भूषण ने इसी घटना का वर्णन किया है, जो संक्षिप्त होते हुए भी इतिहासानुकूल है।

सिंहगढ़-विजय—आगरे से लौटने के कुछ वर्षों के उपरांत शिवाजी ने सिंहगढ़ विजय किया था। भूषण ने इसी का उल्लेख इन शब्दों द्वारा किया है:—

"राठौर वीर उदयभानसिंह सिंहगढ़ के स्वामी थे। शिवाजी रात्रि के अंधकार में दुर्ग पर चढ़ गए। घोर युद्ध हुआ। उदयभानसिंह अपने साथियों के सहित मारे गये और दुर्ग पर शिवाजी का अधिकार हो गया।"[2]

इतिहास कहता है कि "सिंहगढ़ (कोनदन) सर्व प्रसिद्ध दुर्ग था। जून १६६५ ई० में शिवा जी से मिलने के पश्चात् जयसिंह ने यह दुर्ग कीर्तिसिंह को सौंप दिया था। १६७० ई० में उदयभानसिंह राठौर इस दुर्ग की रक्षा कर रहे थे।

कुछ कोली पथ-प्रदर्शकों को साथ लेकर तानाजी मालुसरे अपने तीन सौ मावली साथियों के साथ जनवरी के अंतिम दिनों में (सरदसाई के मतानुसार चार फ़रवरी), १६७० ई० को रात में कल्याण फाटक के निकट से रस्सियों की सहायता से चढ़ गए और प्रहरियों को मारकर दुर्ग में प्रविष्ट हुए। घोर युद्ध हुआ। तानाजी मालुसरे और उदयभानसिंह दोनों मारे गए। पर तानाजी के भाई सूर्याजी मालुसरे ने फाटक खोल दिया जिससे सेना ने प्रवेश करके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। विजेताओं ने अश्वारोहियों के छप्परों में आग लगा दी। उसकी लपटों से वहाँ से नौ मील दक्षिण में स्थित राजगढ़ दुर्ग में शिवाजी को इस विजय की सूचना मिल गई। सिंह सदृश्य वीर तानाजी के नाम पर इस दुर्ग का नाम सिंहगढ़ रक्खा गया।"[3]

भूषण के कथन से यह ध्वनि निकलती है कि शिवाजी ने स्वयं सिंहगढ़ पर सैन्य-संचालन किया था, पर इतिहास में तानाजी मालुसरे सेना-नायक माने गए हैं। भूषण ने ऐसा संभवतः इस कारण से लिखा है कि शिवाजी के आदेशानुसार ही उनके सेना-नायक मालुसरे ने सिंहगढ़ पर आक्रमण किया था। अतएव भूषण के कथन का हमें यही अर्थ लेना चाहिए। ऐसा मान लेने पर उनका इस घटना विषयक कथन इतिहासानुकूल सिद्ध हो जाता है।

लोहगढ़-विजय—सिंहगढ़ पर अधिकार स्थापित हो जाने पश्चात् "शिवाजी ने लोहगढ़ नामक दुर्ग को राठौरों से छीनकर अपने आधिपत्य में कर लिया।"[4]

सलेहरि-युद्ध—उक्त विजय के कुछ समयोपरांत "शिवाजी को मुग़लों से एक भयङ्कर युद्ध

[1] शिवाजी, पृ० १७७-६, १८३-६, १६१-२; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़्, भा० १, पृ० १६२, १७२, १७५-८० [2] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ६६, १५५, २६०, २८६ [3] शिवाजी, पृ० २०४, २०६-६; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़्, भा० १, पृ० १६०-१ [4] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० २६०

करना पड़ा। यह युद्ध सलेहरि नामक स्थान पर हुआ था। मुग़लों की एक विशाल सेना किशोर-सिंह, मोहकमसिंह, इखलास खाँ आदि के नेतृत्व में शिवाजी का सामना करने को आई थी। शिवा जी ने मुग़ल-दल की भयङ्कर मार काट की और उक्त सभी सेना-नायकों को पकड़ लिया। इस युद्ध में अमरसिंह चन्दावत खेत रहे और विजय-श्री शिवाजी के हाथ लगी।"[1]

भूषण कथित सलेहरि-युद्ध के उक्त विवरण के संबंध में इतिहास से विदित होता है कि "प्रतापराव की अध्यक्षता में मराठों की एक सेना बरार में करिंजा को लूटती हुई सलेहरि के निकट पहुँची और दूसरी मोरो त्र्यिंबक पिंगले के साथ खान्देश और बगलाना को रौंदती हुई सलेहरि पहुँची। इन दोनों सेनाओं ने सलेहरि में डेरा डाल दिया। दाऊद खाँ मुलेहरि तक आकर रुक गया, क्योंकि उसके बहुत से साथी अभी तक नहीं आने पाये थे। दूसरे दिन वह सलेहरि की ओर चल दिया, पर उसके वहाँ पहुँचने से पूर्व ही मराठों ने सलेहरि पर अधिकार कर लिया। वह निराश होकर वहाँ से लौट गया। इस दुर्ग में शिवाजी रस्सी की सीढ़ी से दीवारों पर चढ़े थे। फ़तेहुल्ला खाँ के मारे जाने पर यह दुर्ग उन्हें सौंप दिया गया था (५ जनवरी, १६७१ ई०)।

औरंगज़ेब ने महावत ख़ाँ की विफलता और अकर्मण्यता से असंतुष्ट होकर १६७१ ई० के शीतकाल में बहादुर ख़ाँ और दिलेर ख़ाँ को दक्षिण भेजा। उन्होंने बगलाना में प्रविष्ट होकर सलेहरि का घेरा डाला, जो उस समय मराठों के अधिकार में था। वहाँ पर इखलास ख़ाँ मियाना, राव अमरसिंह चंदावत और कुछ अन्य सेना पक्तियों को छोड़कर वह अहमदनगर की ओर चला गया।

शिवाजी ने एक भारी सेना के साथ शत्रु पर आक्रमण कर दिया। भयंकर युद्ध के उपरान्त इखलास ख़ाँ और मोहकमसिंह घायल होकर प्रमुख तीस व्यक्तियों के साथ पकड़े गए। राव अमर-सिंह, अन्य सेना नायक एवं सहस्रों सैनिक मारे गए। शत्रुओं के डेरों पर शिवाजी का अधिकार हो गया। कुछ समयोपरांत शिवाजी ने बंदियों को छोड़ दिया (जनवरी अथवा फ़रवरी, १६७२ई०)।"[2]

भूषण और इतिहास दोनों के विवरणों में परस्पर बहुत साम्य है। मोहकमसिंह तथा इखलास ख़ाँ का घायल होकर पकड़ा जाना और मुक्त होना, दिलेर ख़ाँ का पराजित होना, अमर-सिंह आदि की मृत्यु तथा मुग़लों की भयंकर मारकाट आदि सभी ऐतिहासिक घटनायें हैं।

फत्ते (फ़तेह) ख़ाँ-पराजय—भूषण के उल्लेख से ज्ञात होता है कि शिवाजी ने बीजापुर के वज़ीर फ़तेह ख़ाँ को युद्ध में पराजित किया था। अन्त में उसने शिवाजी से संधि कर ली थी।[3] इस घटना के संबंध में इतिहास का जो विवरण उपलब्ध है, उसका सार नीचे दिया जा रहा है:—

"बम्बई से ४५ मील दक्षिण में ज़न्ज़ीरा द्वीप में १६वीं शताब्दी में अबीसीनियनों का राज्य स्थापित हो चुका था। १६३६ ई० में बीजापुर नें पश्चिमी घाट में इन्हें अपना प्रतिनिधि एवं मन्त्री मान लिया था।

---

[1] भूषण-ग्रन्थावली, शिवराज-भूषण, छं० ६६, १०२, १०६, १६१, २२७, २३६, ३३३, ३५७, ३५८; शिवा बावनी, छं० १०, १३, ३३, ३४ [2] शिवाजी, पृ० २३४-५, २४१-३; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़्, भा० १, पृ० १९५-७ [3] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ११६, २४१; शिवा-बावनी, छं० २०, ३१, ३२, ३४; फुटकर, छं० १२, २४, ४० घ, ४० ङ

१६४८ ई० में शिवाजी ने सिद्दियों से रायरी (रायगढ़) आदि कई दुर्ग छीन लिए थे।

१६५५ ई० में फ़तेह ख़ाँ जन्ज़ीरा का शासक हुआ। १६५६ ई० में अफ़ज़ल ख़ाँ के शिवाजी पर अक्रमण के समय यह भी मराठों के विरुद्ध चला, पर बीजापुर की सेना के सर्वनाश का समाचार सुनकर वह शीघ्रतापूर्वक लौट पड़ा। आगामी वर्ष, जब अली आदिलशाह द्वितीय ने शिवाजी को पन्हाला में घेर कर उनके विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तब फ़तेह ख़ाँ ने कोणकण पर आक्रमण कर दिया। घोर संग्राम के पश्चात् शिवाजी के सेनापति बाजीराव पसालकर मारे गए और मराठों को पीछे हटना पड़ा। इसके अनन्तर शिवाजी ने पुनः रघुनाथ बल्लाल अत्रेय की अध्यक्षता में सेना भेजी जिसने डंडा-राजपुरी के दुर्ग पर १६६१ ई० की जुलाई अथवा अगस्त में अधिकार करके जन्ज़ीरा की ओर अपनी तोपों का मुँह फेर दिया। निराश होकर सिद्दी ने डंडा-राजपुरी दुर्ग समर्पित करके सन्धि करली।

१६६६ ई० में शिवाजी ने जञ्जीरा पर पुनः आक्रमण किया। लगातार युद्ध होता रहा। १६७० ई० में शिवाजी ने इस युद्ध में अपनी सारी शक्ति लगा दी। अविराम युद्ध होने, प्रजा की दुर्दशा और बीजापुर से अपर्याप्त सहायता मिलने के कारण फ़तेह ख़ाँ ने शिवाजी के उत्कोच और जागीर के बदले में जंज़ीरे के समर्पण के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। पर उसके साथियों ने उसे बंदी बनाकर आदिलशाह तथा मुग़लों से सहायता माँगी। उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। मुग़ल जंजीरा की नाविक-सेना के स्वामी माने जाने लगे। इस समय से नाविक प्रधान-सैनिक को याक़ूत ख़ाँ की उपाधि दे दी गई। यह घटना १६७१ ई० की जनवरी अथवा फ़रवरी में घटित हुई थी। इस युद्ध में शिवाजी की नौ सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी थी।"[१]

इस ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि शिवाजी और फ़तेह ख़ाँ में कई युद्ध हुए थे जिनमें दोनों पक्ष कई बार हारे और अन्य अवसरों पर पीछे हटे। १६५६ ई० में फ़तेह ख़ाँ पराजित हुआ; १६६० ई० में मराठे हारे; १६६१ ई० में फ़तेह ख़ाँ ने संधि कर ली और १६६६-१६७१ ई० में जंजीरावालों ने मराठों से संधि करने के पक्षपाती फ़तेह ख़ाँ को बंदी-गृह में डाल दिया और मराठे पराजित-प्राय रहे। भूषण का वर्णन मराठों की किसी एक विजय से संबंधित हो सकता है, संभवतः १६६१ ई० वाले युद्ध से उनका अभिप्राय हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

बहादुर ख़ाँ-पराजय—सलेहरि के युद्ध के प्रसंग में उल्लेख किया जा चुका है कि औरंगज़ेब ने बहादुर ख़ाँ को दक्षिण में सेनापति बनाकर भेजा था। वह भी शिवाजी का कुछ नहीं बिगाड़ सका था, वरन् उसे लेने के देने पड़ गए थे। कालांतर में उसको महावत ख़ाँ तथा मुअज्ज़म के स्थान पर दक्षिण का सूबेदार एवं प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया (जनवरी, १६७२ ई०)। फिर वह स्थायी सूबेदार के पद पर जनवरी, १६७३ ई० से १६७७ ई० तक रहा था। भूषण ने इसी बहादुर ख़ाँ के शिवाजी द्वारा पराजित किए जाने का उल्लेख कतिपय पदों में किया है, जो इतिहासानुकूल ही है।[२]

जवारि (जवाहर) तथा रामनगर-विजय—इस प्रकार शिवाजी एक के अनंतर दूसरी विजय

---

[१] शिवाजी, पृ० ३३०-४४ [२] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ७७, ३२२, ३३०, ६२७; फुटकर, छं० २१; शिवाजी, पृ० २४४

प्राप्त करते रहे। उन्होंने ५ जून, १६७२ ई० को मोरो त्र्यंबक की अध्यक्षता में जवाहर पर एक सेना भेजी। मराठों की इस सेना ने वहाँ के कोली राजा बिक्रमशाह को पराजित करके जवाहर पर अधिकार कर लिया।

इस जीत के अनंतर मराठों ने रामनगर पर आक्रमण किया। शत्रुओं के आगमन की सूचना पाते ही वहाँ का कोली राजा सपरिवार चिकली नामक स्थान को भाग गया (१६ जून, १६७२ ई०)। यह समाचार पाते ही, कि दिलेर खाँ आक्रमण करने के लिए एक बड़ी सेना एकत्रित कर रहा था, मराठे रामनगर से लौट गए। कुछ समय पश्चात् मोरोपंत आक्रमण करने के लिए पुनः लौट आया और जुलाई के प्रथम सप्ताह में रामनगर को जीत लिया। भूषण ने शिवाजी की इन्हीं विजयों का कई छंदों में उल्लेख किया है।[1]

तिलंगाना-विजय—रामनगर की जीत के पश्चात् शिवाजी ने तिलंगाना पर आक्रमण किया।[2] जुलाई, १६७२ ई० में शिवाजी की सेना ने नासिक और अक्टूबर, १६७२ ई० में बरार और तिलंगाना में प्रवेश किया। रामगिरि आदि स्थानों को लूटते हुए मराठे आगे बढ़ते चले गए।[3] उक्त लूटमार के अवसर पर शिवाजी की सेना को कतिपय स्थानों पर पीछे भी हटना पड़ा था, पर तिलंगाना में वे अपने उद्देश्य में सफल हुए थे।

बहलोल खाँ-पराजय—भूषण लिखते हैं कि एक बार बहलोल खाँ शिवाजी के सामने आ डटा, पर शिवाजी ने उसे युद्ध में मार भगाया।[4]

इस घटना के विषय में इतिहास से ज्ञात होता हैं कि १६७२ ई० नवंबर-दिसंबर में शिवाजी कनारा में युद्ध कर रहे थे। इसी अवसर पर बीजापुर से बहलोल खाँ १२,०००सेना लेकर मिराज-कोल्हापुर की रक्षार्थ निकल पड़ा। मराठा सेनापति प्रतापराव गूजर उसका सामना करने के लिए भेजे गये।। उन्होंने उमरानी के निकट बहलोल की सेना को घेरने का प्रयत्न किया। दिन भर भयंकर युद्ध होता रहा। दोनों ओर के बहुत से वीर मारे गए। संध्या समय बहलोल ने प्रतापराव को अस्थायी संधि करने के लिए उद्यत कर लिया और स्वयं शिवाजी के विरुद्ध कोई भी शत्रुता-कार्य के करने का वचन दिया। परिणामस्वरूप मराठा सेना वहाँ से लौट गई।

फ़रवरी, १६७३ ई० में बीजापुरी सेना पुनः पन्हाला प्रांत में आ उपस्थित हुई। प्रतापराव उक्त युद्ध के पश्चात् गोलकुंडा, तिलंगाना और बरार प्रांतों को लूटता हुआ लौटकर आया तो उसे बहलोल के इस आक्रमण की सूचना मिली।

उसने बहलोल खाँ को दो पर्वतों के मध्य तंग मार्ग में जसारी पर जा घेरा। प्रतापराव अपनी सेना को पीछे छोड़कर और केवल छः साथियों के साथ बहलोल पर जा टूटा। वे सबके सब वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए मारे गए।

तदनन्तर शिवाजी ने आनंदराव को हम्मीरराव की उपाधि से विभूषित करके प्रतापराव के

---

[1] भूषण-ग्रंथावली, शिवाराज-भूषण, छं० १७३, २०७; शिवाजी पृ० २४४-५; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़्, भा० १, पृ० २०० [2] भूषण-ग्रंथावली, शिवाराज-भूषण, छं० ३५६; शिवा-बावनी, छं० ३०; फुटकर, छं० ६ [3] शिवाजी, पृ० २४८-५२ [4] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ११६, १६१, १७४, २४१, ३५८, ३६०, ३६१

स्थान में सेनापति बनाया। वह बहलोल की खोज में गया। इस समाचार को सुनते ही दिलेर खाँ अपने अफ़गान भाई बहलोल खाँ की सहायतार्थ आगे बढ़ा। इतनी बड़ी दो सेनाओं का सामना करना उचित न समझकर हम्मीर वहाँ से लौट पड़ा। इस पर बहलोल खाँ कोल्हापुर को और दिलेर खाँ पन्हाले को चले गए।

इसके कुछ समयोपरांत हम्मीरराव ने बंकापुर से चौबीस मील पर स्थित पेंच स्थान से १५०,००० हुन की संपत्ति लूट ली। बहलोल और खिज्र खाँ ने बंकापुर के पास उसका मार्ग-अवरोध किया, पर खिज़ खाँ के भाई के मारे जाने पर वे भाग खड़े हुए। हम्भीरराव ने बीजापुरी सेना को लूट कर बहुत सा सामान प्राप्त किया।

पर बहलोल ने पुनः आक्रमण करके मराठों को पराजित कर दिया। वे हार कर भाग गए। हम्मीर राव लूट का माल शिवाजी के साम्राज्य में रखकर पुनः अप्रैल मास में बालाघाट में प्रविष्ट हुआ।[१] इसी वर्ष शिवाजी ने सतारा पर भी अपना अधिकार जमा लिया। (सितम्बर, १६७३ ई०)।[२]

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि मराठों और बहलोल खाँ में पन्हाला, जसारी, गढ़चाँदा आदि स्थानों पर कई बार मुठभेड़ हुई थी। इन युद्धों में कभी मराठे जीतते तो कभी बहलोल खाँ। भूषण ने शिवाजी की केवल विजयों और लूटों का उल्लेख किया है और उनकी पराजयों के संबंध में वे मौन रहे हैं।

इसी प्रकार शिवाजी ने बेदनूर में लूट मार १६६४ ई० से ही आरंभ कर दी थी पर उस पर उनकी वास्तविक विजय १६७५ ई० में हो सकी थी।[३]

शिवाजी और करनाटक-विजय—शिवाजी द्वारा करनाटक की बिजय के संबंध में भूषण लिखते हैं कि "उन्होंने करनाटक में कतिपय दुर्ग विजय किए और शेर खाँ को पकड़ लिया। शिवाजी ने करनाटक तक का सब देश धर दबाया। करनाटकवासी शिवा के नाम से सदैव भयभीत एवं आतंकपूर्ण रहने लगे।[४] इसी अवसर पर उन्होंने चिंजी (जिंजी), मधुरा (मदूरा) तथा चिंजाउर (तंजौर) आदि में भी युद्ध किए थे।"[५]

शिवाजी के करनाटक पर किए गए आक्रमण के संबंध में इतिहास से विदित होता है कि "राज्याभिषेक (१६७४ ई०), तत्पश्चात् के युद्धों (१६७४-१६७५ ई०) और १६७६ ई० की शिवाजी की बीमारी के कारण उसका कोष रिक्त हो चला था। अतः शिवाजी धन-प्राप्त करने के लिए उपाय सोचने लगे। सूरत, कोली-प्रदेश, कनारा, बीजापुर आदि के गत-युद्धों और लूटों के पश्चात् उनसे अधिक धन प्राप्ति की आशा करना दुराशा मात्र थी। अतएव उनका ध्यान करनाटक की ओर गया।

---

[१] शिवाजी, पृ० २५६-६२; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० २०२-३
[२] भूषण-ग्रंथावली, शिवा-बावनी, छं० १४; शिवाजी, द्वितीय संस्करण, पृ० २८४-५
[३] भूषण-ग्रंथावली, शिवा-बावनी, छं० ३३; शिवाजी, द्वितीय-संस्करण, पृ० २३६ [४] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ११६, २०८, २६२; वही, शिवा-बावनी, छं० २१, ३०; वही, फुटकर, छं० ६, २५, ३७, ४० क, [५] वही, शिवा-बावनी, छं० ३३

उक्त प्रदेश पर विजय-प्राप्ति की अभिलाषा से शिवाजी जनवरी, १६७७ ई० में रायगढ़ से चले और फ़रवरी में हैदराबाद पहुँचे। वहाँ पर एक मास तक रहकर क़ुतुबशाह से करनाटक-युद्ध-विषयक संधि की। तदुपरांत मार्च में, वहाँ से प्रस्थान करके वे अप्रैल में करनाटक में प्रविष्ट हुए।

करनाटक में वे एक के पश्चात् दूसरी विजय प्राप्त करते गए। उन्होंने जिंजी के स्वामी रऊफ़ खाँ और नासिर मुहम्मद खाँ को रुपए एवं अन्यत्र जागीर देकर उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया।

तत्पश्चात् शिवाजी ने वेलौर पर आक्रमण किया। वहाँ का शासक अबदुल्लाह खाँ था। इस दुर्ग के घेरे का भार अपने सैनिकों पर छोड़कर शिवाजी शेर खाँ लोदी के विरुद्ध बढ़े। वेलौर का युद्ध २२ जुलाई, १६७८ ई० तक चलता रहा, तब उस पर मराठों का अधिकार हुआ।

शेर खाँ ने तिरुआबादी नामक स्थान पर शिवाजी का सामना किया। अन्त में शेर खाँ लोदी ने पराजय स्वीकार की और शिवाजी से मिलने वह स्वयं आया (५ जुलाई, १६७७ ई०)। शिवाजी ने उसके राज्य को अपने अधिकार में करके उसे छोड़ दिया। साथ ही बीस सहस्र हुन (एक प्रकार का सिक्का) सैनिक व्यय के लिए उससे लिए। इस प्रकार शिवाजी ने बड़ी सरलता से तुंगभद्रा से कावेरी नदी तक के करनाटक के भूभाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

शेर खाँ लोदी को पराजित करने के पश्चात् शिवाजी ने मदुरा के नायक से छः लाख हुन दंड-स्वरूप प्राप्त किए (१६ जुलाई, १६७७ ई०)। तंजौर से १० मील उत्तर में स्थित तिरुमलवादी नामक-स्थान पर शिवाजी के सौतेले भाई व्यानकोंजी इनसे मिलने आए (जुलाई के तृतीय सप्ताह में)। यहाँ से व्याँनकोजी शिवाजी की आज्ञा लिए बिना ही भाग गये। इस पर असंतुष्ट होकर शिवाजी ने जग देव गढ़, चिदम्बरम् और बृद्धाचलम् पर अधिकार करके कोलर का घेरा डाल दिया।

अन्त में शिवाजी ने कोलर्न नदी के दक्षिण में तंजौर की सीमा व्यानको जी के लिए छोड़ दी और उक्त नदी के ऊपर में सम्पूर्ण करनाटक पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उनके अधिकृत करनाटक की वार्षिक आय बीस लाख हुन थी और उसमें लगभग सौ दुर्ग थे।

कतिपय स्थानों पर होते हुए शिवाजी मार्च के अन्त (अथवा अप्रैल के आरंभ), १६७८ ई० में अपने राज्य में पुनः लौट आए।"[1]

भूषण तथा इतिहास के ऊपर दिये गये विवरणों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि उक्त कवि ने जिन युद्धों का उल्लेख किया है वे ऐतिहासिक हैं। इस संबंध में एक बात और विचारणीय है। भूषण ने शिवराज-भूषण के जिन छंदों में करनाटक का उल्लेख किया है उनसे उस प्रदेश के शिवाजी द्वारा विजय किये जाने का आभास नहीं मिलता है। उनसे केवल यही ध्वनि निकलती है, कि वहां पर शिवाजी का आतंक छाया हुआ था। ऐसा होना स्वाभाविक भी था, क्योंकि करनाटक की सीमा तक शिवाजी कतिपय अन्य प्रदेशों पर कई बार आक्रमण कर चुके थे। अतः उनकी धाक दूर-दूर तक फैल चुकी थी। इस प्रकार शिवराज़-भूषण की रचना-तिथि

---

[1] शिवाजी, पृ० ३६३-५, ३७२-३, ३८१, ३८४-९०, ३९२, ३९४-४०३; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ० २२५-४५

और करनाटक-विजय की विषमता का परिहार हो जाता है। फुटकर आदि अन्य जिन छंदों में करनाटक का उल्लेख हुआ है, उनसे अवश्य उस भू-भाग की शिवा द्वारा विजय का स्पष्टतः आभास मिलता है।

बीजापुर-रक्षण—करनाटक से लौटने के कुछ मासोपरान्त शिवाजी को मुग़ल सेनापति दिलेर खां से लोहा लेना पड़ा। दिलेर खाँ ने १८ अगस्त, १६७६ ई० को भीमा नदी पार करके बीजापुर पर आक्रमण किया। बीजापुर के संरक्षक मसऊद की प्रार्थना पर शिवाजी ने दश सहस्र अश्वारोही बीजापुर की रक्षार्थ भेजे। साथ ही दो सहस्र बैलों पर लादकर खाद-सामग्री वहाँ विक्रयार्थ भेजी जिससे सेना को कष्ट न हो। शिवाजी स्वयं भी ससैन्य बीजापुर गए। बीजापुर से दिलेर खाँ का ध्यान हटाने के लिए उन्होंने मुग़ल-सीमा में लूट-मार प्रारंभ कर दी। उन्होंने कई स्थलों पर दिलेर की सेना का सामना किया। अंत में, दिसम्बर, १६१६ ई० में पराजित और हतोत्साहित होकर दिलेर बीजापुर का घेरा छोड़कर लौट पड़ा और शिवाजी पन्हाला चले गए।[१]

भूषण ने शिवा जी द्वारा बीजापुर-रक्षण सम्बन्धी पद्य में इसी घटना का उल्लेख किया है [२], जो ऐतिहासिक है।

शिवाजी का आतंक—भूषण ने कतिपय छन्दों में शिवाजी की धाक, आतंक आदि का वर्णन करते हुए कुछ विदेशी एवं भारतीय प्रदेशों और स्थलों का उल्लेख किया है। उनमें से काबुल[३], क़न्धार[४], ख़ुरासान,[५] बलख़[६], बुख़ारा,[७] तूरान,[८] रूम,[९] अरब,[१०] मक्का,[११] चीन,[१२] साम,[१३] सिंहल,[१४] आदि स्थानों में से अधिकांश के वीर सैनिक मुग़ल सेना में रहा करते थे। वे मराठों से कई बार पराजित हुए थे। भूषण ने अधिकांश स्थलों पर उक्त नामों का उल्लेख करके मुग़ल सेना के उन वीरों की ही ओर संकेत किया है। इसके अतिरिक्त उक्त प्रदेशों से भारतवर्ष का व्यापार हुआ करता था और मक्का आदि की तीर्थ-यात्रा के लिए भारतीय मुसलमान बाहर जाया करते थे। इन्हीं व्यापारियों एवं यात्रियों द्वारा शिवाजी की वीरतापूर्ण गाथायें उक्त देशों में पहुँचा करती थीं। उनको सुनकर वहाँ के निवासियों का आश्चर्य, आतंक, धाक एवं विस्मय-परिपूर्ण होना स्वाभाविक रहा होगा। भूषण ने अपने उक्त पद्यों में इन्हीं भावनाओं की ओर संकेत

---

[१] शिवाजी, पृ० ४१५-८, ४२१-५; औरंज़ेब, भा० ५, पृ० १५८-६३, १६५-७; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० १, पृ०२५१-२ [२] भूषण-ग्रंथावली, फुटकर, छं०३७ [३] वही, शिवा-बावनी, छं० १५; वही, फुटकर, छं०६ [४] वही, शिवा-बावनी छं० १५ [५] वही, वही, छं० १२; वही, फुटकर, छं०४० घ [६] वही, शिवराज-भूषण, छं० ११६, २६४; वही, शिवा-बावनी, छं०२०, ३१, ३५; वही, फुटकर, छं० ६, १२ [७] वही, शिवा-बावनी, छं० ३१, ३५ [८] वही, फुटकर, छं० ४०घ [९] वही, शिवराज-भूषण, छं० ११६; वही, शिवा-बावनी, छं० ३१, ३५; वही, फुटकर, छं० ६, ४० घ [१०] वही, शिवा-बावनी, छं० १५ [११] वही, शिवराज-भूषण, छं० १७४ [१२] वही, शिवा-बावनी, छं० १५; वही, फुटकर, छं० ४० घ [१३] वही, वही, छं० ३१, ३५ [१४] वही, फुटकर, छं० ६; १२

किया है। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उन्होंने कहीं-कहीं पर अतिशयोक्ति से भी काम लिया है, उदाहरणार्थ ईरान-पति का शिवाजी को भेंट भेजना आदि।[1]

जब विदेशों तक में शिवाजी का आतंत छाया हुआ था, तो भारतीय-प्रदेशों काश्मीर,[2] दिल्ली,[3] आगरा,[4] मालवा, उज्जैन,[5] भेलसा,[6] गोंडवाना,[7] रुहेलखंड,[8] सिरौंज,[9] कलिंग,[10] बंग,[11] कलकत्ता,[12] कालिंजर, कन्नौज, मिनार, मांडव, कौसिलापुरी,[13] ग्वालियर,[14] गुजरात,[15] भक्खर,[16] आदि स्थानों का इनका नाम सुनते ही भयभीत रहना अत्यन्त स्वाभाविक था। शिवाजी के विरुद्ध युद्ध में पराजित होने पर मुग़ल सूबेदार एवं सेनापति दक्षिण से स्थानांतरित करके अन्य सूबों में भेज दिए जाते थे और उनके स्थान पर नवीन पदाधिकारी मराठों का सामना करने के लिए नियुक्त होते थे। इस कारण से भी शिवाजी की ख्याति भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गई थी। ऐसी दशा में भूषण का उक्त स्थानों के निवासियों का भयपूर्ण वर्णन, किन्हीं अंशों में अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी, वास्तविकता पर अवलम्बित है। वह सजीव एवं वीरतापूर्ण वर्णन है।

जब विदेशों तथा उत्तरी भारत के प्रदेशों में शिवाजी का इतना अधिक आतंक व्याप्त था तो दक्षिण भारत के बीजापुर[17], चालुकुंड[18] (१६६६ ई० में पराजित) द्रविड[19], भागनेर[20] गढ़नेर[21] बेदर[22], मल्लीर (मालाबार)[23] गोलकुंडा[24], देवगिरि[25], आदि राज्यों एवं प्रदेशों का इनकी धाक से भयभीत रहना अत्यन्त स्वाभाविक था। शिवाजी ने इनमें से अधिकांश के राज्यों के बड़े भागों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उनकी सेनायें प्रायः प्रत्येक वर्ष नियमित रूप से यथावसर दक्षिण के राज्यों के प्रदेशों में लूट मार किया करती थीं। ऐसी परिस्थितियां में उन प्रदेशों के शासक और प्रजा का भयाक्रान्त होना निश्चित था। भूषण ने उनकी इसी भयभीत दशा का वर्णन अधिकांश छंदों में किया है; जो किंचित् अतिरंजित होने पर भी तथ्यपूर्ण और वास्तविक है।

शिवाजी तथा पाश्चात्य जातियाँ—भूषण ने कतिपय छंदों में शिवाजी, अंगरेजों, पुर्त्त-

---

[1] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज भूषण छं० २२८, ३६२ [2] वही, शिवा-बावनी, छं० ३१; फुटकर, छं० ६ [3] वही, शिवाबावनी, छं० १५, २०, २१, २२, २३, ३०, ३१, ३२ [4] वही, वही, छं० २२, ३० [5] वही, वही, छं० ३० [6] वही, वही, छं० ३० [7] वही, वही, छं० ४१ [8] वही, वही, छं० वही [9] वही, वही, छं० वही [10] वही, शिवाराज-भूषण, छं० २५६, फुटकर, छं०६ [11] वही, फुटकर, छं०वही [12] वही, वही, छं० वही [13] वही, वही, छं० ११ [14] वही, वही, छं० १० [15] वही, फुटकर, संदेहात्मक, छं० २ [16] वही, वही, छं०३४ [17] वही, शिवा-बावनी, छं० २०, २१, ३०, ३१, ३२ [18] वही, वही, छं० ३३ [19] वही, वही, छं०वही वही, फुटकर, छं० ६ [20] वही, शिवराज-भूषण, छं० ११६, २१४; शिवा-बावनी, छं० ३२ [21] वही, शिवराज-भूषण छं० ११६ [22] वही, फुटकर, छं० १०, १८ [23] वही, शिवा-बावनी, छं० ३३ [24] वही, शिवराज-भूषण, छं० १३, ६३, ६६, ७२, २२८ वही शिवा-बावनी, छं० २०, २१, ३०, ३३, ३४, वही, फुटकर, छं० १२, ३७ [25] वही, वही, छं० १०

गालियों, फ़रासीसियों तथा डचों के पारस्परिक संबंधों का उल्लेख किया है। नीचे क्रमानुसार इन्हीं की ऐतिहासिकता पर विचार किया जा रहा है।

भूषण के कथनानुसार शिवाजी ने जलयानों को उलटकर अंगरेज़ों, फ़िरंगियों, फ़्रांसीसियों को मार डाला। उनकी धाक से भयभीत होकर पुर्त्तगाल उन्हें भेंट भेजता था। शिवाजी की धाक से उक्त देशों में सदैव, भय छाया रहता था।[1]

इतिहास से ज्ञात होता है कि "शिवाजी के समय में अंगरेज़ों, पुर्त्तगालियों तथा फ़्रांसीसियों की दक्षिण के प्रायः सभी प्रमुख नगरों में कोठियाँ थीं। व्यापार के अतिरिक्त वे भारत की तत्कालीन राजनीति में भी भाग लिया करते थे। फलस्वरूप शिवाजी को अनेक बार अंगरेजों और पुर्त्तगालवासियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करनी पड़ी थी। उदाहरणार्थ "अफ़ज़ल् खाँ की सेना को पराजित करने के उपरान्त शिवाजी ने रत्नगिरि प्रान्त में प्रवेश किया। वहाँ के भागे हुए बीजापुरी सूबेदारों ने राजापुर में शरण ली। इन्हीं को अधिकार में रखने के ऊपर शिवाजी तथा अंगरेजों में तनातनी हो गई। इसके अतिरिक्त पन्हाला के घेरे के अवसर पर अंगरेजों ने बीजापुरियों की सहायता की। परिणामस्वरूप दिसम्बर, १६६० ई० मे शिवाजी ने राजापुर पर आक्रमण किया और वहाँ के चार अंगरेज़ फेक्ट्री के अधिकारियों को पकड़कर रामगढ़ ले गए।

इसी प्रकार अक्टूबर १६६८ ई० में शिवाजी ने गोआ के विभिन्न नगरों में छद्म वेशधारी मराठा सैनिकों को भेजा, पर पुर्त्तगाल में सूबेदार ने उन्हें अपने राज्य की सीमा के बाहर निकाल दिया। शिवाजी ने दिसम्बर, १६६८ ई० में भी गोआ पर आक्रमण करने की चेष्टा की थी। डामन के निकट से जाते समय शिवाजी के नौ सेना-नायक ने पुर्त्तगाल के एक जहाज को पकड़ लिया था। इस पर पुर्त्तगालियों ने इनके बारह जहाज पकड़कर बसीन पर छोड़ दिए और शेष मराठा बेड़े का पीछा किया, पर वह बेड़ा दाभोल पर सुरक्षित पहुँच गया (नवम्बर-दिसम्बर, १६७० ई०)।[2]

इसके अतिरिक्त सूरत की प्रथम लूट में शिवाजी तथा अंग्रेजों में कुछ तनातनी हो गई थी। सूरत की दोनों लूटों के अवसर पर अंगरेज़ों, फ़्रांसीसियों और डचों ने अपनी अपनी फेक्ट्रियों की रक्षा का प्रबन्ध कर लिया था। फ़्रांसीसियों ने शिवाजी को बहुमूल्य भेंटें देकर अपनी ओर मिला लिया था। अंगरेजों ने भी तलवार, चाकू आदि भेंट देकर इनसे संधि कर ली थी। सूरत से १० मील पश्चिम में ताप्ती नदी पर स्थित स्वाली बन्दरगाह पर उन दिनों अधिक भय छाया था। अंगरेजों के जहाज़ उन्हें ले भागने के लिए प्रस्तुत खड़े थे।"[3]

भूषण तथा इतिहास कथित उक्त विवरणों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रकट हो जाता है कि शिवाजी और उक्त विदेशी व्यापारियों में परस्पर कई बार संघर्ष हुए थे। ये व्यापारी शिवाजी को भेंट भी भेजा करते थे। भूषण ने अपने वर्णन में इन्हीं घटनाओं की ओर संकेत किया है। कहीं-कहीं पर उनके ये वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य हो गए हैं, पर उनमें ऐतिहासिक सत्य का अभाव

---

[1] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० ११६, १८१, २६२; वही, शिवा-बावनी, छं० २०, ३०, ३१, ३२, ३४; वही, फुटकर, छं० १२; ४० घ [2] शिवाजी; पृ० २६३-३०१, ३१५, ३१६, ३४४ [3] वही, पृ० १०४-१८, २१९-२८

नहीं है। इस सम्बन्ध में यह न भूलना चाहिए कि उनके ये वर्णन भारत-स्थित उन जातियों से ही सम्बन्धित हैं, न कि यूरोप स्थित से। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उक्त जातियों पर छाए हुए शिवाजी के आंतक का भूषण ने सजीव चित्रण किया है।

औरंगज़ेब सम्बन्धी घटनायें—भूषण ने अपने ग्रन्थों में कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया है, जिनसे शिवाजी का सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है। ये घटनायें औरंगज़ेब से सम्बन्धित हैं। उनका शिवाजी से अप्रत्यक्ष रूप से केवल इतना हीं सम्बन्ध है, कि कवि ने उनका वर्णन शिवाजी के यश, गौरव एवं प्रताप आदि की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए किया है, कि ऐसे शक्तिशाली औरंगज़ेब को शिवाजी ने अनेकों बार पराजित किया। नीचे इन्हीं पर विचार किया जा रहा है।

औरंगजेब १६४५ से १६४७ ई० तक गुजरात का सूबेदार रहा।[1] यहाँ से वह काबुल होता हुआ बलख़ को गया जिसका वह २१ जनवरी से १ अक्टूबर, १६४७ ई० तक घेरा डाले पड़ा रहा।[2] सम्भवतः इसी अवसर पर उसने ख़ुरासान पर भी आक्रमण किया था।[3] औरंगज़ेब ने कन्धार पर दो बार (जनवरी से दिसम्बर, १६४९ ई०) और (मार्च से जुलाई, १६५२ ई०) आक्रमण किए थे।[4] इन दोनों बार मुगलों को मुँह की खानी पड़ीं थी। क़न्धार-विजय सम्बन्धी भूषण का कथन निराधार है। सम्भवतः इसी अवसर पर उसने ग़ोर (अफ़गानिस्तान का एक नगर) को जीता था।[5]

दक्षिण की सूबेदारी के अवसर पर औरंगज़ेब ने बेदर (बीदर) २९ मार्च, १६५७ ई० को और कल्यान (कल्याण) २७ अप्रैल, १६५७ को अधिकृत कर लिए थे।[6]

औरंगज़ेब का उत्तराधिकार-युद्ध—भूषण ने औरंगज़ेब के उत्तराधिकार युद्ध की प्रमुख घटनाओं—छत्रसाल हाड़ा का दारा की ओर से युद्ध, मुराद के साथ औरंगज़ेब का विश्वासघात, खजुआ के स्थान पर शुजा की पराजय, दारा का हार कर भागना और अन्त में आगरे के चौक में उसका चुनवा दिया जाना एवं शाहजहाँ का बन्दीगृह में डाल दिया जाना आदि का उल्लेख किया है।[7]

उक्त घटनाओं में से अधिकांश की ऐतिहासिकता पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है।[8] औरंगज़ेब ने शाहजहाँ को, जून, १६५८ ई० में आगरे के क़िले में बन्दी बनाया था।[9] दारा के सम्बन्ध में भूषण की यह उक्ति कि वह आगरे की दीवार में चुनवाया गया था, असत्य है।

---

[1] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० १५९; औरंगज़ेब (१९२५ ई० का संस्करण), भा० १, पृ० ६९-७२ [2] भूषण-ग्रंथावली, फुटकर, छं० ६, २४, औरंगज़ेब (१९२५ ई० का संस्करण भा० १, पृ० ७३-१०० [3] भूषण-ग्रंथावली, शिवा-बावनी, छं० ४७; वही, फुटकर, छं० ६; २४ [4] वही, शिवा-बावनी, छं० ४७; औरंगज़ेब (१९२५ का संस्करण) भा० १, पृ० १११-१५० [5] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० १५९ [6] वही, फुटकर, छं० २४; औरंगज़ेब (१९२५ ई० का संस्करण) भा० १ पृ० २३९-४२, २४४-५० [7] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० २१८; वही, शिवा-बावनी, छं० ३६, ४९; वही, फुटकर, छं० ५८, ५९, ६० [8] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ५, छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता के अंतर्गत अध्याय ६-७ का ऐतिहासिक विवरण [9] औरंगज़ेब भा० २, पृ० ७१-८६

वस्तुतः वह देहली में मरवाया गया था। शेष घटनाओं के सम्बन्ध में उक्त कवि का विवरण इतिहासानुकूल है।

सम्राट् होने के पश्चात् औरंगज़ेब ने पलाऊँ (पालामऊ) को जीता (१३ दिसम्बर, १६६१ ई०)। इसके अनन्तर उसने मोरंग पर दो बार १६६४ ई० तथा १६७६ ई० में आक्रमण किए।[१] इसके पश्चात् उसने १६६५ ई० में कुमाऊँ पर अपनी सेनायें भेजीं। इस युद्ध में श्रीनगर (गढ़वाल) ने मुग़लों की सहायता की थी। औरंगज़ेब ने १६७३ ई० में कुमाऊँ के शासक को क्षमा-प्रदान कर दी।[2] जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, उसके सैनिकों ने १६७१ ई० में हबसान (ज़ंज़ीरा के शासकों)[3] से सन्धि करके उन्हें याकूत की उपाधि दी थी।

औरंगज़ेब की धार्मिक संकीर्णता एवं कट्टरता के कारण देश के एक कोने से दूसरे कोने तक मन्दिर तोड़े गए और उनके स्थान पर मस्जिदें बनीं। उसकी इस नीति के कारण काशी और मथुरा को सबसे अधिक हानि उठानी पड़ी। औरंगज़ेब की आज्ञा से काशी का विश्वनाथ-मन्दिर (२ सितम्बर, १६६६ ई०) तथा मथुरा का केशवराय का देहरा (जनवरी, १६७० ई०) को नष्ट कर दिए गए। यही नहीं इन नगरों की सारी कला और शोभा नष्ट हो गई।[४]

बाँधव, बावनी, बवंजा,[५] झारखंड, खंडहर,[६] निज़ामशाही,[७] ढुंढहार (जयपुर), नवकोटि, मारवाड़, मेवाड़[८] आदि में से कुछ मुगल राज्य के सूबे थे तथा अन्य करद एवं स्वामिभक्त अधीनस्थ राज्य थे। राजस्थान के मारवाड़ आदि से जसवन्तसिंह की मृत्यु (१६७८ ई०) के पश्चात् औरंगज़ेब के युद्ध प्रारम्भ हो गए थे। बुन्देलखंड में औरंगजेब शाहजहाँ के शासन-काल में बुन्देलों को पराजित कर चुका था।[९] उसके शासन-काल में ओड़छा के शासक उसके अधीन रहे, पर चम्पतिराय तथा छत्रसाल आजन्म मुगलों को कष्ट ही देते रहे। नैपाल[१०] एक स्वतन्त्र मित्र-राज्य था।

छत्रसाल संबंधी घटनायें—भूषण ने महाराज छत्रसाल बुंदेला के अनेक युद्धों का उल्लेख किया है। इनके कथनानुसार छत्रसाल ने तहवर ख़ाँ[११], अनवर ख़ाँ[१२] सुतरदीन[१३], अब्दुसमद[१४], बहलोल ख़ाँ[१५], सैद अफगन (शेर अफ़गन)[१६] आदि को विविधि युद्धों में पराजित किया था। इन युद्धों के ऐतिहासिक विवरण अन्यत्र दिए गए हैं।[१७]

---

[१] भूषण-ग्रंथावली, शिवा-बावनी, छं० ४७; औरंगजेब भा० ३, पृ० ३०-१, ४१ [२] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० १११; वही, शिवा-बावनी, छं० ४७; औरंगजेब, भा० ३, पृ० ४१-२ [3] भूषण-ग्रंथावली, फुटकर; छं० २४; देखिए फ़त्तेह खाँ-पराजय, पृ० २२५-२६ [४] भूषण-ग्रंथावली, शिवा-बावनी, छं० ३६, ४८, ४६, ५०; औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० २६६-७, २८१-३ [५] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० १११; वही, शिवा बावनी, छं० ४७ [६] वही, शिवराज-भूषण, छं० १५६ [७] वही फुटकर, छं० २४ [८] वही, शिवराज-भूषण छं० १११; वही, शिवा-बावनी छं०४७ [९] वही, शिवराज-भूषण, छं०१११, वही, फुटकर, छं० २४ [१०] वही, शिवराज-भूषण छं०१११ [११] वही, छत्रसाल-दशक, छं०६; फुटकर, छं०४२ [१२] वही, छत्रसाल-दशक, छं० ६ [13] वही, वही, वही, [१४] वही, वही, छं० ३, ५, ६, [१५] वही, वही, छं० ६ [१६] वही, वही, छं० ८, ६ [१७] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ५, छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता के अंतर्गत छत्रप्रकाश के अध्याय १६ का अंतिम भाग तथा अध्याय १७-२३ का ऐतिहासिक विवरण।

मुहम्मद अमी .खाँ विषयक घटना का वर्णन करते हुए भूषण लिखते हैं कि छत्रसाल ने जंगल में उस उद्दण्ड की सेना और कोष को लूट लिया।[1] छत्र-प्रकाश के १६वें अध्याय में दिल्ली को जाते हुए मुग़लों के १०० गाड़ी कोष को छत्रसाल द्वारा लूटने का वर्णन आया है।[2] लाल कवि ने उक्त प्रसंग में कोष के साथ जाते हुए सेनापति का नाम नहीं दिया है। सम्भवतः भूषण का अपने वर्णन से इसी घटना की ओर संकेत है।

आगे चलकर भूषण ने छत्रसाल और मुहम्मद .खाँ के युद्ध का वर्णन किया है।[3] बुंदेले मुग़लों के साम्राज्य में सदा लूटमार करते रहते थे। सन् १७१६-१७२० ई० में उन्होंने कालपी को लूटा। इस पर मुहम्मद .खाँ बंगश के आदेशानुसार देलर .खाँ ने बुंदेलों को दंड देने का निश्चय किया। १३ मई, १७२१ ई० को छत्रसाल ने उसका सामना किया। इस युद्ध में दिलेर मारा गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त बुंदेलखंड में मुहम्मद खाँ बंगश विजय-प्राप्ति की विफल आशा करता रहा। अन्त में बाजीराव पेशवा की सहायता से छत्रसाल ने मुहम्मद खाँ बंगश को पराजित करके, इस दीर्घकालीन युद्ध का अन्त किया और इस प्रकार अपने प्रदेश की रक्षा की (अगस्त, १७२६ ई०)।[4]

इसके अनन्तर भूषण द्वारा कथित छत्रसाल विषयक दक्षिण के नाह (सम्भवतः बीजापुर का कोई सरदार)[5], तथा रूंडी-खुंडी[6] के युद्धों का विवरण सहायक ऐतिहासिक ग्रंथों में अप्राप्य है। इस कवि ने कतिपय छंदों में छत्रसाल की युद्ध-कुशलता और आतंक का भी उल्लेख किया है।[7] भूषण ने एक छंद में छत्रसाल द्वारा साहू को एक हाथी भेंट करने का भी वर्णन किया है।[8]

भूषण और बाजीराव—भूषण ने बाजीसव (प्रथम) का विवरण देते हुए उसके द्वारा छत्र-साल बुन्देला की जो सहायता की गई थी, उसका उल्लेख किया है।[9]

बाजीराव और छत्रसाल की उक्त घटना का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, अतः उसके ऐतिहासिक वर्णन के यहाँ दिए जाने की आवश्यकता नहीं है।

भूषण और साहू—भूषण ने कुछ छंदों में साहू के आतंक, वैभव और वीरता का वर्णन करते हुए उनके एक आध युद्ध का भी उल्लेख किया है।[10] इतिहास से ज्ञात होता है कि साहू ने कई युद्धों में भाग लिया था। जिनमें से कुछ में वह विजयी हुआ और कुछ में उसे पराजित होना पड़ा था।[11]

भूषण का साहू संबंधी वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है। उसमें ऐतिहासिक तथ्य का इस कवि ने कम आश्रय लिया है।

---

[1] भूषण-ग्रंथावली, छत्रसाल-दशक, छं० ३ [2] छत्रप्रकाश, पृ० १०६ [3] भूषण-ग्रंथावली, छत्र-साल-दशक, छं० ६; फुटकर, छं० ४२ [4] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, संख्या XLVII, १८७८ ई०, पृ०२८४-३०२; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा०२; पृ०१०४-८ [5] भूषण-ग्रंथावली, छत्रसाल-दशक, छं० ४ [6] वही, वही, फुटकर, छं०४२ [7] भूषण-ग्रंथावली, फुटकर संदेहात्मक छं०४, ५, ६, ८ [8] वही, फुटकर, छं० ४१ [9] वही, वही, छं० ४७, ४८ [10] भूषण-ग्रंथावली, वही, छं०४३-६ [11] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा०२, पृ०१४, ४१, ७३, ७८, ८६, १००, १०८, १४३, १४५, १७७।

भूषण तथा अन्य राजा गण— भूषण ने कतिपय छन्दों में चित्र-कूट-पति हृदय-राम-सुत-रुद्र[१], सुलंकी युद्ध-प्रयाण [२], अवधूतसिंह की युद्ध-यात्रा[3] जयपुराधीश भगवंत सुत-मानसिंह, जगत्‌सिंह, महासिंह, जयसिंह तथा रामसिंह की दानशीलता एवं वीरता[४], महाराज अनिरुद्ध[५], राव-बुद्ध के आतंक[६], गढ़वाल नरेश की कीर्ति [७] तथा कुमाऊँ नरेश के हाथियों [८] का वर्णन किया है। उक्त वर्णनों में से अधिकांश के विवरण प्राप्त सहायक ऐतिहासिक ग्रंथों में अप्राप्य हैं। साथ ही ये विवरण किसी विशेष घटनावली की ओर संकेत भी नहीं करते हैं, अपरंच वे साधारण ढंग पर प्रशस्ति के रूप में कहे गए हैं।

भूषण सम्बन्धी सन्देहात्मक छन्दों में भगवंतराय तथा तुराब खाँ के युद्ध, भगवंतराय की दानशीलता और मृत्यु का उल्लेख मिलता है।[९] इन घटनाओं के ऐतिहासिक विवरण का उल्लेख अन्यत्र किया गया है।[१०]

सेनायें

(अ) शाइस्ता ख़ाँ के विरुद्ध शिवाजी की सेना—भूषण के कथनानुसार शिवाजी २०० आदमियों को साथ लेकर सौ हज़ार के असवार (शाइस्ता खाँ) को पराजित करने में सफल हुए।[११]

इस सम्बन्ध में इतिहास ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि शिवाजी शाइस्ता ख़ाँ के विरुद्ध एक सहस्र सैनिकों के साथ सिंहगढ़ से चले थे। पूना में पहुँचने पर शेष सेना को पीछे छोड़कर और केवल चार सौ साथियों को लेकर वे मुग़ल-शिविर में प्रविष्ट हुए। उनमें से २०० सैनिकों को लेकर वे शाइस्ता ख़ाँ के शयनागार में घुस गए और अन्य २०० सैनिकों को लेकर बाबाजी बापू ने अन्तःपुर के बाहर पहरेदारों को बड़ी संख्या में काट डाला।[१२]

उक्त ऐतिहासिक विवरण से शिवाजी के सैनिकों की पुष्टि हो जाती है। साथ ही यह कह देना भी असंगत न होगा, कि शाइस्ता ख़ाँ मुग़ल साम्राज्य का अमीरुल्-उमरा था इसीलिए भूषण ने उसे सौ सहस्र का असवार कहने में अत्युक्ति की सहायता ली है।

(आ) अफ़ज़ल् ख़ाँ की सेना—भूषण के अनुसार बीजापुर का यह सरदार बारह हज़ार असवार साथ में लेकर शिवाजी के विरुद्ध आया था।[१३]

सरकार[१४] के मतानुसार अफ़ज़ल् खाँ की सेना १० सहस्र और सर देसाई[१५] की सम्मति में उसके साथ पदाति के अतिरिक्त १२ सहस्र अश्वारोही थे।

(इ) बीजापुर के विरुद्ध मुग़ल-सेना—भूषण ने लिखा है कि पठान सरदार (दिलेर खाँ) चालीस हज़ार सैनिक लेकर बीजापुर के विरुद्ध आया था।[१६]

---

[१] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० २८ [२] वही, फुटकर, छं० ४६ [3] वही, वही, वही, छं० ५० [४] वही, वही, छं० ५१, ५२ [५] वही, वही, छं० ५३ [६] वही, वही, छं० ५४, ५५ [७] वही, वही, छं० ५७ [८] वही, वही, छं० ५६ [९] वही, वही, संदेहात्मक पद्य छं०१०, ११ [१०] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ७, रासा भगवंतसिंह की ऐतिहासिकता के अंतर्गत युद्ध-वर्णन [११] भूषण-ग्रंथावली, शिवराज-भूषण, छं० १६० [१२] शिवाजी, पृ० ६०-१०५, औरङ्गज़ेब, भा० ४, पृ० ४३-५१; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़ भा० १, पृ० १४२-४ [१३] भूषण-ग्रंथावली, फुटकर, छं० २६ [१४] शिवाजी, पृ० ६८ [१५] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भाग १, पृ० १२४ [१६] भूषण-ग्रंथावली, फुटकर, छं० २७

इतिहास से मालूम होता है कि जब दिलेर बीजापुर दुर्ग का घेरा डाले हुए पड़ा था उस समय उसके साथ २० सहस्र सेना थी।[1] अतएव भूषण द्वारा कथित उक्त सैन्य-संख्या अतिशयोक्तिपूर्ण है।

इस प्रकार भूषण कृत रचनाओं पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने के पश्चात् यह परिणाम निकलता है कि उन्होंने अपने काव्य के लिए ऐतिहासक घटनावली का ही आश्रय लिया है। उन्होंने मुक्तक रचना की है इसलिए घटनाओं के क्रम में व्यतिक्रम आ गया है। साथ ही एक ही छंद में कई घटनाओं का एक ही साथ उल्लेख कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त घटनाओं की बार-बार आवृत्ति भी हो गई है, पर ऐसा होने पर भी कविता की सरसता एवं रोचकता की सर्वत्र रक्षा हुई है। भूषण ने घटनाओं की तिथियों का उल्लेख नहीं किया है, पर इतिहास की सहायता से उन घटनाओं का क्रमानुसार वर्णन करने से ऐतिहासिक ज्ञान के क्रमिक विकास की जानकारी हो जाती है। यद्यपि कवि ने कुछ चुनी हुई विशेष घटनाओं को ही अपना काव्य-विषय बनाया है, पर उससे हमारे ऐतिहासिक ज्ञान की पर्याप्त मात्रा में अभिवृद्धि होती है। साथ ही उससे नवीन सामग्री भी प्रचुर-मात्रा में प्राप्त होती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर भूषण की कविता की घटनावली अपेक्षाकृत अत्यधिक समय में फैली हुई मिलती है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उनकी कविता में कुछ कवियों ने प्रक्षिप्त अंश मिला दिए हैं। यदि इनके पाठ का समुचित रूप से संशोधन हो जाये तो इनकी कविता प्रमुखरूप से शिवाजी और महाराज छत्रसाल विषयक होने के नाते उन्हें शिवाजी का समकालीन सिद्ध करने में सफल होगी।

इस प्रकार भूषण की रचनायें ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण, रोचक तथा नवीन सामग्री से परिपूर्ण होने के साथ ही उनके जीवन संबंधी समस्याओं पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।

---

[1] औरंगज़ेब, भा० ४, पृ० १६४

अध्याय ४

राजविलास की ऐतिहासिकता

तिथियाँ—नीचे मान द्वारा प्रयुक्त प्रमुख तिथियों की प्रामाणिकता पर विचार किया जा रहा है :—

(अ) बापा द्वारा नागद्रहा की स्त्रियों की रक्षा की तिथि—सम्वत् ४१६ विक्रमी चैत्र सुदी (?)[1] =३६५ ई०।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त तिथि अशुद्ध है, क्योंकि इतिहास में बापा का वर्तमानत्व ७५३ ई० में पाया जाता है।[2]

(आ) रतनसेन (रत्नसिंह) का समय—सम्वत् १०३० विक्रमी[3] =९७३ ई०।

मान कवि द्वारा दी हुई उक्त तिथि अशुद्ध है, क्योंकि रावल रत्नसिंह की मृत्यु १३०३ ई० में हुई थी।[4] अतएव उनका १०३० विक्रमी में वर्तमान होना असंभव है।

(इ) राहप का समय— सम्वत् १३१५ विक्रमी[5] =१२५८ ई०।

यह तिथि अशुद्ध है।

(ई) कुंभा राणा की तिथि—सम्वत् १५०५ विक्रमी (?)[6] =१४४८ ई०।

इतिहास में कुम्भा राणा का शासन-काल १४३३ ई० से १४६८ ई० तक माना गया है,[7] अतः कवि मान द्वारा दी हुई उक्त तिथि संदिग्ध है।

(उ) राजसिंह की जन्म-तिथि—सम्वतू १६८६ कार्त्तिक कृष्ण २, बुधवार।[8]

कार्त्तिक अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्ति काल	२ सितम्बर	७. ४५
१ तिथि का समस्त व्याप्ति काल	१६+१	१६. ७३
	१६	२४. १८

=बृहस्पतिवार, २४ सितम्बर, १६२९ ई०।

असंभव नहीं है कि कृष्ण पक्ष की द्वितीया की तिथि की पूर्णरूप से गणना करने पर .१८ दिवस की काल शुद्धि निकल आये और फल बुधवार आ जावे।

अतएव कवि द्वारा दी हुई उक्त तिथि को ठीक माना जा सकता है अर्थात् महाराणा राजसिंह का जन्म बुधवार, २४ सितम्बर, १६२९ ई० को हुआ होगा।

---

[1] राजविलास, छं० ५८, पृ० २४ [2] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४१०-४ [3] राजविलास, छं० १५, पृ० ३७ [4] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४८३ [5] राजविलास, छं० २३, पृ० ३८ [6] वही, छं० ३२, पृ० ३९-४० [7] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ५९१, ६३४ [8] राजविलास, छं० १४८, पृ० ५४

श्री ओझा जी ने भी इनके जन्म की तिथि विक्रमी संवत् १६८६, कातिक वदि (ई० स० १६२६, तारीख २४ सितम्बर) राज-प्रशस्ति-महाकाव्य के आधार पर स्वीकार की है।[1]

(ऊ) मालपुरा की लूट की तिथि—संवत् १७१५, ज्येष्ठ मास[2] = १६५८ ई०, मई।

ओझा जी ने महाराणा के द्वारा शाही मुल्क को लूटने की तिथि विक्रमी संवत् १७१५ ई० वैशाख सुदि १० (ई० स० १६५८, ता० २ मई) मानी है।[3] अतः मान द्वारा दी हुई उक्त तिथि को निकटतम ठीक मान लेने में कोई हानि नहीं है।

(ए) दुर्भिक्ष-तिथि—संवत् १७१७, भाद्रपद[4] = ईस्वी सन् १६६०, अगस्त।

(ऐ) राजसमुद्र-निर्माण-तिथि—संवत् १७१७ पौष ८ मंगलवार[5] = ई०स०१६६०, फ़रवरी।

श्री ओझा जी के मतानुसार राजसमुद्र की नीव की खुदाई वि० सं० १७१८ माघ वदि ७ (ई० स० १६६२, ता० १ जनवरी) को प्रारंभ हुई थी।[6]

(ओ) राजसमुद्र की प्रतिष्ठा-तिथि—संवत् १७३२ माघ दशमी[7] = ई० सन् १६७५, जनवरी।

इतिहास में राजसमुद्र की प्रतिष्ठा की तिथि विक्रमी संवत् १७३२ माघ सुदि ६ (ई० सन् १६७६, ता० १४ जनवरी) मानी गई है।[8]

(औ) औरंगज़ेब के राजपूताने पर आक्रमण की तिथि—संवत् १७३६, भाद्रपद शुक्ल द्वितीया[9] = ई० सन् १६७६, अगस्त ५।

इतिहास से विदित होता है कि "बादशाह (औरंगज़ेब) ने हि० स० १०६० ता० ७ शाबान (वि० स० १७३६, भाद्रपद सुदि ८ = ई० स० १६७६ ता० ३ सितम्बर) को महाराणा से लड़ने के लिए एक बड़ी सेना के साथ दिल्ली से अजमेर की ओर प्रस्थान किया था।"[10]

(अं) महाराजकुमार जयसिंह के युद्ध की तिथि—संवत् १७३७, आषाढ़[11] = ई० स० १६८०, जून-जुलाई।

तिथियों संबंधी उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि मान द्वारा दी हुई अधिकांश तिथियाँ ऐतिहासिक तिथियों से मेल नहीं खाती हैं।

वंश-नाम—मान ने मेवाड़ के शासकों रवि-वंशी[12] रघु-वंशी,[13] सीसोदिया,[14] आदि नामों से पुकारा है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से उचित ही है।[15]

---

[1] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८४१-२ (पाद टिप्पणी १ सहित) [2] राज-विलास, छं० २, पृ० ६६ [3] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८४६ [4] राजविलास, छं० ११३-४, पृ० १२६ [5] वही, छं० १४०, पृ० १३६ [6] राजपूताने का इतिहास. तीसरा खंड, पृ० ८८१ (पाद टिप्पणी २ सहित) [7] राजविलास, छं० १५४-७, पृ० १४३-४ [8] राज-पूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८८२(पाद टिप्पणी ५ सहित) [9] राजविलास, छं १६६-७०, पृ० १७५ [10] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६५ [11] राजविलास, छं० १-२, पृ० २४३ [12] वही, छं० ७, पृ० १; छं० १६८, पृ० १४७; छं० १८४, पृ० १७६ [13] वही; छं० १८, पृ० १७; छं० २१, पृ०१८; छं० २४, पृ० १८-६, छं० २६, पृ० १६ [14] वही छं० १७, पृ० १७; छं० ६५, पृ० ७६; छं० ६६, पृ० ७५ [15] देखिये द्वितीय खंड, अध्याय २, गोरा बादल की कथा की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत राणा रत्नसेन के वंश का नाम, पृ०१६१-६२

इस स्थल पर यह निर्णय भी कर लेना समीचीन प्रतीत होता है कि मान का यह कथन कि "बापा रावल के समय से ही गुहिल वंशीय मेवाड़ाधिपति सीसोदिया कहलाए"[1] कहाँ तक इतिहास-सम्मत है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस कवि का उक्त कथन नितान्त भ्रामक है। वास्तव में इस वंश का सीसोदिया नाम बापा के बहुत पीछे पड़ा। "बापा की वंश-परम्परा में-कई पीढ़ी के उपरान्त-रणसिंह (कर्णसिंह, कर्ण) हुए। उससे दो शाखायें—एक रावल नाम की और दूसरी राणा नाम की—फटीं। रावल शाखा वाले मेवाड़ के स्वामी और राणा-शाखा वाले सीसोदे के जागीरदार रहे और सीसोदे में रहने के कारण सीसोदिए कहलाए। रावल शाखा की समाप्ति ई० स० १३०३ में हुई। इससे कुछ वर्ष बाद सीसोदे के राणा हम्मीर ने चित्तौड़ पर अपना अधिकार जमा कर मेवाड़ में सीसोदिया (राणा) शाखा का राज्य स्थापित किया।"[2]

इससे स्पष्ट है कि इस वंश को सीसोदिया नाम बहुत बाद को दिया गया था, न कि बापा के समय में, जैसा कि मान ने माना है।

निश्चित-पात्र

हिन्दू-पात्र—गृहादित्य (गुहिल, गुहदत्त)—यह मेवाड़ राज-वंश के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इनका इतिहास अन्धकार के गर्त्त में निहित है। ओझा जी इनका वर्त्तमानत्व विक्रमी सम्वत् ६२३ (ई० स० ५६६) के लगभग मानते हैं।[3]

बापा रावर—(बापा रावल) मान कवि ने बापा को गृहादित्य का पुत्र माना है, पर ओझा जी बापा को गुहादित्य से आठवीं पीढ़ी में हुआ मानते हैं।

विद्वान् गण इस बात पर एक मत हैं कि बापा वास्तविक नाम नहीं था, वरन् यह सम्मान सूचक शब्द था। ओझा जी का मत है कि कालभोज द्वितीय का नाम बापा था। उसका शासन काल वि० स० ७९१ से ८१० (ई० स० ७३४-५३) तक रहा होगा।[4]

अल्लू रावर (अलूलट)—यह भर्तृभट द्वितीय का पुत्र था। यह वि० स० १००८ (ई० स० ९५१) में वर्तमान था।[5]

श्रीनर—इस नाम से मान कवि का अनुमानतः नरवाहन से अभिप्राय है। नरवाहन अल्लट का पुत्र था। यह बड़ा शक्तिशाली एवं योग्य शासक था।[6]

सारिवाहन—कवि ने इस नाम से शालिवाहन की ओर संकेत किया है। मान ने इसको श्रीनर (नरवाहन) का पूर्वज माना है, पर ओझा जी उसे नरवाहन का उत्तराधिकारी मानते हैं। इसने बहुत थोड़े वर्ष राज्य किया था। यह शालिवाहन शक सम्वत् के प्रवर्त्तक, पैठण के प्रसिद्ध आंध्र-वंशी शालिवाहन से भिन्न व्यक्ति था।[7]

मान ने इसे 'शक बंधिय' शाका चलानेवाला माना है, जो उसकी भूल है।

संकुतकुमार—मान कवि ने सम्भवतः इस नाम से शक्तिकुमार की ओर संकेत किया है। यदि उसका अभिप्राय उक्त शक्तिकुमार से है तो उसका इसे श्रीनर (नरवाहन) का पूर्वज मानना

---

[1] राजविलास छं० ८०, ८३, पृ० २६ [2] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४४६-७ [3] वही, पहला भाग पृ० ४००; वही, दूसरा खंड पृ० ४०१-२ [4] वही, पहला भा० पाद-टिप्पणी १, पृ० ३६५; वही दूसरा खंड, पृ० ४०४-२० [5] वही, भाग वही, पृ० ४२६-८ [6] वही, भा० वही, पृ० ४२८-३० [7] वही, वही, पृ० ४३०-३३

भूल है। शक्तिकुमार शालवाहन का पुत्र था। यह वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) में वर्त्तमान था।[1]

अंब पसाउ (अंब पसाव)—यह नाम अनुमानतः अंबाप्रसाद के लिए प्रयुक्त हुआ है। शक्तिकुमार के पीछे उसका पुत्र अंबाप्रसाद मेवाड़ का स्वामी हुआ है। कहीं-कहीं पर उसका नाम 'आम्रप्रसाद' भी लिखा है।[2]

रावल हंस—मान ने हंसपाल नामक राजा के लिए यह नाम प्रयुक्त किया है। वैरट के पीछे हंसपाल राज्य का स्वामी हुआ। भेराघाट से मिले हुए ११५५ ई० के एक शिलालेख में इसका वर्णन मिलता है। कहीं-कहीं पर इसका नाम वंशपाल भी दिया है।[3]

वैरसिंघ (वैरिसिंह)—"यह हंसपाल का पुत्र था। यह बड़ा शक्तिशाली राजा था। इसने आहाड़ नगर का नया कोट बनवाया था।"[4]

करन (कर्ण, कर्णसिंह, रणसिंह)—"यह विक्रमसिंह का पुत्र था। इसको कर्णसिंह, करणसिंह, कर्ण अथवा रणसिंह नाम से भी पुकारा जाता था। इससे दो शाखायें—एक 'रावल' नाम की दूसरी 'राणा' नाम की-फटीं। रावल शाखावाले मेवाड़ के स्वामी और 'राणा' शाखावाले सीसोदे के ज़मीदार रहे। 'रावल' शाखा की समाप्ति रत्नसिंह के साथ १३०३ ई० में हुई। इसके कुछ समय बाद सीसोदे के राणा हम्मीर ने चित्तौड़ पर 'राणा' शाखा का राज्य स्थापित किया।"[5]

रावल महणसोह—यह नाम मथनसिंह का पर्य्यायवाची प्रतीत होता है। "कुंभल गढ़ के शिला लेख में महणसिंह नाम लिखा है। यह कुमारसिंह का पुत्र था। अपने पिता के पश्चात् राजा बना।"[6]

पदमसीह (पद्मसिंह)—"मथनसिंह (महणसिंह) का उत्तराधिकारी उसका पुत्र पदमसीह हुआ।

जैतसीह—(जैत्रसिंह) पद्मसिंह के पीछे उसका पुत्र जैत्रसिंह मेवाड़ का राजा हुआ। उसने गुजरात के राजा त्रिभुवनपाल को पराजित किया (१२४२-३ ई०), नाडौल के चौहानों तथा मालवे के परमारों से युद्ध किया। वह १२१३ से १२५३ ई० तक मेवाड़ का राजा था। जैत्रसिंह की मृत्यु १२५३ और १२६१ ई० के बीच किसी वर्ष हुई होगी।

तेजसिंह—यह जैत्रसिंह का पुत्र था। अपने पिता के मरने पर मेवाड़ का स्वामी हुआ। इसका देहान्त १२६७ और १२७३ ई० के बीच किसी वर्ष हुआ होगा।

समरसीह (समरसिंह)—तेजसिंह के पीछे उसका पुत्र समरसिंह राजा हुआ। उसके शिलालेखों से इतना स्पष्ट है कि वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) से १३५८ (ई० स० १३०२) माघ सुदि १० तक तो रावल समरसिंह जीवित था और इसके पीछे कुछ समय और भी जीवित रहा हो तो कोइ आश्चर्य नहीं। उसके पीछे उसका पुत्र रत्नसिंह राजा हुआ, जो अलाउद्दीन खिलजी

---

[1] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४३३-८ [2] वही, वही, पृ० ४३८-९ [3] वही, वही, पृ० ४४३ [4] वही, वही, पृ० ४४४ [5] वही, वही, पृ० ४४६-७ [6] वही, वही, पृ० ४२८-९

राजसिंघ (राजसिंह)—महाराणा जगत्‌सिंह के पुत्र महाराणा राजसिंह का जन्म वि० सं० १६८६ कार्तिक वदि २ (ई० स० १६२६ ता० २४ सितंबर) को और राज्याभिषेक १० अक्टूबर, १६५२ ई० को हुआ। इनकी मृत्यु २२ अक्टूबर, १६८० ई० को हुई।[1]

अरिसिंह—यह महाराणा जगत्‌सिंह के पुत्र तथा राजसिंह के भाई थे। अरिसिंह के वंश में तीरोली का ठिकाना है।[2]

जय सीह (महाराणा जयसिंह)—यह महाराणा राजसिंह का पुत्र था। इसका जन्म ५ दिसंबर, १६५३ ई० को हुआ था। अपने पिता के मरने पर यह राणा बना। इसका देहान्त २३ सितंबर, १६६८ ई० को हुआ।[3]

भीमसिंह—यह महाराणा राजसिंह का पुत्र था। यह बड़ा वीर था। राजसिंह और औरंगज़ेब की लड़ाइयों में यह बहुत लड़ा था। औरंगज़ेब से जयसिंह की सन्धि हो जाने पर वह बादशाह के पास अजमेर चला गया। ८ अक्टूबर, १६६४ ई० को इसका देहान्त हो गया।[4]

जस (यश कर्ण, जसवन्तसिंह, जसराज)—यह डूङ्गरपुर का स्वामी था।[5]

भावसिंघ (भावसिंह)—संभवतः यह महाराणा अमरसिंह के तीसरे पुत्र सूरजमल का तीसरा पुत्र था।[6]

मनोहरसिंह (महाराज मनोहरसिंह)—यह महाराणा कर्णसिंह के कुँवर ग़रीबदास का पुत्र था।[7]

दलसिंह—यह महाराणा कर्णसिंह के छोटे कुँवर छत्रसिंह का पुत्र था।[8]

भगवंतसिंह,
सुभागसिंह,
फतहसिंह,
गुमानसिंह } ये चारों भाई महाराणा राजसिंह के कनिष्ठ भ्राता अरिसिंह के पुत्र थे।[9]

राव सबलसिंह चौहान—यह बेदले (एक ठिकाना) वालों का पूर्वज था।[10]

झालाचंद्र सैन—यह बड़ी सादड़ी (मेवाड़ का प्रथम श्रेणी का एक ठिकाना) वालों का पूर्वज था।[11]

रावत केसरीसिंह सगतावत (शक्तावत); केसरीसिंह शक्तावत } यह बानसी (मेवाड़ का एक ठिकाना) वालों का पूर्वज था।

गङ्गादास—यह उक्त रावत केसरीसिंह का पुत्र था।[12]

---

[1] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८४१-६१ [2] वही, खंड वही, पृ० ८३६ (पाद टिप्पणी २ सहित) [3] वही, खंड वही, पृ० ८६१-६०५ [4] वही, खंड वही, पृ० ८८८ (पाद टिप्पणी ३ सहित) [5] वही, खंड वही, पृ० ८६६ (पाद टिप्पणी २ सहित) [6] वही, खंड वही, पृ० वही (पाद टिप्पणी ३ सहित) [7] वही, खंड वही, पृ० वही, (पाद टिप्पणी ४ सहित) [8] वही, खंड वही, पृ० वही (पाद टिप्पणी ५ सहित) [9] वही खंड वही, पृ० वही [10] वही, खंड वही, पृ० वही (पाद टिप्पणी ६ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ८७४-७५ [11] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद टिप्पणी ७ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ८७१, ८७३ [12] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद टिप्पणी ८ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ६१७.

झाला जैत (सिंह)—यह देलवाड़े का स्वामी था।[1]

पँवार बैरिसल्ल (प्रमार बैरिसाल)—यह बीजोलियाँ का निवासी था।[2]

महासिंह – रावत महासिंह बेगूँवाले काशीमेघ का पौत्र तथा राजसिंह का पुत्र था।[3]

रावत रतनसेन (रत्नसिंह) चौंडावत—यह सलूंबर के रावत रघुनाथ सिंह चूंडावत का पुत्र था।[4]

सांवलदास कमध्वज्ज—यह प्रसिद्ध राव जयमल का वंशधर और बदनोर के मनमनदास का पुत्र तथा मेड़तिया राठौर था।[5]

रावत मानसिंघ (रावत मानसिंह)—यह कानोड़ वालों का पूर्वज था।[6]

रावत केसरीसिंह चौहान (केहरी सिंह चौहान)—यह पारसोली का स्वामी था।[7]

महुकमसिंह (महकमसिंह)—यह महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह के वंशज पूर्णमल्ल का पोता तथा सबलसिंह का पुत्र और भींडर का स्वामी था।[8]

सोनिंगदेव राठौड़—"मारवाड़ के रिड़मल (रणमल) के पुत्र चांपा से राठौड़ों की चांपावत शाखा चली। चांपा का प्रपौत्र, मांडल का पौत्र, और गोपालदास का पुत्र विट्ठलदास था। महाराजा जसवन्तसिंह के समय उसकी जागीर में ३५,००० रुपयों की सालाना आय के पाली आदि ३३ गाँव थे। उसके कई पुत्रों में से एक सोनिंग था। महाराज जसवन्तसिंह की मृत्यु के पीछे दुर्गादास के साथ महाराजा अजीतसिंह को लेकर महाराणा राजसिंह के पास आया। सम्वत् १७३८ वि० (१६८१ ई०) में इसकी मृत्यु हुई।"[9]

विक्रम (विक्रमादित्य)—यह सोलंकी सरदार रूपनगर वालों का पूर्वज था।[10]

रुघमांगद (रुक्मांगद)—"यह रणथम्भौर के हम्मीर का वंशज तथा कोठारिया का स्वामी था।

---

[1] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ०८६६ (पाद-टिप्पणी ६ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ०८९७, ८९८ [2] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद-टिप्पणी १० सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ०८८७-८ [3] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ०८६६(पाद-टिप्पणी ११सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ८९२, ८९४ [4] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद-टिप्पणी १२ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ८७९, ८८३ [5] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद-टिप्पणी १३ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ९१३, ९१५-६ [6] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद टिप्पणी १४ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ९०४,९०५,९०७ [7] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद-टिप्पणी १५ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ९१९-२१ [8] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद-टिप्पणी १६ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ९१०, ९११ [9] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६६ (पाद-टिप्पणी १८ सहित) [10] वही, खंड वही, पृ० ८६६, ८६७ (पाद-टिप्पणी १ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ९७४, ९७५

उदयभानसिंह (उदयकरण)—यह उक्त रुक्मांगद का पुत्र था।[1]

जसवन्तसिंघ झाला (जसवन्तसिंह झाला)—यह गोगूंदे के कान्हसिंह का पुत्र था[2]

राठौर गोपीनाथ—यह घाणेराव का स्वामी था।[3]

ग़रीबदास—यह महाराणा राजसिंह का राज-पुरोहित था।[4]

महेजा अमरसिंह (महेचा अमरसिंह)—यह नीमड़ी का शासक था।[5]

ओझा जी ने अन्य स्थल पर अमरसिंह के पुत्र भीमसिंह का महाराणा राजसिंह की मालपुरे की लूट में तथा उसके उत्तराधिकारी मेघराज का औरंगज़ेब के विरुद्ध के युद्ध में वर्तमान होना लिखा है।[6]

दयाल साह (दयाल दास)—महाराजा राजसिंह का मन्त्री दयालदास ओसवाल जाति के संघवी (संघपति) तेजा का प्रपौत्र, गजू का पौत्र और राजा का चतुर्थ पुत्र था।[7]

माधवसिंह चोड़ा (चूड़ावत)—यह सुप्रसिद्ध रावत पत्ता का चौथा वंशधर (छोटी शाखा में) था।[8]

कन्हा सगताउत (कान्हा शक्तावत)—शायद यह महाराणा प्रतापसिंह के भाई शक्तिसिंह के प्रपौत्रों में से हो। इसके वंशजों के अधिकार में चीताखेड़े की जागीर थी।[9]

खीची राव रतनसेन—अकबर के समय खीची (चौहान) बड़े शक्तिशाली थे। बादशाह अकबर और जहाँगीर के विरुद्ध युद्धों में हार कर खीची निर्बल होगए और वे उदयपुर चले गए, जिन को वहाँ जगीरें मिलीं। यह इन्हीं के वंशधर थे।[10]

गजसिंह—यह राजा सूरजसिंह राठौर के पुत्र थे। अपने पिता की मृत्यु पर जहाँगीर के १४वें वर्ष में राजा की पदवी पाई। गद्दी पर बैठते समय (१६७६ वि० कुआर सुदी ६) में इनकी अवस्था २४ वर्ष थी। सं० १६६५ ज्येष्ठ शुक्ल ३ को इनका स्वर्गवास हुआ। यह महाराजा जसवंतसिंह के पिता थे।[11]

जसवंतसिंह—छत्रसाल हाड़ा,[12] भावसिंह हाड़ा,[13] मानसिंह।[14]

---

[1] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६७ (पाद-टिप्पणी २ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ८७७, ८७८ [2] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६७ (पाद-टिप्पणी ३ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ६०२, ६०३ [3] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६७ (पाद-टिप्पणी ४ सहित) [4] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड पृ० ८६७ [5] वही, खंड वही, पृ० वही (पाद टिप्पणी ५ सहित) [6] उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ६८४, ६८५ [7] राजपूताने का इतिहास, तीसराखंड, पृ० ८६७ (पाद-टिप्पणी ६ सहित); उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ० ६६४-६ [8] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८७८ (पाद टिप्पणी ५ सहित) [9] वही, खंड वही, पृ० ८७६ (पाद-टिप्पणी १ सहित) [10] वही खंड वही, पृ० ८७८ (पाद टिप्पणी ४ सहित) [11] मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० १०८-११ [12] देखिए द्वितीय खण्ड, अध्याय ५, छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत पात्रों का ऐतिहासिक विवरण [13] वही अध्याय ३, भूषण-ग्रन्थावली की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत पात्रों का विवरण, पृ० २०५ [14] वही, अध्याय १, वीरसिंहदेव-चरित की ऐतिहासिकता, पृ० १७६

जसवंतसिंह-सुनन्दन (अजीतसिंह)—यह महाराजा जसवंतसिंह का पुत्र था। लाहौर में वि० स० १७३५, चैत्र वदी ४ को इनका जन्म हुआ था। इनकी मृत्यु आषाढ़ सुदी १३ सं० १७८१ वि० को हुई थी।[1]

दुर्गादास राठौर—यह महाराजा जसवंतसिंह के मंत्री तथा द्रुनेरा के स्वामी आसकरण के पुत्रों में से एक था। यह महाराजा अजीतसिंह के अधिकारों की रक्षा के लिए २५ वर्ष तक अविरल युद्ध करता रहा। इसने शाहज़ादा अकबर को दक्षिण में सुरक्षित रूप से पहुँचाया था।[2]

रूपसिंह राठौर—यह राजपूताने के किशनगढ़ के संस्थापक किशनसिंह राठौर (कृष्णसिंह राठौर) के पुत्र भारमल्ल का पुत्र था। अपने चाचा हरिसिंह के निस्सन्तान मरने पर यह गद्दी पर बैठा (१६४४ ई०)। सामूगढ़ के युद्ध में यह दारा के हरावल में था। उसी युद्ध में लड़ते हुए यह मारा गया (१६५८ ई०)। इसने बवेरा स्थान पर रूपनगर बसाया था।[3]

मानसिंह राठौर—यह उक्त रूपसिंह राठौर का पुत्र था। औरंगज़ेब के राजत्व-काल में तीन हज़ारी मंसब तक पहुँकर ३५वें वर्ष जुल्फ़िक़ार खाँ के साथ दुर्ग जिंजी की विजय को गया। इसकी मृत्यु १७०६ ई० में हुई।[4]

अन्य-पात्र—कवि मान ने प्रसंगवशात् सोम चहुआन, पृथ्वीराज (पृथ्वीराज) चौहान, विक्रमादित्य,[5] जयचन्द पंग, कालिदास आदि ख्याति-लब्ध नामों का भी उल्लेख किया है।

स्त्री-पात्र—पदमनि (पद्मिनी)।[6]

रानि जनादे—यह मेड़तिया राठौर राजसिंह की पुत्री तथा मेवाड़ाधिपति महाराणा राजसिंह सीसोदिया की माता थी।[7]

रूप-पुत्ति रट्ठवरि—(रूप-पुत्री राठौर) यह कृष्णगढ़ के शासक तथा रूपनगर के संस्थापक रूपसिंह राठोर की पुत्री एवं मानसिंह राठौर की बहिन थी। चारुमती इसका नाम था।[8]

पृथा-बाई—इसे पृथ्वीराज तृतीय की बहिन बतलाना मान का भ्रम है। यदि पृथा-बाई की कथा किसी वास्तविक घटना से संबंध रखती है, तो यही माना जा सकता है कि अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट) की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समर सी (समरसिंह) से हुआ होगा।[9]

मुसलमान-पात्र—अलावदी (अलाउद्दीन),[10] अबदुल्ला नवाब (ख़्वाजा अबूदुल्लाह खाँ फ़ीरोज़ जंग), अकबर (सम्राट्), जहाँगीर,[11] औरंगज़ेब, दारा, मुरादि साहि (मुराद शाह), साहि सूजा (शाह शुजा), साहिज़ादा (शाहज़ादा) अकबर।[12]

---

[1] मआसिरूल् उमरा, भाग १, पृ० ५५-६२ [2] औरंगज़ेब (१६२१ का संस्करण), भाग ३, पृ० ३३१-२ [3] मआसिररूल् उमरा, भाग १, पृ० ३६८-७० [4] वही, भाग, वही, पृ०३७० (पाद-टिप्पणी २ सहित) [5] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ११, हम्मीररासो के पात्रों की ऐतिहासिकता [6] वही, अध्याय २, गोरा बादल की कथा के पात्रों की ऐतिहासिकता, पृ० १६३ [7] राजपूताने का इतिहास, तीसरा भाग, पृ०८४१-२ (पाद-टिप्पणी २ सहित) [8] वही, वही, पृ० ८४१-२ [9] वही, दूसरा खंड, पृ० ४२७-८ [10] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ११, हम्मीररासों के पात्रों की ऐतिहासिकता [11] वही, अध्याय १, वीरसिंहदेव-चरित के पात्रों की ऐतिहसिकता, पृ० १८० [12] वही, अध्याय ५, छत्रप्रकाश के पात्रों की ऐतिहासिकता

अलिल हुसेन—(हसन अली खाँ)—राजपूताने की लड़ाइयों में यह औरंगज़ेब का एक प्रमुख सेनाध्यक्ष था। शाहज़ादा अकबर की सेना के हरावल में रहकर इसने राजपूतों से मेवाड़ में युद्ध किया था।[१]

अनिश्चित पात्र

हिन्दू-पात्र—(क) नीचे उन पात्रों के नाम दिए जाते हैं जो निश्चित रूप से मेवाड़ के शासक हुए, पर उनका ऐतिहासिक विवरण अप्राप्य है :—

माहेन्द्र—(महेन्द्र)—इस नाम के दो राजा मेवाड़ के शासक हुए पर किसी का भी विवरण उपलब्ध नहीं है।[२] मान ने केवल एक ही नाम का उल्लेख किया है।

षुमाण—(खुम्माण)—इस नाम के तीन राजा हुए, पर उनका इतिहास अप्राप्य है।[३] मान ने केवल एक ही नाम दिया है :—

जोगराज (योगराज), **चौंड** (चोडसिंह।[४]

(ख)—निम्नलिखित पात्रों को मान ने मेवाड़ का शासक माना है, पर ये कभी भी वहाँ की गद्दी पर नहीं बैठे। ये सब सीसोदे के राजा थे। इनका ऐतिहासिक विवरण अप्राप्य है :—

नरपति, दिनकर, जसकरन, पुन्यपाल, पीथड (पेथड़, पृथ्वीपाल)—[५]

(ग)—नीचे दिए हुए पात्रों को मान ने मेवाड़ के गुहिल वंश का शासक माना है, पर ओझा जी के इतिहास से इन नामों के मेवाड़ के राजा होने की पुष्टि नहीं होती है :—

कुवर, त्रिपुर सीह, गोविन्द, धवल कीरति, धारमसिंघ (धर्मसिंह), रावल गात्र, भट्टू रावल, भटेवरा नृप, करम सीह, चूड रावर, सज्जन सेन, डूंगर सी, रावल पुंजा, नर पुंज, प्रताप सीह*, राणा खेतल।

अन्य-पात्र—प्रोहित गिरिवर (पुरोहित ग़रीबदास ?), बषत सीह (बखतसिंह), डोड (डोडिया) महासिंह, चित्रांगद मोरी, नृप चित्रंगि (चित्रंगी), संग्राम सी सोलंषी, मानधाता, अजगैब, छत्रसाहि (गौड़ देश का सासक)।

स्त्री-पात्र—धनवती।

मुसलमान-पात्र—अबूमलिक अजेज (अबूमलिक अज़ीज़), रूहिल्ला खान, सैद हासा नवाब।

विलास १

चित्तौड़-दुर्ग-निर्माण—मान कवि ने मेदपाट भू-खंड में मौर्य्य शासक चित्रांग द्वारा चित्र-कोट (चित्रकूट, चित्तौड़) दुर्ग की स्थापना तथा उक्त राजा के द्वारा १८ प्रान्तों पर शासन करने का उल्लेख किया है।[६]

---

*निश्चित पात्रों में दिए हुए महाराणा प्रताप से यह भिन्न व्यक्ति था।

[१] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७६; औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ३३९, ३४०, ३४१, ३४३, ३४४, ३४५ [२] राजपूताने का इतिहास, दूसरा भाग, पृ० ४०२, ४०४ [३] वही, वही, पृ० ४२०, ४२२-४ [४] राजपूताने का इतिहास, दूसरा भाग, पृ० ४३३, ४४६ [५] वही, वही, पृ० ५१० [६] राजविलास, छं० १६, पृ० १८, छं० २१, २२, पृ० १८

इस सम्बन्ध में श्री ओझा जी का मत है कि "प्राचीन समय में उदयपुर राज्य-प्रदेश पर मेद (मेव अथवा मेर) जाति का अधिकार रहने के कारण इसका मेद-पाट नाम पड़ा। उसी से यह मेवाड़ कहलाया। मौर्य्य राजा चित्रांग के नाम पर ही उनका बनवाया हुआ गढ़ चित्रकोट (चित्रकूट, चित्तौड़) पुकारा गया।"[1] चित्रांग तथा उसके वंशजों का शासन-विवरण सहायक ग्रंथों में अप्राप्य है। इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उक्त राजा अवश्य ही अत्यन्त शक्ति-शाली एवं प्रभावशाली रहा होगा क्योंकि उसने एक ऐसे अजेय दुर्ग की संस्थापना की जो अपने ढंग का एक विचित्र एवं अनुपम गढ़ है।

गृहादित्य और बलभी-राज्य—मान के मत में बाप्पा के पिता गृहादित्य सोरठ-प्रदेश के बल्लिका-नगर (बलभी) के निवासी थे।[2]

ओझा जी का कहना है कि यह कथन निराधार है, क्योंकि "मेवाड़ की किसी ख्याति, शिलालेख और दानपत्र से इसका समर्थन नहीं होता है तथा वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७५ ई०) के बने हुए 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य के समय तक भी मेवाड़ के राजाओं का बलभी पुर से आना कोई जानता ही नहीं था।" अबुल्फ़ज़ल् के विचार में शत्रु द्वारा परनाला विजय कर लेने पर बापा नामक छोटे लड़के को लेकर उसकी माता मेवाड़ में चली आई थी। इसके अतिरिक्त मुँहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात (रचना काल १६४६ ई०) में मेवाड़ के राजाओं का दक्षिण में नासिक-त्र्यंबक की ओर राज्य करना लिखा है। सारांश यह कि उस समय (१६४६ ई०) तक भी इनका बलभी से आना कोई नहीं जानता था।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि जैन विद्वानों द्वारा उपर्युक्त भ्रामक धारणा प्रचारित की गई। जैनों को बलभी का परिचय था क्योंकि उनमें यह बात प्रसिद्ध थी कि वीर संवत् ६८० (वि० सं० ५१०= ई० स० ४५३) में बलभी में जैन संघ एकत्र हुआ जहाँ के देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने जैन-सूत्रों (सिद्धांतों) का नया संस्कार किया।

जैन ग्रन्थ 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (रचना-काल वि० सं० १३६१=ई० स० १३०४) तथा धनेश्वर सूरि कृत 'शत्रुंजय-माहात्म्य' में राजा शीलादित्य के विषय की कथा मिलती है। पर उससे बलभी के शीलादित्य से अभिप्राय है न कि मेवाड़ के शासक से। मेवाड़ के शीलादित्य वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४३) में हुए थे (सामोली के लेख के अनुसार)। गुहिल (गृहादित्य) उसका पाँचवाँ पूर्व पुरुष था अतः उसका समय वि० सं० ६२५ (ई० स० ५६८) के आस-पास स्थिर होता है। बलभी का नाश वि० सं० ८२६ (ई०स० ७६६) में सिन्ध के अरबों ने किया और ऊपर दिए हुए 'शत्रुंजय' ग्रंथ में मेवाड़ के राजाओं के मूल पुरुष का बलभीपुर से मेवाड़ जाना नहीं लिखा है।

ऐसी दशा में गुहिल को बलभी के अन्तिम शीलादित्य का पुत्र मानना असंभव है। वास्तव में मेवाड़ के राजाओं का बलभी से कोई सम्बन्ध नहीं।[4]

---

[1] राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ६९, ३०९ (पाद-टिप्पणी १) [2] राज-विलास, छं० २४-२६, पृ० १८-९ [3] राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३८९ [4] वही, जिल्द वही, पृ० ३८९-९

प्रसंग वशात् यहाँ पर एक बात और कह देना उचित प्रतीत होता है। मान के राज-विलास का आश्रय लेकर टॉड महोदय ने लिखा है "राणा राजसिंह (प्रथम) के राज्य की यादगार में बनी हुई एक पुस्तक के प्रारम्भ में लिखा है कि पश्चिम में सोरठ (सौराष्ट्र) देश प्रसिद्ध है। जंगली लोगों ने उस पर चढ़ाई करके 'बाल-को-नाथ' को परास्त किया और परमार राजा की पुत्री के सिवा, सब बलभी के पतन में मारे गए।"[1] इससे संबन्धित मान कवि की निम्न पंक्तियाँ हैं :—

"पच्छिम दिशा प्रसिद्ध देश सोरठ धर दीपत।
नगर वल्लिका नाथ जंगर करि आसुर जीपत॥"[2]

ऊपर दी हुई पंक्तियों पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि बल्लिका-नाथ ने राक्षसों को परास्त किया, न कि वे स्वयं पराजित हुए (जैसा कि टॉड महोदय मान बैठे हैं)। साथ ही परमार राजा की पुत्री के सिवा सब के मारे जाने की बात का राज-विलास में कहीं भी उल्लेख नहीं है। इसी प्रसंग में ओझा जी लिखते हैं कि "राजविलास में आगे यह भी लिखा है कि वहाँ के राजा का रघुवंशी पुत्र गुहादित्य (गुहदत्त, गुहिल) मेवाड़ में आया और नागद्राह (नागदा) नगर में उसने सोलंकी संग्रामसी की पुत्री धनवती के साथ विवाह किया। यह भी जैनों की पिछले समय की कपोल-कल्पना है। बल्लिका अर्थात् बलभीपुर का नाश होने के बाद वहाँ के राजवंश का यहाँ आना सम्भव नहीं है।"[3]

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि राजविलास में मेवाड़ और बलभी संबंधी उल्लेख अप्रामाणिक है। उस पर जैन-धर्म में प्रचलित तत्संबंधी विचार-धारा का प्रभाव है। मान कवि स्वयं जैन यति थे, अतएव वे अवश्य ही इन परम्परागत दन्तकथाओं से परिचित रहे होंगे। उन्होंने उन्हीं का उल्लेख अपने ग्रंथ में कर दिया है।

बापा रावल का विवरण—मान कवि ने बापा के पिता का नाम गुहादित्य (गुहिल) माना है, पर ओझा जी, शिलालेखों के आधार पर बापा को गुहादित्य से आठवीं पीढ़ी में हुआ मानते हैं।[4] जब बापा ११ वर्ष के हुए तो उनकी भेंट हारीत मुनि से हुई। इन मुनि ने बापा को वरदान दिया।[5] इन कथाओं से मिलती जुलती दो कथायें मुहणोत नैणसी ने अपनी ख्याति में लिखी हैं।[6] सम्भवतः राज-विलास के रचयिता ने उक्त ख्यात से ही अपनी कथा ली है।

"इस कथा में कुछ ऐतिहासिक तत्व नहीं दिखलाई पड़ता। इस के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि बापा की राजधानी नागदा के निकट उनके इष्टदेव एकलिंग जी का मंदिर था और वहाँ के मठाधिपति तपस्वी हारीत पर बापा की विशेष श्रद्धा रही होगी। इसी के आधार पर यह कथा गढ़ी गई है, ऐसा प्रतीत होता है।"[7]

---

[1] राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३८८ [2] राजविलास, छं० २४, पृ० १८ [3] राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३८८; राजविलास, छं० २८-३०, पृ० १९-२० [4] वही, छं० ३१-४३, पृ० २०-१; राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३९५ (पाद-टिप्पणी) [5] राजविलास, छं० ४४-५७, पृ० २२-४ [6] मुँहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र १, पृ० २; पत्र ३, पृ० १ [7] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४१६-९

"मान द्वारा वर्णित नागद्राह में होने वाले बापा के विवाह की कथा भी ऐतिहासिक नहीं प्रतीत होती है।[1] नागदा में भीमसी सोलंकी के राज्य होने की कथा अप्रामाणिक है। बापा या गुहिल के समय में मेवाड़ पर सोलंकियों के राज्य होने का कोई प्राचीन प्रमाण अब तक नहीं मिला है। बापा से आठवीं पीढ़ी पूर्व पुरुष गुहिल के समय से ही मेवाड़ आदि पर इनका राज्य चला आ रहा था और नागद्राह (नागदा) इनकी राजधानी थी, जहाँ का राजा सोलंकी नहीं था।[2]

इसी प्रकार बापा द्वारा चित्रकोट के शासक चित्रांगद की सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न चित्रंग मोरी से चित्तौड़ छीनने की बात मान की मन-गढ़ंत कल्पना है।[3] उस दुर्ग पर बापा ने अपना अधिकार अवश्य कर लिया था, पर उसने उसे 'मनुराज' (मान) नामक राजा से लिया था। जैसा कि 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य के इस कथन से स्पष्ट है :—

"ततः स निर्जित्य नृपं तु मोरी-जातीय भूपं मनुराजसंज्ञम्।
गृहीतवांश्चित्रित चित्रकूटं, चक्रेत्र राज्यं नृप चक्रवर्ती ॥ सर्ग ३, श्लोक १८४"

उक्त कथन का 'मनुराज' राजा मान का ही सूचक है।"[4] "इसके अतिरिक्त चित्तौड़ के दुर्ग के निकट पूठोली गाँव के पास के मानसरोवर, जिसको मान मोरी (मौर्य) ने बनवाया था, से वि० सं० ७७० (ई०स० ७१३) का राजा मान का शिलालेख, उस समय तक मोरी के अधिकार में चित्तौड़ का रहना, सिद्ध करता है।"[5]

इस सं ध में निश्चय पूर्वक कुछ कहना कठिन है, पर उपर्युक्त प्रमाणों से ऐसा अनुमान होता है कि बापा ने चित्तौड़ मान ही से छीना था, चित्रंग से नहीं, जैसा कि मान ने माना है।

आगे चलकर मान ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि जब बापा चित्तौड़ के स्वामी हो गए तब सात दिवसोपरान्त हारीत मुनि ने उन्हें स्वप्न में आकर रावल की पदवी प्रदान की।[6]

गुहिलों के शिलालेख आदि से पाया जाता है कि गुहिल से करण (कर्णसिंह, रणसिंह) तक मेवाड़ के राजाओं की उपाधि राजा होनी चाहिए। कर्णसिंह के पुत्र क्षेमसिंह (या उसके किसी उत्तराधिकारी) ने राजकुल या महाराजकुल (रावल या महारावल) उपाधि धारण की।[7] आरम्भ से ही इन्हें रावल कहना भ्रम है।

यद्यपि बापा के समय का इतिहास अन्धकार के गर्त में निहित है, तथापि सीमित प्राप्त सामग्री के आधार पर ऊपर जो कुछ विवेचन किया गया है, उससे सिद्ध हो जाता है कि मान के उक्त विषयक विवरण प्रायः काल्पनिक एवं अनैतिहासिक हैं। इसी प्रकार इस विलास की अन्य घटनाओं को भी समझना चाहिए।

विलास २

द्वितीय विलास में बापा के वंशजों का उल्लेख करते हुए मान कवि ने रावल समरसीह

---

[1] राजविलास, छं० ५८-७१, पृ० २४-६; छं० ८२-८, पृ० २७ [2] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४१६ (पाद-टिप्पणी २ सहित) [3] राजविलास, छं० ८६-१३१, पृ० २७-३३ [4] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड पृ० ४१२ (पाद टिप्पणी १) [5] वही, खंड वही, पृ० ४१३ [6] राजविलास, छं० १३५-८, पृ० ३४ [7] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४०४ (पाद-टिप्पणी २)

(रावल समरसिंह) के सम्बन्ध में लिखा है कि "उन्होंने साँभर के सोम चहुआन की पुत्री पृथा से अपना विवाह किया और जयचन्द पंग की सेना का संहार करके पृथ्वीराज को दिल्ली का राज दिलाया।"[१] कहने की आवश्यकता नहीं है कि मान ने उक्त विवरण के लिए पृथ्वीराजरासो का आश्रय लिया है। इतिहास से विदित है कि "पृथ्वीराज की मृत्यु ११९२ ई० में तथा समरसिंह का देहान्त १३०२ ई० में हुआ था। अतएव मान कवि का उक्त कथन एकदम अनैतिहासिक है।"[२]

आगे इसी प्रकार मान ने रत्नसेन द्वारा अलाउद्दीन को पराजित किये जाने का उल्लेख करके अपनी असावधानी का परिचय दिया है।[३]

रत्नसिंह के बाद के राजाओं का वर्णन करते हुए यथास्थान मान कवि ने कुंभा के द्वारा कुंभलमेर आदि के बसाने का उल्लेख किया है।[४] इतिहास से ज्ञात होता है कि "राणा कुम्भकरण ने कुम्भलगढ़ की प्रतिष्ठा कराई। उसने उस क़िले के चार दरवाजे बनवाये। इसी प्रकार उसने अन्य क़िले, मन्दिर आदि बनवाये थे।"[५] अतएव मान का उक्त कथन पर्य्याप्त मात्रा में इतिहास-सम्मत है।

मान कवि ने राजा संग्रामसिंह का विवरण देते हुए लिखा है कि उन्होंने नरवर दुर्ग जीता।[६] उसके इस कथन से संभवतः राणा सांगा के उन युद्धों से अभिप्राय है, जो उन्होंने मालवा के मुसलमान शासकों से लड़कर उन पर विजय प्राप्त की थी।[७] आगे चलकर कवि मान ने उदय-सिंह द्वारा उदयपुर की स्थापना करने का उल्लेख किया है।[८] महाराणा ने इस नगर की नीव १५५९ ई० के लगभग डाली थी।[९]

मान के इस कथन की कि 'प्रताप ने अबदुल्लाह को मारा'[१०] इतिहास से साक्ष्य नहीं मिलती। वास्तव में अब्दुल्लाह को जहाँगीर ने जून, १६०९ ई० में फ़ीरोज़ जंग की उपाधि देकर मेवाड़ पर भेजा था। उस समय मेवाड़ के सिंहासन पर महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिंह विराजमान थे। उसने १६११ ई० में राणपुर की घाटी के पास राजपूतों पर आक्रमण किया जिसमें वह पराजित हुआ।[११] अतएव मान कथित तद्विषयक उक्त कथन निराधार है।

आगे चलकर यथास्थान मान ने महाराणा जगत्सिंह के गुणों की प्रशंसा की है। "यह महा-राणा प्रजा-पालक, साहसी, वीर था और हेम आदि का तुलादान किया करता था।"[१२] इस संबंध में ओझा जी द्वारा दिये गये विवरण का सारांश निम्नलिखित है :—

"महाराणा जगत्सिंह बड़ा दानी था। सिंहासनारूढ़ होने के समय से ही प्रतिवर्ष एक चाँदी

---

[१] राजविलास, छं० ११-१३, पृ० ३९ [२] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ४८३ (पाद-टिप्पणी १) [३] विशेष विवरण के लिए देखिए द्वितीय खंड, अध्याय २, गोराबादल की कथा की ऐतिहासिकता, पृ० १९४-९५ [४] राजविलास, छं० ३२, ३३, पृ० ३९-४० [५] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ६२०-९ [६] राजविलास, छं० ३४, पृ० ४० [७] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ६६५-८; हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा, पृ० ५८-७० [८] राजविलास, छं० ३५, पृ० ४० [९] राजपूताने का इतिहास, दूसरा खंड, पृ० ७२०-१ [१०] राजविलास, छं० ३५, ३६, पृ० ४० [११] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ७९५-७ [१२] राजविलास, छं० ३८-६०, पृ० ४१-३

की तुला किया करता था और १६४८ ई० से प्रतिवर्ष, सुवर्ण की तुला करने लगा। वह अपनी जन्म-गाँठ के दिन बड़े-बड़े दान दिया करता था। उसने वि० सं० १७०४ (ई० स० १६४७) में महाकाल और ओंकारनाथ की यात्रा की और वहाँ (ओंकारनाथ में) ज्येष्ठवादि अमावस्या को सूर्य ग्रहण के समय फिर सुवरण-तुला दान किया।"[1]

ऊपर दिये हुए ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि मान कवि ने महाराणा जगत्सिंह की दानशीलता का जो उल्लेख किया है, वह यथातथ्य है।

आगे चलकर राजविलास के रचयिता ने उदयपुर नगर की शोभा, राज-सभा आदि का वर्णन किया है, जो वास्तविकता एवं सुन्दरता से ओतप्रोत है।[2]

राज सिंहजन्म—"महाराणा जगत्सिंह की महारानी जनादे के गर्भ से राणा-राजसिंह का जन्म हुआ था। बाल्यावस्था में महाराज कुमार का लालन-पालन बड़ी सावधानी के किया गया था। यह बड़े कुशाग्र-बुद्धि थे। ११ वर्ष की आयु प्राप्त करते समय तक वे अस्त्र-शस्त्र-संचालन आदि विद्याओं में विशेष कुशल एवं चतुर हो गए थे।"[3] महाराणा राजसिंह के बाल्यकाल का जितना विस्तृत विवरण मान ने दिया है, उतना अन्यत्र अप्राप्य है।

विलास-२

महाराणा-राजसिंह का बूँदी में विवाह—"महाराणा राजसिंह का प्रथम विवाह बूंदी-नरेश राव छत्रसाल हाड़ा की ज्येष्ठ राजकुमारी के साथ हुआ था। उनकी छोटी राजकुमारी का विवाह जोधपुराधीश जसवन्तसिंह के साथ निश्चित किया गया था। प्रथम विवाह संस्कार राजसिंह का हुआ, तदनन्तर जसवन्तसिंह का।"[4]

श्री ओझा जी ने राजसिंह के इस विवाह के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है; पर जसवन्तसिंह के जोधपुर-सिंहासनारुढ़ होने के सम्बन्ध में वे लिखते है :—

"पिता की मृत्यु के समय वह(जसवन्तसिंह) बूँदी में विवाह करने के लिए गया हुआ था, जहाँ दुःखद समाचार (महाराजा गजसिंह की मृत्यु) पहुँचने और बादशाह की आज्ञा प्राप्त होने पर वह तत्काल सीधा शाही दरबार में उपस्थित हो गया। महाराज गजसिंह की मृत्यु ६ मई, १६३८ ई० को आगरे में हुई और उसके पश्चात् महाराज जसवन्तसिंह का राज्याभिषेक हुआ।"[5] अतएव जसवन्तसिंह का विवाह १६३८ ई० में हुआ था।

यदि मान के उक्त कथन को सत्य माना जाये तो महाराणा राजसिंह का यह विवाह भी १६३८ ई० में हुआ होगा। ऐसी दशा में विवाह के अवसर पर राजसिंह की आयु ६ और जसवन्त सिंह की ११ वर्ष की रही होगी।

इस स्थल पर एक प्रश्न विचारणीय है कि जसवन्तसिंह आयु में राजसिंह से २ वर्ष बड़े थे तब बूंदी की बड़ी राजकुमारी का विवाह जोधपुर में न होकर मेवाड़ में क्यों हुआ? सम्भवतः

---

[1] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ०८३५-७ [2] राजविलास, छं० ६१-१४५, पृ० ४३-५४ [3] वही, छं० १४६-२६२, पृ० ५४-६१ [4] वही, छं० १-७६; पृ० ६१-७६ [5] राजपूताने का इतिहास, चौथी जिल्द, पहला भाग, पृ० ४०७, ४१३, ४६८; पं० विश्वेश्वर नाथ रेउ, मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २१० (पाद-टिप्पणी १ सहित)

मेवाड़ की मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा की निष्कलंकता ही के कारण ऐसा किया गया था। इसके अतिरिक्त महाराणा जगतसिंह की एक कुमारी (राजसिंह की बहिन) का पाणिग्रहण बूंदी के राव छत्रसाल हाड़ा के पुत्र भावसिंह के साथ हुआ था।[1] संभव है कि इस संबंध का भी उक्त विवाह-सम्बन्ध पर कुछ प्रभाव पड़ा हो।

अन्त में इस विषय में केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि मान का उक्त कथन ऐतिहासिक ही प्रतीत होता है।

विलास—४

महाराणा राजसिंह ने अपने कुंवरपदे के समय 'सर्व ऋतु-विलास' नामक महल और बावड़ी बनवा कर एक बाग़ लगवाया था।[2] मान ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।

विलास—५—७

महाराणा राजसिंह का राज्याभिषेक—महाराणा जगत्सिंह की मृत्यु के उपरान्त २३ वर्ष की अवस्था में १० अक्टूबर, १६५२ ई० को महाराणा राजसिंह सिंहासनारुढ हुए और राज्याभिषेकोत्सव १६५३ ई० ४ फ़रवरी को मनाया गया। उस अवसर पर उनके भाई, पुत्र आदि वर्त्तमान थे। कवि ने उन सभी के गुणों का उल्लेख किया है।[3] उस समय महाराणा के कुँवर भीमसिंह का वर्त्तमानत्व दिखलाकर मान ने अपनी अनभिज्ञता का परिचय दिया है। वास्तव में कुंवर भीमसिंह का जन्म वि० सं० १७११, श्रावण वदी अमावस्या मंगलवार (१६५४ ई०) को हुआ था। ऐसी परिस्थिति में उनका उक्त उत्सव के समय वर्त्तमान रहना अविश्वसनीय है।[4]

"राज्याभिषेक के उपरान्त टीकादारी की प्रथा के अनुसार महाराणा राजसिंह दिग्विजय के लिए निकले। उन्होंने ७ दिन तक मुग़ल राज्यान्तर्गत मालपुरे को लूटा। मुग़ल सेना पराजित होकर भाग गई और इनका यश अधिक विस्तृत हो गया।"[5]

इतिहास लेखकों ने मालपुरे की लूट के कुछ और ही कारण बतलाए हैं। उनके मत में "मुग़ल सम्राट् द्वारा चित्तौड़ दुर्ग की मरम्मत बन्द करवा कर बुर्ज और कँगूरे गिरवा देने (१६५४ ई०) तथा मंडलगढ़, जहाज़पुर आदि परगनों को शाही सीमा में मिला लिए जाने के कारण महाराणा बदला लेने का अवसर ढूँढ़ रहा था। शाहजहाँ की बीमारी के अवसर पर उत्तराधिकार-युद्ध में मुग़ल-साम्राजय की शक्ति को संलग्न देखकर महाराणा ई० स० १६५८,२ मई को चित्तौड़ से चलकर मालपुरे पर पहुँचा और वहाँ ६ दिन तक रहकर उसे लूटा। यहाँ बड़ी समृद्धि उसके हाथ लगी। तदनन्तर अन्य स्थानों को लूटता हुआ चातुर्मास के पूर्व ही वह उदयपुर लौट आया।"[6]

महाराणा का राज्याभिषेक १६५२ ई० में हुआ था और उन्होंने छः वर्षों के उपरान्त मालपुरा को लूटा। ऐसी दशा में मान कवि कथित टीकादारी की प्रथानुसार उस स्थान को लूटना इतिहास के विरुद्ध ठहरता है।

---

[1] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८३६ (पाद टिप्पणी ४ सहित) [2] वही, खंड वही, पृ० ८८५; राजविलास, छं० १-२३, पृ० ७६-८२ [3] वही, छं० १-६३, पृ० ८२-६५; राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८४२ [4] वही, वही, पृ० ८८८ (पाद-टिप्पणी २) [5] राजविलास, छं० १-३६, पृ० ६६-१०३ [6] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८४३-४

महाराणा राजसिंह और रूपकुमारी का विवाह—"मारवाड़ मंडलातन्र्गत रूपनगर नामक स्थान में रूपसिंह राठौर के पुत्र मानसिंह राज्य करते थे। औरंगज़ेब ने उसकी बहिन रूपकुमारी से विवाह करना चाहा। पर राजकुमारी ने एक विप्र द्वारा महाराणा राजसिंह के पास पत्र भेजा। इस पत्र को पाकर महाराणा ने रूपनगर में पहुँच कर रूपकुमारी से विवाह किया।"[1] इस घटना का वर्णन करते हुए ओझा जी ने मानसिंह की राजधानी का नाम कृष्णगढ़ और उसकी बहिन का नाम चारुमती माना है।[2] रूपसिंह राठौर ने रूपनगर नामक नगर की स्थापना की थी, अतः मान द्वारा उसे वहां का शासक बतलाना ठीक है। शेष घटनाएँ मान तथा ओझा जी के ग्रंथों में समान हैं अतएव मान का उक्त कथन ऐतिहासिक मान लेने में कोई हानि नहीं है। यह घटना १६६० ई० की है।

विलास ८

राजसमुद्र-निर्माण—"एक बार महाराणा राजसिंह चतुर्भुज नामक तीर्थ-स्थान की यात्रा करने के लिए गए। वहाँ से लौटते समय उन्होंने गोमती नामक नदी को देखा। वहीं पर उसका बाँध बँधवाने का निश्चय करके वे उदयपुर लौट आए।

१७१७ वि० (१६६० ई०) में राजस्थान में भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। प्रजा की असह्यावस्था चरम सीमा को पहुँच गई। महाराणा राजसिंह ने प्रजा-कष्ट निवारणार्थ गोमती नदी का बाँध बँधवाना प्रारम्भ कर दिया। सात वर्षोपरांत वर्षा होने पर नदी जलधि सदृश्य प्रतीत होने लगी। महाराणा ने वहाँ पर एक महल तथा एक विष्णु-मंदिर भी निमत कराए। उन्होंने १७३२ वि० (१६७५ ई०) माघ मास में मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई। इस अवसर पर महाराणा ने तुलादान तथा अन्य प्रकार के दानादि धार्मिक कृत्य किए। उस सरोवर का नाम राजसमुद्र रक्खा गया।"[3]

राज-सरोवर के संबंध में श्री ओझा जी ने, 'रणछोड़राय' कृत 'प्रशस्ति-महाकाव्य' के आधार पर, जो विवरण दिया है, उसका सारांश इस प्रकार है :—

"राज्य पाने के पश्चात् (१६६१ ई०, नवम्बर में) रूपनारायण के दर्शन को जाते समय महाराणा ने राजनगर के पास की पहाड़ियों के मध्य बहती हुई गोमती नदी को देखा और वहाँ पर एक तालाब बनवाने का निश्चय किया।

इस तालाब के बनवाने के कई कारण प्रचलित हैं। कुछ लोगों के मतानुसार (कुँवरपदे में) विवाह के लिए जयसलमेर जाते समय नदी के वेग के कारण राजसिंह को वहाँ दो तीन दिन तक रुक जाना पड़ा। इसीलिए उन्होंने नदी को रोक कर उस तालाब को बनवाने का विचार किया। कुछ व्यक्तियों का कथन है कि महाराणा ने एक पुरोहित, एक रानी, एक कुँवर और एक चारण को मारा, जिनकी हत्या से मुक्त होने के लिए यह तालाब बनवाया। कुछ विद्वानों का कहना है कि दुर्भिक्ष के कारण प्रजा की सहायता करने के लिए यह तालाब बनवाया। संभव है कि अकाल पीड़ितों को सहायता देने और तालाब के जल से पैदावार बढ़ाने के लिए ही यह बनवाया गया हो।

---

[1] राजविलास, छं० १-१०७, पृ० १०३-१८ [2] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८४१-२ [3] राजविलास, छं० १-१७२ पृ० ११८-४८

रामनगर के अलग-अलग बाँधों की खुदाई प्रारम्भ हुई (१ जनवरी, १६६२ ई०)। १७ अप्रैल, १६६५ ई० को आधार-शिला रखवाकर चुनाई का काम प्रारम्भ हुआ। १४ जनवरी, १६७६ ई० को प्रतिष्ठा का कार्य प्रारम्भ हुआ। महाराणा ने नवमी (वि० सं० १७३१ श्रावण सुदी) के दिन सपरिवार मंडप में प्रवेश करके पूजन, हवनादि का कार्य किया। उसी दिन उन्होंने रात्रि-जागरण किया। पाँच दिन में १४ कोस की नंगे पैर परिक्रमा समाप्त करके पूर्णिमा के दिन महाराणा ने प्रतिष्ठा की पूर्णाहुति दी। उस दिन राजसिंह ने तुलादान करते समय अपने पौत्र अमरसिंह को भी अपने साथ बिठा लिया। उसी दिन सप्त सागर आदि अनेक दान दिये गये। इस तालाब के बनवाने में एक करोड़ पाँच लाख सात हज़ार छः सौ आठ (१०५०७६०८ रुपये) व्यय हुए।

यह झील उदयपुर नगर से ४० मील उत्तर में है। गोमती नदी इसमें गिरती है और जल के निकास के लिए तीन स्थान रक्खे गये हैं। वहाँ पर महाराणा राजसिंह के बनवाये हुए महल हैं जो इस समय टूटी-फूटी अवस्था में हैं।"[1]

राजसरोवर सम्बन्धी मान और श्री ओझा जी द्वारा कथित ऊपर जो विवरण दिये गये हैं उनके तुलनात्मक अध्ययन से यह सार निकलता है :—

मान ने महाराणा की तीर्थ-यात्रा में चार भुजा (चतुर्भुज) और ओझा जी ने रूपनारायण का उल्लेख किया है। यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि "कांकडोली से अनुमान १० मील पश्चिम के गड़बोर गाँव में चारभुजा का प्रसिद्ध विष्णु-मन्दिर है। चारभुजा से ३ मील के लगभग सेवंत्री गाँव में रूपनारायण का प्रसिद्ध विष्णु-मन्दिर है।"[2] ऐसी दशा में महाराणा राजसिंह एक तीर्थ-स्थान को जाते समय दूसरे को भी अवश्य ही गये होंगे, क्योंकि दोनों स्थानों में केवल तीन मील का व्यवधान है। अतएव मान का चारभुजा का उल्लेख करना ठीक प्रतीत होता है। ऊपर कहा जा चुका है कि इस तालाब के बनवाने के अनेक कारणों में से दुर्भिक्ष से पीड़ित प्रजा का कष्ट-निवारण करना ही अधिक संभावित कारण लगता है।

मान कवि के अनुसार बाँध के बनने में सात वर्ष और राजप्रशस्ति-महाकाव्य के मत में चौदह वर्ष के उपरान्त पूर्णाहुति एवं प्रतिष्ठा संस्कार हुआ था।

राजविलासकार ने बाँध के पानी को सुखाये जाने और महल बनने में होने वाले व्यय की संख्या क्रमशः एक लाख दीनार तथा नौ लाख रुपये मानी है। प्रशस्ति-महाकाव्यकार ने इसके बनवाने में एक करोड़ पाँच लाख, सात हजार छः सौ आठ रुपये व्यय होना लिखा है।

शेष विवरण में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इतने विशाल कार्य के लिए भृत्य, शकट, बैल आदि की मान द्वारा उल्लिखित संख्या अत्युक्ति पूर्ण होने पर भी वास्तविक के बहुत निकट पहुँच जाती है, ऐसा अनुमान लगाना अनुचित नहीं है। प्रत्येक विभाग का ब्यौरेवार विस्तृत विवरण मान कवि की प्रतिभा का विशेष परिचय देता है।

विलास—९

औरंगज़ेब का उत्तराधिकार-युद्ध—इस विलास के आरम्भ में मान कवि ने, शाहजहाँ

---

[1] राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३१०-१; वही, तीसरा खंड, पृ० ८७१-८४

[2] वही, पहली जिल्द, पृ० ३४०-१

के बीमार पड़ने के अवसर उसके शाहज़ादों में, जो उत्तराधिकार-युद्ध हुआ था, उसकी प्रमुख घटनाओं—उज्जैन में औरंगज़ेब द्वारा जसवन्तसिंह राठौर का पराजित किया जाना, धौलपुर के स्थान पर शाह शुजा का हार कर नदी पार भाग जाना, औरंगज़ेब का ईश्वर को साक्षी करके मुराद से मित्रता करना और अंत में उसे मरवा डालना, दारा की हत्या करा देना तथा उसके द्वारा अपने पिता शाहजहाँ को बन्दीगृह में डाल देना आदि का उल्लेख किया है।[1] इन घटनाओं से सम्बन्धित ऐतिहासिक विवरण अन्यत्र दिया जा चुका है।[2] यहाँ उसके आधार पर मान कथित घटनाओं के तथ्यातथ्य का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा।

औरंगज़ेब और जसवन्तसिंह में युद्ध उज्जैन में नहीं वरन् उसके निकट धर्मत नामक स्थान पर हुआ था, जिसमें जसवन्तसिंह पराजित हुए थे।

मान का यह कथन कि औरंगज़ेब ने धौलपुर के निकट शुजा को हराया भ्रमात्मक है। यह युद्ध सामूगढ़ में हुआ था। उस स्थल पर वास्तव में दारा पराजित हुआ था। शुजा को औरंगज़ेब ने खजुआ नामक स्थान पर हराया था। इसी स्थल पर महाराजा जसवन्तसिंह रात्रि के समय शाही सेना को छोड़कर बिना युद्ध किए ही, चले आए थे और २३ जनवरी, १६५६ ई० को जोधपुर पहुँचे थे।

उपर्युक्त में से शेष घटनाओं सम्बन्धी मान के विवरण में कोई उल्लेखनीय ऐतिहासिक व्यतिक्रम नहीं है।

इसी प्रसंग में मान ने औरंगज़ेब और दारा के मध्य अजमेर में होने वाले युद्ध का उल्लेख किया है।[3] तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण का सार इस प्रकार है:—

"सामूगढ़ के युद्ध में पराजित होने के पश्चात् दारा आगरा, देहली आदि स्थानों पर होता हुआ इधर-उधर भागता फिरा। कालान्तर में कच्छ होता हुआ वह अहमदाबाद में शाहनवाज़ खाँ से धन एवं अन्य सामग्री प्राप्त करके दक्षिण जाने और जसवन्तसिंह से मिलने के उपाय सोचने लगा। यह समाचार पाते ही औरंगज़ेब अजमेर की ओर चल पड़ा। महाराजा जयसिंह की मध्यस्थता से बादशाह ने जसवन्तसिंह को क्षमा कर दिया। इस कारण महाराज जसवन्तसिंह ने दारा से मिलने का विचार त्याग दिया। सब ओर से निराश होकर दारा ने देवराय (दौराई) के निकट की पहाड़ियों का आश्रय लिया, जहाँ से वह कई दिन तक औरंगज़ेब का सामना करता रहा। पर, अन्त में पराजित होकर यह भाग खड़ा हुआ। राजा जयसिंह उसके पीछे रवाना किए गए। जसवन्तसिंह इस युद्ध के अवसर पर वहाँ नहीं थे।"[4]

मान और इतिहास में दिए हुए उक्त विवरणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

औरंगज़ेब का आतंक—इसके आगे मान कवि ने औरंगज़ेब द्वारा गोंडवाना और दौलताबाद की विजय का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त उसने औरंगज़ेब के प्रभुत्व और आतंक

---

[1] राजविलास, छं० ६-१४, १६, पृ० १४६-५० [2] देखिए द्वितीय खंड अध्याय ३, भूषण ग्रंथावली की ऐतिहासिकता के अंतर्गत औरंगज़ेब के उत्तराधिकार युद्ध का विवरण, पृ० २३३-३४; वही, अध्याय ५, छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता, के अन्तर्गत उत्तराधिकार-युद्ध का विवरण [3] राजविलास, छं० १५, पृ० १५० [4] राजपूताने का इतिहास, चौथी जिल्द, पहला भाग, पृ० ४४४-८

प्रदर्शनार्थ पूना, बीजापुर, दक्षिण, आसाम, काश्मीर, पंजाब आदि पर उसके अधिकार एवं आतंक का उल्लेख किया है।[1] इतिहास से विदित होता है कि औरंगज़ेब के समय में उक्त सभी स्थानों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मुग़ल सम्राट् का आधिपत्य अथवा आतंक वर्तमान था, चाहे वह थोड़े ही समय के लिए क्यों न रहा हो।

औरंगज़ेब और जसवंतसिंह---मान के कथन से विदित होता है कि औरंगज़ेब जसवंतसिंह से अप्रसन्न था क्योंकि उन्होंने उत्तराधिकार-युद्ध में उसका विरोध किया था। वह उसके दरबार में कभी नहीं गए। औरंगज़ेब ने प्रतिशोध-भावना से प्रेरित होकर उन्हें मरवा डालने के षड्यन्त्र रचे थे।[2]

इतिहास से ज्ञात होता है कि औरंगज़ेब ने जसवंतसिंह को मार्च, १६५६ ई० में गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया, जहाँ वह १६६२-६३ ई० तक रहा। फिर वह शाइस्ता खाँ के साथ शिवाजी के विरुद्ध दक्षिण भेजा गया। वहाँ वह १६६५ ई० तक मराठों से युद्ध करता रहा। तदुपरान्त औरंगजेब ने उसे आगरा बुला लिया। १६६६ ई०में वह ईरान के विरुद्ध भेजा गया। इसी बीच शाह ईरान की मृत्यु हो जाने पर वे मार्ग में लाहौर से ही वापस बुला लिए गए। वे १० मार्च, १६६७ ई० को आगरे पहुँचे। इसके पश्चात् इसे दक्षिण भेज दिया गया। वहाँ १६७० ई० तक रहकर वह मराठों से संधि-विग्रह करता रहा। यह १६७० ई० से १६७३ ई० के आरंभ तक पुनः गुजरात का सूबेदार रहा। सितम्बर-अक्टूबर, १६७३ ई० में शाही आज्ञा से वह काबुल की ओर चला। वहीं २८ नवम्बर, १६७८ ई० में उसका देहांत हो गया।[3]

ऊपर दी हुई महाराजा जसवंतसिंह की संक्षिप्त जीवनी से विदित होता है कि उनका सारा जीवन मुग़ल-सम्राट् की सेवा में व्यतीत हुआ। वे जोधपुर में प्रायः नहीं के बराबर रहे। समय-समय पर जागीर पुरस्कार आदि देकर औरंगज़ेब उन्हें सम्मानित करता रहा। ऐसी दशा में मान कवि का यह कथन कि वे कभी भी औरंगज़ेब के दरबार में नहीं गए, एकदम निराधार है। औरङ्गज़ेब उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें पुरस्कृत किया करता था, न कि अपने जाल में फँसाने के लिए।

हाँ, एक बात अवश्य थी। औरंगज़ेब महाराजा जसवंतसिंह से असंतुष्ट था। वह उनको सदैव संदेह की दृष्टि से देखा करता था कि वे शिवाजी से मैत्री-भाव रखते थे। वह उनसे प्रतिशोध लेना चाहता था और सदैव अवसर की प्रतीक्षा में रहता था। वह उनकी शक्ति से भी परिचित था। इसी कारण से उन्हें वह दूरस्थ सूबों—दक्षिण, गुजरात, काबुल आदि—में रखता था जिससे वे राजधानी के निकट रहकर उसके विरुद्ध कोई षड्यन्त्र न कर बैठें। इस संबंध में खफ़ी खाँ का कथन विचारणीय है। वह लिखता है कि "वह (औरंगज़ेब) धर्मत युद्ध, खजुआ का विश्वासघात और देवराई पर जसवंतसिंह की डाँवाँडोल नीति को भूला न था, वरन अवसर पाकर उसके उत्तराधिकारी से बदला लेने की सोचता रहा।"[4] और उसने ऐसा किया भी, जैसा कि आगे

[1] राजविलास, छं० १८-३०, पृ० १५०-२ [2] वही, छं० ३१-३५, पृ०१५२-७
[3] राजपूताने का इतिहास, चौथी जिल्द, पहला भाग, पृ० ४४८-५६, ५५८-६१, ४६४, ४६६-७
[4] औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ३६८

अजीतसिंह का महाराणा राजसिंह के पास जाना—"जोधपुर पर औरंगज़ेब के आक्रमण करने पर राठौरों ने सिरोही के विजेता तथा अन्य गुण-सम्पन्न महाराणा राजसिंह की शरण में बालक अजीतसिंह को भेजा। अजीतसिंह ने महाराणा को एक हाथी, ११ अश्व, एक तलवार, एक कटार और एक बहुमूल्य हीरा भेंट किया। महाराणा ने उन्हें १२ गाँव की जागीर देकर कैलवाड़ा में निवास स्थान दिया।"[1]

महाराणा राजसिंह के यहाँ अजीतसिंह के रहने के सम्बन्ध में इतिहास से ज्ञात होता है कि "देहली से आकर अजीतसिंह का पालन-पोषण आबू की एकान्त कन्दराओं में होने लगा। औरंगज़ेब की हिंदू-धर्म-संहारिणी नीति का विरोध करने के लिए सीसोदिया और राठौर परस्पर मिल गये। अजीतसिंह की माता मेवाड़ की राजकुमारी थीं। राजसिंह अपना सम्बन्धी होने अथवा एक सच्चा वीर होने के कारण से अजीतसिंह की माता की उसके अधिकारों की रक्षा करने की प्रार्थना की उपेक्षा नहीं कर सका। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी था कि मारवाड़ पर मुग़ल अधिकार हो जाने से मेवाड़ भी सरलता से विजय किया जा सकता था। इन्हीं कारणों पर विचार करके महाराणा राजसिंह ने अजीतसिंह की सहायता तथा मुग़लों से युद्ध आरंभ कर दिया।"[2]

इस उद्धरण से मान कवि के कथन की पुष्टि हो जाती है कि राजसिंह ने अजीतसिंह को अपने संरक्षण में रक्खा था तथा अन्य कारणों के अतिरिक्त यह भी औरंगजेब और मेवाड़-शासक के मध्य होने वाले युद्ध का एक प्रमुख कारण था। "जोधपुर की ख्यातों, वीर-विनोद आदि में भी इस घटना का उल्लेख है।"[3] पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ अजीतसिंह के मेवाड़ जाने की घटना को असत्य मानते हैं। इस विषय में उनका कथन है "कि सिरोही का राव बादशाह के भय से इन्हें रखने के लिए सहमत नहीं हुआ। अतएव एक ब्राह्मणी अजीतसिंह को लेकर अपने ग्राम कालिंद्री में रहने लगी।"[4] ध्यानपूर्वक विचार करने पर रेउ महोदय के उक्त कथन का वैषम्य स्पष्ट हो जाता है। एक ओर तो सिरोही के राव अजीतसिंह को रखने के लिए प्रस्तुत नहीं हुए और दूसरी ओर उन्हें एक ब्राह्मणी गुप्त रूप से छिपाये रही। किसी को इसका पता न लगना आश्चर्यजनक लगता है। औरंगज़ेब ने उनका पता लगाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न किया होगा। अतएव अजीतसिंह को एक ही स्थान पर न रखकर इधर-उधर अवश्य ले जाया गया होगा। इस समय अजीतसिंह को एक शक्तिशाली संरक्षक की आवश्यकता थी। महाराणा राजसिंह से बढ़कर कौन उनका हितैषी, निकटस्थ संबंधी और सहायक हो सकता था। अतएव उनका मेवाड़ जाना, चाहे वह अल्प काल ही के लिए क्यों न रहा हो, निर्विवाद है।

इसी प्रसंग में रेउ महोदय ने मान द्वारा वर्णित अजीतसिंह की ओर से महाराणा को जो भेंट दी गई थी उसका भी खंडन किया है। उन्होंने लिखा है "कि मुग़लों द्वारा मारवाड़ पर अधिकार कर लेने और स्वर्गीय महाराणा जसवन्तसिंह का सारा सामान सम्राट् द्वारा छीन लेने के कारण अजीतसिंह उक्त भेंट देने में असमर्थ थे।"[5]

---

[1] राजविलास, छं० १७१-२०६, पृ० १७५-८३ [2] औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ३७८, ३८१-४ [3] राजपूताने का इतिहास, जिल्द ४, भाग २, पृ० ४८८-६ (पाद-टिप्पणी १, २ सहित) [4] मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २५४-६ (पाद-टिप्पणी ५, ६ सहित) [5] वही, वही,

इस सम्बन्ध में यह बात विचारणीय है कि उस समय से आगामी तीस वर्ष पर्य्यन्त राठौर वीर युद्ध में मुग़लों के दाँत खट्टे करते रहे। इतनी लम्बी एवं भयंकर लड़ाई के लिए उन्हें महान् कोष तथा अन्य साधनों की आवश्यकता पड़ी होगी। इन दिनों मारवाड़ में अशान्ति थी। उस पर मुग़लों का अधिकार हो चुका था। उक्त प्रदेश में धनोपार्जन करना अथवा सरलतापूर्वक वहाँ से धन प्राप्त करना कठिन था। तो भी वे इतने बड़े युद्ध का व्यय जुटाने में सफल हुए थे। इसके लिए उनके पास पैतृक धन अवश्य ही रहा होगा, यद्यपि महाराजा जसवन्तसिंह की अत्यधिक सम्पत्ति को औरंज़ेब ने अपने अधिकार में कर लिया था। साथ ही अन्य साधनों से भी राठौरों ने धन प्राप्त किया होगा। अतएव महाराणा से मिलते समय उन्होंने कुछ न कुछ अवश्य ही उन्हें भेंट-स्वरूप प्रदान किया होगा। हाँ, यह हो सकता है कि उक्त भेंट में दी गई सम्पत्ति का कवि ने अत्युक्तिपूर्ण वर्णन कर दिया हो।

अतः मान का यह कथन—अजीतसिंह का मेवाड़ जाना और महाराणा को भेंट देना—एक दम निराधार नहीं माना जा सकता।

इस विलास में प्रसंगवशात् मान कवि ने महाराणा राजसिंह को सिरोही-विजेता कहा है।[1] "यह घटना वि० सं० १७२० (ई० स० १६६३) की है। उदयभान अपने पिता अखैराज को बन्दी बनाकर स्वयं सिरोही का स्वामी बन गया था। महाराणा राजसिंह ने राणावत रामसिंह को ससैन्य भेजकर उदयभान को निकाल कर अखैराज को पुनः सिंहासनारुढ़ कराया था।"[2] इस प्रसंग में जिन अन्य घटनाओं का उल्लेख कवि ने किया है, उनका विवरण यथास्थान दे दिया गया है।

विलास १०-१८

महाराणा राजसिंह और मुग़लों में युद्ध—मान के कथनानुसार "औरंगजेब दिल्ली से चलकर अजमेर पहुँचा। उसने अजीतसिंह को मांगा पर महाराणा ने उन्हें देने से मना कर दिया। युद्ध की तैयारी करके महाराणा पार्वतीय प्रदेश की ओर चले गए और 'नेनबारा' दुर्ग में जाकर रहने लगे।

औरंगज़ेब की सेना अजमेर से चलकर उदयपुर के निकट पहुँची। सम्राट् की आज्ञा से शाहज़ादा अकबर आगे बढ़ा। उसने चित्तौड़ आदि स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। महाराणा ने भी उसका सामना करने के लिए सेना भेजी।

'देवसूरी' नामक स्थान पर राजपूतों ने मुग़लों की सेना को मार भगाया और राजपूतों की एक टुकड़ी ने उदयपुर में वीरतापूर्वक युद्ध करके शत्रु को पराजित किया।

'नेनबारा' के निकट पराजित होकर मुग़ल सेना के अली हुसेन, सादुल्लाह खाँ, अकबर आदि लगभग पच्चीस कोश तक भागे।

रावत केशरीसिंह के पुत्र गंगासिंह सगताउत ने चित्तौड़ पर आक्रमण करके मार्ग में जाते हुए औरंगज़ेब के सौ हाथियों में से दश-बीस अच्छे हाथी छीन लिए। उन्होंने वे हाथी महाराणा को भेंट किए।

औरंगज़ेब कई वर्षों तक चित्तौड़ में छावनी डाले पड़ा रहा। महाराणा के राजकुमार

---

[1] राजविलास, छं० १७६, पृ० १७७ [2] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड०, पृ० ८९३-४

भीमसिंह ने औरंगजेब के सूबा गुजरात पर आक्रमण किया। सब से प्रथम उन्होंने ईडर को लूटा। महाराणा के बुला लेने पर वे ईडर, बड़नगर, सिद्धपुर आदि स्थानों को लूटकर वापस लौट आए।

उधर बधनोर पर रुहेला खां रुहेला की अध्यक्षता में आक्रमण करने वाली सेना को बधनोर के स्वामी साँवलदास ने मार भगाया।

साथ ही महाराणा के मंत्री दयालशाह ने मालवा पर आक्रमण करके बहुत सा धन प्राप्त किया।

शाहज़ादा अकबर चित्तौड़ में पड़ा था। महाराज कुमार जयसिंह ने अन्य वीरों को लेकर उस पर आक्रमण किया। घोर संग्राम के पश्चात् शाहज़ादा अकबर अजमेर भाग गया। राजपूतों ने उसके डेरे आदि लूटकर बहुत सा धन प्राप्त किया। विजयी होकर महाराजकुमार जयसिंह अपने घर को लौट गए।"[1]

उक्त युद्धों के विषय में इतिहास के विवरण का सार यह है :—

"बादशाह (औरंगजेब) ने बड़ी सेना के साथ ता० ३ सितम्बर, १६७६ ई० को महाराणा के विरुद्ध प्रस्थान किया। उसने उसी दिन अकबर को अजमेर में पहुँचने के लिए रवाना किया। वह स्वयं १३ दिन में वहाँ पहुँचा।

महाराणा ने देववारी के पहाड़ी मार्ग को बन्द कर दिया और चित्तौड़-दुर्ग को युद्ध-सामग्री से ठीक किया। वह सप्रजा पर्वतों पर चला गया। औरंजेब ने ४ जनवरी, १६८० ई० को देववारी पर अधिकार करके उदयपुर ले लिया।

मुग़लों ने चित्तौड़ पर भी अपना अधिकार कर लिया। औरंगजेब वहाँ फ़रवरी के अन्त में गया। वह २२ मार्च को अजमेर लौट आया। शाहज़ादा अकबर चित्तौड़ पर भारी सेना लिए पड़ा रहा।

महाराणा अर्वली की चोटी पर अपना अधिकार जमाए हुए थे और अवसर पाकर मुग़लों पर छापा मारते थे।

मेवाड़ में बुरी तरह पराजित होकर औरंगज़ेब चिन्तित हो उठा। उसने अधिक सतर्कता से कार्य लेना आरंभ कर दिया। उसने शाही सेना के तीन भाग किए। मेवाड़ की पहाड़ियों को घेरने के लिए चित्तौड़ की ओर आज़म देवारी के मार्ग से, उत्तर से शाहज़ादा मुअज्जम और पश्चिम में देवसूरी की ओर से अकबर भेजे गए। जून में अकबर मारवाड़ को भेज दिया गया। वह सितम्बर के अन्त में नाडौल पहुँचा। अकबर ने तहव्वर खां को देवसूरी की ओर भेजा (२७, सितम्बर)। महाराणा के द्वितीय पुत्र भीमसिंह ने उस पर आक्रमण किया। दोनों पक्षों को भारी हानि उठानी पड़ी (सितम्बर, १६८० ई०)।

मार्च, १६८० ई० में औरंग.जेब मेवाड़ से अजमेर चला गया। इसके पश्चात् राजपूतों ने मुसलमानों की चित्तौड़स्थ सेना को तंग करना आरम्भ कर दिया। वे आक्रमण करते, रसद छीन लेते और मुग़ल चौकियों पर छापा मारते। भयभीत होकर मुग़ल सेनापतियों ने आगे बढ़ने से मना कर दिया।

---

[1] राजविलास, पृ० १८४-२६३

अप्रैल, १६८० ई० में गोपालसिंह ने जफ़रनगर पर धावा बोला। आगामी मास के मध्य में चित्तौड़ में अकबर की सेना पर रात्रि में आक्रमण करके राजपूतों ने क़त्ल कर दिया। इधर बेदनोर पर महाराणा धावा मारता था। हसन अली खाँ तक ने पहाड़ पर चढ़ने में आनाकानी की। मई के अन्त में महाराणा ने अकबर पर छापा मारकर उसे भयंकर हानि पहुँचाई। भीमसिंह की आधीनता में राजपूतों ने खुले आम मुग़लों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। समतल भूमि पर आगे बढ़ने से मुग़ल सेना ने एकदम मनाकर दिया। अकबर की असफलता से अप्रसन्न होकर औरंगज़ेब ने उसे मारवाड़ भेज दिया और शाहज़ादा आज़म को चित्तौड़ का सेनापति बनाया (२६,जून १६८० ई०)।

भीमसिंह की अध्यक्षता में राजपूत सेना अर्वली से उतर कर गुजरात में फैल गई। उसने बादनगर, वीसलनगर आदि स्थानों पर धावा मारकर लूटमार की।

ईडर के राव ने राजपूतों की सहायता से अपनी राजधानी मुग़लों से छीनी।

महाराणा के दयालदास नामक वैश्य-मंत्री ने मालवा पर आक्रमण करके धार को लूटा तथा शाही हाथी, घोड़े आदि को खदेड़ कर ले गया।

गुजरात और मालवा की लूट की घटनाओं की तिथि के संबंध में प्रोफ़ेसर सरकार लिखते है कि 'मिरात-इ-अहमदी तथा ईश्वरदास के अनुसार उक्त दोनों आक्रमण उस समय हुए थे जब सम्राट् चित्तौड़ में ठहरा हुआ था (फरवरी, १६८० ई०), पर अन्तिम लेखक (ईश्वरदास) महाराणा राजसिंह की मृत्यु (२२ अक्टूबर, १६८० ई०) के पश्चात् उक्त घटनाओं का होना मानता है। ऐसी परिस्थिति में वे दिसम्बर, १६८० ई० से पूर्व घटित न हो सकी होगीं......राजविलास के आधार पर अवलम्बित टॉड महोदय द्वारा दी हुई तिथि (जनवरी-फ़रवरी, १६८० ई०) उन्हें मान्य नहीं है।'[1]

ऊपर दिए हुए मान तथा इतिहास के विवरणों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है :—

मान कवि ने औरंगज़ेब की चढ़ाई, महाराणा राजसिंह की युद्ध-मंत्रणा, उनका पर्वत की ओर प्रस्थान, उदयपुर तथा चित्तौड़ पर मुग़लों के अधिकार का सविस्तर वर्णन किया है। सरदारों के नामों की विस्तृत सूची तथा युद्ध संबंधी अन्य वर्णन विस्तीर्ण एवं अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी इतिहासानुकूल हैं।

मान कवि ने घटनाओं के वर्णन में काल-क्रम का ध्यान नहीं रक्खा है। काल-दोष की उनके घटना-वर्णन में प्रधानता है।

मान कवि तथा इतिहासकार समान रूप से इस बात को स्वीकार करते हैं कि मेवाड़ में मुग़लों की बड़ी दुर्दशा हुई थी। उनकी हार पर हार होती थी। मुग़लों को राजपूत काल के समान दृष्टिगोचर होते थे। फ़ारसी इतिहास लेखकों ने युद्धों का जो विवरण दिया है मुग़लों को

[1] औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ३८४-९२, ३९४-५; ४१९-२० (पृ० ४२० की पाद-टिप्पणी सहित); राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ८६९-७२, (पाद-टिप्पणी २), ८७८ (पाद-टिप्पणी २, ३, सहित)

उससे कहीं अधिक हानि उठानी पड़ी होगी। मुसलमानों की पराजय से सम्बन्धित युद्धों का विस्तृत वर्णन जितना राजविलास में उपलब्ध होता है, उतना फ़ारसी इतिहासों में नहीं।

पर मान कवि ने कहीं-कहीं पर कल्पना से अवश्य काम लिया है। उदाहरणार्थ उनका यह कहना कि शाहज़ादा अकबर युद्ध में पराजित होकर अजमेर भाग गया, अत्युक्तिपूर्ण है। वस्तुतः युद्ध में असफल होने के कारण वह मेवाड़ से हटा कर मारवाड़ भेज दिया गया था। इस घटना वर्णन में से कवित्व को अलग कर देने पर ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

यद्यपि मान कवि ने गुजरात और मालवा की लूट की तिथियों का उल्लेख नहीं किया है पर वे अवश्य ही महाराणा राजसिंह के समय में ही घटित हुई होंगी, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

शेष घटनाओं के सम्बन्ध में उक्त दोनों—मान तथा इतिहास के विवरणों-में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

सेनायें

नीचे मान द्वारा दी हुई सेनाओं की संख्याओं का उल्लेख किया जाता है। उनके साथ ही प्राप्त ऐतिहासिक प्रमाण भी दे दिया गया है :—

(क) **चित्रांगद मोरी की सेना**—तीन लाख अश्व, तीन सहस्र सिंधुर (हाथी), एक सहस्र रथ तथा असंख्य पदाति।[१]

(ख) **बापा रावल की सेना**—मान के अनुसार बापा के पास पाँच लाख घोड़े, दश सहस्र हाथी तथा पन्द्रह लाख पायक थे।[२]

(ग) **मालपुरे की लूट के अवसर पर राजसिंह की सेना**—एक लाख अश्व।[३]

(घ) **महाराणा राजसिंह की औरंगज़ेब के विरुद्ध सेना**—मान के अनुसार राजसिंह के साथ बीस सहस्त्र तुरंग, तथा पच्चीस सहस्र पैदल थे।[४]

सरकार ने उदयपुर की सेना की संख्या बारह सहस्त्र अश्वारोही स्वीकार की है।[५]

(ङ) मान के अनुसार इस युद्ध में महाराणा के चौदह सामन्त, दश सहस्त्र अश्व लेकर शत्रु के विरुद्ध रण क्षेत्र में उतरे थे।[६]

(च) **राठौड़ों की सेना**—मान ने लिखा है कि शाहज़ादा अकबर का सामना करनेवाली जोधपुर के राठौड़ों की सेना की संख्या बत्तीस सहस्त्र थी।[७]

(छ) **जयसिंह की सेना**—शाहज़ादा अकबर का सामना करते समय महाराणा के पुत्र जयसिंह के साथ ग्यारह सहस्र सेना थी।[८]

---

[१] राजविलास, छं० २१, पृ० १८ [२] वही, छं० १३८, पृ० ३४ [३] वही, छं० १२, पृ० ६७, छं० २८, पृ० १०० [४] वही, छं० ८१, पृ० ११८ [५] औरंगज़ेब, (१९२१ ई० का संस्करण), भाग ३, पृ० ३४३ [६] राजविलास, छं० १२३, पृ० २०५ [७] वही, छं० ६५, पृ० १६३ [८] वही, छं० ७५, पृ० २५६

मुग़लों की सेनायें

(ज) महाराणा प्रताप के विरुद्ध सम्राट् अकबर की सेना—मान ने लिखा है कि अकबर ने महाराणा के विरुद्ध ७२ सहस्र सेना भेजी थी।[१]

इतिहास से ज्ञात होता है कि महाराणा प्रताप के विरुद्ध मानसिंह के साथ ५ सहस्त्र सवारें भेजे गए थे।[२] इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि मान द्वारा कथित सेना की उक्त संख्या अतिशयोक्तिपूर्ण है।

(झ) सम्राट् बनने के अवसर पर औरंगज़ेब की सेना—मान के अनुसार जब औरंगज़ेब सम्राट् बना तब उसकी सेना में ६ लाख अश्व तथा ५ सहस्र हाथी थे।[३]

(ञ) जोधपुर के विरुद्ध औरंगज़ेब की सेना—मान का कहना है कि औरङ्गजेब ने जोधपुर के विरुद्ध २ लाख अश्व, ३ सहस्र हाथी, ७० खान और ७२ उमराव भेजे थे।[४] अन्यत्र वह लिखता है कि अजमेर में सम्राट् के पास सवा लाख अश्व थे।[५]

(ट) शाहज़ादा अकबर की सेना—मान ने शाहज़ादा अकबर की सेना के विषय में भिन्न-भिन्न संख्याओं का उल्लेख किया है। उसके अनुसार जोधपुर पर अकबर ने ७० सहस्र सेना के साथ आक्रमण किया था।[६] जब शाहज़ादा अकबर ने महाराणा के विरुद्ध प्रस्थान किया, तब उसके साथ ५० सहस्र अश्व और एक सहस्र हाथी थे।[७] पर्वतमाला में प्रविष्ट होते समय शाह-ज़ादा के साथ ३२ सहस्र अश्व थे।[८]

इतिहास से विदित होता है कि उक्त युद्ध में अकबर के सेनापतित्व में केवल १२ सहस्त्र सेना थी।[९] पर जब उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया था, तब उसके साथ ७० सहस्र सैनिक थे।[१०]

इस प्रकार मान ने उक्त सेना की संख्या के संबंध में कल्पना के साथ काम अवश्य लिया है, पर शाहज़ादे के विद्रोह के अवसर की ऐतिहासिक संख्या के आधार पर यह अनुमान लगाना असंगत न होगा कि मान शाहज़ादे की सैन्य-संख्या से परिचित थे। भिन्न-भिन्न अवसरों पर विभिन्न संख्याएँ देने का यह कारण प्रतीत होता है कि शाहज़ादा संपूर्ण सेना को अपने साथ न लेकर उसके एक भाग के साथ युद्ध विशेष में गया होगा।

(ठ) रूमी की सेना—मान लिखता है कि देवसूरी नामक स्थान पर विक्रम सोलंकी तथा गोपीनाथ कमध्वज्ज के विरुद्ध औरंगज़ेब का सेना-नायक रूमी १२ सहस्र सेना लेकर गया था।[११]

(ड) उदयपुर में शत्रु की सेना—राजविलास के रचयिता के अनुसार उदयपुर में उदयभानसिंह चौहान का सामना करने के लिए मुग़लों की २५ सहस्र सेना थी।[१२]

[१] राजविलास, छं० ३६, पृ० ४० [२] राजपूताने का इतिहास, तीसरा खं०, पृ० ७४२ [३] राजविलास, छं० १७, पृ० १५० [४] वही, छं० ८७, पृ० १६१; छं० ८८, ९१, पृ० १६२; छं० १७०, पृ० १७५ [५] वही, छं० ९३, पृ० १६३ [६] वही, छं० ९४, पृ० १६३ [७] वही, छं० ११४, पृ० २०३; छं० ७, पृ० २४३ [८] वही, छं० २, पृ० २११ [९] औरंगजेब (१९२१ ई० संस्करण), भाग ३, पृ० ३४२; राजपूताने का इतिहास, तीसरा खं०, पृ० ८७१-२ [१०] औरंगजेब (१९२१ ई० संस्करण) तृतीय भाग, पृ० ३५८ [११] राजविलास, छं०, २, पृ० २०६ [१२] वही, छं० २, प० २०८

(ढ) रूहिल्ला खाँ की सेना--मान के अनुसार बधनोर के सांवल दास मेड़तिया के विरुद्ध रूहिल्ला खाँ १२ सहस्त्र अश्व लेकर लड़ने के लिए आया था।[१]

(ण) मृतक सैनिक संबंधी मान द्वारा उल्लेख--मान ने औरंगज़ेब के उत्तराधिकार-युद्ध का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उज्जैन में औरंगज़ेब का सामना करते समय महाराजा जसवंत-सिंह के १० सहस्र वीर मारे गए थे।[२]

ऊपर दिए हुए सैनिक संबंधी विवरण से सिद्ध हो जाता है कि मान ने सेना की संख्या देने में कल्पना शक्ति से प्रचुर मात्रा में काम लिया है।

राजविसाल के उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचन के उपरांत यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त ग्रंथ में दी हुई तिथियों, घटनाओं एवं सेनाओं के वर्णन में कवि ने अतिशयोक्ति से अधिक काम लिया है। चारणों एवं भाटों में प्रचलित प्राय: सारी बातों का मान ने अपने ग्रंथ में समावेश कर दिया है। घटनावली के क्रम आदि का उसने नाम मात्र को भी ध्यान नही रक्खा है। ऐसा होते हुए भी इस ग्रंथ का अपना निजी महत्व है। युद्ध आदि विविध विषयों का जितना विस्तृत वर्णन मान कवि ने किया है, उतना इस प्रकार के बहुत कम कवियों ने किया है। इस दृष्टि से इस ग्रंथ का मूल्य अधिक बढ़ जाता है। अतएव उक्त पुस्तक से कवित्व को अलग कर देने पर यह कृति इतिहास के लिए अधिक महत्त्व और मूल्य की हो जाती है।

---

[१] **राजविलास, छं० ७, पृ० २३२** [२] **वही, छं० १२, पृ० १४६**

अध्याय-५

छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता

आगामी पृष्ठों में छत्रप्रकाश में वर्णित तिथि, बुन्देल-जन्म-वर्णन, पात्र, चंपतिराय तथा छत्रसाल के युद्धों आदि की ऐतिहासिकता पर ग्रंथ के अध्यायों के अनुसार विचार किया जा रहा है।

तिथि

छत्रसाल-जन्म-तिथि—लाल कवि ने 'छत्रप्रकाश' में केवल एक तिथि का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि "छत्रसाल ने सम्वत् १७२८ वि० (१६७१ ई०) में २२ वर्ष की अवस्था में औरंगज़ेब के विरुद्ध स्वातन्त्र्य-संग्राम आरम्भ किया था।"[1] इस कथन के आधार पर छत्रसाल की जन्म-तिथि १७०६ वि० (१६४६ ई०) ठहरती है।

अध्याय-१

बुन्देल-जन्म-वर्णन

लाल कवि ने अपने ग्रंथ में "भगवान् राम के पुत्र कुश की वंशावली का उल्लेख करते हुए काशीराज द्वारा काशी में राज्य-संस्थापन का वर्णन किया है। इनके वंशज काशीश्वर कहलाए। काशीराज के पुत्र गहिरदेव के नाम पर इनके वंशधर गहिरवार नाम से पुकारे जाने लगे। आगे चलकर इनके वंश में वीरभद्र पंचम नामक पाँचवें पुत्र ने विंध्याचल पर विंध्यवासिनी देवी की नौ दिन पर्यन्त अर्चना करके अपना सिर काटकर उन पर चढ़ाया, इससे प्रसन्न होकर देवी ने अमृत द्वारा उसे पुनः जीवित कर दिया। रक्त की बूँद देने के कारण यह बुन्देल कहलाए और इनका पुत्र बुन्देला। इसी से इनके कुल का नाम बुन्देला पड़ा।"[2]

छत्रप्रकाश में वीरभद्र के जिन पूर्वजों के नाम दिए गए हैं उनका वीरसिंहदेव-चरित में अभाव है। छत्रप्रकाश की रचना वीरसिंहदेव-चरित से लगभग एक शताब्दी के पश्चात् हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि इस दीर्घ काल में चारणों की कृपा से उक्त नामावली का बुन्देलों के पूर्वजों की वंशावली में समावेश कर दिया गया है। संभवतः लाल कवि ने उसी परम्परा का अनुकरण करके उन नामों का अपने ग्रंथ में उल्लेख कर दिया है।

इसी प्रकार वीर बुंदेल के पिता पंचम के नाम के संबंध में भी विद्वानों को संदेह है। यह अपने पिता के पाँचवें पुत्र थे। संभवतः इसी कारण से "पंचम पुत्र का पंचम शब्द रूढ़ि कर लाल कवि ने उसका नामकरण कर दिया है।"[3] वस्तुतः छत्रप्रकाश के रचयिता इनके नाम से अपरिचित थे।

---

[1] छत्रप्रकाश, अध्याय १२, पृ० ८६ [2] वही, अध्याय १, पृ० १-८ [3] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ३, १६७६ वि०, पृ० ४१८

छत्रप्रकाश की रचना के पश्चात् के ग्रंथकारों ने इसी कथा को घटा बढ़ा कर अपनी रचनाओं में दे दिया है। प्रसंगवशात् यहाँ पर उनका संक्षिप्त उल्लेख कर देना न्यायसंगत प्रतीत होता है।

हक़ीक़ुतुल्-अक़ालीम का लेखक बुन्देलों की उत्पत्ति दासी से मानता है।[1] इस लेखक का यह कथन इसकी अज्ञानता एवं विद्वेष-भावना का परिचायक है।

टाड महाशय और मआसिरुल् उमरा के मत में विंध्यवासिनी देवी की उपासना करने के कारण यह बुन्देला कहलाए।[2]

उक्त सभी कथाओं का केवल इतना ही अभिप्राय प्रतीत होता है कि इस वंश के एक शक्तिशाली महापुरुष ने बनारस से चलकर मिर्ज़ापुर होते हुए बुन्देलखंड में जाकर वहाँ के तत्कालीन अफ़ग़ान आदि निवासी तथा अन्य राजपूतों को पराजित करके अपने राज्य की नींव डाली। विन्ध्यवासिनी देवी के उपासक होने के कारण ये बुन्देले कहलाए और उस प्रदेश का नाम बुन्देलखंड विख्यात हुआ।[3] इसी विवरण को आधार मानकर बुन्देलों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विविध कथायें और किम्वदन्तियाँ प्रचलित हो गई हैं। कह नहीं सकते कि इन कथाओं का आरम्भ कब से हुआ। सम्भवतः चारणों में यह कथायें मौलिक रूप में पहले से ही प्रचलित थीं, पर केशव के पश्चात् ही उनका प्रचलन हुआ होगा, नहीं तो वे उनकी ओर अवश्य संकेत करते। उन्हीं जनश्रुतियों के मौखिक-रूप को आधार मानकर गोरेलाल ने छत्रप्रकाश में बुन्देल-वंशोत्पत्ति सम्बन्धी उक्त रूपक बाँधकर अपनी कल्पना-शक्ति एवं वास्तविकता के प्रति उपेक्षा-भावना का परिचय दिया है।

पवार वंश (प्रमार वंश)—लाल कवि ने लिखा है कि "छत्रसाल ने 'अग्निवंस के पवार कुलवार कुरी' के राजपूत की राजकुमारी से विवाह किया।"[4] प्रमारों को अग्निवंशीय मानकर इन्होंने कवि-परम्परा का अनुकरण मात्र किया है। वास्तव में प्रमार अग्निवंशीय क्षत्रिय नहीं हैं।[5]

निश्चित-पात्र

हिंदू-पात्र—वीरभद्र, पंचम, वीर बुन्देल, करन, अर्जुनपाल, सहनपाल, सहज-इन्द्र (सजेन्द्र) नौनिकदेव, पृथीराज (पृथ्वीराज), रामसिंह, रामचन्द्र, मेदिनीमल्ल, अर्जुनदेव, मल्लखान, रुद्र-प्रताप (प्रतापरुद्र), भारतीचन्द, मधुकरसाहि, जुझारसिंह, पहारसिंह आसकरन।[6]

चंपतिराइ (चंपतिराय)—यह महेवा के शासक थे। जुझारसिंह के मारे जाने और उसके राज्य के साम्राज्य में मिला लिए जाने पर उस प्रान्त में विद्रोह कर इन्होंने लूट मचा रक्खी थी। चंपतिराय ने बहुत दिन तक वीरसिंहदेव और जुझारसिंह की सेवा की थी। वह दाराशिकोह, आलमगीर आदि की सेवा में भी रहे। फिर बहुत समय तक मुग़लों को तंग करते रहे। १७२१ वि० (१६६४ ई०) में इनकी मृत्यु हुई।[7]

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ३, १९७९ वि०, पृ० ४१८-९; मेमाअर्स ऑव् दी हिस्ट्री, फ़ोकलोर एन्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑव् रेसेज़ ऑव् दी नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसेज़ ऑव् इंडिया, भाग १, पृ० ४५ [2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ३, १९७९ वि०, पृ० ४१९-२०; मआसिरुल् उमरा, भाग २, पृ० ३१७ [3] औरंगज़ेब, भाग १, पृ० १५ [4] छत्र-प्रकाश, पृ०७० [5] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ११, हम्मीररासो की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत अग्नि-कुलोत्पत्ति [6] वही, अध्याय १, वीरसिंहदेव-चरित के पात्रों की ऐतिहासिकता, पृ० १७४-८१ [7] बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ०१४१-६२; मआसिरुल् उमरा, भाग १,पृ०१३६-८

छत्रसाल—(छतारौ)—यह चम्पतिराय बुन्देला के पुत्र थे। छत्रसाल (जिसने छोटा मंसब पाया था) शिवाजी भौंसला के पास गया। वहाँ से लौट कर लूट-मार आरंभ कर दी। २२वें वर्ष जसवन्तसिंह बुन्देला उसे दमन करने गया। कई बार बादशाही नौकरी में आकर अपने देश को लौट गया। इन्होंने बहुत सी विजय प्राप्त की थीं। १७३१ ई० में इनकी मृत्यु हुई।[1] देहावसान के समय इनकी आयु ८२ वर्ष की थी।

देवीसिंह--यह राजा रामचन्द्र के पौत्र, भारथसाहि के पुत्र थे। जुझारसिंह के पराजित हो जाने पर सन् १६३५ ई० में यह ओड़छा के शासक हुए। कुछ समय के उपरान्त वे शाहजहाँ के पास दक्षिण में चले गए और ओड़छा खालसा कर लिया गया।[2]

सिवराज, सिवा।[3]

राजा इन्द्रमणि धंधेरा—यह सहरा के शासक थे। शाहजहाँ के शासन के १०वें वर्ष में यह बन्दी बनाया गया। १६५८ ई० में झंडा और डंका पाकर वह सम्मानित हुआ। शुजा के साथ युद्ध के अनन्तर बंगाल में इसकी नियुक्ति हुई जहाँ अपनी मृत्यु तक बादशाही कामों में लगा रहा।[4]

जयसिंह (मिर्ज़ा राजा जयसिंह कछवाहा) - यह राजा महासिंह (जयपुराधीश) के पुत्र थे। सन् १६१७ ई० में १२ वर्ष की अवस्था में मंसब पाया। १६२८ ई० में शाहजाहाँ ने इनका विशेष आदर किया। विविध स्थानों पर इन्होंने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। १६४४ ई० में यह दक्षिण के सूबेदार नियत हुए। औरंगज़ेब के राज्य के ७वें वर्ष शिवाजी को दंड देने के लिए नियुक्त हुए। १६६७ ई० में बुर्हानपुर में इनकी मृत्यु हुई।[5]

जसवन्तसिंह—यह राजा गजसिंह (मारवाड़) के पुत्र थे। १६४१ ई० में यह कंधार में नियुक्त हुए। धीरे-धीरे इनके पद में वृद्धि होती गई। १६५८ ई० में दक्षिण से आगरे की ओर बढ़ते हुए औरंगज़ेब का उज्जैन निकटस्थ धर्मत स्थान पर इन्होंने वीरतापूर्वक सामना किया, पर इसमें उन्हें भागना पड़ा। शुजा के युद्ध में यह सेना के दाहिने भाग में नियुक्त हुए थे। मिर्ज़ा राजा जयसिंह की मध्यस्थता से क्षमा करके इन्हें अहमदाबाद की सूबेदारी मिली। १६६१ ई० में यह दक्षिण भेजे गए। वहाँ पर इन्होंने यथाशक्ति शिवाजी के दमन में प्रयत्न किया। १६७८ ई० (पौष ब० १०, १७३५ वि०) को ५२ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई।[6]

दुरगादास राठौर।[7]

इन्द्रमनि—(इन्द्रमणि) ओड़छाधीश सुजानसिंह के निस्संतान मरने पर शाहजहाँ ने उनके भाई इन्द्रमणि को ओड़छा का राजा बनाया। १६५८ ई० में चंपतिराय का दमन करने के लिए ये नियुक्त हुए थे। १६६४ ई० दक्षिण से लौटने पर ओड़छा के राजा बनाये गये। १६७६ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।[8]

---

[1] मआसिरुल् उमरा, भाग वही, पृ० १३६-६ [2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ३, १६७६ वि०, पृ० ४५४; मआसिरुल् उमरा, भाग १, पाद-टिप्पणी २, पृ० १३६ [3] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ३, भूषण-ग्रन्थावली की ऐतिहासिकता, पृ० २०४ [4] मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ०७९-८० [5] वही, भाग वही, पृ० १५४-६३ [6] वही, भाग वही, पृ० १६६-७५ [7] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ४, राजविलास की ऐतिहासिकता, पृ० २४७ [8] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग ३, १६७६ वि०, पृ० ४६२-३

प्राननाथ जी—यह महात्मा काठियावाड़-प्रदेश के जामनगर नामक स्थान के निवासी थे। इनके उपदेशों का संग्रह "कुलज़म" नाम से प्रसिद्ध है। इनके अनुयायी धामी कहलाते हैं। ये छत्रसाल के धर्म-गुरु थे। पन्ना में इनकी समाधि एक बड़े दिव्य और भव्य मन्दिर में है।[1]

सुजानसिंह—यह पहाड़सिंह बुन्देला का पुत्र था। शाहजहाँ का कृपा-पात्र होकर कामों पर नियुक्त हुआ। जलूस के २८वें वर्ष में इसको राजा की पदवी मिली। श्रीनगर, दक्षिण आदि में इसने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। १६६८ ई० में इसकी दक्षिण में मृत्यु हुई।[2]

छत्रसाल हाड़ा—(राव सत्रुसाल हाड़ा)—यह बूंदी के गोपीनाथ के पुत्र थे। १६३१ ई० में यह बूंदी के शासक हुए। बालाघाट, बलख, बदख़शाँ, क़ंधार आदि की चढ़ाइयों में इन्होंने बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। उत्तराधिकार युद्ध में सामूगढ़ नामक स्थान में १६५८ ई० में दारा के हरावल में लड़ते हुए औरंगज़ेब की सेना द्वारा यह मारे गए।[3]

मुसलमान-पात्र साहिजहाँ (शाहजहाँ)—यह जहाँगीर का पुत्र था। इसका वास्तविक नाम शाहज़ादा ख़ुर्रम था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् १६२७ ई०में सिंहासनारूढ़ हुआ। १६५८ ई० में औरंगज़ेब ने इसे बन्दीगृह में डाल दिया। १६६६ ई० में चौहत्तर वर्ष की अवस्था में इसका देहान्त हुआ।[4]

दारासाह (दाराशुकोह)—यह शाहजहाँ का सब से बड़ा पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। इलाहाबाद, पंजाब, मुल्तान आदि सूबों का शासक रहकर उसने पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था। शाहजहाँ उसे प्रायः अपने पास ही रखता था। १६५८ ई० के उत्तराधिकार-युद्ध में वह हार-कर भागा। अन्त में पकड़ा गया और ३० अगस्त (अथवा ६ सितम्बर), १६५६ ई० को उसकी हत्या कर दी गई।[5]

सूजा (शाह शुजा)—यह शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र और बंगाल का सूबेदार था। इसने विद्रोह किया तब राजा जयसिंह ने इसे पराजित किया। उत्तराधिकार-युद्ध में आगरे पर अधिकार प्राप्त करने की कामना से बंगाल से चल पड़ा, पर 'खजुआ' के युद्ध में पराजित हुता। वहाँ से वह अराकान की ओर भाग गया और वहीं पर मार डाला गया।[6]

औरंगसाह, नौरंगसाह (औरंगज़ेब)—यह सम्राट् शाहजहाँ का तृतीय पुत्र था। इसने बुन्देलखंड, दक्षिण आदि में विविध युद्धों में बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। उत्तराधिकार-युद्ध में विजयी होकर भारत का शासक बना और १६५८-१७०७ ई० तक राज्य किया।[7]

---

[1] छत्रप्रकाश, पाद-टिप्पणी २, पृ० १५०-२ [2] मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० ४३५-६ [3] वही, भाग वही, पृ० ४०१-५ [4] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भाग ४, पृ० १६५, १६८, १६६-७३, १७६-७ १८३-२२१, २२३, २३२, २३३ [5] वही, भाग वही, पृ० १७४, २०१, २०६, २०७, २०६, २१०, २१३-५, २१७, २२०, २२२, २२३, २२६, २२७, २३० २३२, २७१; क़ानूनगो; दाराशुकोह सम्पूर्ण; औरंगज़ेब, भा० पृ० १, २६३-६; २६६, ३०४; वही, भाग २, पृ० २७, ३३, ३५, ३८, ५६, ६८, १०१, १०६, १०७-८, ११३, १६३, १६४, १६६, १६८, १७२, १७३, १८८, १८६, २०६, २१०, २१६, [6] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भाग ४, पृ० १६४, २११, २१२, २१५, २१८, २२२, २२३, २२४-६, २३२, ४८०-१ [7] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भाग ४, पृ० १६६-७, १७४, १६५, १६८, २००, २०४, २०५, २०६, २०७, २०६-१५, २२२-३१८; सरकार, औरंगजेब, पाँचों भाग सम्पूर्ण।

मुरादसाह (मुराद बख़्श)—यह शाहजहाँ का चतुर्थ पुत्र और गुजरात का सूबेदार था। धर्मत और सामूगढ़ के युद्धों में इसने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। कालान्तर में औरंगज़ेब ने इसे बन्दी बनाकर ग्वालियर भेज दिया और वहीं पर वह १४ दिसम्बर १६६१ ई० को फाँसी पर लटका दिया गया।[१]

अकबर सहिजादो (अकबर शाहज़ादा)—यह औरंगज़ेब का पुत्र था। औरंगज़ेब ने इसे मारवाड़ और मेवाड़ के युद्धों में भेजा। वहाँ विद्रोही बनकर वह स्वयं सम्राट् बन बैठा। राजस्थान से भाग कर वह दक्षिण पहुँचा और अन्त में फ़ारस को चला गया।[२]

बहादुर साह (बहादुर शाह)—यह औरंगज़ेब का पुत्र था। इसका वास्तविक नाम मुअज़्ज़म शाह आलम बहादुर शाह था। औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् यह मार्च १७०७ ई० में गद्दी पर बैठा। २७ फ़रवरी, १७१२ ई० को इसका देहान्त हुआ।[3]

बहादुर खान—लाल कवि ने सम्भवतः इस नाम से खा़न-जहाँ (मलिक हुसेन) बहादुर ख़ाँ की ओर संकेत किया है।[४]

तहवर (तहव्वर खाँ)—यह औरंगज़ेब का एक प्रमुख अमीर तथा सेना-नायक था। मारवाड़ के युद्ध में इसने बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी।[५]

अबदुल्ला ख़ाँ—कवि ने संभवतः अब्दुल्लाह ख़ाँ की ओर संकेत किया है।[६]

दलेल खान—यह सिहौंढ़ा का शासक था। बुन्देलखंड में प्रचलित परंपरा के अनुसार दलेल ख़ाँ मुहम्मद ख़ाँ बंगश का पुत्र बतलाया गया है, जिसका लालन-पालन छत्रसाल ने किया था। कुछ विद्वानों के मत में वह चंपतिराय का मित्र था। वह मई, १७२१ में मरा।[७]

नौसेरी खाँ[८], **अबदुलसमद**।[९]

अनिश्चित पात्र

नीचे उन पात्रों के नाम दिए जा रहे हैं, जिनका ऐतिहासिक विवरण अप्राप्य है:—

हिन्दू-पात्र—सूर्य, मनु, रामचन्द्र, कुस, लव, कलस, हरिब्रह्म, महीपाल, उदित-भुवपाल, कमलचन्द, चित्रपाल, बुद्धिपाल, बिहंगराज, कासिराज (काशीराज)। गहिरदेव, विमलचंद, नाहुचंद, गोपचंद, गोविंदचंद, टिहनपाल, विंध्यराज, सोनिकदेव, बीझलदेव, अर्जुनवर्म, उदयाजीत,

---

[१] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भाग ४, पृ० १७३, २००, २०३, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २२२, २२८ [२] वही, भाग वही, पृ० २४८, २४९, २५०, २५१-२, २८०-१, २८२-४, ३३८, ३४०, [३] वही, भाग वही, पृ० ३१९-२४ [४] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ३, भूषण ग्रन्थावली की ऐतिहासिकता, पृ० २०७ [५] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ० २४८, २५०, २५१, २५२ [६] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय १, वीरसिंहदेव चरित की ऐतिहासिकता, पृ० १८१ [७] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, सं० XLVII, १८७८ ई०, पृ० ३६५-७१; बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २०३, २१०, २११, २३७ [८] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ३, भूषण-ग्रन्थावली की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत खान दौरां नौशेरी खाँ का विवरण, पृ० २०७ [९] वही, वही, वही, पृ० २०९

कीरतसाहि, भूपतिसाहि, आमनदास, चंदनदास, दुर्गादास, घनस्याम, प्रागदास, भैंरोदास, खाँडेराय, प्रेमचंद, कुवरसेन, मानसाहि (मानसाह), भागवतराइ, खरगराइ, चंद, सुजानराइ, सारवाहन, अंगदराइ (अंगद), रतनसाहि (रतनसाह, रतन), गोपाल, उगरसाह, बंका, चौदहा मेघ (?) अजीत-राइ (राइ अजीत), मनौला, हरी जसौंधी, दलेल दौवा, साहिबसिंह धंधेरा (साहिबराइ), सिबराम दौवा, गुपाल बारी, ज्ञानसाह, मान, धुरमंगद, कुंवर नरायनदास, गोविंदराइ पैंतपुरवारे, सुन्दरमनि पमार, दलसिंगार, राममनि दौवा, मेघराज परिहार, किसोरी खंगार, दलसाह मिश्र, हरकृष्ण (मिश्र हरिकृष्ण), लच्छे, राउत (रावत), राममनि, हरिबंस, मेघी, परदौन, दयाले, फानु भाट, पंबल ढीमर, खरगे बारी, मोदी पतै, कुँवरराज रनधीर धंधेरौ, केसरीसिंह धंधेरा, आनंदराइ चौधरी, जैत पटैल, दासजी राइ मवासी, दागी केसौराइ मवासी, दीपसाह, अनन्द चौधरी, सबल साह, धारू, कीरति, रामजू, पृथीराज, दीप दिवान, माधोराइ, बसंत, उदयभान, अमरसिंह, परताप, चन्द, कर्न (करन जू), इन्द्रमनि साहिगढ़ वारे, उग्रसैन, जगतसिंह, सकतसिंह, जामसाह, परबत-सिंह (परबतसाह), रूपसाह, चन्द्रहंस, चित्रांगद, जसवन्त, रामसिंह, जैसिंह, जादौराइ, गाजीसिंह, गुपालमनि, चिंतामनि सुरकी, बिसुनदास, बावराज परिहार, नन्दन छिपी (छीपी), कृपाराम, जगतेस, दुलची, परसराम सोलंकी, बालकृष्ण, गङ्गाराम, मेघराज परिहार, अरि साऊ, बरगीदास, हमीर धंधेरो, भावतराइ पमार, सबदलराइ, भोज, दलसाइ मिश्र, किसुनदास, उदैकरन, हरजू (हरजूमल्ल), दयाल, गौतम, बले बैसु, भूपतिराय बैस, घनश्याम, जगतराइ, नवल, प्रेमसाह, राना रामदास, सुंदरमनि, मल्ल सुजान, सभासिंह, उदैकरन, देवकरन, अमरसाह, राइ अमान, देवकरन, गजसिंह, खांडेराइ, माधौसिंह कटेरावारो, नंद महाराजा, सुभकरन, बलदाऊ (बल दिवान, देव दिबान), अमर दिवान, भारतसाह, माधौराइ, हाड़ा दुरजनसाल (छत्रसाल हाड़ा ?), मुकुन्दसिंह हाड़ा।

स्त्री-पात्र—हीरादे रानी, लालकुँवरि, देवकुँवरि।

मुसलमान-पात्र—बाकी खान (बाक़ी ख़ाँ), भोर गौर, सहिबाज खाँ, फ़ते खाँ, खानजहाँ, सैद महम्मद (सैय्यद मुहम्मद), कासिम खाँ, नामदार खाँ, फ़िदाई खाँ, महमद हाशिम, खालिक, सैद बहादुर, सैद मनौवर, रनदूलह, रूमी, सैद लतीफ, अधसेरी उमराव, सेख अनौर, सुतरदीन (सुतरदीं*), हमीद खान, सैद लतीफ़, नाहर खान, बहलोल खान मयानौ*, मुरादखान, साहकुली, सैद अफगन खान, सेर खाँ (शेरखाँ), फोजे मियाँ, बाकीखान बुन्देले (?), ईसफखान, अलीखाँ, खानखाना।

अध्याय २·४

छत्रप्रकाश के उक्त अध्यायों में छत्रसाल के पूर्वजों, सारवाहन के चरित्र और छत्रसाल की बाल-लीलाओं का उल्लेख किया गया है।[1] इनमें से कुछ घटनाओं का पात्रों की ऐतिहासिकता पर विचार करते समय यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। शेष घटनाओं पर उचित सामग्री के अभाव में यहाँ पर विचार नहीं किया सका है।

---

* इन नामों का भूषण ने भी उल्लेख किया है। देखिये द्वितीय खंड, अध्याय ३, भूषण-ग्रंथावली की ऐतिहासिकतान्तर्गत अनिश्चित मुसलमान पात्र-सूची। पृ० २१०

[1] छत्रप्रकाश, पृ० ६-२७

अध्याय ५

शाहजहाँ और बुन्देलखंड—लाल कवि ने इस अध्याय में शाहजहाँ द्वारा बुन्देलखंड पर आक्रमण करने, जुझारसिंह के विद्रोह, पहाड़सिंह के राजा बनने आदि घटनाओं का उल्लेख किया है।[1]

उक्त घटनाओं के संबंध में इतिहास ग्रंथों से यह विवरण प्राप्त होता है:—

"जहाँगीर की मृत्यु से तीन-चार मास पूर्व वीरसिंहदेव ने मानव-लीला समाप्त की और उसका पुत्र जुझारसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। शाहजहाँ के सिंहासनारूढ़ होते ही वह आगरा छोड़ कर ओड़छा चला गया। खान .खानान महावत की अध्यक्षता में विशाल सेना भेजी गई। अबदुल्ला .खाँ ने ऐरछ में दो सहस्र सैनिकों का संहार करके उस पर अधिकार कर लिया। ओड़छा पर भी आक्रमण हुआ। जुझारसिंह ने संधि कर ली।

कुछ समय के पश्चात् जुझारसिंह ने चौरागढ़ पर विजय प्राप्त कर ली। शाहजहां ने औरंगज़ेब के सेनापतित्व में सैय्यद अब्दुल्लाह और खान-ए-दौरा आदि वीरों के साथ २,७००० सेना भेजी। इस सेना ने ओड़छा पर अधिकार करके देवीसिंह को वहाँ का राजा बनाया (४ अक्टूबर, १६३५ ई०)।

जुझारसिंह धामौनी से भागकर चौरागढ़, देवगढ़, चाँदा आदि स्थानों में होते हुए बनों में भटकते फिरे। अन्त में गौंडों ने जुझारसिंह और विक्रमाजीत के शिरों को काटकर दिसम्बर, १६३५ ई० में शाहजहाँ के पास भेज दिया।

औरंगज़ेब की प्रार्थना पर शाहजहाँ दतिया और ओड़छा में स्वयं गया (नवंबर, १६३५ ई०)। वहाँ से वे दोनों दौलताबाद को चले गए। (१४ जुलाई, १६३६ ई०)।

चंपतिराय तथा अन्य बुन्देलों ने शाहजहाँ की आधीनता नहीं स्वीकार की। वे जुझारसिंह के अल्प-वयस्क पुत्र पृथ्वीराज को राजा बनाकर ओड़छा की सीमा में लूटमार करते रहे। अब्दुल्लाह खाँ इस्लामाबाद में रहकर उस प्रदेश का शासन करता था। उसके एक सेना-नायक बाक़ी .खाँ ने १८ अप्रैल, १६४० ई० में बुंदेलों को पराजित किया। चंपतिराय भाग गए और पृथ्वीराज बन्दी बनाकर ग्वालियर के कारागार में डाल दिया गया।

सन् १६३५ ई० में छः वर्ष पर्यन्त प्रयत्न करने पर जब वहाँ पर शान्ति स्थापित न हो सकी तब १६४१ ई० में पहाड़सिंह को वह राज्य दे दिया गया।

इस प्रकार अबदुल्लाह खां, बाक़ी खां और बहादुर खां आदि चंपतिराय को दबाने के लिए सतत प्रयत्न करते रहे, पर वे उसमें असफल रहे।"[2]

छत्रप्रकाश और इतिहास में वर्णित उक्त घटनाओं के विवरणों में परस्पर बहुत साम्य है और उनमें कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है।

---

[1] छत्रप्रकाश, पृ० २८-३४ [2] इलियट एंड डाउसन, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा०७, पृ०६-७, १६, ४७-५२; औरंगज़ेब भा० १, पृ० १६-२६, २६, ३०; ३१; लेटर मुग़लस्, भा० २, पृ० २२२-३; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ३, पृ० ४५४-७; मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० २२१

चंपतिराय की हत्या के लिए षड्यन्त्र—लाल कवि ने लिखा है कि चंपतिराय से भयभीत होकर पहाड़सिंह ने उनको विष देने तथा चोर द्वारा मरवा डालने की चेष्टायें की थीं।[1] फ़ारसी इतिहासकार इस सम्बन्ध में मौन हैं, पर परिस्थितियों पर विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है। यद्यपि पहाड़सिंह चम्पतिराय से सन्धि कर चुके थे[2] पर उनकी बढ़ती हुई शक्ति से वे अवश्य ही भयभीत हो गए होंगे। दूसरे, शाहजहाँ के संकेत पर उनका नाश कर के अपने राज्य को निष्कंटक करने की उन्होंने अवश्य ही चेष्टा की ही होगी। इसी उद्देश्य में सफल होने के लिए "पहाड़सिंह ने ४ जून, १६४२ ई० में अब्दुल्लाह खाँ के साथ सन्धि की थी कि वे चम्पतिराय और उसके साथियों का सर्वनाश करने में सफल हों।"[3]

अपने प्रतिद्वन्द्वी को मार कर अपने राज्य को निष्कंटक करने की घटनायें राजघरानों में अतीत काल से ही होती रही हैं। अतएव कवि द्वारा कथित चंपतिराय की हत्या के लिए किए गए षड्यन्त्र सत्य प्रतीत होते हैं।

कंधार पर अक्रमण—आगे चलकर लाल कवि ने लिखा है कि "चम्पतिराय शाहजहाँ की सेवा में चले गए। कुछ समयोपरान्त वे दारा के साथ कन्धार पर आक्रमण करने के लिए गए। वहाँ पर उन्होंने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। फिर कौंच की जागीर के प्रश्न को लेकर दारा और चम्पतिराय में वैमनस्य हो गया। परिणामस्वरूप मंसब त्याग कर वे स्वदेश लौट आए।"[4]

इतिहास से विदित होता है कि पहाड़सिंह को गद्दी मिल जाने पर चम्पतिराय ने मुग़लों से सन्धि कर ली और वे दारा की सेवा में रहने लगे। (जून १६४२ ई०)[5]

उक्त कवि ने अपने वर्णन में क़न्धार के तृतीय आक्रमण की ओर संकेत किया है। शाहजहाँ की आज्ञा से दारा एक विशाल सेना लेकर १६५३ ई० में कन्धार की ओर गया था। उसके साथ पहाड़सिंह, चम्पतिराय आदि सैनिक भी थे। यह घेरा अप्रैल से सितम्बर, १६५३ ई० तक पड़ा रहा था। अन्त में असफलता के कारण यह घेरा उठा लिया गया और दारा ससैन्य आगरे लौट आया। शाहजहाँ ने शाहजहाँनाबाद में दारा का राजसी स्वागत किया, और पुरस्कार वितरित किए जिससे दारा कन्धार-आक्रमण की अपनी सारी असफलताओं को भूल गया (२६ दिसम्बर, १६५३ ई०)।[6]

दारा की असफलता पर भी राजधानी में इस प्रकार उत्सव मनाया गया था। सम्भव है कि राजधानी से दूरस्थ लाल कवि ने उक्त उत्सव सम्बन्धी विवरण को सुनकर यह समझ लिया हो कि कन्धार पर मुग़लों का अधिकार हो गया है। यह भी हो सकता है कि चम्पतिराय की वीरता एवं शौर्य की प्रशंसा करने के लिए ही उन्होंने ऐसा वर्णन कर दिया हो। कुछ भी हो, यह स्पष्ट है कि कन्धार-विजय सम्बन्धी उनका कथन इतिहास-विरुद्ध है।

कौंच की जागीर के प्रसंग को लेकर पहाड़सिंह के बहकाने से दारा और चंपतिराय के मध्य अनबन होना स्वाभाविक हो सकता है, क्योंकि दारा की यह दुर्बलता थी कि वह दूसरों की निन्दा

---

[1] छत्रप्रकाश, पृ० ३४-७ [2] लेटर मुग़लस्, भा० २, पृ० २२३ [3] वही, भा० वही, पृ० वही [4] छत्रप्रकाश पृ० ३७-४१ [5] औरंगज़ेब, भाग १, पृ० २७ [6] दाराशुकोह, पृ०४५-६७; लेटर मुग़लस्, भा० २, प० २२३ (पाद-टिप्पणी)

और बुराई को सुनता तथा उसका विश्वास कर लिया करता था।[1] इस प्रकार के वैमनस्य के उपरांत मंसब त्याग कर चंपतिराय महेवा चले गए होंगे।

अध्याय ६–७

उत्तराधिकार-युद्ध तथा अन्य घटनायें—उक्त घटनाओं के अनन्तर लाल कवि ने शाहजहाँ के पुत्रों के उत्तराधिकार-युद्ध, चंपतिराय-शौर्य, मुकुन्द हाड़ा और छत्रसाल हाड़ा की मृत्यु, सामूगढ़-युद्ध, दारा तथा शुजा की पराजय, शुभकरण और चंपतिराय के युद्ध, सुजानराय की मृत्यु, छत्रसाल का ननिहाल जाना, नामदार खाँ और रतनसाह आदि का वर्णन किया है।[2]

इन घटनाओं के संबंध में इतिहास से विदित होता है कि "सितम्बर, १६५७ ई० में शाहजहाँ बीमार पड़ा। उस समय उसके चारों पुत्र-दारा, शुजा, औरंगज़ेब तथा मुराद-क्रमशः आगरा, बङ्गाल, दक्षिण तथा गुजरात में थे। शाहजहां ने दारा को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। इस पर उसके अन्य भाइयों ने राज्य प्राप्ति के उपाय आरंभ कर दिए। मुराद ने स्वयं को सम्राट् घोषित कर दिया (५ दिसम्बर, १६५७ ई०)। शत्रु का नाश करके परस्पर राज्य-विभाजन करने का मुराद और औरंगज़ेब में निर्णय हो गया। इसी प्रकार अपने को सम्राट् घोषित करके शुजा बङ्गाल से आगरे की ओर चल पड़ा और फ़रवरी, १६५८ ई० में बनारस के निकट शाही सेना का सामना किया। मुराद २५ फ़रवरी, १६५८ ई० को अहमदाबाद से चलकर १४ अप्रैल, १६५८ ई० को दीपालपुर में पहुँचा। औरंगज़ेब दक्षिण से रवाना होकर उक्त तिथि को दीपालपुर में मुराद से जा मिला। वहां से वे दोनों उज्जैन की ओर चले और धर्मत पर पहुँचकर डेरा डाल दिया। इस स्थान पर जसवंतसिंह ने इन दोनों की सेना का सामना किया। मुकुन्दसिंह हाड़ा आदि जसवंतसिंह के अनेक वीर मारे गये। वह स्वयं घायल होकर युद्ध-क्षेत्र से भाग गए। औरंगज़ेब ने विजयी होकर उस स्थान पर फ़तेहाबाद नगर बसाया।

इसी अवसर पर उज्जैन के निकट चंपतिराय आकर औरंगजेब से मिले (अप्रैल, १६५८ ई०)। वहाँ से चलकर औरंगज़ेब और मुराद २१ मई, १६५८ ई० को ग्वालियर पहुँचे। धौलपुर से लगभग चालीस मील पूर्व में एक घाट को अरक्षित छोड़कर शेष सब घाटों को दारा ने अपनी तोपों से रोक रक्खा था। औरंगज़ेब उसी मार्ग से चंबल को २३ मई, १६५८ ई० को पार करके आगरे की ओर चल पड़ा। आलमगीरनामाकार तथा आक़िल खाँ ने क्रमशः इस स्थान का नाम 'भदौरिया' और 'भदावर' लिखा है। ईश्वरदास ने इसका नाम 'कनेरा' और भीमसेन ने 'गोरखा' बतलाया है। सम्भवतः वह स्थान भदौली था।

(छत्रप्रकाश), मनूची तथा भीमसेन के अनुसार इस मार्ग के बतलाने वाले मनुष्य का नाम चंपतिराय बुन्देला था। ईश्वरदास ने ग्वालियर की सरकार गोहद का ज़मींदार 'हाथीराज जाट' और आक़िल खाँ ने 'भदावर का ज़मींदार' लिखा है।[3]

मुग़ल राजकीय ऐतिहासिक ग्रंथ इस मनुष्य के नाम के संबंध में मौन हैं। "सामूगढ़ के युद्ध में चंपतिराय औरंगजेब की सेना के दक्षिण भाग में इस्लाम खाँ के नेतृत्व में सम्मिलित हुए थे।"[4]

---

[1] दाराशुकोह, पृ० ४१६-७ [2] छत्रप्रकाश, पृ० ४२-४७ [3] औरंगज़ेब, भा० १, पृ० २६३-४, ३०२, ३०६-७, ३०६, ३३५, ३३८-६, ३७४-६; वही, भाग २, पृ० १-२५, २७, २६; वही, भा० ३, पृ० २७ [4] वही, भा० २, पृ० ४५

इससे प्रमाणित होता है कि चंपतिराय उक्त युद्ध से पूर्व ही औरंगजेब की सेना से आ मिले थे। इन दोनों की इस भेंट का स्थान उज्जैन के आस-पास ही रहा होगा, क्योंकि दक्षिण से उत्तर को आते समय अवंती प्रदेश, जो बुन्देलखंड के बहुत निकट है, पड़ता है। दारा के प्रति पूर्व वैमनस्य का स्मरण करके प्रतिशोध-भावना से प्रेरित होकर चतुर राजनीतिज्ञ के समान चंपतिराय अवश्य ही औरंगजेब से जा मिले होंगे और उन्होंने यह भेंट उसी समय की होगी जब औरंगजेब की सेना बुन्देलखंड के निकट उज्जैन के पास में पहुँची होगी। मुग़ल प्रायः राजपूत सेना को ही अग्रभाग में रक्खा करते थे। इन सभी बातों से लाल कवि का यह कथन, कि चंपतिराय ने उस घाट का मार्ग औरंगजेब को दिखलाया, सत्य प्रतीत होता है।

सामूगढ़-युद्ध—(२६ मई, १६५८ ई०)—यह भयंकर युद्ध हुआ था। दारा की ओर के छत्रसाल हाड़ा, रामसिंह राठौर आदि नौ राजपूत एवं उन्नीस मुसलमान सेनापति मारे गए थे। दारा पराजित होकर भाग गया। औरंगजेब विजयी हुआ और उसने आगरे पर अपना अधिकार कर लिया (जून, १६५८ ई०)।

वह आगरे से १३ जून, १७५८ ई० को देहली के लिए रवाना हुआ। मार्ग में उसने मुराद को बन्दी बनाकर सलीमगढ़ भेज दिया (२५ जून, १६५८ ई०)। अन्त में वह बुधवार, चार दिसम्बर, १६६१ ई० को ग्वालियर में फाँसी पर लटका दिया गया।

ता० २१ जुलाई, १६५८ ई० को देहली नगर के बाहर शालामार उपवन में औरंगजेब आलमगीर नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ।

इधर-उधर भटकता हुआ दारा पकड़ कर देहली लाया गया, जहाँ २० अगस्त, १६५६ ई० को उसकी हत्या कर दी गई।

देहली की ओर बढ़ते हुए शुजा को औरंगजेब ने खजुहा के स्थान पर ५ जनवरी, १६५६ ई० को पराजित किया। इस प्रकार उसका राज्य निष्कंटक हो गया।[1]

छत्रप्रकाश और इतिहास के उक्त विवरणों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि लाल कवि ने इन घटनाओं का संक्षिप्त किन्तु वास्तविक चित्रण किया है।

चंपतिराय और बहादुर खाँ का वैमनस्य एवं चम्पतिराय का स्वदेश लौटना—लाल कवि के मतानुसार युद्ध से भागे हुए बहादुर खाँ के लड़के, का जो दारा की ओर से लड़ा था, सामान चंपतिराय के हाथ पड़ा था। माँगने पर उन्होंने नहीं लौटाया। इस पर दोनों में मन-मुटाव हो गया। इस कारण से शाह शुजा के आक्रमण के अवसर पर चम्पतिराय अपने घर चले आए।

इतिहास से विदित होता है कि बहादुर खाँ औरंगजेब की ओर से युद्ध में सम्मिलित हुआ था। सामूगढ़ के क्षेत्र में वह औरंगज़ेब की सेना के मध्य भाग के वाम पक्ष में लड़ा था। इस युद्ध में वह बहुत घायल हुआ था और उसकी सेना के कतिपय सैनिक भी मारे गए थे।[2] अतएव

[1] औरंगज़ेब भा० वही, पृ० ३२-६४, ७७, ८२, ८६-१००, १०७-८, १२६-४६, २०८-१० [2] वही, भा० वही, पृ० ४८

उसका पुत्र भी औरंगज़ेब की ही ओर से लड़ा होगा, न कि दारा के पक्ष में। हो सकता है, कि उक्त युद्ध की भयंकरता से घबरा कर बहादुर खाँ की सेना और उसका पुत्र भाग खड़े हुए हों और अवसर पाकर चम्पतिराय ने, जो औरंगज़ेब की सेना में युद्ध कर रहे थे, उसके पुत्र के सामान को लूट लिया हो। पर इसके लिए कोई दृढ़ प्रमाण उपलब्ध नहीं है। दूसरे, औरंगज़ेब की सेना में उस समय इतनी अनियंत्रणतः की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लाल कवि के उक्त अनुमान का एक अन्य कारण हो सकता है। पराजित दारा के भाग जाने पर उसकी सारी युद्ध-सामग्री औरंगज़ेब की सेना के हाथ लगी थी। सम्भव है, इस सामान के कुछ अंश के ऊपर चम्पतिराय और बहादुर ख़ाँ में अनबन हो गई हो।

चम्पतिराय के बुन्देलखंड को लौट आने के सम्बन्ध में इतिहास में यह उल्लेख मिलता है :—

"सामूगढ़ के युद्ध की समाप्ति (९ जून, १६५८ ई०) पर औरंगज़ेब ने चंपतिराय को एक हाथी भेंट किया। फिर वह दारा का पीछा करने वाली सेना के साथ गये। जब औरंगज़ेब की सेना पंजाब में सराय जौहरमल में पड़ी थी, उस समय चम्पतिराय तथा उसका दूसरा पुत्र अंगद लाहौर के सूबेदार खलील उल्लाह ख़ाँ की सेना में भेजे गये। जनवरी, १६५९ ई० में, जबकि शुजा खजुहा की ओर बढ़ रहा था और दारा गुजरात से होकर अजमेर की ओर जा रहा था, उस समय सारे साम्राज्य में अव्यवस्था और अशान्ति फैली हुई थी। ऐसे अनुकूल अवसर को पाकर चंपतिराय लाहौर से बुन्देलखंड में जाकर लूट-मार करके शक्ति संचय करने लगे।

शुभकरन-पराजय—उन्होंने मालवा के सारे मार्गों का अवरोध कर दिया। औरंगज़ेब ने दतिया के राजा शुभकरन बुन्देला तथा ओड़छा के राजा इंद्रमणि को इनके विरुद्ध भेजा। आरंभ में इन लोगों की सारी शक्ति क्षीण हो गई और वे चंपतिराय को वश में न कर सके। उस प्रदेश के जंगलों और पर्वतों ने चंपतिराय की पूरी-पूरी सहायता की। वह बहुत समय तक इधर-उधर लूट-खसोट करते रहे और शाही सेना उनका कुछ न बिगाड़ सकी।

यह दशा देखकर औरंगज़ेब ने चंदेरी के राजा देवीसिंह को इनके विरुद्ध युद्ध के लिए भेजा। यह अप्रैल, १६६१ ई० से १९ अप्रैल, १६६२ ई० तक वहाँ रहे। मालवा के जागीरदार भी इनकी सहायता कर रहे थे। चंपतिराय एक स्थान से दूसरे स्थान को चले जाते। मुग़ल सेना इनका पीछा करती पर वे हाथ नहीं आते थे। पकड़े जाने के भय से वे दिन में छिपे रहते तथा रात्रि को अन्यत्र चले जाते। युद्धों में इतनी बड़ी हानि हो रही थी और इनके साथी भी कम होते जा रहे थे। बहुत से बुन्देला सरदारों ने इनके विरुद्ध शाही सेना की सहायता करनी आरंभ कर दी थी। चंपतिराय के भाई सज्जनराय के हाथ से वेदपुर दुर्ग निकल गया और उन्होंने पकड़े जाने के भय से आत्म-हत्या कर ली।"[1]

ऊपर दिए हुए ऐतिहासिक उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि लाल कवि ने चंपतिराय के जिन युद्धों तथा सुजानराय आदि का विस्तृत उल्लेख किया है, वे ऐतिहासिक ही नहीं वरन् विस्तृत भी हैं।

---

[1] औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० २८; लेटर मुग़लस्, भा० २, पृ० २२५

इन अध्यायों की शेष घटनाओं—नामदार खां और रतनसाह-प्रसंग, छत्रसाल का ननिहाल जाना आदि—को ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में भी सत्य ही समझना चाहिए।

अध्याय ८

इस अध्याय में कवि ने चंपतिराय के सहरा जाने, इंद्रमणि की मृत्यु, साहबसिंह द्वारा चंपतिराय की सहायता, छत्रसाल का बहिन के घर जाना, चंपतिराय की मृत्यु आदि घटनाओं का वर्णन किया है।[1]

इन्द्रमणि धंधेरा की मृत्यु—इतिहास के अनुसार इंद्रमणि को शाहजहाँ के राज्य के आरंभिक वर्षों में सहरा की जागीर दी गई थी। फिर वह उसके राज्य के १० वें वर्ष (१६३७ ई०) में दुर्ग जूनेर में बन्दी बना दिया गया। उत्तराधिकार-युद्ध के अवसर पर उत्तर को प्रस्थान करते समय १६५७ ई० में औरंगज़ेब ने इसे जूनेर से मुक्त करके शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान के साथ आगे उत्तरी भारत को भेजा।[2]

औरंगज़ेब और चम्पतिराय उत्तराधिकार-युद्ध के दिनों में अप्रैल १६५८ ई० में उज्जैन के निकट मिले थे।[3] उस समय तक राजा इन्द्रमणि मुक्त हो चुके थे। ऐसी परिस्थिति में लाल कवि का यह कहना कि 'चम्पतिराय ने उन्हें मुक्त कराया था' असंगत ठहरता है। यह सम्भव है कि औरंगज़ेब-चम्पतिराय-मैत्री के दिनों में इन्द्रमणि का सम्मान बढ़ाने में चम्पतिराय का कुछ हाथ रहा हो।

लाल कवि के अनुसार यह राजा चम्पतिराय की मृत्यु से कुछ समय पूर्व मरा। पर सरकार के मत में "वह चम्पतिराय से कुछ समय पूर्व ही नहीं मरा वरन् उसके पश्चात् वह कई वर्ष तक जीवित रहा।"[4] मआसिरुल् उमरा के अनुसार "राजा इंद्रमणि शाह शुजा के युद्ध (१६५६ ई०) के पश्चात् बंगाल में नियुक्त हुआ और अपनी मृत्यु के समय तक बादशाही कामों में लगा रहा।"[5] अन्य प्राप्त विवरण से विदित होता है, कि "औरंगज़ेब के शासन के आरम्भिक वर्षों में अपने संबंधियों के व्यवहार के कारण इन्द्रमणि औरंगज़ेब की दृष्टि में गिर गया।"[6] सम्भव है कि इसके परिणामस्वरूप इन्द्रमणि चम्पतिराय की मृत्यु (अक्टूबर, १६६१ ई०) के अवसर पर सहरा में वर्तमान रहा हो और उस समय युद्ध करते हुए मारा गया हो। पर इस विषय में निर्णयात्मक ढंग से कुछ कहना कठिन है।

चम्पतिराय की मृत्यु—(अक्टूबर, १६६१ ई०)—चम्पतिराय के देहान्त के संबंध में आलमगीरनामा के आधार पर यह विवरण उपलब्ध होता है :—

"ओड़छा के राजा सुजानसिंह ने मुग़ल-दरबार में चम्पतिराय की मृत्यु का सारा गौरव अपने ऊपर लिया। उन्होंने कहा कि उन्होंने चम्पतिराय का सहरा तक पीछा किया और उन्हें आत्म-समर्पण करने के लिए विवश किया। परन्तु सुजानसिंह के अपरिचित धंधेरों ने चंपतिराय का शिर दरबार में भेजा, जो वहाँ ७ नवम्बर, १६६१ ई० को पहुँचा।"[7]

---

[1] छत्रप्रकाश, पृ० ५८-६५ [2] मआसिरुल् उमरा, भा०, १, पृ० ७६-८० [3] देखिए पृ० २७५-७६, [4] औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० २१ (पाद-टिप्पणी) [5] वही, भा० १, पृ० ८० [6] लेटर मुग़लस्, भा० २, पृ० २२६ (पाद-टिप्पणी) [7] वही, भा०, पृ० २२८

लाल कवि के अनुसार रानी हीरा देवी (पहाड़सिंह की रानी)[1] चंपतिराय का पीछा करती हुई सहरा की ओर गई थीं। वह चम्पतिराय से शत्रुता रखती थीं। उनके विद्वेष के कारण ही धंधेरों को चंपतिराय के साथ विश्वासघात करने का अवसर प्राप्त हुआ था। अतः पहाड़सिंह बुन्देला के पुत्र सुजानसिंह बुन्देला[2] ने औरंगजेब की दृष्टि में ऊँचा उठने के लिए चम्पतिराय की मृत्यु का दायित्व अपने ऊपर लिया हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतएव आलमगीरनामा का उक्त कथन छत्रप्रकाश के इस विवरण का अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन करता है।

चंपतिराय के साथ ही उनकी पत्नी रानी लालकुंवरि (छत्रसाल की माता) ने भी आत्म-हत्या कर ली थी। सरकार[3] के मतानुसार छत्रसाल की माता का नाम रानी कालीकुमारी था।

छत्रसाल का बहिन के घर जाने, आदि घटनाओं का ऐतिहासिक विवरण अप्राप्य है। इन घटनाओं का उल्लेख करने में सरकार[4] तथा इरविन[5] ने छत्रप्रकाश को ही प्रधान रूप से आधार माना है। इसलिए उक्त विवरण की सहायता इन घटनाओं की परीक्षा करने के लिए नहीं ली गई है। पर उक्त घटनायें ऐतिहासिक ही हैं, यह बात किसी को अमान्य नहीं हो सकती।

अध्याय ९–१०

लाल कवि ने इन प्रकरणों में छत्रसाल के प्रथम विवाह, उनकी जयसिंह से भेंट, और शाही सेना द्वारा देवगढ़ विजय का उल्लेख किया है।[6]

जयसिंह-छत्रसाल-मिलन—इस घटना के संबंध में इतिहास से यह विवरण उपलब्ध होता है, जो लाल कवि के विवरण से एक दम साम्य रखता है :—

"छत्रसाल और उनके ज्येष्ठ भ्राता अंगद ने मिर्ज़ा राजा जयसिंह से उन्हें नौकरी देने तथा शिवा जी के विरुद्ध शाही सेना में साथ ले जाने के लिए बार-बार प्रार्थना की थी (१६६५ ई०)। जयसिंह ने उन्हें अपनी सेना में भर्त्ती किया। इन दोनों युवकों ने पुरंधर के घेरे में विशेष योग्यता से कार्य किया (३ अगस्त, १६६५ ई)। वे उनके साथ बीजापुर के आक्रमण में भी रहे। (दिसम्बर १६६५ ई० से फ़रवरी, १६६६ ई० तक)।[7]

देवगढ़-विजय—छत्रप्रकाश के विवरण के अनुसार बहादुर खाँ के साथ छत्रसाल देवगढ़-युद्ध में गए, जहाँ पर उनकी वीरता के फलस्वरूप बहादुर ख़ाँ विजयी हुआ।

इतिहास से विदित होता है कि "औरंगज़ेब की आज्ञा से दिलेर ख़ाँ ने देवगढ़ पर दो बार आक्रमण किए थे। प्रथम बार वह जनवरी, १६६७ ई० में गौंड-प्रदेश में प्रविष्ट होकर २६ अप्रैल, १६६७ ई० को चांदा की सीमा को पार करके देवगढ़ में पहुँचा। वहाँ के राजा कोकसिंह ने आत्म-समर्पण कर दिया। अगस्त, १६६६ ई० में दिलेर ख़ाँ पुनः देवगढ़ पर चढ़ आया। राजा सपरिवार मुसलमान हो गया और उसका राज्य उसे लौटा दिया गया।"[8]

छत्रप्रकाश के विवरण के अनुसार राजा जयसिंह ने देवगढ़ पर आक्रमण करने वाली सेना के साथ छत्रसाल को भेजा। सरकार के विचार में यह कथन भ्रामक है, क्योंकि जयसिंह की

---

[1] मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० १२८ (पाद-टिप्पणी) [2] वही, भा० वही, पृ० ४३५ [3] औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० ३० [4] वही, भा० ३, पृ० २६-३० [5] लेटर मुग़ल्स्, भा० २, पृ० २२७ [6] छत्रप्रकाश, पृ० ६६-७६ [7] औरङ्गज़ेब, भाग ५, पृ० ३६१-२ [8] वही, वही, पृ० ४०२-५

मृत्यु २ जुलाई, १६६७ ई० को हो चुकी थी। अतः वह इस सेना के भेजने वाले नहीं हो सकते।"[1]

ऊपर दिए हुए ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि देवगढ़ पर दो बार आक्रमण किए गए थे। दिलेर खाँ ने देवगढ़ पर प्रथम आक्रमण २६ अप्रैल, १६६७ ई० को किया था और मिर्ज़ा राजा जयसिंह का देहान्त २ जुलाई, १६६७ ई०को हुआ था। ऐसी दशा में उन्होंने प्रथम आक्रमण के अवसर पर अवश्य ही दिलेर खाँ और उसकी सेना को देवगढ़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा होगा। यदि लाल कवि का अभिप्राय देवगढ़ के इस प्रथम आक्रमण से है तो उसका कथन सत्य माना जा सकता है। ऐसा मान लेने में एक कठिनाई आ उपस्थित होती है। फ़ारसी इतिहासकारों के मतानुसार देवगढ़ के शासक ने प्रथम युद्ध में बिना विरोध किए ही आत्म-समर्पण कर दिया था। ऐसी दशा में लाल कवि कथित छत्रसाल-वीरता-चित्रण काल्पनिक एवं निराधार ठहरता है। यह भी सम्भव है कि इस अवसर पर युद्ध लड़ा गया हो और इतिहासकारों ने उसका उल्लेख न किया हो।

यदि लाल कवि के वर्णन का अभिप्राय देवगढ़ के द्वितीय युद्ध से है, तो मिर्ज़ा राजा जयसिंह दिलेर खाँ की सेना के प्रेषक नहीं माने जा सकते। इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। उक्त प्रसंग में आगे चलकर लाल कवि ने लिखा है कि देवगढ़-युद्ध के पश्चात् खिन्न मनः होकर छत्रसाल ने मंसब त्याग दिया और उन्होंने शिवाजी से भेंट करने के लिए दक्षिण-यात्रा की। यदि उनके इस कथन को स्वीकार कर लिया जावे तो उनका यह वर्णन देवगढ़ के द्वितीय युद्ध का ही होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है। देवगढ़ पर आक्रमण करने वाली सेना का सेनापति छत्रप्रकाश में बहादुर खाँ माना गया है, पर फ़ारसी इतिहासों में उसका नाम दिलेर खाँ मिलता है। सम्भव है कि इन युद्धों में बहादुर खाँ नामक कोई अन्य उच्च पदाधिकारी भी दिलेर खाँ के साथ भेजा गया हो, और उसी का लाल कवि ने उल्लेख कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

उपर्युक्त विवादास्पद परिस्थितियों एवं उचित साक्ष्य के अभाव में किसी निर्णयात्मक निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि छत्रसाल देवगढ़ युद्ध में सम्मिलित हुए थे और उन्होंने बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। साथ ही बहादुर खाँ नामक कोई उच्च पदाधिकारी भी उस युद्ध में सम्मिलित हुआ था।

छत्रप्रकाश के इस अध्याय में उल्लिखित छत्रसाल के विवाह आदि की घटनाओं के सम्बन्ध में फ़ारसी इतिहासकार मौन हैं।

अध्याय ११-१६

छत्रसाल और शिवाजी में भेंट—छत्रप्रकाश में लिखा है कि मंसब त्याग कर छत्रसाल दक्षिण में जाकर शिवाजी से मिले और आज्ञानुसार स्वदेश में लौटकर स्वातन्त्र्य-संग्राम छेड़ा।[2] इस कवि के इस कथन की पुष्टि इतिहास के इस विवरण से हो जाती है, "मुग़लों की सेना को

---

[1] औरंगज़ेब, भा० ४ पृ० १२७; वही, भा० ५, पृ० ३१२ (पाद-टिप्पणी २, ३)

[2] छत्रप्रकाश, पृ० ७७-८०

छोड़कर १६७०-७१ ई० के शरद्-काल में छत्रसाल अपनी रानी के साथ शिवाजी के दरबार में पहुँचे। शिवाजी ने उन्हें बुन्देलखंड में जाकर स्वातन्त्र्य्-संग्राम छेड़ने के लिए आदेश देकर सम्मानपूर्वक विदा किया। तत्कालीन भीमसेन नामक इतिहास लेखक ने लिखा है कि छत्रसाल रायगढ़ से निराश लौटे, क्योंकि दक्षिण-वासियों की प्रान्तीयता की भावना उन्हें रुचिकर नहीं लगी। शिवाजी ने उत्तरी भारत के किसी भी मनुष्य को अपने यहाँ पद देना अथवा उसका विश्वास करना उचित न समझा।"[1]

भीमसेन बुर्हानपुर का निवासी था।[2] अतः उसका कथन सुनी सुनाई बातों पर अवलम्बित रहा होगा। इसलिए उसका विवरण उतना विश्वस्त नहीं हो सकता जितना गोरेलाल का, क्योंकि उसने छत्रसाल के दरबार में रह कर अपने ग्रंथ की रचना की थी। यदि शिवाजी ने छत्रसाल के प्रति कथित प्रान्तीयता प्रदर्शित की होती तो गोरेलाल उसका अवश्य ही उल्लेख करते। साथ ही यह बात भी कल्पनातीत है कि शिवाजी जैसा उदार एवं स्वाधीनता-प्रिय व्यक्ति छत्रसाल जैसे वीर-पुंगव के प्रति उपेक्षा-भाव प्रदर्शित करे। वास्तविकता तो यह प्रतीत होती है, कि एक चतुर दूरदर्शी राजनीतिज्ञ के समान शिवाजी ने बुन्देलखंड में स्वतन्त्रता घोषित करने का छत्रसाल को उपदेश दिया होगा, जिससे शत्रु की शक्ति विभाजित हो जाए और उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हो। और हुआ भी ऐसा ही। औरंगज़ेब को दक्षिण और बुन्देलखंड दोनों देशों में शान्ति-संस्थापनार्थ अलग-अलग सेनायें भेजनी पड़ीं और शिवाजी की राजनीतिक चाल सफल हुई।

छत्रसाल-शुभकरन-मिलन—छत्रसाल और शुभकरण की भेंट तथा तत्सम्बन्धित अन्य घटनाओं के विवरण छत्रप्रकाश, सरकार और इरविन के ग्रंथों में एक से मिलते हैं जिनका सार यह है :—

"उन दिनों दतिया के राजा शुभकर्ण बुन्देला दक्षिण में मुग़ल सेना में नौकरी कर रहे थे। शिवाजी से विदा लेकर छत्रसाल उनसे मिलने गए। उन्होंने छत्रसाल की स्वाधीनता-आयोजना का विरोध किया और उन्हें मुग़ल-सेना में ऊँचा पद दिलाने का प्रलोभन दिया। छत्रसाल उसे अस्वीकार करके स्वदेश लौट आए।

छत्रसाल की प्रारम्भिक विजय—इन्हीं दिनों औरंगज़ेब ने अपनी धार्मिक कट्टरता से मदान्ध होकर हिन्दुओं के देवालयों को गिरवाना आरम्भ कर दिया (१६७० ई०)। परिणाम-स्वरूप बुन्देलखंड और मालवा की हिन्दू-जनता ने अपने धार्मिक स्थानों की रक्षार्थ कमर कस ली। ग्वालियर के सूबेदार फ़िदाई ख़ाँ ने १६७०ई०में ओड़छा का मंदिर तोड़ने का प्रयत्न किया, पर धुरमंगद ने उसे मार भगाया। औरंगज़ेब की उक्त नीति के कारण उसके स्वामि-भक्त हिन्दू-सेवक उसके शत्रु बन गए। यहाँ तक कि ओड़छाधीश सुजानसिंह ने छत्रसाल के पास मैत्री-भाव-पूर्ण शुभ-कामना-सन्देश भेजा।

छत्रसाल ने नर्मदा पार करके १६७१ ई० (१७२८ वि०) में बुन्देलखंड में प्रवेश किया। बल्देव उनके सहायक हो गये। बाक़ी ख़ाँ बुन्देला उनका मित्र बन गया। संभवतः यह एक अफ़-

---

[1] औरंगज़ेब, भा० ४, पृ० २३३; शिवाजी, पृ० २३६-७; लेटर मुग़लस् भा०, २, पृ० २२८ [2] शिवाजी, पृ० ४०४

ग़ान जागीरदार था।"[1] यह भी संभव है कि बाक़ी ख़ाँ अथवा उसका कोई अन्य पूर्वज बुंदेला राजपूत से मुसलमान बन गया हो और बुंदेला शब्द अपने नाम के साथ प्रयुक्त करता रहा हो, जैसे कि वर्तमान समय में भी अधिकांश मुसलमानों के नामों के साथ उनकी जाति, वंश आदि के सूचक शब्द लगे रहते हैं।

"आरंभिक वर्षों में छत्रसाल ने धामौनी तथा उससे ६५ मील पश्चिम में अवस्थित सिरौंज के प्रदेशों को प्रत्येक वर्ष लूटा। धामौनी के मुग़ल फ़ौजदारों ने उनको रोकने के लिए भरसक प्रयत्न किये, पर उन्हें मुँह की खानी पड़ी। हाशिम ख़ां, सैद बहादुर ख़ालिक, केशवराय बुन्देला, रणदूलह खां (संभवतः १६७३ ई० में धामौनी का रूहुल्लाह ख़ां फ़ौजदार), रूमी आदि इनका कुछ न बिगाड़ सके।"[2]

ऊपर दिए हुए युद्धों के विस्तृत विवरण के लिए फ़ारसी इतिहासकार मौन हैं। इन युद्धों तथा छत्रसाल का अपने बन्धु-बांधवों से मिलकर स्वातन्त्र्य-प्राप्ति-योजनाओं को बनाकर कार्यरूप में परिणत करने आदि का विस्तृत एवं ऐतिहासिक वर्णन छत्रप्रकाश में सुरक्षित है।

जोधपुर पर औरंगज़ेब का आक्रमण—इसके आगे छत्रप्रकाश में जोधपुर पर औरंगज़ेब के आक्रमण और शाहज़ादा अकबर के विद्रोह का उल्लेख मिलता है।[3] इन घटनाओं के संबंध में इतिहास के विवरण का सार निम्नलिखित है :—

"अफ़ग़ानिस्तान में युद्ध करते हुए ता० १०दिसम्बर, १६७८ ई०को जसवंतसिंह का देहावसान हो गया। ता० ९ जनवरी, १६७९ ई० को औरंगज़ेब अजमेर के लिए रवाना हुआ जिससे जोधपुर में सेना-संचालन कर सके। वह २ अप्रैल, १६७९ ई० को देहली लौट आया। जसवंतसिंह का परिवार अफ़ग़ानिस्तान से चलकर फ़रवरी, १६७९ ई० में लाहौर पहुँचा। वहाँ उनकी दो रानियों से दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें से एक मर गया और अजीतसिंह जीवित रहे। ये सब व्यक्ति जून में देहली पहुँचे। औरंगज़ेब ने अजीतसिंह को बंदी बनाना चाहा, पर वीर दुर्गादास वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए २३ जुलाई, १६७९ ई० को मारवाड़ जा पहुँचे।

औरंगज़ेब ने मारवाड़ मुग़ल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया और सितंबर, १६७९ ई० में स्वयं अजमेर में जा उपस्थित हुआ।

अकबर का विद्रोह—कुछ समय के उपरांत महाराणा उदयपुर और दुर्गादास से सन्धि करके शाहज़ादा अकबर ने १ जनवरी, १६८१ ई० को अपने को सम्राट् घोषित करके विद्रोह कर दिया। वह १५ जनवरी, को अजमेर के निकट पहुँचा। औरङ्गज़ेब के जाली पत्र को पाकर दुर्गादास को यह भ्रम हो गया कि अकबर उन्हें धोखा दे रहा है। उसी रात को तहव्वर ख़ाँ की मृत्यु हो जाने से उनके इस अनुमान की और भी पुष्टि हो गई (१५ जनवरी, १६८१ ई०)। अतएव वे उसे छोड़ कर चले गए। अकबर भी १६ जनवरी को अपने प्राण बचाकर भाग गया। अन्त में दुर्गादास ने अपनी भूल का अनुभव करके अकबर को पुनः अपनी शरण में लिया। उन्होंने उसे दक्षिण में सुरक्षित रूप से पहुँचा दिया।

---

[1] छत्रप्रकाश, पृ० ८०-९४; औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० ३९३-५; लेटर मुग़लस्, भा० २, पृ० २२८-९ [2] छत्रप्रकाश, पृ० ९४-१०८; औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० ३९६; लेटर मुग़लस्, भा० २, पृ० २२९ [3] छत्रप्रकाश, पृ० १०८

राजपूताने का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् ३१ जुलाई, १६८१ ई० को शाहज़ादा आज़म अकबर का पीछा करने के लिए रवाना हुआ। औरंगज़ेब स्वयं ८ सितंबर को चलकर १३ नवंबर, १६८१ ई० को बुर्हानपुर पहुँचा और २२ मार्च, १६८२ ई० को औरङ्गाबाद में ठहरकर अकबर को पराजित करने का अवसर ताकने लगा।"[1]

ऊपर दिए हुए ऐतिहासिक विवरण से छत्रप्रकाश के उक्त घटना सम्बन्धी उल्लेख की पुष्टि हो जाती है। अन्तर केवल इतना है कि लाल कवि का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त एवं संकेतात्मक है।

तहव्वर-पराजय—जिन दिनों छत्रसाल साबर में अपना विवाह रचा रहे थे उन्हीं दिनों तहवर खाँ ने बुन्देलखंड पर आक्रमण किया। यह घटना उस समय की है जब औरङ्गज़ेब ने दक्षिण को प्रस्थान किया था।[2] यदि तहवर खाँ से लाल कवि का अभिप्राय उस तहव्वर खाँ से है जिसकी हत्या का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, तो उसका यह आक्रमण अकबर के विद्रोह (जनवरी, १६८१ ई०) और औरंगज़ेब के दक्षिण को रवाना होने (८ सितंबर, १६८१ ई०) से पूर्व हुआ होगा। तहव्वर ख़ाँ अगस्त, १६७६ ई० में मारवाड़-युद्ध में वर्त्तमान था और उसकी हत्या १५ जनवरी, १६८१ ई० को की गई थी। अतएव उसने बुन्देलखंड पर अपना आक्रमण या तो अगस्त १६७६ ई० से कुछ पूर्व किया होगा अथवा उक्त तिथि से कुछ समय उपरांत वहाँ आक्रमण करके जनवरी, १६८१ ई० से पूर्व अजमेर में जा उपस्थित हुआ होगा। ऐसी परिस्थिति में लाल कवि का कथन इतिहास के प्रतिकूल पड़ता है। पर हाँ, यदि यह कोई अन्य व्यक्ति था तो उनका कथन सत्य माना जा सकता है। पर ऐसे निर्णय के लिए पर्याप्त सामग्री का अभाव है।

अन्य युद्धों के समान छत्रसाल इस युद्ध में भी विजयी हुए थे और तहवर खां को हार कर भागना पड़ा था।

अध्याय १७–२२

राजा सुजानसिंह की मृत्यु और इंद्रमनि का राज्याभिषेक—लाल कवि ने सुजानसिंह की मृत्यु के उपरान्त इन्द्रमनि (इन्द्रमणि) के ओड़छा के राजा बनने, छत्रसाल के प्रति उनके ईष्या-द्वेष, छत्रसाल के उनके देश को लूटने और अन्त में दोनों के मित्र बन जाने का उल्लेख किया है।[3]

"सुजानसिंह की मृत्यु सन् १६६८ ई० में हुई।[4] इम्पीरियल गज़ेटियर जि० १६ पृ० २४४ में इनकी मृत्यु १६७२ ई० में और सन् १८७२ ई० के जरनल ऑव् ऐशियाटिक सोसायटी में सन् १६७१ ई० में होना लिखा है। सुजानसिंह का १६६६ ई० तक जीवित रहना निश्चित ज्ञात होता है।"[5] इनकी मृत्यु के उपरांत इंद्रमणि गद्दी पर आसीन हुए थे।

इन अध्यायों में उल्लिखित छत्रसाल की विजयों की दीर्घ सूची,[6] तथा सुतरदीन-पराजय[7]

---

[1] औरंगज़ेब, भा०३, पृ०३२५,३२६, ३२८-६, ३३२-४, ३३५-६, ३५३-६८; वही, भा० ४, पृ० २५०-२ [2] छत्रप्रकाश, पृ० १०८-१३ [3] वही, पृ० ११७ [4] मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० ४३६ [5] वही, भा० वही, पाद-टिप्पणी २, पृ० ४३६-७ [6] छत्रप्रकाश, अध्याय १७, पृ० ११४-२० [7] वही, अध्याय १८, पृ० १२१-७

हमीद, सैद लतीफ बीस मवासी युद्ध,[1] अब्दुल समद-पराजय,[2] बहलोल खां मयानौ मरण,[3] और मौधा मठौध विजय,[4] आदि के परीक्षण के लिए उचित ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है। पर ये घटनाएँ इतिहास के लिए नवीन एवं ठोस सामग्री उपस्थित करती हैं।

अध्याय २३-२५

सैद अफ़गन और छत्रसाल-युद्ध—लाल कवि ने सैद अफ़गन और छत्रसाल के युद्धों का वर्णन करते हुए अपने चरित्र-नायक की पराजय को भी स्वीकार किया है।[5] "मुग़ल समाचार-पत्रों से विदित होता है कि शेर अफ़गन और छत्रसाल में दो युद्ध हुए थे। प्रथम युद्ध मार्च, १६९९ ई० में सूरजमऊ के निकट हुआ, जब रनौद के फ़ौजदार शेर अफ़गन ने छत्रसाल पर आक्रमण किया। छत्रसाल ने हारकर दुर्ग में शरण ली। खान ने उसे घेर लिया, पर छत्रसाल वहाँ से निकल गए। छत्र-मुकुट बुन्देला मुग़लों से जा मिला। फिर नवाब ने छत्रसाल के पुत्र गरीबदास से गागरौन छीन लिया।

दूसरे वर्ष २४ अप्रैल, १७०० ई० को भूना और बरना के निकट शेर-अफ़गन ने छत्रसाल पर आक्रमण किया। इस युद्ध में छत्रसाल घायल हुए, पर ख़ान भयङ्कर रूप से घायल हुआ जिसके फलस्वरूप वह मर गया। शाहमान धंधेरा के पुत्र देवीसिंह ने शाहबाद गढ़ छीन लिया, परन्तु अक्टूबर में ग्वालियर के फ़ौजदार ने उसे वापस ले लिया।"[6]

छत्रप्रकाश और इतिहास दोनों के विवरण प्रमुख बातों में समान है यहाँ तक कि लाल कवि ने छत्रसाल की पराजय तक का उल्लेख कर दिया है। ऐतिहासिक विवरण में उल्लिखित अलीकुली ही सम्भवतः छत्रप्रकाश का शाह कुली है।

छत्रप्रकाश में उल्लिखित कतिपय अन्य युद्धों तथा प्राणनाथ-शिक्षा,[7] कृष्ण-जन्म-वर्णन,[8] प्राणनाथ-वरदान[9] आदि घटनाओं के सम्बन्ध में प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है।

अध्याय-२६

इस अध्याय में औरंगज़ेब के मरने के पश्चात् बहादुर शाह के सम्राट् बनने पर छत्रसाल के दिल्ली बुलाए जाने और उनके द्वारा लोहगढ़ (लोहागढ़) विजय आदि का उल्लेख है।[10]

उक्त घटनाओं के सम्बन्ध से इतिहास से यह विवरण उपलब्ध होता है :—

बहादुर शाह का राज्याभिषेक—"अहमदनगर में अपने डेरे में औरंगज़ेब ३ मार्च, १७०७ ई० को मर गया और उसके स्थान पर बहादुर शाह सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने खान-इ-ज़माँ मुनीम ख़ाँ को खान-खानान बहादुर ज़फ़रजङ्ग की उपाधि देकर अपना प्रधान-मन्त्री नियुक्त किया।

लोहागढ़-विजय—ता० ३० मई, १७०८ ई० को जब बहादुर शाह कामबख्श से युद्ध करने

---

[1] छत्रप्रकाश, अध्याय १९, पृ० १२८-९ [2] वही, अध्याय २० पृ० १३०-७ [3] वही, अध्याय २१, पृ० १३१-४० [4] वही, अध्याय २२, पृ० १४१-५ [5] वही, अध्याय २३, पृ० १४६-५० [6] औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० ३९८-९ [7] छत्रप्रकाश, अध्याय २३, पृ० १४६, १४७, १५०-४ [8] वही, अध्याय २४, पृ० १५५-९ [9] वही, अध्याय २५, पृ० १६० [10] वही, अध्याय २६, पृ० १६१-३

के लिए दक्षिण को जा रहा था, तब छत्रसाल के हृदयशाह आदि पुत्रों ने उसकी सेवा में उपस्थित होकर मंसब प्राप्त किए थे। जब वह अपने शासन के चतुर्थ वर्ष में दक्षिण से उत्तर भारत को लौट रहा था, तब कोटा-प्रदेश में कारातीय नामक स्थान पर वह (छत्रसाल) स्वयं उपस्थित हुआ और सिक्ख गुरु गोविन्दसिंह के अनुयायी बन्दा को दबाने के लिए जाती हुई सेना के साथ हो लिया। वहाँ से चलकर बहादुरशाह अजमेर, रूपनगर, नारनौल, सोनपत, थानेश्वर (देहली को पर्याप्त व्यवधान पर छोड़ते हुए) आदि स्थानों पर होता हुआ लोहागढ़ के निकट पहुँचा। मुनीम ख़ाँ की सेना के अग्रभाग में छत्रसाल बुन्देला और तोपख़ाने के सरदार इस्लाम ख़ाँ थे (१० दिसम्बर, १७१० ई०)। गुरु बन्दा भाग गया और दुर्ग पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। पृथ्वी को खोदने पर लगभग बीस लाख की संपति शाही सेना के हाथ लगी (१६ दिसम्बर, १७१० ई०)।"[1]

दोनों विवरणों की तुलना करने पर लाल कवि का यह कथन, कि बहादुर शाह ने दिल्ली में रहकर छत्रसाल को लोहागढ़ जीतने के लिए भेजा, इतिहास के विरुद्ध ठहरता है। वास्तविकता तो यह थी कि सम्राट् दक्षिण से देहली को पर्याप्त दूरी पर छोड़ते हुए स्वयं लोहागढ़ पहुँचा था और छत्रसाल मार्ग में ही उसके साथ हो लिये थे। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि उक्त युद्ध के अग्रभाग में रहकर उन्होंने अभूतपूर्व वीरता प्रदर्शित की थी।

सेनायें

जुझारसिंह की सेना—छत्रप्रकाश से विदित होता है कि शाहजहाँ के आक्रमण का समाचार ज्ञात होने पर जुझारसिंह 'साठ सहस्र सुभट लेकर भाग गए।'[2] फ़ारसी इतिहासकारों के कथनानुसार 'जुझारसिंह की ओड़छा-स्थित सेना में ५,००० अश्वारोही और १०,००० पैदल थे।'[3] इस ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर लाल कवि का कथन अत्युक्तिपूर्ण ठहरता है।

चम्पतिराय और छत्रसाल की सेनायें—इन दोनों वीरों से सम्बन्धित विविध युद्ध-प्रसंगों की सेनाओं की संख्या का छत्रप्रकाश में उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है :—

(अ) 'सहरा के साहिबसिंह ने चम्पतिराय को सहायता के लिए दो सौ सैनिक भेजे।'[4]

(आ) 'छत्रसाल और बलदाऊ की प्रारम्भिक सेना में तीस अस्वार (असवार) और तीन सौ तुपक थीं।'[5]

(इ) 'तहवर-पराजय में १२ बुन्देले मरे और २७ सरदार घायल हुए।'[6]

(ई) 'जगत्सिंह ६००बन्दूकधारियों के साथ बहलोल ख़ाँ मयानौ के सामने जा डटे।'[7]

(उ) 'लोहागढ़-युद्ध में छत्रसाल के पन्द्रह सौ वीर काम आए।'[8]

उक्त उल्लेखों के अतिरिक्त लाल कवि ने यथास्थान छत्रसाल की उन्नति एवं ख्याति के साथ सैन्य संख्या में होती हुई वृद्धि का भी उल्लेख कर दिया है। यद्यपि उक्त सैनिक-विवरणों के परीक्षण के साधन अप्राप्य हैं, पर उनकी प्रामाणिकता एकदम अस्वीकार नहीं की जा सकती।

---

[1] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० १, ३६, १०४-१८; वही, भा० २, पृ० २२६-३०
[2] छत्रप्रकाश, पृ० २८ [3] हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ७, पृ० ४८; औरंगज़ेब, भा० १, पृ०२०
[4] छत्रप्रकाश, पृ० ४६ [5] वही, पृ० ८६, ६४ [6] वही, पृ० ११२ [7] वही, पृ० १३८
[8] वही, पृ० १६२

शाहजहाँ की सेना--लाल कवि ने लिखा है कि जुझारसिंह के विरुद्ध शाहजहाँ ने साठ सहस्र सेना भेजी।[1] उसने ओड़छा पर दो बार आक्रमण किए थे। प्रथम बार उसने ३४, ५०० सेना भेजी थी और दूसरे आक्रमण में सभी सेना-नायकों की कुल मिलाकर २७,००० (अथवा २२, ५०० अथवा २०,०००) सेना थी।[2] छत्रप्रकाश में दी हुई सैन्य-संख्या उक्त संख्या में से किसी से भी मेल नहीं खाती है। अतएव अत्युक्तिपूर्ण है।

छत्रसाल के प्रतिद्वन्दियों की सेनायें :—

(क) छत्रसाल के औरंगज़ेब के यहाँ मंसब स्वीकार कर लेने पर शाही सेना ने देवगढ़ पर आक्रमण किया। देवगढ़ के राजा ने सत्तर सहस्र वीरों को लेकर उसका सामना किया।[3]

(ख) ग्वालियर से फ़िदाई ख़ाँ अठारह सहस्र सेना लेकर चला, जिसे धुरमंगद ने मार भगाया।[4]

(ग) गढ़ा कोटा के युद्ध में रणदूलह के साथ तीस सहस्र सेना थी।[5]

(घ) तहवर-पराजय में ३०० मुसलमान मारे गए और २२० घायल हुए।[6]

(ङ) अनवर ने दस सहस्र सेना के साथ छत्रसाल पर आक्रमण किया।[7]

(च) धामौनी में सुतरदीन सदैव तीस सहस्र सेना सन्नद्ध रखता था।[8]

(छ) बीस मवासी-पराजय में छत्रसाल ने चार सहस्र शत्रु काट डाले।[9]

(ज) अब्दुल समद ने छत्रसाल पर दस सहस्र सिपाहियों को लेकर आक्रमण किया।[10]

(ज) बहलोल खाँ मयानौ ने नौ सहस्र सेना लेकर बुन्देलों पर आक्रमण किया। जगत्सिंह ने चालीस तुरुक काट डाले।[11]

(ट) सिहुंडा में सहस्र पठानों के साथ मुराद मारा गया।[12]

(ठ) मठौध के युद्ध में छत्रसाल ने सात सौ शत्रुओं को मार डाला।[13]

(ड) सैद अफ़गन छत्रसाल का सामना करने के लिए चार सौ सवार लेकर आया।[14]

(ढ) लोहागढ़ युद्ध में छत्रसाल ने शत्रु के तीन सहस्र वीरों का संहार किया।[15]

छत्रसाल के प्रतिद्वन्दियों की ऊपर दी हुई सैन्य-संख्याओं की वास्तविकता की परीक्षा करने के लिए ऐतिहासिक सामग्री अप्राप्य है। अतएव निश्चयात्मक निर्णय पर पहुँचना कठिन है।

उपर्युक्त सैन्य-सामग्री पर विचार करने के उपरान्त यह धारणा निर्धारित की जा सकती है कि लाल कवि ने कुछ स्थलों पर छत्रसाल की वीरता प्रदर्शित करने के लिए शत्रु की सेना को अधिक और उनकी को कम बतलाकर चारण-परम्परा का अनुकरण किया है। यह कहना कि, उनके द्वारा दिए सभी आँकड़े काल्पनिक हैं, उनके प्रति अन्याय होगा। सच बात तो यह प्रतीत होती है कि लाल कवि ने अधिकांश स्थलों पर यथासम्भव सेना की वास्तविक संख्या का ही उल्लेख किया है।

---

[1] छत्रप्रकाश, पृ० २८ [2] हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा०७, पृ०४७; औरङ्ग़ज़ेब, भा०१, पृ०१७, १६, २० [3] छत्रप्रकाश, पृ० ७३ [4] वही, पृ० ८२ [5] वही, पृ० १०५ [6] वही, पृ० ११२ [7] वही, पृ० ११८ [8] वही, पृ० १२१ [9] वही, पृ० १२६ [10] वही, पृ० १३० [11] वही, पृ० १३८ [12] वही, पृ० १४१ [13] वही, पृ० १४५ [14] वही, पृ० १४६ [15] वही, पृ० १६२

इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन करने के उपरान्त यह परिणाम निकलता है, कि छत्रप्रकाश में केवल एक ही तिथि दी गई है, अन्यथा उसमें सन् संवतों का अभाव है। घटनाओं के क्रम में यत्र-तत्र व्यतिक्रम पाया जाता है। यद्यपि सभी घटनाओं की परीक्षा करने के लिए पर्याप्त सामग्री का अभाव है, तो भी जिन घटनाओं की परीक्षा की जा सकी है, उनमें से प्रायः सभी मूलरूप में इतिहासानुकूल हैं। चंपतिराय और छत्रसाल के समय की (दिसंबर, १७१० ई० तक की) साधारणतः प्रायः सभी प्रमुख और विशेषतः बुन्देलखंड संबंधी घटनाओं का इतना विस्तृत एवं सूक्ष्म विवरण अन्यत्र मिलना दुष्कर है। इस ग्रन्थ से नवीन एवं प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। अतएव इस दृष्टि से छत्रप्रकाश का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अध्याय ६

जंगनामा की ऐतिहासिकता

आगे के पृष्ठों में 'जंगनामा' में उल्लिखित तिथि, पात्र, घटना एवं सेना की ऐतिहासिकता पर विचार किया जा रहा है।

तिथि

फ़र्रुख़सियर और जहाँदारशाह की युद्ध तिथि :—

संवत् १७६६, पौष, पूर्णिमा बुधवार[1]

पौष अमा चंद्र का मध्यन्य समाप्ति काल	३	दिसम्बर १६.६६
१५ तिथियों का समस्त व्याप्ति काल	१४ + १ १८	१४.७६ ३१.७२

१८—१४=४=बुधवार, ३१ दिसम्बर १७१२ ई०

इस प्रकार गणना करने पर विदित होता है कि उक्त युद्ध बुधवार, ३१ दिसम्बर, १७१२ ई० को हुआ था।

इरविन महोदय ने जेकोबी के तिथि-चक्रों के आधार पर, श्रीधर द्वारा कथित उक्त तिथि, बुधवार, ११ जनवरी, १७१३ ई० मानी है।[2]

फ़ारसी इतिहासकारों द्वारा दी हुई उक्त युद्ध की तिथि १३ ज़ुलहिज्जा, ११२४ हि० (१० जनवरी, १७१३ ई०) से श्रीधर द्वारा कथित तिथि की तुलना करने पर केवल १० दिन का अन्तर पड़ता है।

श्रीधर ने उक्त युद्ध की हिज्री सन् में १४ मुहर्रम, ११३३ तिथि मानी है।[3] उनकी यह तिथि भी अशुद्ध ठहरती है। "ऐतिहासिकों द्वारा दी हुई मान्य तिथि (१३ ज़ुलहिज्जा, ११२४ हि०) को गुरुवार अथवा शुक्रवार था, न कि बुधवार। संभव है कि 'जंगनामा' में प्रतिलिपि-कर्त्ता की असावधानी से २३ के स्थान पर ३३ लिख गया हो। पर यह वर्ष (११२३ हि०) भी असंभव है क्योंकि बहादुरशाह की मृत्यु एक वर्ष से अधिक समय (२१ मुहर्रम, ११२४ हि०) तक नहीं हुई थी।...साथ ही श्रीधर कथित उक्त हिज्री तिथि एवं सन्, विक्रमी संवत् तिथि से मेल नहीं खाते।

इसी प्रकार श्रीधर द्वारा दी हुई इलाही तिथि २२वीं अज़ूर भी ठीक नहीं है। यह तिथि उक्त कवि द्वारा दी हुई विक्रमी तथा हिज्री तिथि में से किसी से भी मेल नहीं खाती।"[4]

---

[1] जंगनामा, पंक्ति ८५४ [2] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १६००, पृ० ५५ (पाद-टिप्पणी) [3] जंगनामा, पंक्ति ८५५ [4] वही, पंक्ति ८५६; जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १६०० ई, पृ० ५४-५

अतएव श्रीधर द्वारा दी हुई तिथियाँ इतिहास में कथित तिथि से भिन्न और अशुद्ध हैं।

पात्र

निश्चित पात्र

हिन्दू-पात्र—राजा छबीलेराम नागर—यह कड़ा-जहानाबाद का फ़ौजदार था। इसने फ़रुँख़सियर की सहायता की, जिसके फलस्वरूप इसका मंसब पाँच हज़ारी हो गया और राजा की पदवी मिली। कालान्तर में वह इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त होकर वहाँ गया। १७१६ ई० में वह मर गया।[१]

दयाबहादुर (दयाराम)—यह उक्त छबीलेराम का भाई था। यह अज़ीमुश्शान की सरकार में तहसील का अफ़सर था। अज़ीमुश्शान की ओर से लड़ते हुए लाहौर में मार्च १७१२ ई० में यह मारा गया।[२]

गिरधरलाल बहादुर—यह दयाबहादुर (दयाराम) का पुत्र और छबीलेराम का भतीजा था। इसे राजा गिरधर बहादुर की पदवी और अवध की सूबेदारी मिली। कुछ समय के पश्चात् यह मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ और वहीं पर १७२७ ई० में होल्कर से युद्ध करते हुए मारा गया।[३]

मुसलमान-पात्र—जलालदीं अकबर (जलालउद्दीन अकबर)[४], आलमगीर (औरंगज़ेब), बहादुर शाह।[५]

मुइज़ुद्दीन जहाँदार शाह—यह बहादुर शाह का सबसे बड़ा लड़का था। इसका जन्म १० मई, १६६१ ई० को हुआ था और यह ११ फ़रवरी १७१३ ई० को मरा। इसने लगभग दश मास तक शासन किया था।[६]

ऐज़ुदीन (ऐज़ुद्दीन)—यह जहाँदार शाह का ज्येष्ठ पुत्र था। १२ दिसम्बर १७४४ ई० को इसकी मृत्यु हुई।[७]

फ़रुकशाह (फ़रुँख़सियर)—यह अज़ीमुश्शान का द्वितीय पुत्र था। इसका जन्म ११ सितम्बर, १६८३ ई० में हुआ था। इसकी मृत्यु २७-२८ अप्रैल, १७१६ ई० को हुई।[८]

अब्दुल समद, अब्दुस्समद ख़ाँ बहादुर दिलेर जंग, सैफ़ुद्दौला—यह औरंगज़ेब के समय में भारत आया और चार सदी मंसब पाया। बहादुरशाह के मरने पर उत्तराधिकार-युद्ध में यह ज़ुल-फ़िक़ार के साथ रहा और सुलतान जहाँशाह के मारने में वीरता दिखलाई। फ़रुँख़सियर के समय में दिलेर ख़ाँ की पदवी सहित लाहौर का प्रान्ताध्यक्ष नियत हुआ। सिक्खों के दबाने में इसने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। इस सेवा के लिए इसे सात हज़ारी ७००० सवार का मंसब तथा सैफ़ुद्दौला की पदवी मिली। १७३७-३८ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[९]

---

[१] मआसिरुल् उमरा, भा० १ पृ० १४०-१; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ २०१, २१५, २२६ (पाद-टिप्पणी), २३०, २३१, २३२, २३३, २६२ [२] मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० १४०, १४१, १४२, ४२२; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २०१ (पाद-टिप्पणी) [३] मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० १४१-२; लेटरमुग़लस्, भा० १, पृ० २१५, २२६ (पाद-टिप्पणी) [४] देखिये द्वितीय खंड, अध्याय १ वीरसिंहदेव-चरित की ऐतिहासिकता, पृ० १८० [५] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ५, छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता, पृ० २७०, २७१ [६] लेटर मुग़लस्, भा०१ पृ०१४३, १४४, १८६-२४३। [७] वही, भा०वही, पृ० २४२ [८] वही, वही, पृ० २४४-३६४, ३६८-६ [९] वही, भा०वही, पृ०१८६-६०, २२६, २३०, २३६, २३७,२६१; मआसिरुल् उमरा, भा० २, पृ०२०८-१०

क़ुतुबुल्मुल्क सैय्यद अब्दुल्लाह ख़ाँ—इसका नाम हसन अली था। यह फ़र्रुख़सियर का प्रधान-मन्त्री था। बहादुरशाह के समय में इसका मंसब बढ़कर चार हजारी हो गया और यह क्रमशः अजमेर तथा इलाहाबाद का सूबेदार नियत हुआ। फ़र्रुख़सियर के विजयी होने पर इसको सात-हज़ारी ७००० सवार का मंसब, सैयद अब्दुल्लाह ख़ाँ क़ुतुबुल्मुल्क बहादुर यार वफ़ादार ज़फ़र जंग की पदवी और प्रधान-मन्त्रित्व का पद मिला। कालांतर में इसकी फ़र्रुख़सियर से अनबन हो गई। क़ुतुबुल्मुल्क तथा इसके भाई ने मिलकर १७ फ़रवरी, १७१६ ई० को सम्राट् फ़र्रुख़सियर को क़ैद करके रफ़ीउद्दर्जात को बादशाह बनाया। इसी प्रकार यह लोग एक के पश्चात् दूसरा बादशाह बनाते रहे। अन्त में क़ुतुबुल्मुल्क १७२३ ई० में बन्दीगृह में विष पिला कर मार डाला गया।[1]

(सैय्यद) अबदुलग़फ़्फार—यह सैय्यद सदर जहाँ सदरुस्सुदूर पिहानवी का वंशज था। जब मुहम्मद मुइज़्ज़ुद्दीन बादशाह हुआ तो उसने इसे इलाहाबाद का उप-शासक बनाकर भेजा। सैय्यद हसन अली ख़ाँ से युद्ध हुआ जिसमें यह विजयी होने के बाद फिर हारकर लौट गया।[2]

(अमीनुद्दौला) अमीनुद्दीन ख़ाँ (बहादुर)—यह संभल का एक शेख़ज़ादा था। इसने जहाँदार शाह की सेवा आरम्भ की और फ़र्रुख़सियर के समय में यह एक यसावल नियत हुआ। मुहम्मद शाह के समय में यह मीर-तुज़ुक के पद तक पहुँच गया। उसी राज्य-काल में नादिरशाह के भारत से चले जाने पर यह मर गया।[3]

समसामुद्दौला अशरफ़ ख़ाँ (खानदौराँ अमीरुल् उमरा ख़्वाजा आसिम)—यह आरम्भ में अज़ीमुश्शान के बालाशाही सवारों में छोटे मंसब पर भर्ती हुआ। उत्तराधिकार-युद्ध के अवसर पर फ़र्रुख़सियर ने उसे दीवान-इ-ख़ास का दारोग़ा नियत किया और अशरफ ख़ाँ की पदवी दी। फ़र्रुख़सियर के युद्ध में विजयी होने पर इसने सात हजारी ७००० का मंसब तथा समसामुद्दौला ख़ान दौराँ बहादुर मंसूर जंग की पदवी पाई। कालान्तर में यह नायब मीर बख़शी, बख़्शी, तथा गुजरात के सूबेदार के पदों पर कार्य करता रहा। कुछ समय के पश्चात् इसे अमीरुल् उमरा की पदवी मिली और मीर बख़शी नियत हुआ। नादिरशाह की सेना से युद्ध करते समय वह घायल हुआ और मर गया।[4]

अज़ीमुश्शानी (अज़ीमुश्शान)—मुहम्मद अज़ीमुश्शान बहादुर शाह का तृतीय पुत्र था। इसका जन्म १६ दिसंबर, १६६४ ई० को हुआ था। उत्तराधिकार-युद्ध में रावी नदी में डूब गया। फ़र्रुख़सियर इसका पुत्र था।[5]

अरसला ख़ाँ (अर्सला ख़ाँ)—कवि का इस नाम से संभवतः उस अर्सला ख़ाँ से अभिप्राय

---

[1] मआसिरुल् उमरा, भा०२, पृ०१६५-७२; लेटर मुग़लस्, भा १, पृ०३१, ३४, २०३-५, २०६, २१३, २१७, २२६-३४, २४७-८, २५५, २५८, २६४-३०१, ३२७-३७, ३४७, ३४८-५५, ३८१, ३८३, ३८६, ३८६, ३६०, ३६५, ४१६-७; वही, भा०२, पृ० १४, ५१, ५२, ६६; ७२, ७७, ६१-२, ६६, ६७-१०० [2] मआसिरुल् उमरा, भा० २ पृ० १६६; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २०८ [3] मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० २४५; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ०१८७, २४७, २६० [4] मआसिरुल् उमरा, भा० २, पृ० ४२३-७; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २२६ (पाद-टिप्पणी), २४८-६, २५१, २५२, २६०, २६२, २६४ [5] वही, भाग १, पृ०१४३, १४४, १७२-७

है जो औरङ्गज़ेब के ५वें वर्ष बनारस का .फौजदार हुआ। इसके अनन्तर यह सुलतानपुर बिलहरी का .फौजदार हुआ और दो हज़ारी ८०० सवार दो अस्पा सेह अस्पा का मंसबदार हुआ। ४०वें वर्ष में ५०० सवार बढ़े।[१]

आज़म ख़ाँ—(नवाब) इसका नाम मुहम्मद माह था। यह फ़िदाई ख़ाँ का पुत्र था।[२]

करूदीं ख़ाँ (.कमरुद्दीन ख़ाँ बहादुर एतमादुद्दौला)—इसका वास्तविक नाम मीर मुहम्मद फ़ाज़िल था और यह एमादुद्दौला मुहम्मद अमीन ख़ाँ बहादुर का पुत्र था। औरंगज़ेब के राज्यकाल के अन्त में इसे यथोचित मंसब और क़मरुद्दीन ख़ाँ की पदवी मिली थी। फ़रु‍र्ख़सियर के समय में यह अच्छा मंसब पाकर अहदियों का बख्शी हुआ। शनैः शनैः यह प्रधान-मन्त्री के पद पर पहुँच गया। यह अहमद शाह दुर्रानी से युद्ध करने के लिए ससैन्य सरहिंद गया। वहीं गोला लगने से १७४८ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[3]

गाजियुद्दीन खान (ग़ाज़ी उद्दीन ख़ाँ बहादुर ग़ालिब जंग)—यह सुलतान मुइज़्ज़ुद्दीन का धाय-भाई था और अहमद बेग के नाम से प्रसिद्ध था। उक्त सुलतान की सेना में कुछ समय तक रहने के पश्चात् यह सुलतान अज़ीमुश्शान की सेवा में नियत होकर फ़रु‍र्ख़सियर के साथ बंगाल गया। फ़रु‍र्ख़सियर ने उत्तराधिकार-युद्ध के अवसर पर इसको अच्छा मंसब और ग़ाजीं उद्दीन ख़ाँ की पदवी देकर सैन्य एकत्र करने को नियत किया। विजयी होने पर इसका मंसब छः हज़ारी ५००० सवार हो गया तथा ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ बहादुर ग़ालिब जंग की पदवी और तीसरे बख्शी के पद से सम्मानित हुआ।[४]

.ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ नसरत जंग—इसका नाम मुहम्मद इस्माइल था। यह असद ख़ाँ आसफ़ुद्दौलाह का पुत्र था। ११वें वर्ष आलमगीरी में इसने तीन सदी का मंसब पाया। २०वें वर्ष में यह .ग़ुसुलखाने का दारोग़ा हुआ। ११०१ हिजरी में इसे ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ की उपाधि मिली। ३९वें वर्ष में बादशाह ने इसे पाँच हज़ारी ४००० का मंसब और नसरत जङ्ग की पदवी दी। ४६वें वर्ष में यह मीर बख्शी के पद पर नियत हुआ। बहादुरशाह ने इसको सात हज़ारी ७००० सवार का मंसब और समसामुद्दौलाह अमीरुल् उमरा बहादुर नसरत जङ्ग की पदवी देकर दक्षिण की सूबेदारी पर बख्शीगीरी के पद के साथ नियत किया। जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ तब ज़ुल्फ़िक़ार ने वज़ीरी और शाही प्रबन्ध का झंडा उठाया। फ़रु‍र्ख़सियर से युद्ध में जहाँदार शाह के साथ हारने पर ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ दिल्ली लौट गया। फ़रु‍र्ख़सियर ने उसको मरवा डाला।[५]

जा निसार ख़ाँ।[६]

---

[१] मआसिरूल् उमरा, भा० २, पृ० २७०; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २४६ [२] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १९०० ई०, पृ० ४६; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २१७, २२९ (पाद-टिप्पणी), २४६ [3] मआसिरुल् उमरा, भा० ३, पृ० १२-४; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २४९ [४] वही, वही, पृ० २०१, २१०, २१२, २२९, २६०, २६६, २६७; मआसिरुल् उमरा, भा० ३, पृ० ३११-३ [५] वही, वही, पृ० ३२२-३४; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० ६-१०, १८६, २२९ (पाद-टिप्पणी सहित), २४६ (पाद-टिप्पणी सहित) [६] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ७, रासा भगवंतसिंह की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत पात्र-विवरण; मआसिरूल् उमरा, भा० ३, पृ० २७५-८; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २२२-६ (पाद-टिप्पणी), २४५

ज़करिया ख़ाँ—श्रीधर ने इस नाम से संभवतः ज़िकरिया ख़ाँ बहादुर हिज़ब्र जंग की ओर संकेत किया है, जो सैफ़ुद्दौला अबदुस्समद ख़ाँ का पुत्र था। यह अपने पिता के समय उसी के स्थान पर लाहौर का सूबेदार नियत हुआ। पिता की मृत्यु पर इसी के साथ इसे मुलतान की भी सूबेदारी मिल गई। १७४५ ई० में यह मर गया।[1]

दिलावर ख़ाँ बहादुर—यह अब्दुल् अज़ीज़ दिलावर ख़ाँ का पुत्र था और इसका नाम मुहम्मद नईम था। अपने पिता के मरने पर उसकी पदवी (दिलावर ख़ाँ बहादुर) पाकर फ़र्रुख़सियर के राज्यारंभ में यह निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह के साथ दक्षिण गया। ११३८ हि० (१७२६-२७ ई०) में इसकी मृत्यु हुई।[2]

निजामुद्दी अली ख़ां (नज्मुद्दीन अली ख़ाँ बारह सैय्यद)—यह अब्दुल्लाह ख़ाँ सैय्यद मियाँ का पुत्र तथा .कुतुबुल् मुल्क अब्दुल्लाह .ख़ाँ का कनिष्ठ भ्राता था। फ़र्रुख़सियर का पक्ष लेकर यह मंसब की उन्नति पाकर सम्मानित हुआ। कुछ समयोपरांत यह दिल्ली का सूबेदार बना। एक बार यह बन्दी-गृह में डाल दिया दया। उससे मुक्त होकर यह क्रमशः गुजरात और ग्वालियर का शासक नियुक्त हुआ। ग्वालियर में ही इसकी मृत्यु हुई।[3]

नूरूल्लाह ख़ाँ—ऐसा प्रतीत होता है कि इस नाम से कवि का अभिप्राय .कादिर दाद ख़ाँ बहादुर से है। इसका नाम शेख़ नूरुल्लाह .ख़ाँ था। यह शाहजहाँ के समय के रशीद ख़ाँ अंसारी के पुत्र .कादिर दाद ख़ाँ का पुत्र था। इसे औरंगज़ेब के समय चार सदी मंसब और दक्षिण के दुर्गों में से एक की सूबेदारी मिली। बहादुर शाह के समय इसका मंसब एक हज़ारी हो गया और अपने पिता की पदवी पाकर खानदेश प्रांत में जामवद का फ़ौजदार नियत हुआ। फ़र्रुख़-सियर के समय में जब निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह दक्षिण का प्रांताध्यक्ष नियत होकर वहाँ गया तब यह, जो उस सरदार की माँ की ओर से सगा संबंधी था, भेंट करने आकर उसका साथी हो गया। धीरे-धीरे इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी ४००० सवार हो गया। धोखे से यह एक नौकर के हाथ से मारा गया।[4]

महमद ख़ाँ बंगश (मुहम्मद ख़ाँ बंगश)।[5]

ख़ां ज़मां अली असग़र ख़ाँ—यह कारतलब अंसारी का पुत्र तथा इटावा का फ़ौजदार था। इसका जन्म १६७४-५ ई० में और मृत्यु २६ जनवरी, १७४३ ई० को हुई थी। फ़र्रुख़सियर ने इसे ख़ाँ ज़माँ की उपाधि देकर बख़शी बनाया था।[6]

अफ़रासयाब ख़ाँ—यह सुहराब मिर्ज़ा अजमेरी नाम से विख्यात था। अफ़रासयाब ख़ाँ बहादुर रुस्तम जंग इसकी उपाधि थी। यह गिरशास्प का पुत्र था। इसकी २१ अगस्त, १७१८ ई०

---

[1] मआसिरुल उमरा, भा० ३, पृ० ३१०-११ [2] वही, भा० वही, पृ० ४५३-४, [3] वही, वही, पृ० ५०५-७; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २०८, २२६ (पाद-टिप्पणी) [4] वही, भा० वही, पृ० २८ [5] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ३, भूषण-ग्रंथावली की ऐतिहासिकता, पृ० २०६; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २१६-२१७, २२६ (पाद-टिप्पणी), २३०, २३१, २३२, २३३ [6] वही, भा० वही, पृ० १०१ (पाद-टिप्पणी सहित), २१४, २२५, २३०, २३३

को देहली में मृत्यु हुई। इसने फ़र्रुख़सियर को कुश्ती लड़ने और धनुर्विद्या की शिक्षा दी थी। फ़र्रुख़सियर ने इसे अपना तृतीय बख़्शी नियुक्त किया था।[1]

अमीर ख़ाँ—श्रीधर ने इस नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख किया है जिनका विवरण इस प्रकार है :—

(१) अमीर ख़ाँ मीर मीरान—यह ख़लीलुल्ला ख़ाँ यज़्दी का लड़का था। शाहजहाँ के शासन काल में क्रमशः उन्नति करते-करते औरंगज़ेब के राज्य के समय में यह जम्मू के प्रान्त का फ़ौजदार नियत हुआ। औरंगज़ेब के १०वें वर्ष इसने यूसुफ़ज़ई की चढ़ाई में बड़ी वीरता प्रदर्शित की। १६वें वर्ष में काबुल की चढ़ाई में यह साथ गया। २७ अप्रैल १६६८ ई० को यह मरा।[2]

(२) अमीर ख़ाँ—(मीर इस्हाक, उमदतुलमुल्क)—यह अमीर ख़ाँ मीर मीरान का पुत्र था। इसने जहाँदार के युद्ध में फ़र्रुख़सियर की अच्छी सेवा की, जिससे यह शस्त्राध्यक्ष और शिकारी चिड़ियाघर का दारोग़ा नियत हुआ। ११५२ हिजरी में यह इलाहाबाद का सूबेदार बना। ११५६ हिजरी में (५ जनवरी, १७४६-४७ ई०) यह एक नौकर द्वारा मार डाला गया।[3]

जैनदीं ख़ाँ (ज़ैनुद्दीन ख़ाँ बहादुर ख़ाँ)—यह ग़ैरत ख़ाँ का पुत्र और बहादुर ख़ाँ दाऊद ज़ई का पौत्र था। यह शाहजहाँपुर का एक निवासी था। इसने खजुआ के युद्ध में ऐज़ुद्दीन पर वीरतापूर्वक आक्रमण किया था। इसी युद्ध में मुहम्मद माह आज़म ख़ाँ ने इसे घायल करके गिरा दिया था।[4]

कोकिलतास (कोकल ताश ख़ाँ)—अली मुराद ख़ाँ जहाँ कोकल ताश ख़ाँ जहाँदार शाह का धाय-भाई था। जहाँदार शाह ने इसे अमीरुल् उमरा उपाधि देकर द्वितीय मन्त्री नियुक्त किया। फ़र्रुख़सियर के विरुद्ध युद्ध करते हुए यह छबीलेराम के हाथ से मारा गया।[5]

ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ चिकलीच ख़ाँ निज़ामुल्मुल्क—यह ग़ाज़ीउद्दीन फ़ीरोज़ जंग का पुत्र था। इसका नाम मीर क़मरुद्दीन तथा चिकलीच ख़ाँ उपाधि थी। यह धीरे-धीरे उन्नति करता गया और जहाँदार शाह के शासन के अन्तिम दिनों में यह आगरा का रक्षक नियत हुआ। वहाँ उसने फ़र्रुख़सियर का साथ दिया। सिंहासनारूढ़ होने पर फ़र्रुख़सियर ने इसे ख़ान ख़ानान निज़ामुल्मुल्क बहादुर फ़तह जङ्ग की उपाधि से विभूषित करके सम्पूर्ण दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। इसका जन्म ११ अगस्त, १६७१ ई० और मृत्यु १७४८ ई० में हुई थी।[6]

सैय्यद फ़तह अली ख़ाँ—सैय्यद फ़तह अली ख़ाँ सैय्यद अब्दुल्लाह ख़ाँ की बहिन का लड़का था। यह फ़र्रुख़सियर के तोपख़ाने का अध्यक्ष था। फ़र्रुख़सियर के उत्तराधिकार युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ते हुए यह मारा गया। एक ऐतिहासिक के मतानुसार इसकी वीरता की

---

[1] लेटर मुग़लस् भा० १, पृ०२१७, २३० (पाद-टिप्पणी), २५८ [2] मआसिरूल् उमरा भा० २, पृ० २५०-८ [3] वही, भा० वही, पृ० २४८-१; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० १८७ (पाद-टिप्पणी सहित), २०७, २६० (पाद-टिप्पणी सहित) [4] वही, भा० वही, पृ०२११ (पाद-टिप्पणी सहित), २१७, २२५, २३०, २३१ [5] वही, वही, भा० १, पृ० १८६, १६७, २२१, २२६ (पाद-टिप्पणी सहित); २३०, २३३ [6] वही, भा० वही, पृ० १६४ (पाद-टिप्पणी सहित); २२१, २२६, २३२, २३३, २४४, २४५, २६२, २६८-७२; मआसिरुल् उमरा, भा० ३, पृ० ५५१-५

ख्याति से विद्वेष-भावना के वशीभूत होकर सैय्यद अब्दुल्लाह ख़ाँ ने एक योरोपीय डाक्टर द्वारा फ़तह अली ख़ाँ के घावों पर विषैली औषधियों का प्रयोग करवा करके इसे मरवा डाला।[१]

गुलाब अली ख़ाँ (ग़ुलाम अली ख़ाँ) ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ बहादुर—यह फ़र्रुख़सियर के बाला-शाही में नौकर था। उत्तराधिकार-युद्ध में विजयी होने पर सम्राट् फ़र्रुख़सियर ने इसे ज़ुल्फ़िक़ार उपाधि से विभूषित करके तोपख़ाने का अध्यक्ष नियत किया।[२]

गैरति ख़ाँ (ग़ैरत ख़ाँ)—यह अमीरुल् उमरा हुसेन अली ख़ाँ का भानजा था और उसके सूबे अज़ीमाबाद-पटना (बिहार) में उप-सूबेदार के पद पर नियुक्त था।[३]

दाऊद ख़ाँ दुपट्टे बाज़—यह निर्णय करना कठिन है कि श्रीधर ने इस नाम से किस व्यक्ति की ओर संकेत किया है। इतिहास से विदित होता है कि "जब फ़र्रुख़सियर दिल्ली की ओर जा रहा था, तो मार्ग में बिंदकी नामक स्थान पर २७ नवम्बर, १७१२ ई० को हमीद ख़ाँ क़ुरेशी का पौत्र हया ख़ाँ शत्रु-पक्ष को त्याग कर फ़र्रुख़सियर से आ मिला था। सम्राट् ने उसे दाऊद ख़ाँ की उपाधि से विभूषित किया था।"[४] सम्भवतः कवि का इसी नाम से अभिप्राय है।

उमादतुल् मुल्क अमीरुल् उमरा बहादुर फ़ीरोज़ जंग सैय्यद हुसेन अली ख़ां—यह सैय्यद मियाँ अब्दुल्लाह ख़ाँ का पुत्र और क़ुतुबुलमुल्क सैयद अब्दुल्लाह ख़ाँ का छोटा भाई था। औरङ्गज़ेब के शासन-काल में यह क्रमशः रणथम्भौर तथा हिंडौन-बियाना का शासक रहा। बहादुरशाह के मरने पर अपने भाई के साथ हुसेन अली ख़ाँ ने फ़र्रुख़सियर का साथ दिया। परिणामस्वरूप उसके सम्राट् बनने पर यह उसका मीर बख़शी बना। १७२० ई० में इसकी हत्या कर दी गई।[५]

इमत्याज़ खान (इम्त्याज़ ख़ाँ)—फ़र्रुख़सियर के उत्तराधिकार-युद्ध में इसने बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी।[६]

जानी ख़ाँ—यह जहाँदार शाह की हरावल में फ़र्रुख़सियर के विरुद्ध था। वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए इसने वीरगति प्राप्त की।[७]

ख्वाजा हुसेन—यह जहाँदारशाह के प्रमुख अमीरों में से था। कोकल ताश ख़ाँ की पत्नी की भगिनी से इसका विवाह हुआ था। जहाँदार शाह ने इसे ख़ानदौराँ की उपाधि देकर अपना द्वितीय बख़शी बनाया। जब ऐज़ुद्दीन फ़र्रुख़सियर का सामना करने के लिए भेजा गया था, उस अवसर पर यह उसकी सेना के प्रमुख अफ़सरों में से एक था। यह ऐज़ुद्दीन को बहला-फुसलाकर बिना युद्ध

---

[१] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २१७, २२६ (पाद-टिप्पणी); २३०, २३१ (पाद-टिप्पणी सहित) [२] वही, वही, पृ० २२६ (पाद-टिप्पणी), पृ० २६० [३] वही, भा० वही, पृ० २६२ [४] वही, भा० वही, पृ० २१८ [५] वही, भा० वही, पृ० २०३-५, २०६, २१७, २२७, २२६, २३०, २५८, २८२, २८७-६०, २६२, ३०२, ३०३, ३५७-६२, ३७४, ३७७-६, ३८५, ३६५, ४०७, ४१७, ४२२-६; वही, वही, पृ० १४, ३४, ४५, ५१, ५३, ५६-६२, १०० [६] वही, वही, पृ० २३० [७] वही, भा० वही, पृ० १८१, २२१, २२६ (पाद-टिप्पणी सहित), २३०-२३१, २३२

किये ही युद्ध-भूमि से भगा लाया था। फ़र्रुख़सियर की विजय के अनन्तर देहली पहुँच कर सैय्यद अब्दुल्लाह ने इसको बन्दी बनाकर इसके सारे सामान को अपने अधिकार में कर लिया था।[1]

ख़्वाजा मुज़फ़्फ़र अली ख़ाँ ज़फ़र ख़ाँ तोराबाज़ (तुर्राबाज़ ख़ाँ)—ख़्वाजा मुज़फ़्फ़र ख़ाँ पानीपती को ज़फ़र ख़ाँ की पदवी देकर फ़र्रुख़सियर ने शस्त्रालय का अध्यक्ष नियुक्त किया था। यह तथा इसके साथी पगड़ी के ऊपर तुर्रा धारण करने के कारण तुर्राबाज़ (तोड़ाबाज़) कहलाते थे।[2]

मुज़फ़्फ़र अली ख़ाँ ख़ान-इ-जहाँ—यह समसामुद्दौला ख़ान दौरा ख़्वाजा आसिम का भाई था। इसे ख़ान जहाँ की उपाधि मिली थी। यह कुछ समय तक गुजरात का सूबेदार रह चुका था। नादिरशाह की सेना के साथ युद्ध करते हुए यह ११५१ हिजरी में मारा गया।[3]

सैय्यद मुज़फ़्फ़र अली ख़ाँ—यह क़ुतुबुल्मुल्क अब्दुल्लाह ख़ाँ का मामा था। फ़र्रुख़सियर ने इसे सैय्यद ख़ाँ जहाँ बहादुर की उपाधि से विभूषित करके अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया था।[4]

ख़ानाज़ाद ख़ाँ शाइस्ता ख़ाँ—इस व्यक्ति के सम्बन्ध में निर्णय करना कठिन है। ऐतिहासिक ग्रन्थों से विदित होता है कि फ़र्रुख़सियर के मामा का नाम ख़्वाजा इनायतुल्लाह ख़ाँ था, जिसे शाइस्ता ख़ाँ की उपाधि मिली थी।[5] सम्भव है कि श्रीधर ने इसी की ओर संकेत किया हो। यह भी हो सकता है कि उक्त कवि ने फ़र्रुख़सियर के मामा का अपने ग्रन्थ में इनायतुल्ला, जिसका विवरण नीचे दिया जायेगा, नाम से ही उल्लेख किया हो और ख़ानाज़ाद शाइस्ता ख़ाँ नामक कोई अन्य अमीर उसकी सेना में रहा हो।

इनायतुल्लाह ख़ाँ—इतिहास ग्रंथों में फ़र्रुख़सियर के समकालीन उक्त नामधारी दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। उनमें से एक फ़र्रुख़सियर का मामा था, जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इस नाम का द्वितीय व्यक्ति इनायतुल्ला ख़ाँ काश्मीरी था, जिसे जहाँदार शाह ने काश्मीर का सूबेदार नियत किया था। फ़र्रुख़सियर के शासन के प्रारम्भ में यह मक्का चला गया था और उसके राज्य-काल के मध्य में लौटकर पुनः मंसब प्राप्त करके काश्मीर का शासक नियुक्त हुआ था। ११३६ हिजरी में इसकी मृत्यु हुई थी।[6]

श्रीधर द्वारा दिए गए इस नामधारी व्यक्ति के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि उसने इनायतुल्ला ख़ाँ काश्मीरी की ओर संकेत नहीं किया है। उसका अभिप्राय या तो फ़र्रुख़सियर के मामा से है अथवा किसी अन्य व्यक्ति से।

लुत्फ़ुल्लाह ख़ाँ सादिक़—यह दिलेर दिल खां का भाई था। जहाँदार शाह ने इसे अपने बड़े शाहज़ादे ऐज़ुद्दीन का दीवान नियत किया था। जब उक्त शाहज़ादा फ़र्रुख़सियर का सामना करने के लिए सेना के साथ गया था उस समय यह अमीर उसके साथ था। युद्ध-भूमि से भागने के

---

[1] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० १८६, १६१, २१८, २४८ [2] वही, भा० वही, पृ० २६० (पाद-टिप्पणी सहित) [3] मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० ४२६ [4] वही, भा० १, पृ० २१६ (पाद-टिप्पणी सहित), २६१ [5] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० १४४, ३०४ [6] मआसिरुल् उमरा, भा० २, पृ० ४४५-७; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० १८७, २५६, २६१, ३३३, ३३४; वही, भा० २, पृ० १०५, १३८

लिए ऐज़ुद्दीन को परामर्श देनेवाले अमीरों में यह प्रमुख था। कालान्तर में इसने फ़र्रुख़सियर का पक्ष ग्रहण किया। सिंहासनारुढ़ होने पर फ़र्रुख़सियर ने लुतफ़ुल्लाह ख़ाँ बहादुर सादिक़ को दीवान-इ-तन नियुक्त किया।[1]

मुख़्त्यार ख़ाँ—यह ख़ान आलम बहादुर शाही का लड़का था। जहाँदार शाह की ओर से युद्ध करते हुए इसने वीरगति प्राप्त की थी।[2]

महमद बाकर (मुहम्मद बाक़िर)—कवि का इस नाम से संभवतः मुहम्मद बाक़िर मौतमिद ख़ाँ से अभिप्राय है। यह अमीर कुछ समय तक शाहज़ादा मुहम्मद आज़मशाह का ख़ान-ई-सामाँ रह चुका था। इसके अनन्तर यह शाहज़ादा जहाँशाह का दीवान रहा था। सिंहासनारूढ़ होने पर फ़र्रुख़सियर ने इसे दीवान-इ-ख़ालसा के पद पर नियुक्त किया था।[3]

तकर्रुब ख़ाँ—श्रीधर ने तकर्रुब ख़ाँ नाम से संभवत: मुहम्मद जफ़र ख़ाँ शीराज़ी तकर्रुब ख़ाँ की ओर संकेत किया है। यह फ़र्रुख़सियर का निजी मन्त्री था। आगरा की विजय के उपरांत उक्त सम्राट् ने इसे ख़ान-ई-सामान नियुक्त किया। इसकी मृत्यु १ अप्रैल, १७१६ ई० को हुई।[4]

सैय्यद राजे ख़ाँ (सैयद राजे मुहम्मद ख़ाँ)—यह इलाहाबादांतर्गत मानिकपुर के गारदेज़ी परिवार का सैय्यद था। कहा जाता है कि इसका नाम हुसेन उद्दीन ख़ाँ था और इसे सैय्यद राजे ख़ाँ बहादुर दिलावर जंग की उपाधि मिली थी। फ़र्रुख़सियर के युद्ध में यह जहाँदार शाह की ओर से लड़ा था।[5]

मीर जुमला—इसका वास्तविक नाम उबैदुल्लाह तथा इसके पिता का नाम मीर मुहम्मद वफ़ा था। इसका जन्म १६७०-७१ ई० में हुआ था। यह क्रमशः बङ्गाल और विहार में क़ाजी के पद पर रह चुका था। लाहौर से लौटते समय यह आगरे में फ़र्रुख़सियर से मिला। इसकी उपाधियाँ क्रमशः शरीअतुल्लाह ख़ाँ, इबादुल्लाह ख़ाँ, बहादुर, मुज़फ्फ़र जंग, मौतुमिदुल्मुल्क मुअज्ज़म ख़ाँ, ख़ान ख़ानान, बहादुर मुज़फ्फ़र जंग, मीर जुमला, तरख़ानी, सुलतानी थीं। यह फ़र्रुख़सियर का विशेष विश्वास-पात्र था।[6]

सरबुलन्द ख़ाँ—इसका वास्तविक नाम रफ़ी सर बुलन्द ख़ाँ था। यह फ़र्रुख़सियर के पिता अज़ीमुश्शान का साला था। इसका जन्म १६७४ ई० में और देहावसान १६ जनवरी, १७४२ ई० को हुआ था। अज़ीमुश्शान ने इसे कड़ा-मानिकपुर का फ़ौजदार नियुक्त किया था। विजयी होने पर फ़र्रुख़सियर ने इसे अवध का सूबेदार बनाया।[7]

रशीद ख़ाँ—यह अफ़रासयाब ख़ाँ बहादुर, रुस्तम जंग का बड़ा भाई था।[8]

---

[1] लेटर मुग़ल्स् भाग १ पृ० १८१, १८६, १८७, २१८, २१६, २४५, २५८, ३०१-२ [2] वही, भा० २२२, २३१, २३२, २३५ [3] वही, वही, पृ० २५८ [4] वही, भा० वही, पृ० २४६, २५० (पाद-टिप्पणी सहित), २५३, २५५, २५६ [5] वही, भा० वही, पृ० १८६, २०७-८ (पाद टिप्पणी सहित), २२५, २२६ (पाद-टिप्पणी सहित), २३६ [6] वही, भा० वही, पृ० २२६, २४४ २४८, २४६, २५२, २५५, २५६ ६०, २६२, २६७-८, २७६, २६३, २६७, ३०१, ३३०, ३३१ ३३२, ३५२, ३५६ [7] वही, भा० वही, पृ० १६१, १६६-२०० (पाद-टिप्पणी सहित), २६२ [8] वही, भा० वही, पृ० १६६, २५६ (पाद-टिप्पणी)

अफ़ज़ल .खाँ—इसने .फर्रुखसियर को .कुरान पढ़ाई थी। सिंहासनारूढ़ होने पर सम्राट् ने इसे सैय्यद अफ़ज़ल .खाँ बहादुर सदर-जहाँ की उपाधि देकर सदारत-इ-कुल (अध्यक्ष दान-पुण्य-विभाग) नियत किया।[1]

मीर अशरफ़—यह मीर मुशरिफ़ का भाई था। .फर्रुखसियर के उत्तराधिकार-युद्ध में वीरता-पूर्वक शत्रु-संहार करते हुए इसने वीर-गति प्राप्त की।[2]

मीर मुशरिफ़—यह लखनऊ निवासी और उपर्युक्त मीर अशरफ़ का भाई था। यह .फर्रुखसियर का समर्थक था।[3]

रफ़ीउलक़दर (रफ़ीउल्क़द्र) / **रफ़ीसान** (रफ़ीउश्शान) } शाहज़ादा रफ़ीउलकद्र को रफ़ीउश्शान की उपाधि से विभूषित किया गया था। यह सम्राट् बहादुर शाह का पुत्र और जहाँदार शाह का भाई था। इसका जन्म १०८१ हि० में हुआ था। बहादुर शाह के मरने पर लाहौर के उत्तराधिकार-युद्ध में जहाँदार शाह के विरुद्ध लड़ते हुए यह १७ मार्च, १७१२ ई० को मारा गया।[4]

अनिश्चित-पात्र

निम्नलिखित पात्रों के सम्बन्ध में सहायक ऐतिहासिक ग्रन्थों में विवरण अप्राप्य है। अतएव इनके सम्बन्ध में निश्चायात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। पर सम्भावना यही है कि प्रायः ये सभी ऐतिहासिक व्यक्ति ही रहे होंगे :—

हिन्दू-पात्र—जयकृष्णदास (नज्मुद्दीन अली .खाँ का दीवान), टीकाराम, बेनीराम नागर, भगौती राम (छबीलेराम का पुत्र), राउ दलपति, राजा रतनचन्द, राय भगवन्तराय दीवान (काकोरी निवासी), राजा गन्धर्वसिंह, राय शिरोमणिदास, गुलाबराय (राजा छबीलेराम का दामाद), साहिब राय माथुर, सुवंस राय (भगवन्तराय का पुत्र)।

मुसलमान पात्र—अब्दुल्लाह खाँ खोजा (ख्वाजाह अब्दुल्लाह .खाँ), सैय्यद अनवर खाँ, असद अली खाँ, अकबर अली खाँ, अब्दुल् रसूल, अकरम मीर, अहमद .खाँ सरबानी, आतस (आतश) खाँ, इलायची बेग (बहादुर दिल खाँ—उपाधि), इफ़्तखार खाँ (इफ़्तख़ार खाँ), इख्तियार खाँ, इनायत ख़ाँ, इनायत शाह, इद्गार बेग, इबराहिम हुसेन (इब्राहीम हुसेन), क़ासिम बेग .खाँ मिर्जा, .खैरुद्दीं अली खाँ, खोजा रहमतुल्लाह, गुलाब मेंहदी खाँ, (गुलाम मेंहदी .खाँ) गुलाम मुईउद्दीन खाँ, ज़ाँ बाज़ खाँ, .जबरदस्त खाँ, जब्बर खाँ, तैयब, तैमूर खाँ, तौफ़ेबाज़, दरबार खाँ, दरबेश अली खाँ, सैयद, दरवेश मुहम्मद सैय्यद, दिल दिलावर खाँ, दिल दिलेर खाँ, दोस्त अली खाँ, नौशेरी खाँ (कोकल ताश खाँ का पुत्र), नेक नाम खाँ, पीरमुहम्मद (शेख) फ़तहुल्लाह खाँ, फ़क़ीरुल्लाह खाँ (मिर्ज़ा), फ़िदाईखाँ, बैरम खाँ (बैरामखाँ), बासै खाँ (मुहम्मद बासेह खाँ—अफ़रासयाब खाँ का कनिष्ट भ्राता), मुसलेह खाँ, .जफ़रजङ्ग खाँ (फ़िदाई खाँ का पुत्र) मुहम्मद साले (सालेह) खाँ (आज़म खाँ का भ्राता), मंजूर (मिर्जा अथवा मियां), मुखलिस खाँ, मुहम्मद अमान बेग, महियार खाँ, मुहम्मद हयात खाँ सैय्यद, मुहम्मद अली सैय्यद, मीर मुहसिन

---

[1] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २६१ [2] वही, भा० वही, पृ० २३०, २३१, [3] वही, भा० वही, पृ०, वही [4] वही भा० वही, पृ० ३६, १४३, १४५-६, १६१, १८४, १८५

खाँ, मुहम्मद शुजा (आज़म खाँ का भाई), मुहम्मद हुसेन, मुमताज खाँ, मीर अज़ीज् खां मिर्ज़ा बहराम बेग (बरकंदाज़ खाँ का पुत्र), मीर खान (अमीरखाँ का पुत्र), मीर मुकर्रम, मुहम्मद अमीन खाँ, रहमरहमान खाँ, रुस्तम खां (रुस्तम दिल खाँ), रहमतुल्लाह खां (शेख), रहमतुल्लाह (ख्वाजाह), यादगार बेग, बली महम्मद, शुजातुल्लाह*, सादी (शादी खाँ), शुजायति अलीखांन (शुजाअत अली खाँ), शेख रसूखियत .खाँ, (रसूखियत .खाँ), सुलतान कुली .खाँ, शाकिर मुहम्मद (मीर), सैय्यद इमाम शेख, सैय्यद मुरुतज़ा .खाँ, सुलतान बेग .खाँ, बली .खाँ मिर्ज़ा, हलीम .खाँ दिला ज़ाक, हेम .खाँ, बहराम बेग (यह अपने पिता की उपाधि बरकन्दाज .खाँ से विभूषित हुआ था), मियाँ निहाल (इतिमाद .खाँ उपाधि), रहमत .खाँ (मुतहव्वर .खाँ उपाधि), शेख .खैरुल्लाह, रनदूल्लह, समुन्दर खान, हिज़बर .खाँ, मंदी अली .खाँ (मेंहदी अली .खाँ) मुहम्मद असकरी (मियाँ), मुहम्मद इमाम, मुहम्मद वसी .खाँ, सुलतान जहाँ (सैय्यद)।

फ़र्रुख़सियर का अपने को सम्राट् घोषित करना—ता० २७ फ़रवरी, १७१२ ई० को बहादुरशाह की मृत्यु लाहौर में हुई। उत्तराधिकार-युद्ध में ज़ुल्फ़िक़ार की सहायता से विजयी होकर जहाँदार शाह २६ मार्च, १७१२ ई० को सिंहासनारुढ़ हुआ। वह लाहौर से चलकर २२ जून, १७१२ ई० को दिल्ली पहुँचा।

बंगाल से आगरा को जाते समय अज़ीमाबाद-पटना में फ़र्रुख़सियर को उपर्युक्त सारी घटनाओं तथा उत्तराधिकार-युद्ध में अपने पिता अज़ीमुश्शान के मरण का समाचार ज्ञात हुआ। उसने वहीं पर अपने को सम्राट् घोषित कर दिया। साथ ही बिहार के सूबेदार हुसेन अली .खाँ तथा उसके ज्येष्ठ भ्राता अब्दुल्लाह .खाँ को, जो उस समय प्रयाग का शासक था, विशेष रूप से सम्मानित करके अपनी ओर मिला लिया।[1]

कवि श्रीधर कथित विवरण तथा ऐतिहासिक उल्लेख समान हैं। उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। श्रीधर द्वारा महाजनी चिट्ठी[2] के चलने का, जो उल्लेख किया गया है, वह भी सत्य है। महाजन अपने पत्रों में तत्कालीन सम्राट् के नाम का उल्लेख किया करते थे। व्यापार के लिए दूर देशों में जाकर ये समाचार फैलाते थे। इसका उक्त घटना के सम्बन्ध में तत्कालीन इतिहास-लेखकों ने भी उल्लेख किया है, जैसा कि उनके आधार पर दिए गए इरविन के कथन से विदित होता है।[3]

यहाँ पर एक बात अवश्य विचारणीय है। श्रीधर ने फ़र्रुख़सियर द्वारा अब्दुल्लाह .खाँ को प्रयाग का सूबेदार नियुक्त करके भेजने का उल्लेख किया है। पर इतिहास से विदित होता है कि वह उस समय प्रयाग का सूबेदार था। अतएव उसका पटना में पहुँचना असम्भव प्रतीत होता है। इरविन महोदय इस घटना को अनैतिहासिक बतलाते हैं।[4] इतिहास इस बात का

---

*यह निश्चित पात्रों में उल्लिखित सैय्यद शुजातुल्लाह खाँ से भिन्न व्यक्ति है।

[1] जंगनामा, पंक्ति ६-२६; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० १२५, १५८-८६, १६०-२, १६८-६, २०५-६; दी सैर मुताख़रीन, भा० १, पृ० २२, २४, ४१, ४४-५ [2] जंगनामा, पंक्ति ६ [3] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० १८३ [4] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १६०० ई०, पृ० २

साक्षी है कि सैय्यद हुसेन अली .ख़ाँ तथा अब्दुल्ला .ख़ाँ को अपने-अपने सूबों की सूबेदारी फ़रु'ख़सियर के पिता अर्ज़ीमुश्शान की कृपा से ही प्राप्त हुई थी। साथ ही सिंहासनारुढ़ होते ही जहाँदार शाह अब्दुल्लाह .ख़ाँ को प्रयाग की सूबेदारी से अलग करने की तैयारी कर चुका था।[1] ऐसी परिस्थिति में श्रीधर के उक्त कथन का केवल यही अभिप्राय प्रतीत होता है, कि फ़रु'ख़सियर ने अब्दुल्लाह .ख़ाँ को सम्मानित तथा अपनी ओर से प्रयाग का सूबेदार नियत करके संदेश भेजा था। अतः लक्षणा की सहायता से अर्थ लेने पर श्रीधर का कथन एकदम अनैतिहासिक नहीं माना जा सकता।

मीर ज़ुमला और जहाँदार शाह—श्रीधर के उल्लेख से ज्ञात होता है कि मीर ज़ुमला मुई-.ज़ुद्दीन की सेना में रहकर फ़रु'ख़सियर को सारा समाचार लिखता रहता था।[2]

पात्रों की ऐतिहासिकता पर विचार करते समय मीर ज़ुमला के संबंध में लिखा जा चुका है कि लाहौर के युद्ध में अर्ज़ीमुश्शान के मरने पर यह अमीर फ़रु'ख़सियर से मिलने के लिए पूर्व की ओर चल दिया था। मार्ग में जहाँदार शाह के व्यक्तियों ने इसे आगे नहीं बढ़ने दिया। यह भी जहाँदार की सेना के तूरानी सरदारों को बहकाने में सफल हुआ था। आगरे में वह फ़रु'ख़सियर से मिला था। इस बीच में यह जहाँदार शाह संबंधी विवरण अवश्य ही अपने स्वामी के पास भेजता रहा होगा। अतएव श्रीधर का उक्त कथन सत्य है।

इरविन महोदय ने इस घटना को असत्य माना है।[3] उनके कथन की वास्तविकता जानने के लिए नीचे श्रीधर की पंक्तियाँ तथा इरविन कृत अँगरेज़ी अनुवाद दिया जा रहा है :—

"तहँ मीर ज़ुमला मीर बुद्धि गंभीर बाहु विशाल।
<u>मड़ि रह्यो</u> मौजदीन की कटक गहि करवाल॥"[4]

इरविन के शब्दों में :—

The Mir Jumlah, a noble, clever, deep, strong of arms,
Fought Mauzuddin's army, grasping the sword."[5]

कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'मड़ि रह्यो' का 'युद्ध करना' (fought) अनुवाद करने से इरविन महोदय को उक्त भ्रम हो गया है। इस शब्द का अर्थ 'सम्मिलित हो गया,' 'मिल गया' करने से उक्त भूल के लिए स्थान ही नहीं रह जाता है।

अतएव श्रीधर का उक्त कथन ऐतिहासिक है और उसके संबंध में इरविन महोदय की धारणा एकदम निराधार है।

अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ और अबुल हसन का युद्ध—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि जहाँदार शाह ने अबदुल्लाह .ख़ाँ को प्रयाग की सूबेदारी से अलग कर दिया, उसके स्थान पर राजे मुहम्मद .ख़ाँ को सूबेदार तथा सैय्यद अबदुल् ग़फ़्फ़ार को उप-सूबेदार नियुक्त किया।

अब्दुल ग़फ़्फ़ार कड़ा-मानिकपुर के निकट पहुँचा। अब्दुल्लाह ने अपने बख़्शी सैय्यद

---

[1] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २०१-७ [2] जंगनामा, पंक्ति ३०-३; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २६७-८ [3] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १९०० ई०, पृ० २ [4] जंग-नामा, पंक्ति ३०-१ [5] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १९०० ई०, पृ० ३२

अबुल् हसन .ख़ाँ को उसका सामना करने के लिए भेजा। सराय आलमचन्द (प्रयाग से २० मील उत्तर-पश्चिम) के निकट युद्ध हुआ। इस युद्ध में अब्दुल्लाह .ख़ाँ का भाई सिराजुद्दीन अली .ख़ाँ मारा गया। अब्दुल्लाह .ख़ाँ की विजय हुई। अब्दुल ग़फ़्फ़ार .ख़ाँ ने आगरे की ओर भागकर शहज़ादपुर (प्रयाग से लगभल ३५ मील उत्तर-पश्चिम) में दम लिया।[1]

सैर मुताख़रीन में अब्दुल्लाह .ख़ाँ के उस युद्ध में मृत भाई का नाम नूरुद्दीन लिखा है, पर इरविन महोदय ने .ख़फ़ी .ख़ाँ आदि के आधार पर उसका नाम सिराजुद्दीन लिखा है जो श्रीधर के कथन का समर्थन करता है। इस प्रसंग संबंधी शेष सभी घटनाएँ इतिहास के विवरण से मेल खाती हैं।

फ़र्रुख़सियर का प्रयाग पहुँचना—हुसेन अली के फ़र्रुख़सियर के पक्ष में हो जाने पर ग़ाज़ीउद्दीन .ख़ाँ ग़ालिब जङ्ग, ख़्वाजा आसिम (अशरफ़ .ख़ाँ) उससे पटना में मिले। सम्राट् ने सफ़शिकन को उड़ीसा का उप-सूबेदार और अशरफ़ .ख़ाँ को दीवान-.ख़ास का अध्यक्ष नियुक्त किया। इसी अवसर पर मीर मुशरिफ़, जैनुद्दीन .ख़ाँ आदि अमीर भी उसके पक्ष में आ गए।

१८ सितम्बर, १७१२ ई० को फ़र्रुख़सियर ने अपना डेरा आगे भेज दिया। चार दिन के पश्चात् स्वयं पटने से चला। दानापुर, शेरपुर आदि स्थानों पर होते हुए वह बनारस के निकट छोटे मिर्ज़ापुर में रमज़ान की तीसवीं तारीख़ (३० अक्टूबर) को पहुँचा। वहाँ एक दिन आराम किया। इसके अनन्तर यात्रा पुनः आरंभ हुई। ५ नवम्बर, १७१२ ई० को फ़र्रुख़सियर झूसी पहुँचा। उस-स्थल पर उसने अब्दुल्लाह .ख़ाँ को अपना प्रधान-मन्त्री बनाया और हुसेन अली ख़ाँ को अमीर-उल्-उमरा की पदवी से विभूषित किया। तदनन्तर १२ नवम्बर को गङ्गा जी को पार करके फ़र्रुख़सियर ने नए और पुराने प्रयाग के मध्य डेरा डाला।[2]

श्रीधर ने इस घटना संबंधी अपने विवरण में फ़र्रुख़सियर के पक्ष में आने वाले सरदारों की एक लम्बी सूची दी है। इनमें से अधिकांश के नाम इतिहास-ग्रंथों में मिल जाते हैं।

उक्त कवि ने बनारस में फ़र्रुख़सियर द्वारा ईद मनाने का उल्लेख किया है, जो ठीक ही प्रतीत होता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि, वह बनारस के निकट ३० अक्टूबर को पहुँचा था और वहाँ पर आगामी दिन (३१ अक्टूबर) को आराम किया था। उस वर्ष ईद ३१ अक्टूबर, १७१२ ई० को पड़ी थी। तत्कालीन इतिहास लेखक कामूवर भी इसे स्वीकार करता है।[3]

पटना से प्रयाग की ओर चलने वाले अमीरों की दीर्घ सूची में श्रीधर ने मीर जुमला के नाम का उल्लेख किया है,[4] जो असत्य है। वास्तव में मीर जुमला उस समय उसके साथ नहीं था। बहादुरशाह के मरने पर लाहौर में जो उत्तराधिकार-युद्ध हुआ था, उसमें मीर जुमला फ़र्रुख़सियर के पिता अज़ीमुश्शान के साथ था। अपने स्वामी के मारे जाने पर वह फ़र्रुख़सियर से मिलने के लिए चला और उसके आगरे में पहुँचने पर उससे भेंट की थी।[5] अतः कवि श्रीधर का उक्त कथन इतिहास से विपरीत पड़ता है।

---

[1] जंगनामा, पंक्ति ३४-१३०; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २०७-६; दी सैर मुताख़रीन, भा० १, पृ० ४८६ [2] जंगनामा पं० १३१-३६२; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २१०-३ [3] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १६०० ई०, पृ० ५४ [4] जंगनामा, पं० २०५-६ [5] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २२७, २६८-८

खजुआ का युद्ध और ऐज़ुद्दीन की पराजय—"जब जहाँदार शाह लाहौर से देहली को लौट रहा था तब उसे फ़रु'ख़सियर के पटना पहुँचने का समाचार मिला था। उसने फ़रु'ख़सियर की गति-विधि पर दृष्टि रखने के लिए ख़्वाज़ा हुसेन ख़ाँ दौराँ तथा लुतुफ़ुल्लाह सादिक़ की संरक्षता में अपने बड़े बेटे ऐज़ुद्दीन को आगरे भेजा।

अब्दुल ग़फ़्फ़ार की पराजय का समाचार ज्ञात होने पर जहाँदार शाह ने ऐज़ुद्दीन को प्रयाग की ओर रवाना होने की आज्ञा दी। इटावा पहुँचने पर शाहज़ादे ऐज़ुद्दीन से अली असग़र ख़ाँ, जो फ़रु'ख़सियर का सहायक था, मिला। वह नवम्बर, १७१२ ई० को कोड़ा पहुँचा। वहाँ पर उससे चकला-कड़ा-मानिकपुर का फ़ौजदार (इजाद के अनुसार कोड़ा का फ़ौजदार) छबीलेराम, जो गुप्त रूप से फ़रु'ख़सियर का मित्र था, मिला। अन्त में खजुआ पहुँचकर ऐज़ुद्दीन ने अपना डेरा डाला।

फ़रु'ख़सियर भी प्रयाग से प्रस्थानित होकर हथगाँव, कुँवरपुर, रोशनाबाद आदि स्थानों पर होता हुआ अक़िलाबाद में पहुँचा।

मार्ग में ख़मसरा घाट के निकट अपने भतीजे गिरधरलाल के साथ छबीलेराम फ़रु'ख़सियर से जाकर मिला। कुँवरपुर नामक स्थान पर असग़र ख़ाँ उसके पास आया। बादशाह ने उसे ख़ाँ जमाँ की उपाधि से विभूषित किया। अक़िलाबाद में मुहम्मद ख़ाँ बंगश आकर फ़रु'ख़सियर के पक्ष में हो गया।

२४ नवम्बर, १७१२ ई० को रोशनाबाद से अब्दुल्लाह ख़ाँ तथा हुसेन अली ख़ाँ युद्ध-भूमि का निरीक्षण करने के लिए आगे बढ़े और एज़ुद्दीन की खाइयों के निकट तक जा पहुँचे। २६ नवम्बर को फ़रु'ख़सियर की प्रधान सेना आधे मील आगे अक़िलाबाद तक तथा २७ नवम्बर को बिंदकी तक बढ़ गई। इसी दिन शत्रु-पक्ष को त्याग कर हया ख़ाँ फ़रु'ख़सियर से जा मिला, जिसे दाऊद ख़ाँ की उपाधि दी गई।

२८ नवम्बर, १७१२ ई० की रात्रि में ख़्वाज़ा हुसेन ख़ाँ दौराँ तथा लुतुफ़ुल्लाह ख़ाँ के बहकाने से ऐज़ुद्दीन सपरिवार आगरे को भाग गया जहाँ वह एक सप्ताह में जा पहुँचा।

प्रातःकाल होने पर फ़रु'ख़सियर की सेना ने शत्रु की सेना की मन मानी लूट की।

खजुआ के स्थान पर शत्रु-पक्ष के आए हुए सैय्यद मुज़फ्फ़र ख़ाँ (अब्दुल्लाह ख़ाँ के मामा), सैय्यद हसन ख़ाँ, मुस्तफ़ा हुसेन, लुतुफ़ुल्लाह ख़ाँ आदि अमीर फ़रु'ख़सियर से मिले।[1]

जंगनामा तथा इतिहास में वर्णित उक्त घटना सम्बन्धी विवरण प्रायः एक से हैं। कुछ बातों के संबंध में साधारण अन्तर अवश्य है। श्रीधर ने छबीलेराम के फ़रु'ख़सियर से मिलने के स्थान का नाम कड़ा दिया है, पर इतिहास ग्रंथों के अनुसार कड़ा से दो या तीन मंज़िल प्रयाग की ओर कोई अन्य स्थान था। इसी प्रकार हथगाँव में अली असग़र ख़ाँ को ख़ाँ जमाँ की उपाधि दिये जाने का श्रीधर ने उल्लेख किया है और इतिहास से विदित होता है कि वह बादशाह से कुँवर पुर में मिला था। फ़रु'ख़सियर हथगाँव में १९ नवम्बर और कुँवर पुर में २३ नवंबर को

---

[1] **जंगनानामा, पंक्ति ३७, ३६३-६६२; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ०१९०-१, २१३-६; दी सैर मुताख़रीन, भा० १, पृ० ४०-१**

पहुँचा था। इस प्रकार कवि श्रीधर और इतिहास में कथित असग़र के मिलने की तिथि में चार दिन का अन्तर पड़ता है। साथ ही उसको .खाँ .जमाँ की उपाधि कई दिन के पश्चात् मकरन्द-नगर में १३ दिसंबर को दी गई थी।

इसी प्रकार मुहम्मद .खाँ बंगश के .फर्रुखसियर से मिलने के संबंध में भी दोनों में मत-भेद है। जंगनामा के अनुसार यह अमीर .फर्रुखसियर से खजुआ के युद्ध के उपरान्त और इतिहास के मत से उस युद्ध से पूर्व मिला था।[1]

इस प्रसंग में एक बात और विचारणीय है। श्रीधर ने लिखा है कि उक्त युद्ध के अवसर पर .फर्रुखसियर ने शाहज़ादे को सेनाध्यक्ष बनाकर हरावल में भेजा था।[2] यदि उसके इस कथन से फ़र्रुखसियर के पुत्र से अभिप्राय है तो उस समय उसके केवल एक ही बड़ा पुत्र मुहम्मद .फर्खुन्दा-सियर जहाँगीर शाह था। उसका जन्म २७ दिसंबर, १७११ ई० को पटना में हुआ था और मृत्यु देहली में १२ मई, १७१३ ई० को हुई थी।[3] इस प्रकार उस शाहज़ादे की उक्त युद्ध के अवसर पर अवस्था केवल ११ मास की थी। ऐसी परिस्थिति में श्रीधर के कथन का केवल इतना ही अभिप्राय प्रतीत होता है कि उस बालक शाहज़ादे को केवल सेनाध्यक्ष घोषित कर दिया गया होगा। इतिहास से प्रकट होता है कि सम्राट् बनने के पश्चात् .फर्रुखसियर ने अपने इसी अल्पवयस्क शाह-.ज़ादे .फर्खुन्दाबख्त उपनाम जहाँगीर शाह को बंगाल का सूबेदार नियुक्त करके मुर्शिद कुली .खाँ को उसका उप सूबेदार नियत किया था। कुछ मास के उपरान्त उसकी मृत्यु हो गई थी।[4] अतएव कवि का उक्त कथन तथ्यपूर्ण प्रतीत होता है।

श्रीधर ने इस युद्ध के अवसर पर दोनों पक्षों के वीरों की युद्ध की तैयारी, युद्ध तथा ऐज़ुद्दीन के भागने आदि का विस्तृत वर्णन किया है, पर इतिहास से ज्ञात होता है कि ऐज़ुद्दीन युद्ध किये बिना ही वहाँ से भाग खड़ा हुआ था।

श्रीधर के उक्त घटना संबंधी शेष विवरण ऐतिहासिक हैं।

जहाँदारशाह और दिल्ली-दरबार—श्रीधर ने जहाँदारशाह के समय में दिल्ली के राज-दरबार की जो दशा थी, उसका सजीव चित्रण किया है। इस वर्णन का समर्थन .फारसी-ग्रन्थों के आधार पर लिखे गये इरविन के इतिहास से हो जाता है। दोनों विवरणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। उनका सार इस प्रकार है :—

"जुलाई १७१२ ई० से जहाँदार शाह के दिसम्बर, १७१२ ई० में आगरा रवाना होने के समय तक पाँच मास दिल्ली में भोग-विलास का साम्राज्य रहा। सर्वत्र अव्यवस्था छा गई। नगर में प्रत्येक मास में तीन बार प्रकाश किया जाता था। अनाज बहुत महँगा हो गया था। जहाँदारशाह की प्रेयसी नर्तकी लालकुँवरि के सम्बन्धी अमीर बनाकर उच्च पदों पर नियुक्त कर दिए गए थे। वे स्वच्छन्दतापूर्वक देहली की सड़कों पर अवांछित कार्य करते फिरा करते थे।

नीच व्यक्तियों को उच्च जागीर और अन्य सम्मान प्रदान कर दिए गए थे। रात्रि में

---

[1] जंगनामा, पंक्ति ७६१-९; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २१६-७, २२६ [2] जंगनामा, पंक्ति ४०६-१०, ४८० [3] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० ४०२ [4] वही, भा० वही, पृ० २६२

नीच गायक राजप्रासाद में बादशाह के साथ मदिरा-पान करते और उन्मत्तावस्था में जहाँदार शाह का अपमान करते, पर वह लालकुंवरि के भय से कुछ न कहता था।

इसके अतिरिक्त, प्रधान-मन्त्री ज़ुल्फ़िक़ार खाँ तथा अमीर-उल् उमरा कोकल ताश खाँ में झगड़ा खड़ा हो गया था। इस कारण राज्य-व्यवस्था भी गड़बड़ होने लगी थी। अभिप्राय यह है कि केन्द्र में एकदम अव्यवस्था एवं स्वेच्छाचारिता का साम्राज्य हो गया था।"[१]

जहाँदार शाह का आगरा पहुँचना—"तारीख़ २ दिसम्बर, १७१२ ई० को दिल्ली में जहाँदार शाह को ऐज़ुद्दीन के खजुआ से भाग आने का समाचार ज्ञात हुआ। आगरे पहुँचकर शत्रु का सामना करने का उसने निश्चय किया। सोना, चाँदी तथा अन्य सामान बेचकर सेना को गत ११ मास का वेतन चुकाने का प्रयत्न किया गया। चिन किलिच ख़ाँ को आगरे की रक्षा करने के लिए पहले से ही रवाना कर दिया गया।

९ दिसम्बर १७१२ ई० को जहाँदार शाह दिल्ली से चला। मार्ग में उसे बहुत से अपशकुन हुए। देहली से आगरे तक जाते समय आकाश अविरल रूप से मेघाच्छन्न रहा, वर्षा होती रही, ठंडी वायु चलती रही और भारी कुहरा पड़ता रहा।

एक लाख सेना के साथ यात्रा करते हुए जहाँदार शाह ने २९ दिसम्बर को आगरे से ३ मील दक्षिण में बाग़ दहरा में डेरा डाला। वहाँ पर शाहज़ादा ऐज़ुद्दीन ने जाकर बादशाह से भेंट की। तारीख़ ३० दिसम्बर को जहाँदार शाह आगरे के पूर्व लगभग ८ मील, यमुना किनारे सामूगढ़ नामक स्थान पर पहुँचा। वहीं पर उसने ७ जनवरी १७१३ ई० को ईद मनाई।"[२]

श्रीधर ने कहा है कि जहाँदार शाह अपनी सेना को दो मास का अग्रिम वेतन देकर दूसरे ही दिन आगरे की ओर चल पड़ा था, पर इतिहास से ज्ञात होता है कि उसने विगत मासों का वेतन चुकाया था और प्रस्थान करने में उसे एक सप्ताह लग गया था। उस समय की दिल्ली की दुर्दशा को देखते हुए इतिहास का कथन अधिक मान्य प्रतीत होता है।

अपशकुन सम्बन्धी उल्लेख दोनों में समान रूप से पाया जाता है।

श्रीधर के अनुसार ऐज़ुद्दीन जहाँदार शाह से सामूगढ़ में और इतिहास के विचार में वह उससे बाग़ दहरा में मिला था। इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है, पर ऐसा अनुमान लगाना अनुचित न होगा, कि देहली से आगरे को आते समय जहाँदार शाह बाग़ दहरा में पहले पहुँचा था और सामूगढ़ में बाद को। इसके अतिरिक्त बाग़ दहरा सामूगढ़ की अपेक्षा आगरे के अति निकट था। अतएव उन दोनों का बाग़ दहरा में मिलना ही अधिक स्वाभाविक लगता है।

फ़र्रुख़सियर का आगरा पहुँचना—फ़र्रुख़सियर १ दिसम्बर, १७१२ ई० को खजुआ से चलकर कोड़ा में पहुँचा। वहाँ शेख़ बदरुद्दीन की दरगाह के दर्शन किए। वहाँ से चलकर अन्य स्थानों पर होता हुआ ९ दिसम्बर को मक्खनपुर* पहुँचा। दूसरे दिन उसने शाहमदार की दरगाह

* यह नगर कानपुर से ३४ मील उत्तर-पश्चिम को है (लेटर मुग़लस् भाग १, पृष्ठ २२५, पाद-टिप्पणी)।

[१] जंगनामा, पंक्ति ६७२-९२; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० १९२-७ [२] जंगनामा, पंक्ति ६९८-७७३; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २१९-२५, दी सैर मुताख़रीन, भा० १, पृ० ५१-२

पर अर्चना की। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, तारीख १३ दिसम्बर को मकरन्दनगर में अली असगर ख़ाँ को ख़ाँ जमाँ की उपाधि देकर उसने आज़म ख़ाँ के स्थान पर बख्शी बनाया। वहाँ से चलकर फ़र्रुख़सियर ने कन्नौज, इटावा, शिकोहाबाद आदि स्थानों पर होते हुए २ जनवरी, १७१३ ई० को ऐतमादपुर* में डेरा डाला।

४ जनवरी को वहाँ से चलकर वह ६ मील पर स्थित सरायबेगम नामक स्थान पर पहुँचा। यहाँ पर उसे ज्ञात हुआ कि मीर जुमला के बहकाने से तूरानी नेता चिन क़िलिच ख़ाँ तथा मुहम्मद अमीन ख़ां जहाँदारशाह का पक्ष न लेकर युद्ध के अवसर पर तटस्थ रहेंगे।

इसी प्रकार आगे चलते हुए उसने तारीख़ ८ जनवरी को रात्रि में यमुना पार की। तदनन्तर उसकी सेना ने आगरा दुर्ग से ५ मील पश्चिम में सिकन्दरे के पास सराय रोजबहनी पर डेरा डाला। ख़फ़ी ख़ाँ के मतानुसार उक्त सराय आगरे से ६ मील पश्चिम में थी। यहीया नामक लेखक के विचार में इसकी सेना सिकन्दरे में ठहरी थी। श्रीधर के अनुसार सिकन्दरे से २ मील पर 'रोज़ बहासु' (रोजबहरी) स्थान था। इसी स्थान के मध्य से सेना नदी के पार उतरी थी। इसी स्थल पर ६ जनवरी को सेना ने आराम किया।[1]

इतिहास लेखकों के मतानुसार फ़र्रुख़सियर को ग़ाज़ीउद्दीन आदि अमीरों के फूटने की सूचना सराय बेगम नामक स्थान पर और श्रीधर के मत से शाहमदार (कोड़ा) में मिली थी। शेष विवरणों में दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

आगरा-युद्ध—"जब जहाँदारशाह को ज्ञात हुआ कि फ़र्रुख़सियर ने यमुना नदी पार कर ली है, तब वह सामूगढ़ से हटकर ससैन्य सिकन्दरे के निकट पहुँचा। तारीख १० जनवरी, १७१३ ई० को दोनों पक्षों की सेनायें युद्ध-क्षेत्र में आ डटीं। प्रातःकाल से वर्षा होती रही। तीन बजे पानी बरसना बंद हुआ। तब युद्ध का श्री गणेश हुआ। छबीलेराम नागर और ख़ाँ ज़माँ (अली असग़र) शत्रु-पक्ष के जानी ख़ाँ की ओर बढ़े और ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ फ़र्रुख़सियर के सामने आने का प्रयत्न करने लगा। इसी प्रकार दोनों पक्ष के वीर अपने विपक्षियों पर आक्रमण करने लगे। अब्दुस्समद के साथियों ने घायल करके हुसेन अली ख़ाँ को गिरा दिया। मीर अशरफ़ (मीर मुशरिफ़ का भाई), सैयद फ़तह अली ख़ाँ, जानी ख़ाँ, रज़ाक़ुली ख़ां, इस्माइल ख़ां, कोकलताश ख़ां, मुर्तज़ा ख़ां, मुख्त्यार ख़ां, वज़ारत ख़ाँ आदि वीरों ने वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की।

(अन्त में पराजित होकर जहांदारशाह दिल्ली को भाग गया और फ़र्रुख़सियर विजयी हुआ।)"[2]

सेनाएँ

(अ) मुइज़्ज़ुद्दीन जहाँदारशाह की सेना—श्रीधर ने इसकी सेना की संख्या आगरे

---

*यह नगर यमुना नदी से ३ मील और सामूगढ़ से ५ मील उत्तर-पूर्व में है।

[1] जंगनामा, पंक्ति ६६३-७, ७७४-८३८; लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २२५-८; दी सैर मुताख़रीन, पृ० ४२-४३ [2] जंगनामा, पंक्ति ८३६-१६२०; लेटर मुग़लस्, भा० ६, पृ० २२८, २२६-४०; दी सैर मुताख़रीन, भा० १, पृ० ४३-४६

के युद्ध के अवसर पर तीन लाख मानी है।[1] इरविन के मतानुसार उसकी संपूर्ण सेना एक लाख थी।[2]

(आ) मुहम्मद ख़ाँ बंगश की सेना—बीस सहस्र।[3] 'ऐतिहासिकों के मत से वह चार अथवा पाँच सहस्र अफ़ग़ानों को लेकर फ़र्रुख़सियर के पक्ष में गया था।'[4]

(इ) मीर जुमला की सेना—दो लाख।[5] इस सेना की संख्या के संबंध में मुख्य सहायक ग्रंथों में विवरण उपलब्ध नहीं है।

ऊपर के विवरण से सहज ही में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि श्रीधर ने सेना के संबंध में अतिशयोक्ति तथा कल्पना से अधिक काम लिया है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि जंगनामा में प्रयुक्त तिथि अशुद्ध है और अमीरों के नामों की दीर्घ-सूची की पुनः पुनः आवृत्ति के कारण ग्रंथ में रोचकता की मात्रा बहुत कम हो गई है। यह होते हुए भी श्रीधर का यह संक्षिप्त ग्रन्थ इतिहास संबंधी मौलिक एवं तथ्यपूर्ण सामग्री प्रचुर मात्रा में पाठकों के सम्मुख रखकर उनके ऐतिहासिक ज्ञान की श्रीवृद्धि करने में सहायक होता है।

---

[1] जंगनामा, पंक्ति ६७०, ८४६ [2] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २२३ [3] जंगनामा, पंक्ति ७६२, ७६६ लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २६६-७ [4] जंगनामा, पंक्ति १२४१, १२४३, १२४६

अध्याय ७

रासा भगवंतसिंह की ऐतिहासिकता

निम्नलिखित पृष्ठों में रासा भगवन्तसिंह में वर्णित युद्ध-तिथि, वंश-नाम, पात्र, चचेंड़ी एवं पट्यो-विजय तथा भगवन्तराय और सआदत ख़ाँ-युद्ध की ऐतिहासिकता पर विचार किया जा रहा है।

युद्ध-तिथि

सदानन्द ने अपने ग्रंथ में युद्ध की तिथि इस प्रकार दी है :—

"सम्वत् सत्रह सौ सतानवे कातिक मंगलवार।
सित नौमी संग्राम भौ विदित सकल संसार ।।"

अर्थात् संवत् १७९७, कार्तिक शुक्ल ९ मंगलवार को यह युद्ध हुआ।[1]

कार्तिक अमा चन्द्र का मध्यन्य समाप्ति काल	५	अक्टूबर ९.४८
९ तिथियों का समस्त व्याप्तिकाल।	८+१	८.८६
	१४	१८.३४

=शनिवार १८ अक्टूबर, १७४०.

इतिहास से विदित होता है कि "सआँदत ख़ाँ भगवन्तराय को दंड देने के अभिप्राय से ६ नवम्बर, १७३५ ई० में कोड़ा पहुँचा तथा भगवन्तराय को मारकर वह २२ नवम्बर, १७३५ ई० को दिल्ली में जा उपस्थित हुआ था।"[2] अतएव यह युद्ध १७३५ ई०में ६ और २२ नवम्बर के मध्य किसी दिन हुआ था। ऐसी परिस्थिति में यही स्वीकार करना पड़ता है कि सदानन्द द्वारा दी हुई उक्त तिथि इतिहास में कथित तिथि से मेल नहीं खाती है।

बा० ब्रजरत्नदास ने इस तिथि की अशुद्धि को दूर करने के लिए उपर्युक्त दोहे में 'सतानवे' के स्थान में 'बानवे' करके पाठ शुद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनके इस पाठ परिवर्त्तन से उक्त घटना की तिथि सम्वत् १७९२, कार्त्तिक शुक्ल ९, मंगलवार, तदनुसार सन् १७३५ ई०, अक्टूबर १४ मंगलवार पड़ती है। यह तिथि इतिहास में कथित तिथि के बहुत निकट पहुँच जाती है।[3] पर इस प्रकार के पाठ परिवर्त्तन करना उसी समय उचित है जब उक्त ग्रंथ की किसी प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति में ऐसा पाठ दिया हो। बा० ब्रजरत्नदास ने पाठ परिवर्त्तन के जो प्रमाण दिए हैं, वे इस आधार पर अवलंबित नहीं हैं। अतएव उनके द्वारा प्रस्तावित पाठ-परिवर्तन का प्रयत्न अनुचित है। प्रस्तुत अध्ययन से हमारा यही अभिप्राय है कि कवि द्वारा दी हुई तिथि ठीक है

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन-संस्करण, भा० ४, १९८१ वि०, पृ० १०८ [2] फ़स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ४६-५१, [3] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ४, १९८१ वि०, पृ० १०८-९,

अथवा नहीं। परीक्षा करने पर यही सार निकलता है कि कवि ने तिथि देने में भूल करके अपनी असावधानी का परिचय दिया है।

वंश-नाम—सदानन्द ने भगवंतराय खीची के वंश के लिए 'चौहान' शब्द का प्रयोग किया है।[१] उनका यह कथन ठीक ही है। वास्तव में खींची और चौहान एक ही राजपूत हैं। संभवतः मध्य-भारत के खीचीदरा अर्थात् राघवगढ़ में रहने के कारण चौहानों की एक शाखा का नाम खींची पड़ गया है। व्रजरत्नदास के कथनानुसार उक्त खीचीदरा के सन् १५४३ ई० में देवगजसिंह नामक एक चौहान क्षत्रिय अन्तर्वेदी में यमुना के किनारे आकर बस गए थे। इन्हीं के वंश में भगवंतराय अवतीर्ण हुए थे।[२] अतएव इन्हें चौहान कहना इतिहासानुकूल ही प्रतीत होता है।

निश्चित पात्र

हिन्दू-पात्र – भगवंतराय—यह असोथर के राजा अरारूसिंह के पुत्र थे। इन्हीं भगवंतराय के युद्ध का प्रस्तुत ग्रंथ में वर्णन है।[3]

मुसलान-पात्र :—मुहम्मदशाह—दिल्ली के मुग़ल शासक (१७१६-१७४८ ई०) थे।[४]

सहादत खाँ, सादति खाँ—(बुर्हानुल्मुल्क सआदत ख़ाँ) यह अवध के प्रथम नवाब थे। इन्होंने ६ सितम्बर, १७२२ ई० से १६ मार्च, १७३६ ई० तक राज्य किया था।[५]

मनसूर—(अब्दुल मन्सूर खाँ सफ़दरजंग मंसूर) यह सआदत ख़ाँ के दामाद, दिल्ली के प्रधान-मन्त्री और अवध के द्वितीय नवाब थे।[६]

जा निसार खाँ—कोड़-जहानाबाद का फ़ौजदार जां निसार खाँ दिल्ली के प्रधान-मन्त्री क़मरुद्दीन खाँ का बहनोई था।[७] कुछ स्थलों पर वह क़मरुद्दीन खाँ का भाई भी लिखा मिलता है।[८]

अनिश्चित-पात्र

हिन्दू-पात्र – गौरासिंह, जैसिंह, तेजसिंह, दलसिंह, दुर्जनसिंह, नौल, भवानी प्रसाद, मर्दनसिंह।

मुसलमान-पात्र—अलीखान, तुराब खाँ, दीन मुहम्मद, नूर मुहम्मद, मीर मुहम्मद, मुहम्मद खाँ, सेर अली।

युद्ध-वर्णन

चचेंड़ी-विजय—(१७२६ ई०) सदानन्द ने सआदत खाँ द्वारा चचेंड़ी-विजय करने का

---

[१] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन-संस्करण, भा० ५, १९८१ वि, छं० ७, पृ० ११५ [२] वही, पृ० १०६ [3] वही, वही, पृ० १०६-१०; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ४७, [४] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ८, सुजान-चरित्र की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत मुसलमान पात्रों का विवरण, [५] फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ३०-७५ [६] वही, पृ० ७६ से पुस्तक के अन्त तक [७] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ५, १९८१ वि०, पृ० ११० [८] फ़तेहपुर डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, पृ० १५६

उल्लेख किया है।[१] चचेंड़ी नामक राज्य अवध की पश्चिमी सीमा पर स्थित था। यह नगर कन्नौज शाहदाबाद के पास है। उस समय वहाँ पर हिन्दूसिंह चंदेल शासक थे। सन् १७२६ ई० में सआदत खाँ ने गोपालसिंह भदौरिया को साथ लेकर चचेंड़ी पर आक्रमण कर दिया। राजा गोपालसिंह ने हिन्दूसिंह के पास जाकर यह प्रार्थना की कि यदि वह दुर्ग तीन दिन के लिए रिक्त करके सआदत खाँ को दे दें तो वह पुनः उसे लौटा दिया जायेगा। हिन्दूसिंह बातों में आ गया और दुर्ग उसे सौंप दिया। अन्त में वह दुर्ग उसे नहीं लौटाया गया। इस प्रकार सआदत खाँ ने दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। इस कवि ने उसके इसी विश्वासघात की ओर संकेत किया है।[२]

पट्यो-विजय—कवि सदानन्द ने अपनी रचना में सआदत खाँ द्वारा पट्यो नामक स्थान को जीतने की ओर संकेत किया है।[३] उक्त ग्रन्थ के संपादक ने पट्यो से प्रतापगढ़ की पट्टी नामक तहसील से अभिप्राय लिया है।[४] सआदत खाँ ने बैसवाड़े के अन्तर्गत पाटन नामक स्थान पर विजय प्राप्त की थी।[५] संभव है कि सदानन्द ने इसी पाटन विजय की ओर संकेत किया हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

भगवन्तराय-युद्ध-वर्णन—(१७३२ ई० में) सदानन्द ने भगवंतराय द्वारा जाँ निसार खाँ के मारे जाने का उल्लेख किया है।[६] इस घटना के संबंध में इतिहास-ग्रन्थों से निम्नलिखित विवरण प्राप्त होता है :—

"दिल्ली के प्रधान-मन्त्री का सम्बन्धी जाँ निसार ख़ाँ कोड़-जहानाबाद का फ़ौजदार था। इसने किसी धार्मिक विषय पर भगवन्तसिंह से बिगाड़ कर लिया था। इससे क्रुद्ध होकर भगवन्तसिंह ने विद्रोह का झंडा खड़ा करके उसे तंग करना आरम्भ कर दिया। जाँ निसार खाँ मार्च सन् १७३२ ई० को भगवन्तसिंह को दंड देने के लिए कोड़ा से ग़ाज़ीपुर की ओर चला। एक दिन जब कि फ़ौजदार का डेरा चार मील पर था, भगवन्तसिंह उस पर टूट पड़ा। उसने जाँ निसार खाँ को मार डाला और उसके सारे सामान को लूट लिया। इसके साथ ही कोड़ा- जहानाबाद का एक बड़ा भाग भी उसके अधिकार में आ गया।"[७]

इस घटना के फलस्वरूप दिल्ली-सरकार भगवन्तराय से और भी असन्तुष्ट हो गई। इन्हें दंड देने और वश में करने के लिए अनेक बार सेनायें आईं, पर वे विफल होकर लौट गईं। अंत में "सन् १७३५ ई० में मुहम्मद शाह ने अवध के सूबेदार सआदत खाँ को कोड़ा-जहानाबाद की

---

[१] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ५, १६८१ वि०, छं० ३८, पृ० १२०
[२] वही, पाद-टिप्पणी, पृ० १२०; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ०४५-६
[३] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ५, १६८१ वि०, छं० ३६, पृ० १२०-१
[४] वही, पाद-टिप्पणी, पृ० १२०,
[५] फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ४१
[६] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ५, १६८१ वि० छं० ४२, पृ०१२१
[७] वही, पृ०११०-११; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ४७-६

फ़ौजदारी भी सौंप दी।"[1] सदानंद ने इस घटना की ओर भी संकेत किया है।[2] आगे चलकर उसने भगवन्तराय द्वारा नूर मुहम्मद फ़ौजदार के लूटने, राजाज्ञा से सआँदत खाँ के दिल्ली जाते समय भगवन्तराय को दंड देने के लिए उसके राज्य पर आक्रमण करने, आदि का उल्लेख किया है।[3] इन में से नूर मुहम्मद के लूटने की घटना का विवरण अप्राप्य है। पर यह निश्चित है कि अपने स्वभाव के अनुकूल भगवन्तराय ने उक्त नाम धारी कोड़-जहानाबाद के किसी नायब को लूटा अवश्य होगा। शेष घटनाओं के सम्बन्ध में इतिहास से यह विवरण प्राप्त होता है :—

"शाही आज्ञा से दिल्ली को जाते समय प्रधान-मन्त्री क़मरुदीन खाँ का एक पत्र सआदत खाँ को मिला, जिसमें भगवन्तसिंह को दंड देने की उसे आज्ञा दी गई थी। वह तुरन्त ही पीछे लौटा, बाईं ओर को घूमा, गंगाजी पार की और ६ नवम्बर, सन् १७३६ ई० को कोड़ में पहुँच गया। उसके साथ चालीस सहस्र सेना थी।

उसके आगमन की सूचना मिलने पर भगवन्तसिंह दश-बारह सहस्र सेना के साथ ग़ाज़ीपुर* से निकल कर सआँदत खाँ पर टूट पड़ा। भगवन्तसिंह ने नवाब की हरावल में लड़ते हुए तुराब खाँ को भाले से मार डाला। अन्त में शेख रुहुल अमी खाँ बिलग्रामी, शेख अब्दुल्लाह खाँ, दुर्जनसिंह, अज़मतुल्लाह खाँ आदि ने भगवन्तसिंह को घेर लिया। दुर्जनसिंह के भाले से वह मार डाला गया। दोनों ओर के लगभग पाँच सहस्र सैनिक खेत रहे। सआँदत के पक्ष के सोलह उच्च पदाधिकारी मारे गए तथा वह स्वयं घायल हुआ। भगवन्तसिंह का शिर दिल्ली भेज दिया गया। इसके उपरान्त सआँदत खाँ दिल्ली को चला गया, जहाँ वह २२ नवम्बर, १७३५ई० को पहुँचा।"[4]

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि भगवन्तराय के सम्बन्ध में सदानन्द ने जो भी कुछ लिखा है वह सत्य एवं प्रामाणिक है। उसने प्रमुख सैनिकों के जिन नामों का उल्लेख किया है उनमें और ऊपर के ऐतिहासिक उद्धरण में आए हुए नामों में प्रायः अन्तर है। ऐसा ज्ञात होता है कि इन नामों के वीर अवश्य ही इस युद्ध में सम्मिलित हुए होंगे। यह एक भयंकर युद्ध हुआ था और बड़े-बड़े उच्च पदाधिकारी मारे गए थे। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि ये नाम प्रामाणिक हैं।

इस प्रकार उक्त युद्ध-तिथि तथा अन्य कुछ छोटी-मोटी बातों के अतिरिक्त सभी प्रधान घटनाओं की ऐतिहासिकता प्रमाणित हो जाती है। सामग्री के के अभाव में जिन घटनाओं के विषय में निश्चायत्मक निर्णय नहीं हो सका है वे भी ऐतिहासिक ही होगीं, ऐसा अनुमान लगाना अनुन होगा। अतः भगवन्तराय की जीवन-लीला समाप्त करने वाले उनके अन्तिम युद्ध से सम्बन्धित 'रासा भगवन्तसिंह' एक संक्षिप्त पर ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है, इसमें कोई भो सन्देह नहीं है।

---

*कानपुर के निकट एक नगर।

[1] फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ४६ [2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० ४, १६८१ वि०, छं० ४, पृ० ११४ [3] वही, छं० ४-१७, पृ० ११४-६ [4] फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ४६-५१; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन-संस्करण, भा० ४, १६८१ वि०, पृ० १११-२,

अध्याय ८

सुजान-चरित्र की ऐतिहासिकता

निम्नलिखित पृष्ठों में सुजान-चरित्र में प्रयुक्त तिथियों, वंश-नाम, पात्रों, युद्धों, सेना आदि की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर विचार किया जा रहा है :—

तिथियाँ—सूदन ने केवल हिंदी मासों और संवतों ही का उल्लेख किया है। उन्होंने तिथियाँ और दिन नहीं दिए हैं। ऐसी परिस्थिति में पूर्ण गणना नहीं की जा सकती है। अतएव नीचे सूदन द्वारा कथित प्रत्येक घटना की तिथि देकर अंगरेज़ी मास और सन् दे दिए गए हैं। साथ ही इतिहास की साक्ष्य से प्राप्त तिथियों का भी उल्लेख कर दिया गया है।

प्रथम जंग—सूरजमल द्वारा फ़तेह अली खां की सहायता की तिथि :—

अगहन, १८०२ वि०[1]=२८ अक्टूबर-२७ नवम्बर, १७४५ ई०।

सरकार ने अपने इतिहास में उक्त युद्ध की तिथि नवम्बर, १७४५ ई० दी है।[2] अतएव सूदन कथित तिथि ठीक है।

द्वितीय जंग—सूरजमल द्वारा ईश्वरीसिंह की सहायता की तिथि :—

श्रावण, १८०४ वि०[3]=११ जुलाई-१० अगस्त, १७४७ ई०।

सरकार के विचार में उक्त युद्ध बगरू-महल नामक स्थान पर हुआ था, जो १ अगस्त १७४८ ई० को प्रारम्भ होकर ६ दिन तक चलता रहा; तदुपरान्त सन्धि हो गई। इसके पश्चात् १० अगस्त को मराठे अपने देश को लौट गए।[4] क़ानूनगो ने इस संग्राम की तिथि २० अगस्त, १७४६ ई० मानी है।[5]

ऊपर दिए हुए विवरण में प्रायः सभी लेखकों ने मास एक ही माना है। वर्ष के सम्बन्ध में तीनों विद्वानों में मतभेद है।

तृतीय जंग—सलावत ख़ाँ-पराजय-तिथि :—

सित पक्ष, पौष, १८०५ वि०[6]=६ दिसम्बर-२४ दिसम्बर, १७४८ ई०।

सरकार ने इस युद्ध की तिथि १ जनवरी, १७५० ई० स्वीकार की है।[7] क़ानूनगो के मतानुसार यह युद्ध ११६२ हि० को हुआ।[8]

चतुर्थ जंग—पठानों के विरुद्ध सफ़दरजंग की सहायता की तिथि :—

भाद्रपद, १८०६ वि०[9]=दिए हुए इस सम्वत् में दो भाद्रपद पड़े थे। प्रथम भाद्र पद १८

---

[1] सुजान-चरित्र, छं० १, पृ० ७ [2] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४३४ [3] सुजान-चरित्र, छं० २, पृ० २८ [4] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १ पृ० २६४, २६५; वही, भा०२, पृ०४३४ [5] हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १ पृ० ६७ [6] सुजान-चरित्र, छं०२, पृ०४१, [7] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ३०८; वही, भा० २, पृ०४३४-५ [8] हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० ७१ (पाद-टिप्पणी सहित) [9] सुजान-चरित्र, छं० २, पृ० ५६

जुलाई से १७ अगस्त तक तथा द्वितीय (शुद्ध) भाद्रपद १८ अगस्त से १७ सितम्बर १७४६ ई० तक रहा था। यह वर्ष १७४६ ई० था।

सरकार के अनुसार वे युद्ध, जिनका उल्लेख सुजान-चरित्र की इस जंग में मिलता है, क्रमशः सितम्बर, १७५० तथा फ़रवरी १७५१ ई० से अप्रैल १७५२ ई० तक हुए थे।[1]

क़ाननूगो ने उक्त युद्धों की तिथियाँ क्रमशः १३ सितम्बर, १७५० ई० और मंगलवार २२ जनवरी, १७५१ ई० से २४ अप्रैल १७५१ ई० तक मानी हैं।[2]

पंचम जंग—राजा बहादुरसिंह-पराजय-तिथि :—

१३ गतागत मास (चैत्र?), १८०९वि०[3] = ३ अप्रैल—१८ अप्रैल, १७५३ ई०। सरकार ने इस युद्ध की तिथि २३ अप्रैल, १७५३ ई० स्वीकार की है।[4]

षष्ठ जंग—दिल्ली की लूट की तिथि :—

वैशाख, १८१० वि०[5] = १८ अप्रैल—१७ मई, १७५३ ई०।

इतिहास में दिए हुए विवरण से ज्ञात होता है, कि सूरजमल उक्त युद्धों के अवसर पर सफ़दरजङ्ग के पास १ मई, १७५३ ई० को पहुँचा था। युद्ध की समाप्ति पर सूरजमल ने दिल्ली के बादशाह से २५ अक्टूबर को तथा सफ़दर जङ्ग से ७ नवम्बर, १७५३ ई० को संधि की थी।[6]

सप्तम जंग—बादशाही सेना तथा मराठों की भरतपुर पर चढ़ाई की तिथि :—

गोप मास (??) १८१० वि०[7] = १७५३ ई०।

इस जङ्ग से संबंधित विविध घटनाओं की तिथियां इतिहास में नवम्बर, १७५३ ई० से मई १७५४ ई० तक दी हैं।[8]

ऊपर तिथियों के संबंध में जो कुछ कहा गया है, उससे प्रकट होता है कि सूदन द्वारा दी हुई तिथियों में से केवल एक ही—प्रथम जङ्ग की—तिथि इतिहास की तिथियों से मेल खाती है। शेष तिथियों के संबंध में सूदन तथा इतिहास-ग्रंथों में बहुत अन्तर है।

बदनसिंह को राजा की उपाधि मिलना—सूदन ने सुजान-चरित्र में कतिपय स्थलों पर बदनसिंह को 'कृष्ण-वंशीय, यादव, यदुवंशीय, महेन्द्र, व्रजेश' आदि विशेषणों से सम्बोधित किया है।[9]

प्राचीन-परम्परा, महाभारत तथा पुराण आदि के आधार पर जाट अपने को चन्द्र-वंशीय एवं यदुवंशीय क्षत्रिय मानते हैं।[10]

---

[1] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर भा०१, पृ०३८०, ३८५, ३९२, ४०३, ४०७, ४१०; वही, भा०२, पृ० ४३५, ४८५, [2] हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा०१, पृ०८१, ८३ [3] सुजान-चरित्र, छंद० २, पृ० १०५ [4] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४३६ [5] सुजान-चरित्र, छं० २, पृ० १५४ [6] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ४७३, ४७८, ४८१, ४८३, ५०३, ५०४; वही, भा० २, पृ० ४३६; हिस्ट्री ऑव दी जाट्स भा० १, पृ० ८६; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध पृ० २२३, २२४, २२८, २२९, २३१, २४२ [7] सुजान-चरित्र, छं० २, पृ० २२४ [8] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ५१२, ५१३, ५१९, ५२०, ५२२; वही, भा० २, पृ० ४३७ [9] सुजान-चरित्र, छं० १२, १३, पृ० ४-५; छं० ३०, पृ० ६-७; छं० २९, पृ० २४२ [10] हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा०१, पृ० ३३१-४०; देशराज, जाट-इतिहास, पृ० ५६-१०७; हाला, जाट-क्षत्रिय इतिहास, पृ० २८-६१; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४१७-२२

बदनसिंह की राजा आदि उपाधियों के संबंध में क़ानूनगो का कथन है कि "उसका (बदनसिंह का) ईप्सित उद्‌देश्य राजा की उपाधि प्राप्त करना था। इसके लिए वह शाही सिंहासन के समक्ष झुकने के लिए भी उद्यत था। पर उसे सफलता न मिली, संभवतः जयपुर के शासक की ईष्या के कारण, क्योंकि वह जाटों को अपनी प्रजा मानता था। कदाचित् इसी समय से भरतपुर के राजवंश ने अपने को यादव वंशीय कहना प्रारंभ कर दिया और स्वयं को ब्रजराज की उपाधि से सम्बोधित करने लगे। यद्यपि प्राचीन परम्परा से सिद्ध न होते हुए भी, ब्रजमण्डल अथवा मथुरा पर अधिकार होने से वह न्याययुक्त था। मारवाड़ के शासक अजीतसिंह और अभयसिंह उसको राजा नाम से संबोधित करते थे। महाराजा सवाई जयसिंह ने उसे अश्वमेध यज्ञ में बुलाया था।"[1]

ऊपर के उदाहरण में क़ानूनगो का यह कथन, कि बदनसिंह के राजा की उपाधि प्राप्त करने में जयपुराधीश अड़चन डालते थे, कोरा अनुमान लगता है। सवाई जयसिंह द्वारा उनको अश्वमेध में बुलाया जाना ही, इस बात का यथेष्ट प्रमाण है, कि जयपुर-दरबार बदनसिंह को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता था। यही नहीं वरन् "जयसिंह ने बदनसिंह को टीका, निशान ढोल, पंच रंगीय ध्वजा और ब्रजराज की उपाधि से विभूषित किया था। पर वह स्वयं को सदैव जयपुर के अधीन ही मानता रहा।"[2]

उपर्युक्त कथन से प्रमाणित होता है कि बदनसिंह को 'ब्रजराज' की उपाधि जयपुर-दरबार द्वारा प्रदान की गई थी। २० अक्टूबर, १७५२ ई० में दिल्ली के बादशाह ने भी इन्हें 'महेन्द्र' और 'राजा' की उपाधि से विभूषित किया था,[3] यद्यपि सम्पूर्ण ब्रजमंडल बदनसिंह के अधिकार में नहीं था। मथुरा-प्रान्त का कुछ ही भाग उसके आधीन था। शेष भाग को सूरजमल ने जीता था।[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूदन द्वारा बदनसिंह को 'यदुवंशीय' तथा 'ब्रजेन्द्र' आदि विशेषणों से सम्बोधित करना-इतिहास सम्मत है, क्योंकि उस समय तक जाट अपना सम्बन्ध यदुवंश से स्थापित कर चुके थे और बदनसिंह को राजा की उपाधि मिल चुकी थी।

पात्रों की ऐतिहासिकता

निश्चित पात्र

हिन्दू-पात्र—बदनसिंह—यह सूरजमल के पिता थे। इनके समय में भरतपुर राज्य का पर्याप्त विस्तार हुआ था। इनकी मृत्यु ६ रमज़ान, ११६६ हि० (७ जून, १७५६ ई०) को हुई थी।[5]

सूरजमल, सुजानसिंह—यह उक्त बदनसिंह का सबसे बड़ा पुत्र था। इसने भरतपुर राज्य का बहुत विस्तार किया। यही सुजान-चरित्र का नायक है। इनकी मृत्यु २५ दिसंबर, १७६३ ई० को हुई थी।[6]

---

[1] हिस्ट्री ऑव् दी, जाट्स भा० १, पृ० ६१-२ [2] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४२८ [3] वही, भा० वही, पृ० ४३५ [4] वही, भा० वही, पृ० ४२८ (पाद-टिप्पणी) [5] हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स भा० १, पृ० ६०-४; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४२४-३२; जाट इतिहास, पृ० ६३५; मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० १, २७-८ [6] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४३३-५३; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० ६४-१५८; जाट्स इतिहास, पृ० ६३६-४४; मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० १२८-३०

जवाहरसिंह—यह सूरजमल का ज्येष्ठ पुत्र था। सूरजमल के पश्चात् भरतपुर का शासक हुआ। मई, १७६८ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[1]

रतनसिंह—यह सूरजमल का पुत्र था। अपने भाई जवाहरसिंह के मरने पर गद्दी पर बैठा। इसने मई १७६८ ई० से अप्रैल १७६९ ई० तक शासन किया।[2]

नवल (सिंह)—यह सूरजमल का पुत्र था। अपने भाई रतनसिंह के मरने पर उसके अल्प-वयस्क पुत्र केहरीसिंह का घरेलू-युद्ध के पश्चात् संरक्षक बना। गुरुवार, १० अगस्त, १७७५ ई० को इसका देहावसान हुआ।[3]

चूरामणि—(१६९५-१७२१) यह सिनसिनी के भज्जासिंह का पुत्र और राजाराम का कनिष्ठ भ्राता था। इसने इधर-उधर लूटमार करके अपने राज्य का विस्तार अधिक बढ़ा लिया था। जहाँदार शाह और फ़र्रुखसिर के युद्ध में अवसर पाकर इसने दोनों ओर की सेनाओं को लूटा था। फ़र्रुखसियर के प्रधान-मंत्री तथा अमीरुल् उमरा सैय्यद-भाइयों का चूरामणि विशेष विश्वास-पात्र बन गया था। उसने अपने भतीजे बदनसिंह को बन्दीगृह में डाल दिया था, पर दूसरे जाटों के हस्तक्षेप करने पर उसे छोड़ दिया था। चूरामणि ने सितंबर-अक्टूबर, १७२१ ई० में आत्महत्या कर ली।[4]

मोहकमसिंह—यह चूरामणि का पुत्र था। आगरे के नाज़िम सआदत खां बुर्हानुलमुल्क ने इसे दबाने का प्रयत्न किया, पर वह असफल रहा। बदनसिंह और इसमें कुछ समय तक झगड़ा चलता रहा। अन्त में उसने बदनसिंह की अधीनता स्वीकार कर ली।[5]

बल्लू (बलराम जाट)—यह देहली के निकटस्थ फ़रीदाबाद का चौधरी था। इसने आस-पास के ग्रामों को छीनकर उन पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उसके विरुद्ध कई बार शाही सेना भेजी गई, पर प्रत्येक बार मुग़लों को पराजित होना पड़ा। अन्त में बल्लू ने प्रधान-मन्त्री सफ़दरजंग से सन्धि कर ली। उसने मिट्टी का एक दुर्ग बनाकर उसका नाम बल्लमगढ़ रक्खा। अवसर पाकर उसने दिल्ली के निकटवर्ती सिकन्दराबाद को खूब लूटा। सफ़दरजंग ने बल्लू को दंड देना चाहा, पर वह इसमें असफल रहा। अन्त में २९ नवंबर, १७५३ ई० में मुग़लों द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।[6]

जयसिंह द्वितीय—यह १६९९ ई० में जयपुर का शासक बना। उस समय इसकी अवस्था १८ वर्ष की थी। उसने शाहज़ादा बीदर बख्त के साथ दक्षिण में मराठों के विरुद्ध युद्ध में बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। कालान्तर में यह क्रमशः आगरा और मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ।

---

[1] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४२६-८०; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० १५६-२२३; जाट इतिहास, पृ० ६४४-५६; मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० १३०-१ [2] हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ०२२४-६; जाट इतिहास, पृ० ६५६-७ [3] हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ०२२७-८३; जाट्स इतिहास, पृ० ६५७-८ [4] हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, पृ० ४५-५८; जाट इतिहास, पृ० ६३३-५; मआसिरुल् उमरा, भा० १, पृ० ११९-२६ [5] वही, भा० वही पृ० १२६-७ [6] फॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ३६९-७२, ५१०-२; दी हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० ७८-८०; जाट इतिहास, पृ० ७१६-७

१७३६ ई० में मालवा में मराठों से हारकर यह जयपुर चला गया। २१ सितंबर, १७४३ ई० को इसकी मृत्यु हो गई।[1]

ईसुरी सिंह (ईश्वरी सिंह)—यह सवाई जयसिंह द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र थे। पिता के मरने पर जयपुर के शासक नियुक्त हुए। इन्होंने ७ वर्ष राज्य किया। इनका कनिष्ठ भ्राता माधौसिंह राज्य पाने के लिए इनसे सदैव युद्ध करता रहा। ईश्वरीसिंह ने अपने भाई को कई युद्धों में पराजित किया, पर यह बगरू-महल के युद्ध में (अगस्त, १७४८ ई०) स्वयं पराजित हुआ। अन्त में मराठों के भयंकर आक्रमण का समाचार ज्ञात होने पर ईश्वरीसिंह ने १२ दिसंबर, १७५० ई० को आत्म-हत्या कर ली।[2]

माधौसिंह (माधव सिंह)—यह उक्त ईश्वरी सिंह का कनिष्ठ भ्राता था। राज्य-प्राप्ति की लालसा से प्रेरित होकर यह सदैव अपने भाई से लड़ता रहा। ईश्वरी सिंह के मरने पर यह जयपुर का राजा बना। ६ मार्च, ७६८ ई० को इसकी मृत्यु हुई।[3]

नवलराय—यह सक्सेना कायस्थ था और इटावा परगना के एक क़ानूनगो परिवार से सम्बन्धित था। अवध के सूबेदार नवाब सफ़दरजंग ने इसे अपनी नौकरी में रक्खा। क्रमशः उन्नति करते-करते यह अवध की सेना का बख़्शी नियत हुआ। इसके अनन्तर अक्टूबर, १७४३ ई० में अवध का उप-सूबेदार बना। १७४८ ई० में इलाहाबाद की सूबेदारी मिल जाने पर सफ़दरजंग ने वह सूबा भी इसी को सौंप दिया। जनवरी, १७५० ई० में फ़र्रुख़ाबाद के नवाबों का राज्य भी इसी की देखरेख में कर दिया गया। १३ अगस्त, १७५० ई० को फ़र्रुख़ाबाद के पठानों द्वारा इसकी हत्या कर दी गई।[4]

राव बहादुरसिंह बड़गूजर—यह चकला-कोयल (अलीगढ़) का फ़ौजदार था। इसको पराजित करके सूरजमल ने इस के दुर्ग घासेरा पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।[5]

राजेन्द्रगिरि गोसांई—बुन्देलखंडान्तर्गत झांसी नामक स्थान का यह एक संन्यासी था। इसने झांसी के मौठ परगने पर १७४५ ई०में अधिकार करके एक दुर्ग बनवाया और शीघ्र ही ११४ ग्रामों का स्वामी बन बैठा। मराठा सूबेदार नरूशंकर ने, जो प्रारंभ में इसका संरक्षक था, मौठ से १७४६-५० ई० में इसे निकाल दिया। वहाँ से यह प्रयाग चला गया और वहाँ पर अपने पाँच सहस्र नागा संन्यासियों के साथ पुराने नगर और दुर्ग के मध्य में डेरा डाला। जब नवाब अहमद ख़ाँ बंगश ने प्रयाग के दुर्ग पर आक्रमण किया, तब इसने दुर्ग की रक्षा के लिए युद्ध किया (सितंबर, १७५०-अप्रैल १७५१)। इस दुर्ग का घेरा उठ जाने के उपरान्त बक़ा उल्लाह ख़ाँ ने इसे वज़ीर सफ़दरजंग के पास ले जाकर नौकर रखवा दिया। इसने रुहेलखंड के आक्रमण के

---

[1] फ़ॉल ऑव दी मुग़ल् इम्पायर, भा० १, पृ० २४२-३; मआसिरुल् उमरा, भा०१, पृ० १६४-८ [2] वही, भा० वही, पृ० १६८; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० २८२-३०० [3] वही, भा० वही, पृ० २८२-३०५, ५०२; वही, भा० २, पृ० ५०६-६, ५११, ५१२, ५१३, ५१४ [4] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा०१, पृ० ३८५; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १५१, २७१-३ [5] वही, पृ० १५६, १६०; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा०२, पृ० ४३६

अवसर पर सफ़दरजंग और देहली सम्राट् के युद्ध में लड़ते हुए १४ मई०, १७५३ ई० को इसके एक गोली लगी, जिसके फलस्वरूप दूसरे दिन इसकी मृत्यु हो गई।[1]

अनूपगिरि, उमरावगिरि[2], पृथ्वीराज।[3]

हिम्मतसिंह—यह भदावर-नरेश गोपालसिंह का पुत्र था। पिता के मरने के पश्चात् संवत् १८०० वि० (१७४३ ई०) में गद्दी पर बैठा। इसके प्रमुख दुर्ग बाह, पिनाहट (दोनों स्थान आगरा जिले में हैं), अटेर (चंबल के दक्षिण किनारे पर) और भिंड (अटेर से १६ मील दक्षिण-पूर्व) थे। इसने सफ़दरजंग के विद्रोह के समय के युद्धों में मुग़ल सम्राट् के विरुद्ध वज़ीर की सहायता की थी। १७५५ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[4]

मल्लार (मल्हार राव होल्कर)—यह एक वीर मराठा सरदार था। मार्च, १७३१ ई० में गुजरात को जाते समय बाजीराव इसको नर्मदा के पास इसलिए छोड़ गया था कि वह निज़ा-मुल्मुल्क तथा अहमद खाँ बंगश, जो क्रमशः दक्षिण एवं मालवा के सूबेदार थे, की गति-विधि पर दृष्टि रखता रहे। ५ जनवरी, १७४१ ई० को होल्कर ने धार के मुग़ल रक्षक को हराकर उस पर अधिकार कर लिया। नवंबर, १७५० ई० में यह एक विशाल सेना के साथ जयपुर में प्रविष्ट हुआ। २ मार्च, १७५१ ई० को, उसने सफ़दरजंग की पठानों के विरुद्ध सहायता करने के लिए, उससे संधि की। १७५४ ई० में इसने कुम्भेर, भरतपुर आदि जाट दुर्गों पर घेरा डालने के लिए सेना भेजी। इसी प्रकार यह आजन्म संधि-विग्रह करते हुए उन्नति करता रहा। अन्त में आलमपुर के निकट २० मई, १७६६ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।[5]

खंडू (खांडेराव होल्कर)—यह मल्हार राव होल्कर का पुत्र था। इसके पिता ने एक मराठा सेना इसके साथ दिल्ली को भेजी थी, जो वहाँ २१ नवम्बर, १७५३ ई० को पहुँची। २६ दिसम्बर, १७५३ ई० को खांडेराव ने मुग़ल सम्राट् से भेंट की। अपने पिता की आज्ञानुसार यह

---

[1] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ४६०-२; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १६९ (पाद-टिप्पणी सहित), १७०, १७१, १८७, २०५, २०७, २१५, २२४, २२८, २२९, २३५, २५५; जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, भा० XLVIII, १८७९ ई०, पृ० ७९ (पाद-टिप्पणी), ८० [2] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय १०, हिम्मतबहादुर-विरुदावली के पात्रों की ऐतिहासिकता [3] देखिए द्वितीय खंड, अध्याय ११, हम्मीररासो के पात्रों की ऐतिहासिकता, [4] जरनल ऑव् एशियाटिक सोसायटी, ऑव् बंगाल, सं० XLVIII, १८७९ ई०, पृ० ७२; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १५६, १५८, १५९, १६०, १६२ [5] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़ भा० २, पृ० १०१, १२६, १४५, १५३, १५७, १९४, २०१, २१६, २३५, २३८, २३९, ३२६, ३६१, ३७७, ३७९, ३८५, ३९६-७, ४००-१, ४०२, ४११, ४१२, ४२१, ४२२, ४४२, ४४६, ४५१, ४६७, ४७० ५०२, ५०५, ५०७; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ५१५, ५१६, ५१९, ५२१, ५२२, ५३७; वही, भा० २, पृ० १५५, १९६, २२४, २२८, २३३, २४८, ३२६, ३४३, ३६५, ४७१, ४७२, ५०५; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० ६७, ८२, ८९, ९६, ११० (पाद-टिप्पणी), ११८ १२८, १३६, १४२, १७४, १७७, १८६; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ५५, ५६, १३५, १७६, १७९, १८४, १८६, १८७, १८८, १९०, २००, २०१, २०३, २०४, २३९, २४७, २४९,

होडल, मेवात आदि को लूटता हुआ जाटों के दुर्ग कुम्भेर के घेरे में अन्य मराठा सैनिकों के साथ जा पहुँचा। इसी घेरे में १५ मार्च, १७५४ ई० को गोला लगने से इसकी मृत्यु हो गई। प्रसिद्ध अहिल्याबाई इसकी धर्मपत्नी थी।[1]

रघुघू (रघुनाथराव)—यह पेशवा बालाजी राव का कनिष्ठ भ्राता था। जाटों के दुर्ग कुंभेर के घेरे में यह वर्तमान था (फ़रवरी-मई १७५४ ई०)। सम्राट् अहमदशाह की हत्या के अवसर पर यह उपस्थित था। अब्दाली तथा नजीब ख़ां के विरुद्ध इसे मुँह की खानी पड़ी थी। इसे अहिल्याबाई के सामने भी हारना पड़ा था। यह बन्दीगृह में डाल दिया गया था, जहाँ से वह निकल भागा था।[2]

आपा (जयाजी अप्पा सिंधिया)—ग्वालियर के सिंधिया राज्य के प्रवर्तक रानो जी सिंधिया का यह ज्येष्ठ पुत्र था। ३ जुलाई, १७४५ ई० को अपने पिता के मरने पर यह उसका स्थानापन्न नियुक्त हुआ। १० जनवरी, १७५१ ई०को जयपुर में राजपूतों ने इसकी लगभग तीन सहस्र सेना का संहार किया। पठानों के विरुद्ध इसने सफ़दरजंग की सहायता की (मार्च, १७५१ ई०)। जाट-दुर्ग कुंभेर के घेरे के समय यह भी वहाँ पर ससैन्य वर्त्तमान था। २५ जुलाई, १७५५ ई० को यह नागौर नामक स्थान पर मार डाला गया।[3]

मुसलमान-पात्र अल्लावदीन (अल्लाउद्दीन),[4] बब्बर (बाबर), हिमाऊँ (हुमायूँ),[5] जलाल उद्दीन अकबर, जहांगीर,[6] साहि जहां (शाहजहां), औरंगसाहि (औरंगज़ेब), बहादुरसाह (बहादुरशाह),[7] मौजदी पातशाह (मुइज़ुद्दीन जहांदार शाह), फ़रुकसेर (फ़रुखसियर),[8] शहादत खां (बुर्हानुलमुल्क सआदत खां),[9] सफ़दरजंग मंसूर,[10] सलावत खां।[11]

---

[1] फ़ॉल् ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२; न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० २, पृ०२७७; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० ८९; फर्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १८३ [2] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा०१, पृ०५१५, ५१६, ५१९, ५२०, ५२२; वही, भा०२, पृ०१३७-७०; हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा २, पृ०१९३, ३१२, ३७५-७, ३७९, ३८०-३, ३९१, ३९५, ३९७,३९९-४००, ४०१, ४०२, ४६५-७, ४७१, ४७३, ४७६, ४७९, ४८९, ४९०, ४९१, ५०७, ५०८, ५२१-५, ५२६; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा ० १, पृ० ८८, ८९, ९६, १०७, १८९, १९१, २००; फर्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० २४७ [3] न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भा० २, पृ०२३३, २३५, २३८, २३९, ३६१, ३६५, ३७५, ३७७, ३८३, ३८४; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० ९०, ९१, ९६; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ०१३५, १७६, १७९, १८६, १८७, १८८; २००, २०१, २३९, २४७ [4] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ११, हम्मीररासो के पात्रों की ऐतिहासिकता [5] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ३, पृ०२०६ [6] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय १, पृ० १८० [7] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ५, पृ०२७०, २७१ [8] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ६, पृ० २८९ [9] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ७,पृ० ३०८ [10] खं० वही, भा० वही, पृ० वही; मआसिरूल् उमरा, भा० २, पृ० ८७-९ [11] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ६, पृ० २९७

सहाब गौरी (शिहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ौरी)—यह ग़ोर देश का शासक था। इसने भारत पर नौ बार आक्रमण किए थे।[1]

तैमूर—यह मध्य एशिया के समरक़ंद नामक स्थान का स्वामी था। फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान आदि स्थानों पर विजय प्राप्त करके उसने सिंध नदी पार की और १३६८ ई० में भारत पर आक्रमण किया। २८ फ़रवरी, १४०५ ई० को इसकी मृत्यु हुई।[2]

उमर सेख—(उम्र शेख़ मिर्ज़ा)—यह फ़रग़ना का स्वामी और बाबर का पिता था। इसकी मृत्यु १४६४ ई० में हुई थी।[3]

सेरसाहि (शेरशाह सूर)—इसका पिता हसन ख़ाँ सहसराम (बिहार) का स्वामी था। शेरशाह का नाम फ़रीद ख़ाँ था। पिता से अनबन होने के कारण इसने इब्राहीम लोदी के दरबार में जाकर दौलत ख़ाँ के साथ नौकरी कर ली। इसके पश्चात् कुछ समय तक यह बाबर की सेवा में रहा। इसने चौसा के युद्ध में हुमायूँ को पराजित किया (२६ जून, १५३६ ई०)। उसने पुनः कन्नौज के युद्ध में उसे हराया (१७ मई, १५४० ई०)। इस प्रकार यह हुमायूँ को भारत से भगा कर देहली का शासक हो गया। २२ मई, १५४५ ई० को कालिंजर के घेरे के समय इसकी मृत्यु हो गई।[4]

सलेम साहि (सलीम शाह = इस्लाम शाह)—यह शेरशाह सूर का द्वितीय पुत्र था। इसका नाम जलाल ख़ाँ था। अपने पिता के मरने पर यह इस्लाम शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। कुछ इतिहास-लेखकों ने इसको सलीम शाह के नाम से पुकारा है, पर इसके सिक्कों से विदित होता है कि इसका नाम इस्लिम शाह अथवा इस्लाम शाह था। इसकी मृत्यु २२ नवंबर, १५५४ ई० को हुई थी।[5]

रफ़ी दरजाति साहि (रफ़ीउद्दर्जात)—यह रफ़ीउश्शान का पुत्र था। यह फ़र्रुख़सियर के स्थान पर २८, फ़रवरी, १७१६ ई० को सम्राट् घोषित किया गया। इसे ४ जून, १७१६ ई० को गद्दी से उतार दिया गया। इसके एक सप्ताह के उपरान्त इसकी मृत्यु हो गई।[6]

साह जहाँ (रफ़ी उद्दौलाह शाहजहाँ द्वितीय)—यह रफ़ीउद्दर्जात का बड़ा भाई था। अपने भाई के पश्चात् यह ६ जून, १७१६ ई० को बादशाह बना। १७ जून, १७१६ ई० को इसकी मृत्यु हो गई।[7]

महमद साहि (मुहम्मद शाह)—यह १७१६ ई० में १७ वर्ष की अवस्था में दिल्ली के

---

[1] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ३, पृ० ३८-४८ [2] वही, भा० वही, पृ० ८६, १८७, १६५-२००, २०५, २५१, २७६, २८० [3] वही, भा० ४, पृ० २ [4] वही, भा० वही, पृ० २१, २८, २६, ३०, ३३, ३४, ३५, ३६, ४५, ४६, ४७, ४६, ५०, ५१, ५२, ५४, ५५, ५६, ५७, ३५७, ४५६-८, ५२६-८ [5] वही, भा० वही, पृ० ५८, ५६, ६०, ६१, ६२, ६४, ५२८, ५३१ [6] वही, भा० वही, पृ० ३३६, ३४०; लेटर मुग़लस् भा० १, पृ० ३८६, ४१६, ४१८-२० [7] वही, भा० वही, पृ० ४२०, ४२८, ४३१, ४३२; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ४, पृ० ३४०

सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। गद्दी पर बैठने से पूर्व यह सात वर्ष तक बन्दीगृह में रहा था। इसने २८ वर्ष शासन किया। २५ अप्रैल, १७४८ ई० को इसकी मृत्यु हुई।[१]

अहमद साहि (अहमद शाह)—मुहम्मद शाह के देहावसान के पश्चात् उसका इकलौता पुत्र अहमद शाह २८ अप्रैल, १७४८ ई० को २२ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा। २ जून, १७५४ ई० को प्रधान-मन्त्री इमादुलमुल्क ने इसे गद्दी से उतार कर बन्दी-गृह में डाल दिया।[२]

काम बकस (मुहम्मद कामबख़्श)—यह औरंगज़ेब का सबसे छोटा पुत्र था। इसका जन्म ता० ७ मार्च, १६७७ ई० को और मृत्यु १७०८ ई० में हुई थी।[३]

अकबर अदल साहि (अकबर आदिल शाह)—जब अहमद शाह ने वज़ीर सफ़दरजंग को पदच्युत कर दिया (१३ मई, १७५३ ई०), तब वज़ीर ने एक अपरिचित युवक को काम-बख़्श का पौत्र बतलाकर अकबर आदिल शाह के नाम से बादशाह घोषित कर दिया था।[४]

अहमद ख़ाँ पठान—यह फ़र्रुख़ाबाद के नवाब मुहम्मद ख़ाँ बंगश का पुत्र और क़ायम ख़ां का भाई था। मुग़ल वज़ीर सफ़दरजंग द्वारा फ़र्रुख़ाबाद को अपनी जागीर में मिला लेने पर इसने उसके विरुद्ध सेना एकत्रित की। इसने प्रथम पठान-युद्ध (१७५० ई०) तथा द्वितीय-युद्ध (१७५१-५२ ई०) में सफ़दरजंग के विरुद्ध बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी।[५]

इसमाइल (इस्माइल ख़ाँ)—यह आरंभ में एक ग़ुलाम था, पर सफ़दरजंग की कृपा से इसने विशेष उन्नति कर ली। यह अपने स्वामी का विशेष विश्वास-भाजन, प्रमुख कार्य-कर्त्ता तथा प्रधान-सेना-नायकों में से था। सफ़दरजंग के युद्धों में उसने बड़ी वीरता का परिचय दिया था।[६]

जलाल्लुद्दीन (जलालुद्दीन हैदर शुजाउद्दौलाह)—यह अहमद शाह सम्राट् के प्रधान-मन्त्री तथा नवाब-अवध सफ़दरजंग का पुत्र था। इसकी उपाधि शुजाउद्दौलाह थी। सफ़दरजंग के पश्चात् यह नवाब-अवध बना।[७]

फ़तेह अली ख़ाँ—यह अलीगढ़ के प्रसिद्ध सूबेदार साबित ख़ां का पुत्र था।[८]

महमूद आखवत (आक़िबत महमूद काश्मीरी)—यह अहमद शाह के मीर बख़शी इमादुल्-

---

[१] लेटर मुग़लस्, भा० २, पृ० १-३७६; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १ पृ० १-३२७ [२] वही, भा० वही, पृ० ३२८-५४४ [३] लेटर मुग़लस्, भा० १, पृ० २, ५, १०, ११, ५३-५६, ५८, ६२, ६६, २५२, [४] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ४८३, ५०५ [५] वही, वही, पृ० ३८५-३६७, ४००-४११; फर्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १५०, १५३, १५७, १५६-६२, १६५-६, १६८-७३, १७५, १७६, १७८-८०, १६४ [६] वही पृ० १५६, १५८, १५६, १६०, १६२, १७५, २३३, २३४, २४१, २५५; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ३६०, ३६२, ३६३, ४७६, ४८८, ४६७ [७] वही, भा० वही, पृ० ३४०, ४५४, ४५८, ४६५, ४६६, ४८०; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १५, ३६, ७३, ११२, १५५, १६३, १७७, २१२, २१३, २१६, २२०, २२६, २४६, २५०, २५८ [८] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४३४

मुल्क का एक प्रमुख पदाधिकारी था। इसने सफ़दरजंग के विरुद्ध बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। बल्लू जाट की हत्या करवाने में भी इसी का प्रमुख हाथ था।[१]

मीर बक़ा—यह सफ़दरजंग की सेना में एक प्रमुख पदाधिकारी था। अफ़ग़ानों के विरुद्ध इसने सफ़दरजंग की सेना में रहकर कई युद्ध किये थे।[२]

रमज़ानी (रमज़ान ख़ाँ)--यह सफ़दरजंग की सेना में बंगशों के विरुद्ध कई बार सेना के साथ गया था और बड़ी वीरता दिखलाई थी।[३]

नज़ीम ख़ाँ (नजीब ख़ाँ रुहेला)—यह रुहेलखंड का शासक था। सफ़दरजंग के विद्रोह-युद्ध में इसने अहमद शाह की ओर से युद्ध में भाग लिया था।[४]

ग़ाज़दी ख़ाँ, गजद्दिय खान } (शहाबुद्दीन, एमादुलमुल्क, ग़ाज़ी उद्दीन ख़ाँ बहादुर, फ़ीरोज़ जङ्ग, निजामुलमुल्क आसफ़ जाह) यह निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह के लड़के अमीरुल् उमरा फ़ीरोज़ जङ्ग का पुत्र और एतमादुद्दौला क़मरुद्दीन ख़ाँ का दौहित्र था। अपने पिता के मरने पर सफ़दरजंग की सहायता से यह मीर बख़्शी नियत हुआ और पिता की पदवी पाई। जब अहमद शाह और सफ़दरजंग में युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब इसने सम्राट् की ओर से बड़ी तत्परता और संलग्नता के साथ कार्य करके सफ़दरजंग को पराजित किया था। युद्ध समाप्त होने पर यह बहुत दिनों तक मुग़ल साम्राज्य-संचालन में सर्वे-सर्वा रहा।[५]

शमसामुद्दौलाह मीर—यह उस ख़ाँ-दौराँ का पुत्र था, जो नादिरशाह से युद्ध करते हुए मारा गया था। अहमदशाह ने शमसामुद्दौलाह को ८ मई, १७५३ ई० में मीर-आतिश नियुक्त किया था।[६]

शेर जंग—यह सफ़दरजंग की सेना में एक प्रमुख पदाधिकारी था।[७]

सादिल ख़ाँ (शादिल ख़ाँ) रुहेला—यह अहमद ख़ाँ बंगश का सेनानायक था। सफ़दर-जंग के विरुद्ध रुहेलों के युद्ध में इसने कोड़ा के पास भाग लिया था। १७५१ ई० में इसे अलीगढ़ से मराठों ने भगा दिया था। सफ़दरजंग के विद्रोह के अवसर पर इसने सम्राट् की ओर से भाग लिया था।[८]

---

[१] लेटर मुग़लस्, भा० वही, पृ० ४५४, ४७७, ४७८, ४८४, ५०३, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१७, ५२१, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५३०, ५३१, ५३५, ५३६, ५४२, ५४३ [२] फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १५५, १५८, १६० [३] वही, पृ० १५८, १६० [४] फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १८४, १८७, २३१, २३४, २३८, २३९, २४१; फ़ॉल ऑव दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ४२५, ४८९, ४९७, ४९८, ४९९ [५] वही, भा० वही, पृ० ४४६, ४५३, ४५४, ४५५, ४६४, ४७७, ४७८, ४८०, ४८३, ४८४, ४८६, ४८७, ४८८, ४९१, ४९७ ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४; मआसिरुल् उमरा, भाग २, पृ०५४६-५३ फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ०२१३, २१८, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३१, २३२, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४८, २४९, २५३ [६] फ़ॉल आव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १ पृ० ४६९ (पाद-टिप्पटी), ४८०, ५४० (पाद-टिप्पणी सहित) [७] फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० ५५, ६३, ६६, ९१, १०४, १०६, १५८, १६०, २२६ [८] वही, पृ० १७१, १७७, १७८; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ०४००, ४०५

रुस्तम खाँ (अफ़रीदी) – यह अहमद खाँ बंगश का मीर-बख्शी तथा प्रमुख सेना-नायक था। सफ़दरजंग के विरुद्ध युद्ध करते हुए इसकी मृत्यु हुई थी।[1]

अनिश्चित पात्र

नीचे उन पात्रों के नाम दिए जा रहे हैं, जिनके संबंध में प्राप्त ऐतिहासिक ग्रंथों में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं हैं :—

हिन्दू-पात्र—भूरे, रौरिया, पचै, सुन्दर, मदू, पृथ्वीराज, परवान (पृथ्वीपति), मकनि, खानचंद, ब्रजराज (ब्रजसिंह), भानसिंह, प्रतापसिंह, जोधसिंह, देवीसिंह, मेदसिंह, भवानीसिंह अखै-सिंह, सुलतान कुमार, सभा राम, बलराम, मानसिंह, दलेल कुमार, वीर नराइन, खुस्यालसिंह, लाल सिंह, उदयसिंह, नाहर, हरी (हरीसिंह), बहादुरसिंह, अटल बिहारी, अवधूत, अमर बाला सौगरिया, अजीतसिंह, अनूपसिंह, अमरसिंह, अमानसिंह, अरिसाल, उदयराम, उदयभान, उजागर, कृपाराम, गूजर राज, किसनेस (किशनसिंह), खिमानन्द, गोकुला (गोकुल राम गौर), गजसिंह, गंगाराम, चंद्रभान, चैनसिंह, छतरसाल, जयकृष्ण, ज़ालिमसिंह, जैतसिंह, ठाकुरदास सेंगर, तिरखा-राम, तिलोकसिंह तोमर, तोफ़ाराम, थानसिंह, दलेल, दयाराम, दयानाथ, दल्ला, दौकुला, दौलत राम, धनसिंह गौर, नन्दनसिंह, परसोतमा, पाखरिया (पाखर मल), कूर्म प्रताप, पृथ्वीसिंह, पैमसिंह, प्रेमा, पहुपसिंह, फतेहसिंह वैस, फौंदा, बकस-राय, बलसिंह, बदल्ला, बलिराम, बाबूराय, बैरीसाल, भरतसिंह, भीखाराम, भौपति भाट, भज्जू दीवान, मनसा राम, मतिवन्तसिंह, महावीर, मस्तराम गौतम, मंका, मन्धाता (मानधाता), मोहनसिंह, मोहनराम, मीर दुर्जन, मेदसिंह चौहान, रनसिंह, रामसिंह, राम बलै, राम सेवक, रतनसिंह (मैडू-नरेश), रामचन्द्र तोमर, राउ बलोच अहीर, राजाराम गूजर, लक्ष्मणदास, लोकमन, विसनदास, श्यामसिंह, श्रीराम चौधरी, सदाराम, सहीराम, सहजराम, समरसिंह सेंगर, समरसिंह चन्देल, संभू, साहिब राम, सार्दूलनंद, सुखराम, सूरतराम, सुदास सेंगर, हर सुख (द्विज), हठी सिंह अँवारिया, हरनागर मिश्र, हरि नारायण, हाथीराम, रन-जीत, मोदन मोदी, टीकैत, तांतिया, बहादुरसिंह, मुहकमसिंह (बैरीसाल-सुत)।

मुसलमान-पात्र—असद खाँ, अली कुली, इसा खाँ, महमद पनाह, हकीम खाँ कुबरा, हवस खाँ (मुहम्मद अली का पुत्र), मीराँ साहि, सुलतान मुहमद, अबूसैद (ये अन्तिम तीनों व्यक्ति तैमूर के वंशज थे)।

प्रथम जंग—सूदन कवि ने प्रथम जंग के अन्तर्गत सूरजमल द्वारा की गई मेवात, मालवा की राजधानी माँडू की विजय तथा अज़ीगढ़ के शासक फ़तेह अली खाँ की सहायता का उल्लेख किया है।

उक्त युद्धों के संबंध में सरकार का कथन है कि "सूरजमल ने मेवात पर शनैः-शनैः अधिकार अवश्य जमा लिया होगा, क्योंकि निकटवर्ती इस राज्य को अधिकृत किए बिना भरत-पुर का विस्तार असंभव था।" माँडू-विजय संबंधी विवरण इतिहास में अप्राप्य है।

"नवंबर, १७४५ ई० में अलीगढ़ के प्रसिद्ध सूबेदार साबित खाँ के पुत्र फ़तेह अली खाँ

[1] फॉल ऑव् दी मुगल इम्पायर, भा० १, पृ० ३४३, ३४४, ३४७, फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १२०, १२१, १२३, १२६, १६०

की सूरजमल ने सहायता की। इस युद्ध का कारण यह था कि असद ख़ाँ खानाज़ाद ने फ़तेह अली ख़ाँ की कुछ जागीर छीन ली थी। चंदौसी (चंडौस) नामक स्थान पर भयङ्कर युद्ध हुआ, जिसमें असद ख़ाँ मारा गया और जाट पूर्णरुपेण विजयी हुए।"[1]

द्वितीय जंग—मराठों के विरुद्ध जयपुराधीश की सूरजमल द्वारा सहायता—"जयपुर-नरेश जयसिंह द्वितीय के मरने पर उनके बड़े पुत्र ईश्वरीसिंह उत्तराधिकारी हुए। (२१ सितंबर, १७४३ ई०); पर उनके कनिष्ठ भ्राता माधवसिंह मेवाड़ के राना और मराठों की सहायता से स्वयं राजा बनने का प्रयत्न करने लगे। इन दोनों भाइयों का झगड़ा इसी प्रकार चलता रहा।

अन्त में मल्हारराव होल्कर, गंगाधर ताँतिया, मेवाड़, जोधपुर आदि सात शक्तियों की समवेत सेना ने जयपुर पर आक्रमण कर दिया। इस पर ईश्वरीसिंह ने सूरजमल से सहायता माँगी। बगरू (साँभर से १३ मील पूर्व) नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। सीकर निवासी शिवसिंह के मारे जाने पर सूरजमल को जयपुर की सेना के हरावल में रक्खा गया। वर्षा होते रहने पर भी भयङ्कर युद्ध होता रहा।

यह संग्राम छः दिन तक चलता रहा। मराठों ने साँभर तक का देश उजाड़ दिया और ईश्वरीसिंह ने बगरू महल में शरण ले रक्खी थी। अन्त में युद्ध से तंग आकर संधि की चर्चा होने लगी। ईश्वरीसिंह ने अपने भाई को पाँच परगने और उम्मेदसिंह को बूँदी देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार संधि हो जाने पर मराठे अपने देश को और ईश्वरीसिंह अपनी राजधानी को लौट गए।"[2]

सूदन के मतानुसार माधवसिंह को दो और इतिहास के अनुसार पाँच परगने मिले थे। इस युद्ध के प्रसंग में सूदन ने मोती-डूँगरी नामक स्थान पर संग्राम होने का उल्लेख किया है। शेष विवरण के संबंध में इस कवि और इतिहास के विवरणों में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है।

तृतीय जंग—सलावत ख़ाँ पराजय"—आगरा और अजमेर का सूबेदार मीर बख़शी सलावत ख़ाँ मारवाड़ का सिंहासन प्राप्त कराने में बखत सिंह की सहायता करने के लिए अजमेर की ओर चला। मार्ग में उसने मेवात को लूटना आरंभ कर दिया। राजा बदनसिंह ने उससे मेवात को नष्ट न करने की प्रार्थना की। इस पर बख़शी ने कहला भेजा कि मेवात उसकी जागीर के अन्तर्गत था। साथ ही उसने जाट राजा से दो करोड़ रुपये दंडस्वरूप माँगे पर बदनसिंह ने इसे अस्वीकार कर दिया।

नारनौल से पाँच मील पूर्व में सराय शोभाचन्द के पास सूरजमल उसका सामना करने के लिए पहुँचे। यह जानकर मुग़ल सेना भाग खड़ी हुई। सूरजमल ने पीछा करके भयंकर मारकाट मचा दी। हक़ीम ख़ाँ खेशगी मारा गया तथा अली रुस्तम ख़ाँ घायल हुआ। सूरजमल दो दिन तक शाही सेना को घेरे पड़ा रहा।

अन्त में फ़तेह अली के प्रयत्न से सन्धि हो गई। सूरजमल ने अजमेर सूबे की मालगुज़ारी का १५ लाख रुपया वसूल करके शाही कोष में भेजने का बचन दिया, जिसके बदले में बख़शी ने

---

[1] सुजान-चरित्र, पृ० ७-२७; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४३३-४

[2] सुजान-चरित्र, पृ० २८-४०; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० २८२-३, २९१-८; वही, भाग २, पृ० ४३४; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, पृ० ६६-७०

नारनौल से आगे न बढ़ने की प्रतिज्ञा की। साथ ही सूरजमल ने नौ लाख रुपए चन्दा देने और पांच सहस्र सैनिकों के साथ बख़शी की सेवा में रहने की स्वीकृत दी।

इस प्रकार सन्धि हो जाने पर सलावत ख़ाँ अजमेर की ओर चला गया।"[1]

सूदन के मतानुसार उक्त युद्ध में रुस्तम ख़ाँ मारा गया और इतिहास-लेखकों के विचार में वह घायल हुआ। इस युद्ध-विवरण संबंधी अन्य सभी घटनायें दोनों में समान रूप से वर्णित हैं। उनमें कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है।

चतुर्थ जंग में पठानों को परास्त करने में सूरजमल द्वारा सफ़दरजंग की सहायता करना--"नवंबर, १७४९ ई० में फ़र्रुखाबाद के क़ायम ख़ाँ बंगश ने रुहेलों पर आक्रमण किया। दौरी-रसूलपुर नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। इस संग्राम में क़ायम ख़ाँ खेत रहा।

इस घटना का समाचार ज्ञात होने पर सफ़दरजङ्ग फ़र्रुखाबाद की ओर चला। वहाँ पहुँचकर उसने क़ायम ख़ां की माता बीबी साहिबा को कारागार में डालकर और उसके लिए केवल १२ ग्राम छोड़कर-पठानों के शेष राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। उसने राजा नवल राय को वहां का सूबेदार नियुक्त किया। तदनन्तर वह दिल्ली को लौट गया।

बीबी साहिबा अपने चातुर्य से कन्नौज के कारागार से मुक्त होकर मऊ-रशीदाबाद पहुँची। साथ ही क़ायम ख़ां के भाई अहमद ने रात्रि में आक्रमण करके नवल राय को मार डाला और कन्नौज को अफ़ग़ानों ने अधिकृत कर लिया।

यह विदित होते ही सफ़दरजंग फ़र्रुखाबाद की ओर चला। उसने एटा से अठारह मील उत्तर में राम-चौतनी नामक स्थान पर पड़ाव डाला। इसी स्थल पर उसका अफ़ग़ानों के साथ युद्ध हुआ। सफ़दरजंग के दक्षिण पक्ष में सूरजमल और वाम भाग में इस्माइलबेग ख़ां थे। शत्रु-पक्ष का रुस्तम ख़ाँ अफ़रीदी मारा गया। यह देखकर शत्रु-सैन्य में भगदड़ मच गई। सूरजमल तथा इस्माइल बेग ने उसे मीलों तक खदेड़ा। सफ़दरजंग की सेना का अधिकांश भाग भागी हुई शत्रु-सेना का पीछा करता हुआ दूर तक निकल गया और सफ़दरजंग थोड़े से साथियों के साथ युद्ध-क्षेत्र में रह गया। यह अवसर पाकर अहमद ख़ाँ बंगश ने उस पर धावा बोल दिया। घोर संग्राम हुआ। सफ़दरजंग का एक निकटवर्त्ती संबंधी नासिरुद्दीन हैदर मारा गया। उसका महावत भी खेत रहा और वह स्वयं मूर्छित होकर हौदे में गिर पड़ा। जगत्नारायण उसके हाथी पर सवार होकर उसे सुरक्षित स्थान पर निकाल ले गया। मुहम्मद अली तथा अली नक़ी भी घायल हुए। मुग़ल सेनापति नज्मुद्दौलाह इशाक़ ख़ाँ द्वितीय, मीर ग़ुलाम नबी तथा मीर अज़ीमुद्दीन बिलग्रामी इस युद्ध में काम आए।

इसके अनन्तर सफ़दरजंग तथा मुहम्मद अली ख़ाँ लगभग दो सौ सैनिकों के साथ भागकर देहली चले गए। रुस्तम ख़ाँ अफ़रीदी की सेना का दूर तक पीछा करने के पश्चात् लौटकर मुग़ल सेना ने अपनी सैन्य की दुर्दशा देखी। वज़ीर को वहाँ न पाकर वे भी पश्चिम की ओर चल पड़े। २२ जनवरी (अथवा ११ फ़रवरी), १७५१ ई० को सफ़दरजंग पुनः अफ़ग़ानों पर आक्रमण करने

---

[1] सुजान-चरित्र, पृ० ४१-७८; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल-इम्पायर, भाग १, पृ० ३०७-१० (पृ० ३०९-१० की पाद टिप्पणी सहित); हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, पृ० ७०-४

के लिए दिल्ली से चला। मार्ग में उसके सहायक माधवराव होल्कर तथा सूरजमल उससे मिले।

मराठों ने कोयल (अलीगढ़) और जलेसर के बंगश नवाब शादिल खाँ पर आक्रमण किया। वह काली नदी और गंगा पार फ़र्रुखाबाद की ओर भाग गया।

अहमद खाँ ने फ़तेहगढ़ दुर्ग में रहकर शत्रु का सामना करने का निश्चय किया। मराठे एक मास तक उस गढ़ को घेरे पड़े रहे। १६-१७ अप्रैल, (अथवा १५ मई को मराठे और जाट गंगा पार करके दक्षिण किनारे पर पहुँचे। आगामी दिन मुठभेड़ हुई। पराजित होकर सादुल्लाह खाँ आंवले को तथा महमूद फ़तेहगढ़ को भाग गए। रात्रि में अहमद ख़ाँ भी छिपकर निकल भागा और आंवले में जाकर शरण ली। १६ अप्रैल को फ़तेहगढ़ पर मराठों का अधिकार हो गया।

बहुत समय तक युद्ध होता रहा। अन्त में मार्च, (अथवा अप्रैल) १७५२ ई० को सन्धि हो गई। सफ़दरजंग पर मराठों का जितना रुपया चाहिए था उसको चुकता करने के समय तक के लिए अहमद खाँ बंगश का आधा राज्य मराठों को दे दिया गया। कुछ स्थान सफ़दरजंग ने अपने अधिकार में भी रक्खे।"[1]

इन युद्धों का ऊपर जो विवरण दिया गया है उसमें क़ायम खाँ के मरणोपरान्त सफ़दरजंग का फ़र्रुखाबाद की ओर जाना, उसका बीबी साहिबा से मिलना, नवलराय की मृत्यु, तदुपरान्त युद्ध, रुस्तम खाँ-मरण, अफ़ग़ानों का युद्ध-भूमि से भागना, मराठों तथा जाटों द्वारा उनका पीछा किया जाना, ईसा खाँ-मरण, सफ़दरजंग का भागना, संधि होने पर मराठों और वज़ीर द्वारा अफ़ग़ानों के राज्य का कुछ अंश अपने अधिकार में रख लेना, आदि प्रमुख घटनायें सूदन तथा इतिहास के विवरणों में समान रूप से उल्लिखित हैं।

उक्त युद्धों में से प्रथम युद्ध सरकार के विचार में रामचौतनी नामक स्थान पर, क़ानूनगो के मतानुसार पथरी में, और सूदन के कथनानुसार नौलखा नामक स्थान पर हुआ था।

उपर्युक्त विवरणों में अन्य कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है।

पंचम जंग—सूरजमल और राव बहादुरसिंह बड़गूजर में युद्ध—"ऊपर वर्णित युद्धों के कुछ समयोपरांत सूरजमल ने मुग़ल मंत्री (सफ़दरजंग) की सहायता से चकला कोयल (अलीगढ़) के फ़ौजदार राव बहादुरसिंह बड़गूजर को हराया। यही नहीं, उसके पैतृक दुर्ग घासहरे (देहली से ४० मील दक्षिण) को तीन मास के घेरे के पश्चात् अधिकृत कर लिया। इस स्थल पर दुर्ग की दीवारों पर से गोली-वर्षा करके शत्रु ने पन्द्रह सौ जाटों को मार गिराया। अन्त में निराश होकर बहादुरसिंह ने अपनी स्त्रियों को मारकर दुर्ग के कपाट खोल दिए और अपने पच्चीस साथियों के साथ बाहर निकल कर युद्ध करता हुआ मारा गया (२३ अप्रैल, १७५३ ई०)।

उस समय बहादुरसिंह का पुत्र फ़तेहसिंह देहली में होने के कारण मृत्यु-मुख से बच गया।

---

[1] सुजान-चरित्र, पृ० ५६-१०४; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ३७८-८६, ३६२-७, ४०४-११; वही, भा०२, पृ०४३५; जरनल ऑव् रायल एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, संख्या XLVII, १८७८ ई०, पृ० ३७६-८३; वही, संख्या XLVIII, १८७९ ई०, पृ० ५०-७, ६०-८, ७१-५, पृ०८६-६६, १०२-११, १२०-३; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ०१४३-६३, १७५-८१; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, पृ०८०-३

उसने मुग़लों की सहायता से जनवरी, १७५४ ई० में घासहरे पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया।"[1]

सूरजमल द्वारा बहादुरसिंह पर आक्रमण किया जाना, उसका घासहरे में जाकर शरण लेना तथा जौहर करते हुए प्राण-विसर्जन करना एवं उसके पुत्र का दिल्ली में होना आदि घटनाएँ सूदन एवं इतिहास में समान रूप से मिलती हैं।

षष्ठ जंग—"इस जंग के प्रारंभ में सूदन ने इन्द्रप्रस्थ के प्राचीन इतिहास का वर्णन किया है। महाभारत, पृथ्वीराज चौहान आदि के विवरण के उपरांत उसने अलाउद्दीन का उल्लेख करने के साथ ही देहली में पठान-शासन की अवधि २०० वर्ष मानी है। देहली में बाबर द्वारा मुग़ल-राज्य-संस्थापन से पूर्व मुसलमानों के पाँच वंशों, ग़ुलाम, खिलजी, तुग़लक़, सैय्यद, लोदी ने ३२० वर्ष तक शासन किया था। यह पाँचों वंश इतिहास में पठान नाम से विख्यात हैं। अतएव सूदन द्वारा कथित २०० वर्ष का समय ऐतिहासिक तथ्य के विपरीत ठहरता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस कवि ने तैमूर के आक्रमण काल (१३९८ ई०) से ही भारत में मुग़ल-साम्राज्य की नीव पड़ना माना है। यदि ऐसा होता तो उसका बतलाया हुआ २०० वर्ष का समय (वास्तविक २०८ वर्ष) ठीक माना जा सकता था। पर इतिहास से स्पष्ट है कि तैमूर केवल लूटमार करके स्वदेश को लौट गया था। भारत में मुग़ल-साम्राज्य की नीव बाबर ने १५२६ ई० में डाली थी। अतएव तैमूर से लेकर बाबर के पूर्व के जितने मुग़ल शासकों के नामों का उल्लेख सूदन ने किया है वे सब मध्य-एशिया में शासक रहे थे, भारत में नहीं।

इसके अनन्तर बाबर, हुमायूँ के शासन, सूर-वंश के राज्य, पुनः हुमायूँ द्वारा राज्य-प्राप्ति का उल्लेख करने के पश्चात् अकबर से लेकर अहमद शाह के सिंहासनारूढ़ होने (२८ अप्रैल, १७४८ ई०) तक के समस्त मुग़ल शासकों के नामों तथा उनके शासन काल की अवधि (केवल वर्ष, तिथियाँ नहीं) का उल्लेख किया है।"[2] इन सम्राटों के नाम एवं शासन-काल इतिहास सम्मत एवं प्रसिद्ध हैं।

अहमद शाह तथा सफ़दरजंग में अनबन होने के कारण—"सिंहासनारुढ़ होते ही अहमद शाह ने सफ़दरजंग को अपना प्रधान-मन्त्री और सआदत खाँ सैय्यद सलावत खाँ ज़ुल्फ़िक़ार जंग अमीरुल् उमरा को प्रधान बख़शी नियत किया। सफ़दरजंग ईरानी था और अपने चारों ओर ईरानियों ही को इकट्ठा किया करता था।

तारीख़ ७ जून, १७५१ ई० को अहमद शाह ने अप्रसन्न होकर सलावत को पदच्युत करके निज़ामुल्मुल्क के पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन खाँ को अमीरुल्-उमरा की उपाधि देकर आगरे का सूबेदार नियुक्त किया। तूरानी जाति के इस बख़शी की नियुक्त से सफ़दरजंग के कार्यों पर नियन्त्रण रहने लगा।

कुछ समयोपरांत ग़ाज़ीउद्दीन खाँ का देहावसान हो जाने पर उसका पन्द्रह वर्षीय पुत्र

---

[1] सुजान-चरित्र, पृ० १०९-९३; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० २, पृ० ४३६ (पाद-टिप्पणी सहित) [2] सुजान-चरित्र, पृ० १२४-७

शिहाबुद्दीन ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ बहादुर, फ़ीरोज़ जंग अमीरुल् उमरा, इमादुलमुल्क की उपाधियों से विभूषित करके मीर-बख़शी नियत किया गया (१२दिसंबर १७५२ ई०)।

इमादुलमुल्क प्रकट रूप से सफ़दरजंग का अनुयायी था पर गुप्त-रूप से वह उसको पद-च्युत कराने के लिए सदैव षड्यन्त्र रचता रहता था।

शनैः शनैः इन दोनों का वैमनस्य बढ़ता ही गया। सफ़दरजंग ने राज्य-प्रबन्ध की सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली थी। उसने अन्य अमीरों की जागीरें एवं अन्य अधिकार छीन लिए थे। अपनी अयोग्यता के कारण वह साम्राज्य की रक्षा करने में असमर्थ रहा था। वह जाटों और मराठों से मैत्री-भाव बनाए रखता था। इसी कारण से विरोधी अमीर इसके विरुद्ध सम्राट् के कान भरते रहते थे। परिणामस्वरूप बादशाह और सफ़दरजंग का वैमनस्य चरम सीमा को पहुँच गया था। अन्त में सम्राट् से अवध जाने की अनुमति लेकर सफ़दरजंग ने देहली से बाहर नूराबाद में अपने डेरे डाले (२६ मार्च, १७५३)।

दिल्ली की लूट—देहली से निकल कर सफ़दरजंग बाहर पड़ा रहा। उसकी सहायतार्थ सूरजमल, सलावत ख़ाँ, गोसाईं राजेन्द्रगिरि आदि आ पहुँचे। मराठों ने शाही पक्ष का समर्थन किया।

इसके अनन्तर सफ़दरजंग के परामर्श से सूरजमल और राजेन्द्रगिरि ने पुरानी दिल्ली, विशेषकर शाहजहाँ के नगर के लाल फाटक से बाहर स्थित अनाज की मंडी तथा मकानों को लूटा। नगर के इस भाग में प्रायः मध्यम् एवं निम्न श्रेणी के व्यक्ति रहते थे। मकानों को त्याग कर नगरवासी शरणार्थी नई दिल्ली में जा पहुँचे (६ मई, १७५३ ई०)। दूसरे दिन (१० मई) को जाटों ने सैय्यद द्वारा, बीजल मस्जिद आदि मुहल्लों में मनमानी लूट की। 'उन्होंने नगर को फाटक तक लूटा, लाखों की सम्पति लूटी गई। मकान गिरा दिए गए तथा सभी पुरे प्रकाश रहित कर दिए गए।' "पुरानी दिल्ली निवासियों के प्राण, सम्पत्ति, स्त्री-सतीत्व आदि का अपहरण किया गया।" "भागने में असमर्थ बहुत से नागरिकों ने निराश होकर अपनी हत्या करली।" देहली की यह लूट बहुत समय तक जाट-गर्दी के नाम से देहली-वासियों द्वारा स्मरण की जाती रही।

जाटों ने पुरानी दिल्ली को नित्य लूटा। "वहाँ के सभी प्राणी नए नगर में शरणार्थ जा छिपे। दिल्लीवासी एक मकान से दूसरे घर में एक गली से दूसरी में, निराश और विभ्रमग्रस्त, लहरों पर नाचते हुए भग्न-जलयान सदृश्य भटकते फिरने लगे। प्रत्येक व्यक्ति पागल, विभ्रमित, दुःखी और अपनी रक्षा में असमर्थ होकर भागता फिर रहा था।" सभी बाज़ार, गलियां और मकान शरणार्थियों से भर गए थे। सरकारी मकान और वाटिकायें ऊँच, नीच सभी श्रेणी के मनुष्यों से भर गई थीं।

सफ़दरजंग का पद-च्युत होना—दिल्ली की लूट तथा प्रजा की अन्य प्रकार की दुर्दशा के एक मात्र कारण सफ़दरजंग को पद-च्युत करके अहमदशाह ने उसके स्थान पर इन्तज़ाम को क़मरुद्दीन खां बहादुर तथा एतमादउद्दौलाह की उपाधि से विभूषित करके प्रधान-मन्त्री बनाया (१३ मई, १७५३ ई०)। मीर बख़शी इमादुलमुल्क को उसके बाबा की निज़ामुल्मुल्क तथा आसफ़ जाह की उपाधियां प्रदान की गईं। इसके प्रत्युतर में सफ़दरजंग ने एक अपरिचित लड़के—संभवतः शुजाउद्दौलाह द्वारा कुछ समय पूर्व क्रीत एक नपुंसक—को कामबख़्श का पोता घोषित करके अक-

बर आदिल शाह के नाम से सिंहासनारूढ़ कराया, स्वयं उसका मन्त्री हुआ और सलावत जंग को बख्शी नियुक्त किया।"[1]

ऊपर जिन घटनाओं का विवरण दिया गया है उनसे सम्बन्धित सूदन तथा इतिहास के वर्णनों में जो समानता तथा अन्तर है, वह संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है :—

अहमदशाह का बादशाह होना, सफ़दरजंग का मन्त्री बनना, सलावत खाँ को पद से हटाकर इमादुल्मुल्क का मीर बख्शी के पद पर नियुक्त होना, अहमदशाह और सफ़दरजंग के मनमुटाव आदि का वर्णन सूदन ने अपेक्षाकृत संक्षिप्त पर इतिहासानुकूल किया है। ईरानी एवं तूरानी अमीरों की अनबन के कारण राज्य-व्यवस्था में शैथिल्य आ जाना, सफ़दरजंग का मराठों एवं जाटों से मैत्री-भाव, सफ़दरजङ्ग का अवध को प्रस्थान करना पर देहली के बाहर ही पड़े रहना, जाटों का उसकी सहायता करना आदि घटनायें सूदन द्वारा यथास्थान उल्लिखित कर दी गई हैं। देहली की लूट और आग जलाने का जो सजीव एवं विस्तृत चित्रण सूदन ने किया है उसकी प्रामाणिकता इतिहास से सिद्ध हो जाती है। नगर में व्यापार सम्बन्धी वस्तुओं के जलने, हाहाकार मचने, भगदड़ पड़ने, व्यक्तियों के त्राहि त्राहि पुकार कर इधर-उधर भटकने आदि का सूदन ने जो सजीव, रोमांचकारी, विशद एवं यथातथ्य चित्रण किया है वैसा विवरण अन्यत्र, विशेषकर फ़ारसी इतिहास ग्रन्थों में कठिनता से मिलेगा।

सूदन के मतानुसार सूरजमल के प्रस्तावित करने पर सफ़दरजंग ने अकबर-आदिल शाह को सम्राट घोषित किया था, पर फ़ारसी इतिहास लेखकों के विचार में प्रथम अहमदशाह ने उसको मन्त्री-पद से च्युत कर दिया था तब सफ़दरजंग ने अकबर-आदिल शाह को सम्राट् बनाया था। कुछ भी हो, यह तो निश्चित ही है कि सफ़दरजंग ने अकबर आदिल शाह को सम्राट् बनाया और अहमदशाह ने उसके स्थान पर इन्तज़ाम को मन्त्री नियुक्त किया। सूदन ने ग़ाज़ीउद्दीन खाँ को अहमद शाह का मन्त्री माना है, जो ठीक नहीं है। उसके नए मन्त्री का नाम इंतज़ाम था और ग़ाज़ीउद्दीन खाँ इमादुल्मुल्क उसका मीर बख्शी था, न कि मन्त्री। इसी प्रकार शम्सामुद्दौलाह को मीरबख्शी बतलाना भी सूदन की भूल है। वास्तव में शम्सामुद्दौला को अहमदशाह ने शुजा के स्थान पर शाही तोपखाने का सेनापति (मीर आतश) बनाया था।[2] साथ ही सूदन का यह कहना कि इंतज़ाम अहमद शाह के पास ही रहता था ठीक है। इतिहास से भी स्पष्ट है कि 'वह न तो स्वयं युद्ध-स्थल में गया और न उसने सम्राट् को जाने दिया।'[3]

कोटरा (कोहतिला)-युद्ध—बहुत समय तक दोनों ओर की सेनाओं के पड़े रहने के उपरान्त अन्त में युद्ध करने का निश्चय किया गया। सफ़दरजंग ने नई दिल्ली से तीन मील दक्षिण में कोहतिला पर अधिकार कर लिया (१७ मई)। वह पुरानी दिल्ली के काबुली दरवाजे में प्रविष्ट

---

[1] सुजान-चरित्र, पृ० १५७-८१ (छं० ३ तक); फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ३४०-१, ३४६, ३५८-९, ४५३, ४५५, ४६०, ४६२, ४६४, ४६६-८, ४७३-६ ४७८-८३; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० १२६-८, २१५-७, २१९-२४, २२८-३१ [2] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ४८० [3] वही, भा० वही, पृ० ४९९-५००

हुआ। सादल खाँ और देवीदत्त ने उसका सामना किया। उसने रात्रि में कोहतिला पर बन्दूकें चढ़ाकर शाही दुर्ग पर गोली-वर्षा प्रारम्भ कर दी।

५ जून को सफ़दरजंग के इस्माइल खां आदि सेनापतियों ने शहर की दीवार पर आक्रमण आरम्भ किया। साथ ही उसकी सेना ने रेती पर से भी धावा बोला। नजीब खाँ ने उसका सामना किया। फलस्वरूप मन्त्री की सेना तोपें छोड़कर भागने लगी। पर जाटों ने आकर युद्ध को जारी रक्खा। नजीब अपने भाई सहित घायल हो गया और उसके तीन-चार सौ आदमी मारे गए। रात्रि भर युद्ध होता रहा। प्रातःकाल होने से कुछ पहले सफ़दरजंग की सेना कोहतिला से हट गई। शाही सेना ने उसकी तोपों आदि को लेकर कोहतिला पर अधिकार कर लिया। वहाँ से शाही सेना सफ़दरजंग के दल पर गोली बरसाने लगी। विवश होकर सफ़दरजंग ने अपने डेरे नगर से दूर हटा लिए।

इसके पश्चात् थोड़ा बहुत युद्ध नित्य-प्रति चलता रहा। सफ़दर की सेना इधर-उधर घूमती रहती और अवसर पाकर लूट खसोट कर लेती थी। साथ ही उसे प्रतिदिन हानि भी उठानी पड़ती थी। १२ जून की ईदगाह की लड़ाई में जाटों को बहुत हानि सहनी पड़ी थी।

राजेन्द्रगिरि मरण—इसी प्रकार युद्ध चलता रहा। १४ जून को सूर्यास्त से ढाई घंटे पूर्व सफ़दरजंग की सेना और जाटों ने बादशाह की सारी खाइयों पर एक साथ धावा बोला, जिसके फलस्वरूप शाही सेना के बदख्शानी और मराठा सैनिकों को भारी हानि उठानी पड़ी। पर इमाद स्वयं वहाँ पर आकर अपनी सेना को प्रोत्साहन देने लगा। अन्त में शाही सेना की विजय हुई। इस युद्ध में काली पहाड़ी पर आक्रमण करते समय राजेन्द्रगिरि के गोली लगी जिसके परिणाम-स्वरूप वह दूसरे दिन मर गया। इमाँद नामक इतिहास लेखक की धारणा है कि इस्माइल खाँ ने ईर्ष्यावश एक मनुष्य द्वारा राजेन्द्रगिरि को गोली से मरवा डाला था। इसके मरने से सफ़दरजंग अत्यन्त हतोत्साहित हुआ। इस घटना के पश्चात् वह स्वयं कभी युद्ध में नहीं गया।

राजेन्द्रगिरि की मृत्यु के उपरान्त अनूपगिरि ने उसका स्थान ग्रहण किया।

गढ़ी-मैदान तथा बदरपुर-युद्ध—जैसे-जैसे कालयापन होता गया वैसे-वैसे सफ़दरजंग की सेना हतोत्साहित होती गई। वह पीछे हटता गया और मराठे उसकी सेना का पिछला भाग लूटते गए। कभी-कभी एक आध-मुठभेड़ भी हो जाती थी। १६ जुलाई तक सफ़दरजंग दिल्ली से हट कर १५ मील दक्षिण में बदरपुर और फ़रीदाबाद के मध्य में पहुँच गया। उसके छोड़े हुए स्थल पर यमुना के पश्चिम में क़ुतुबमीनार के निकट कालिका देवी तक शाही सेना ने अपनी मोर्चा-बन्दी करदी। मिट्टी की दीवार से वेष्टित 'गढ़ी-मैदान' गाँव का घेरा डाले हुए रुहेलों को जाटों ने वर्षा होते रहने पर भी बुरी तरह से नष्ट करके उनके अस्त्र-शस्त्र छीन लिए (२५ जुलाई)। १६ अगस्त को तुग़लकाबाद तथा यमुना के मध्य के मोर्चे पर जाटों और रुहेलों में भयङ्कर युद्ध हुआ। दूसरे दिन शाही सेना ने बदरपुर पर अधिकार कर लिया। इस स्थान से केवल ४ मील पर दक्षिण में फ़रीदाबाद के पास सफ़दरजंग डेरा डाले पड़ा था। कुछ दिन के पश्चात् वह वहाँ से ६ मील और हटकर सीकरी (बल्लमगढ़ के ३ मील दक्षिण) तक हट गया तथा इमाद फ़रीदाबाद की ओर बढ़ा।

तारीख ६ सितम्बर को सफ़दरजंग ने शत्रु की खाइयों पर आक्रमण किया, पर इमाद ने उसे पीछे खदेड़ दिया। जाटों ने दिल्ली और शाही खाइयों के बीच ग्यारह मील तक मनमानी

लूट की। इमाद के दिल्ली चले जाने पर सफ़दरजंग ने बदरपुर आदि स्थानों की चौकियों को लूटा। २२ सितम्बर को जाटों ने देहली की ओर से आक्रमण करके असंख्य व्यक्तियों को मार डाला। २१ सितम्बर को सूरजमल आदि ने मराठों की खाइयों पर भयङ्कर आक्रमण किया। बहुत से मराठे मारे गए। समाचार ज्ञात होने पर इमाद और नजीब उनकी सहायता के लिए आ पहुँचे। इमाद के हाथी के दाँत तोड़ दिए गए। तब वह घोड़े पर चढ़ा और जाटों को ख़ूब मारा। भाला लगने से इस्माइल घायल हो गया। इमाद ने भागते हुए शत्रुओं का चार मील तक पीछा किया। दूसरे दिन विजेताओं ने बल्लमगढ़ के निकट तक उनका पीछा किया।

सन्धि—अहमदशाह ने अपनी सहायता के लिए आमेर-नरेश माधवसिंह को बुलाया। वह १० अक्टूबर को दिल्ली के दक्षिण में यमुना किनारे नगला में पहुँचे। उसने बादशाह की २५ अक्टूबर को सूरजमल से और ५ नवम्बर को सफ़दरजग से सन्धि करवा दी सफ़दरजंग ७ नवम्बर को अवध को चला गया। माधवसिंह को रणथम्भौर दुर्ग दे दिया गया और वह अपने देश को लौट गए।"[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि कोहतिला नामक युद्ध को ही सूदन ने कोटरा युद्ध नाम दिया है। सेना-संहार होते हुए देखकर वहाँ से सफ़दरजंग का हटना, राजेन्द्रगिरि की वीरतापूर्ण मृत्यु, सफ़दरजंग का शोकाकुल होना, उसके रिक्त स्थान पर अनूपगिरि की नियुक्ति, गढ़ी-मैदान तथा बदरपुर के युद्धों की भयंकरता, ग़ाज़ीउद्दीन खाँ का स्वयं सैन्य-संचालन, सफ़दरजंग का पीछे हटना, माधवसिंह द्वारा संधि कराना आदि घटनाओं के वर्णन में सूदन ने न केवल ऐतिहासिक तथ्य की रक्षा ही की है, वरन् युद्ध-विद्या का कौशलपूर्ण विवेचन, सेनाओं के शौर्य एवं चातुर्यपूर्ण संचालन का उन्होंने जो चित्रण किया है, वह अन्यत्र कठिनता से मिलेगा।

सप्तम जंग—बल्लू बध—"सफ़दरजंग से संधि हो जाने के पश्चात् देहली सरकार को बड़ी कठिनायों का सामना करना पड़ा। सरकारी कर्मचारियों एवं सैनिकों को कई वर्षों से वेतन नहीं मिला था। रुहेले और मराठे अपना निश्चित रुपया माँगने में बड़ी कठोरता प्रदर्शित कर रहे थे। विवश होकर इमाद ने देहली के दक्षिण के ग्रामों को जाटों से छीनकर भरतपुर पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

इस निर्णय के अनुसार वह बख़शी की जागीर के फ़रीदाबाद प्रान्तान्तर्गत ग्रामों को बल्लू से छीनने के लिए मराठों की सेना के साथ आगे बढ़ा, कुछ युद्ध के उपरांत बल्लू ने संधि कर ली। इसके अनन्तर आक़िबत पलबल की ओर बढ़ा पर पुनः बल्लमगढ़ के निकट आकर मिलने के लिए बल्लू को बुलाया। बल्लू अपने दीवान, एक पुत्र तथा २५० अंगरक्षकों के साथ आया। आक़िबत के साथियों ने बल्लू, उसके पुत्र, दीवान तथा अन्य नौ व्यक्तियों को मार डाला (२९ नवंबर, १७५३ ई०)। जाटों ने बल्लमगढ़ ख़ाली कर दिया। आक़िबत ने उस पर अधिकार करके उसका नाम निज़ामगढ़ रक्खा।

इसके अनन्तर आक़िबत ने आगे बढ़कर पलबल तक के प्रदेश पर अपना स्वामित्व स्था-

---

[1] सुजान-चरित्र, पृ० १८१-२२२; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भाग १, पृ० ४८८-९८, ५०१-२; फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, पृ० २३३-४५; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, पृ० ८४-६

पित कर लिया। वह कुछ दिन के लिए देहली जाकर पुनः खाँडोजी होल्कर के साथ फरीदाबाद को लौट आया (२७ दिसम्बर), पर जाटों ने उससे सारे दुर्ग पुनः छीन लिए।

खाँडोजी ने होडल (पलबल से १७ मील दक्षिण) पर डेरा डाला और अपनी सेना आगे भेजी, जिसने बरसाना (१२ मील दक्षिण) और नन्दगाँव (१७ मील दक्षिण) से सूरजमल के लड़के को निकाल दिया (दिसम्बर का अन्त, १७५३)। इमाद भी बल्लमगढ़ होता हुआ पलबल की ओर बढ़ा। उसने घासहरा पर फतेहसिंह (स्वर्गीय बहादुरसिंह के पुत्र) का अधिकार करा दिया। इसके फलस्वरूप मथुरा तथा आगरे के निकट तक इमाद का अधिकार हो गया। कोयल और जलेसर से भी जाट निकाल दिए गए। इस प्रकार जनवरी के मध्य, १७५४ ई० तक इस प्रदेश में पुनः शांति स्थापित हो गई।

मराठों द्वारा कुंभेर दुर्ग का घेरा—मराठों की एक सेना बूँदी, जयपुर और मारवाड़ से चौथ वसूल करने के लिए जयपुर की सीमा में दो मास से अधिक (९ नवंबर, १७५३ ई० से १५ जनवरी १७५४ तक) पड़ी रही थी। सूरजमल ने रूपराम कोठारी को मराठों के डेरे में भेजा। मल्हार ने उससे, यह कहकर कि सूरजमल ने दिल्ली की लूट में बहुत सा धन एकत्रित किया है, दो करोड़ रुपये माँगे। रूपराम ने मुग़लों से प्राप्त करके अतिरिक्त ४ लाख रुपये और देने चाहे, पर मल्हार ने इसे अस्वीकार करके जाट-राज्य पर आक्रमण करने का ही निश्चय किया। जाट भी उसका सामना करने के लिए तैयार हो गये।

मराठों ने दुर्ग डीग पर (१६ जनवरी, १७५४ ई०) तथा भरतपुर पर आक्रमण किया। जाटों ने उन्हें पीछे हटा दिया। मराठों की संख्या की अधिकता से पराजित सूरजमल ने कुंभेर दुर्ग में जाकर शरण ली। मराठों ने उसका घेरा डाल दिया। उनके पास तोपें न थीं, अतः उन्होंने आस-पास के देश को लूट लिया। रघुनाथराव कुंभेर के सामने के मैदान में २२ मई तक पड़ा रहा। खांडेराव होल्कर अपनी ४ सहस्र सेना के साथ होडल से मेवात होता हुआ और मार्ग में लूटमार करता हुआ कुंभेर पहुँचा।

मार्च में इमाद मथुरा से कुंभेर पहुँचा। वहीं आक़िबत भी इससे मिला। १५ मार्च, १७५४ ई० को खांडेराव गोली लगने से मारा गया। शोकातुर मल्हार ने मथुरा में जाकर उसके अन्तिम संस्कार किये। सूरजमल, अहमदशाह आदि ने उसके साथ संवेदना प्रकट की।

कुंभेर का घेरा ४ मास तक पड़ा रहा। अन्त में मई के महीने में सन्धि हो गई। जाटों की ओर से रूपराम ने तीन वर्ष में तीस लाख रुपये दंड-स्वरूप देने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त जाटों द्वारा, जो दो करोड़ रुपये देहली सम्राट् को दिये जाने वाले थे, वे इमाद तथा मराठों को दिए जायँ, यह निश्चय हुआ। अतएव घेरा समाप्त हुआ, इमाद १८ मई को और रघुनाथ राव २२ मई को मथुरा चले गये।"[1]

बल्लू चौधरी की हत्या के प्रसंग में सूदन ने उसके साथ उसके दो पुत्रों के मारे जाने का उल्लेख किया है, पर इतिहास के अनुसार बल्लू के साथ उसका केवल एक पुत्र और एक दीवान मारे गये थे।

---

[1] सुजान-चरित्र, पृ० २२४-४१; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ५०६-१५, ५१६-२२; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, पृ० ८७-९२, ९५-६

इस घटना के पश्चात् आक़िबत का बल्लमगढ़ पर अधिकार करके ब्रज के होडल आदि स्थानों की ओर खांडेराव के साथ आगे बढ़ना, सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह का उस समय ब्रजमण्डल में रहना आदि घटनायें सूदन एवं इतिहास की कृतियों में समान रूप से मिलती हैं।

उक्त प्रसंग में सूदन ने लिखा है कि खांडेराव और जवाहरसिंह दोनों को अपने-अपने पिता से यह आदेश मिला कि वे युद्ध न करें। संभवतः ऐसा लिखकर कवि ने या तो जाटों की बरसाने आदि पर हुई पराजय को छिपाने की चेष्टा की है अथवा इसके द्वारा कुंभेर के युद्ध की ओर संकेत किया है।

आगे चलकर खाँडेराव द्वारा मेवात को लूटने, जाटों की युद्ध संबंधी विशद तैयारी, मल्हार-राव होल्कर द्वारा रूपराम से रुपए माँगने आदि बातों का सूदन और इतिहास लेखकों ने समान रूप से वर्णन किया है। कुम्भेर-दुर्ग के घेरे, खांडेराव की मृत्यु आदि घटनाओं के सम्बन्ध में सुजान-चरित्र की वर्तमान प्रति मौन है और उसमें उनके स्थल पर ब्रज-शोभा, कृष्ण-लीला आदि का उल्लेख किया गया है।

सेनायें

सूदन ने अपने ग्रंथ में विभिन्न युद्धों में सम्मिलित होने वाली सेनाओं के जो आँकड़े दिए हैं, उनमें से केवल प्रमुख संख्याओं की प्रामाणिकता पर नीचे विचार किया जा रहा है :—

(अ) फ़तेह अली की सहायता के समय सूरजमल की सेना—उक्त युद्ध में सुजानसिंह के विभिन्न सेना-नायकों के साथ में जो सेना थी उसकी पूर्ण संख्या २,७०० थी।[1]

(आ) जयपुराधीश की सहायता के समय सूरजमल की सेना :—

अश्वारोही	१०,०००
पदाति	२,०००
बरछैत	२,०००
योग	१४,०००[2]

सरकार ने उक्त सेना की संख्या १० सहस्र अश्वारोही मानी है।[3]

(इ) सूरजमल की सलावत के विरुद्ध सेना—सूरजमल ने छः सहस्र सेना के साथ सलावत खाँ का सामना किया था, सूरजमल के आश्रित कवि सूदन का ऐसा मत है। इतिहास लेखक भी इसी संख्या को स्वीकार करते हैं।[4]

(ई) घासहैरे के घेरे के अवसर पर सूरजमल की सेना चार सहस्र थी।[5]

(उ) विद्रोही सफ़दरजंग की सहायतार्थ सूरजमल पन्द्रह सहस्र अश्वारोही के साथ युद्ध में सम्मिलित हुआ था। सरकार ने भी उक्त संख्या का समर्थन किया है।[6]

---

[1] सुजान-चरित्र, छं० ३२, पृ० १६-२० [2] वही, छं० १०, पृ० २६ [3] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भाग २, पृ० ४३४ [4] सुजान-चरित्र, छं० १०, पृ० ४५-६; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर भा० १, पृ० ३०८ [5] सुजान-चरित्र, छं० १६, पृ० ११०-११ [6] वही, छं० १७, पृ० १२६; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ४७८

(ऊ) खांडेराव की ब्रज पर आक्रमण करते समय सेना चार सहस्र थी। इतिहास में भी इसी संख्या को माना गया है।[१]

(ए) पठानों के विरुद्ध सफ़दरजंग की सहायता के लिए मल्हार राव की सेना पचास सहस्र आई थी।[२] इतिहास ग्रंथों से ज्ञात होता है कि उक्त अवसर पर होने वाले युद्धों में अलीगढ़ में मराठों की केवल २० सहस्र सेना सम्मिलित हुई थी।[३]

(ऐ) राव बहादुरसिंह की सेना—सूदन ने घासहरे के राव बहादुरसिंह की सेना के संबंध में दो विवरण दिये हैं। एक स्थल पर उन्होंने उसकी सेना की संख्या आठ सहस्र मानी है तथा दूसरे पर पाँच सहस्र।[४] इसी युद्ध में उसके साथ मरने वालों की संख्या क्रमशः ७०० तथा ४०० सैनिक उक्त कवि के द्वारा मानी गई है।[५]

(ओ) असद ख़ाँ की सेना—सूदन ने असद ख़ाँ की सेना की संख्या छः सहस्र मानी है।[६]

(औ) सलावत ख़ाँ की सेना—सूरजमल के राज्य पर आक्रमण करते समय मीर बख़शी सलावत के साथ ३० सहस्र सेना थी।[७] सरकार के विचार में उक्त अभियान में सलावत की सेना अठारह सहस्र तथा क़ानूनगो के मत में पन्द्रह सहस्र थी।[८]

(अं) सफ़दरजंग की अफ़ग़ान-युद्ध में सेना—जब सफ़दरजंग अफ़ग़ानों के विरुद्ध दिल्ली से प्रस्थानित हुआ, उस समय उसके साथ दश सहस्र सेना थी। अलीगढ़ के पास उसके अन्य सहायक आकर उपस्थित हो गये थे, इसलिए उसकी सेना की संख्या चालीस सहस्र हो गई थी।[९] इतिहास से ज्ञात होता है कि राम-चौतनी के युद्ध में सफ़दरजंग की सेना सत्तर, अस्सी हज़ार थी।[१०]

ऊपर सूदन द्वारा उल्लिखित सैन्य-संख्याओं का जो विवेचन किया गया है, उससे ज्ञात होता है कि कवि कथित सेना के आँकड़ों में से अधिकांश इतिहास लेखकों द्वारा दी हुई संख्या से मेल खाते हैं, पर कहीं-कहीं पर कवि ने इस प्रसंग में कल्पना से भी काम लिया है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचन के पश्चात् यह सार निकलता है कि सुजान-चरित्र में दी हुई अधिकांश तिथियाँ ऐतिहासिक तिथियों से मेल नहीं खातीं, पात्र प्रायः सभी ऐतिहासिक हैं और घटनायें भी इतिहास-सम्मत हैं। इस प्रकार यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से एक अमूल्य कृति है। वर्णित विषयों का जितना विस्तृत एवं तथ्यपूर्ण वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है, उतना उक्त विषय सम्बन्धी अन्य ग्रंथों में संभवतः न मिल सकेगा। अतएव यह पुस्तक पाठकों के इतिहास-ज्ञान की वृद्धि करने में विशेष रूप से सहायक होती है।

---

[१] सुजान-चरित्र, छं० ५, पृ० २३८; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ ५१५ [२] सुजान-चरित्र, छं० ३, पृ० १०० [३] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ४०५ [४] सुजान-चरित्र, छं० ४, ५, पृ० १११-२, ११३ [५] वही, छं० ३२, पृ० १४५ [६] वही छं० २८, पृ० १८ [७] वही, छं० ३, पृ० ४१-२ [८] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ३०७; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० ७१ [९] सुजानचरित्र, छं० ६, पृ० ६०; छं० ३, पृ० ७० [१०] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० १, पृ० ३६३; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भा० १, पृ० ८१

अध्याय ९

करहिया कौ रायसौ की ऐतिहासिकता

नीचे 'करहिया कौ रायसौ' में वर्णित तिथि, वंशोत्पत्ति, पात्र, युद्ध, सेना आदि की ऐतिहासिकता पर विचार किया जा रहा है :—

करहिया के युद्ध की तिथि—संवत् १८२४ भाद्रपद, असित ६, शनिवार[1]

श्रावण अमा चन्द्रमा का मध्यन्य समाप्तिकाल	१	जुलाई २६.१०
२१ तिथियों का समस्त व्याप्तिकाल	२०	२०.६७
	२१	४६.७७

=शनिवार, १५ अगस्त, १७६७ ई०

गुलाब कवि द्वारा दी हुई तिथि गणना से ठीक निकलती है। अतएव यह युद्ध १८२४ वि० भाद्रपद कृष्ण पक्ष ६, शनिवार तदनुसार १५ अगस्त, १७६७ ई० को हुआ था।

वंशोत्पत्ति—इस कवि ने करहिया के प्रमारों को 'रवि वंशिन-अंश'[2] तथा 'धारा-धनी'[3] लिखा है।

गुलाब ने प्रमारों को 'रवि वंशीय' मानकर परंपरागत ऐतिहासिक सत्य का अनुकरण किया है। यह राजपूत वास्तव में सूर्यवंशीय ही हैं।[4]

करहिया के प्रमार मालवा प्रमार-शाखा के वंशधर हैं। इस शाखा के खरगराय नामक व्यक्ति ने आश्वनि शुक्ल ४, संवत् १६३२ वि० (१५७५ ई०) में नखर से १६ मील उत्तर में करहिया नगर को बसाया था, जो अब तक उनके वंशधरों के अधिकार में है।[5] कुछ विद्वान् करहिया के प्रमार-वंश की स्थापना-तिथि १५६४ ई० मानते हैं।[6] अतएव मालवा शाखा के वंशज होने के कारण करहिया के प्रमार 'धारा-धनी' कहलाने के अधिकारी हैं, क्योंकि इनके पूर्वजों के समय में धारा-नगरी प्रमारों की राजधानी थी, जो उस काल में अत्यन्त प्रसिद्ध नगरी थी। इनको धारा-धनी विशेषण से युक्त करके गुलाब कवि ने अपने इतिहास ज्ञान का सच्चा परिचय दिया है।

निश्चित पात्र

जवाहरसिंह।[7]

---

[1] नागरी प्रचारणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० १०, १९८६ वि०, छं० १५, पृ० २७८ [2] वही, वही, छं० ६३ पृ० २८९ [3] वही, छंद १८, १९, पृ०२७९; छं०२५, पृ० २८०; छं० ३८, पृ० २८४; छं० ४३, पृ० २८५, छं० ४६, पृ० २८६; छं० ४८-५०, पृ० २८७; छं० ५२, ५७, पृ० २८८ [4] देखिए द्वितीय खण्ड, अध्याय ११, हम्मीररासो की ऐतिहासिकता के अन्तर्गत अग्नि-कुलोत्पत्ति-विवरण [5] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० १०, १९८७ वि०, पृ० २७२-५ [6] ग्वालियर स्टेट गज़ेटियर, १९०८ ई०, भा० १, पृ० २५१ [7] देखिए द्वितीय खण्ड, अध्याय ८, सुजान-चरित्र के पात्रों की ऐतिहासिकता, पृ०३१४

रामसिंह—इनके सम्बन्ध में अधिक वृत्त उपलब्ध नहीं हैं। केवल इतना ही ज्ञात है, कि करहिया के उक्त युद्ध के अवसर पर नरवर की कछवाहा शाखा के यह राजा थे और उन दिनों करहिया इनके आधीन एक जागीर थी।[1]

अनिश्चित पात्र

निम्नलिखित पात्रों के विषय में ऐतिहासिक विवरण अप्राप्य है :—

उद्दोतसिंह, उदारसिंह, किसुनेस, कीरतसिंह, केसवराय, केहरीसिंह, खुमान, गजा छितपाल, घनसिंघ, दांदिक (?), दिमानसिंह, दुर्जनसिंह, देवीसिंह, धुरमंगद, धौकलसिंह, नवलेश, पंचमसिंह, भीम, मान कुमार, माखनसिंह बुन्देल, मुहुकम, मुकुंद, मोहनसिंह, मंगद, रघुनाथ, रतिभान, लछनेस, बृजभान, विग्यसिंघ (विज्ञसिंह), श्यामदास, सामंतसिंह, सिरदारसिंह, सुजानसिंह, सोनेसिंह, हरिसिंघ (हरिसिंह)।

युद्ध-वर्णन—गुलाब कवि ने अपने 'रायसौ' में करहिया के युद्ध का जो विवरण दिया है, उसका उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में नहीं मिलता है। पर इतिहास से यह स्पष्ट है कि भरतपुराधीश जवाहरसिंह ने बुन्देलखंड आदि पर विजय प्राप्ति की अभिलाषा से एक विशाल सेना के साथ आक्रमण करके कतिपय स्थानों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। नीचे इन्हीं युद्धों का अत्यन्त संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। इससे अप्रत्यक्ष रूप में करहिया के युद्ध पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जायेगा :—

"मराठों को पराजित करने (१७६६ ई०), अपने प्रतिद्वन्द्वी नाहरसिंह के मारे जाने (दिसंबर, १७६६ ई०), और उमरावगिरि आदि गोसाईं विद्रोहियों की शक्ति क्षीण हो जाने से जवाहरसिंह अधिक शक्तिशाली हो गया। दादा और उनकी सेना के उत्तर से चले जाने पर (१६ मई, १७६७ ई०) को जवाहरसिंह सिरौंज पहुँचा। वर्षा काल में (जुलाई-सितंबर) में आक्रमण करके उसने कालपी तक मराठों के सभी राज्यों और ज़मीदारों को जीत लिया। केवल ग्वालियर और झाँसी मराठों के अधिकार में रह गए। शेष सभी स्थलों—भदावर, कछवाहाधार, तोमरधार सिकरवार, आदि पर जाटों का अधिकार हो गया। जवाहरसिंह ने कालपी में अपना राज्य स्थापित किया, दतिया और सेउँढ़ा पर कर लगाया तथा नरवर के पुल तक जा पहुँचा। यहाँ से दक्षिण की ओर न बढ़कर वह वापस लौटा। ग्वालियर की ओर लौटते समय उसने मराठों से जिगनी छीनी। पिछौर और गोहद के राजा उससे मिले। उसने उन्हें आश्वासन दिलाया कि यदि दक्षिण से और मराठा सेना न आ गई तो वह अक्टूबर में उनके राज्यों से मराठों को निकाल देगा।"[2]

ऊपर के उद्धरित ऐतिहासिक विवरण से स्पष्ट है कि जवाहरसिंह १७६७ ई० में जुलाई से सितंबर तक कालपी, नरवर, आदि के प्रदेश में अपनी सेना के साथ वर्तमान था। गुलाब कवि के कथनानुसार करहिया के युद्ध की तिथि १५ अगस्त, १७६७ ई० आती है।[3] अतएव यह युद्ध अवश्य ही इसी अवसर पर हुआ होगा। इसके अतिरिक्त उक्त विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि जवाहरसिंह नरवर के पुल तक पहुँच गए थे। करहिया राज्य उन दिनों नरवर के ही अन्तर्गत था।

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० १०, १९८६ वि०, पृ० २७९ [2] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर भा० २, पृ० ४७०-१; हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, पृ० १९१-२ [3] देखिए इसी अध्याय में ऊपर उल्लिखित करहिया-युद्ध की तिथि, पृ० ३३३

(आ) **करहिया की सेना** —गुलाब कवि ने करहिया की सेना के संबंध में लिखा है कि "इधर से सरोत्तर सहस जुआन दौड़े।"[१]

संभवत: इससे उनका अभिप्राय एक सहस्र से अधिक सेना से है। करहिया की सेना की संख्या के जानने के लिए अन्य साधन उपलब्ध नहीं हैं।

ऊपर के विवरण से यह सार निकलता है कि 'करहिया कौ रायसौ' बहुत बड़ी सीमा तक ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक ग्रंथ है। 'रायसौ' ग्रंथ होते हुए भी 'पृथ्वीराजरासो', 'हम्मीर रासो' आदि के समान अनैतिहासिक तथा काल्पनिक विवरणों से यह ग्रंथ एकदम अछूता है। यह रायसौ ऐतिहासिक एवं वास्तविक घटना पर अवलम्बित होने के कारण अपनी निजी विशेषता रखता है।

---

[१] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भा० १०, १९८६ वि०, छं० ३२, पृ० २८१-२

अध्याय १०

हिम्मतबहादुर-विरुदावली की ऐतिहासिकता

आगामी पृष्ठों में पद्माकर कृत 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' की तिथि, पात्रों और युद्ध विवरणों की ऐतिहासिकता पर विचार किया है जा रहा है :—

तिथि—पद्माकर ने अपने इस ग्रंथ में केवल एक ही तिथि—हिम्मतबहादुर और अर्जुनसिंह के युद्ध की—दी है। उन्होंने उक्त युद्ध का समय निम्नलिखित माना है :—

हिम्मतबहादुर तथा अर्जुनसिंह नोने के युद्ध की तिथि

सम्वत् १८४६, वैशाख वदी १२, बुधवार ।[1]

	सप्ताह दिवस	मास मास-दिवस
वैशाख अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्ति काल	(५)	मार्च २२.९३
१२ तिथियों का समस्त व्याप्ति काल	२६ + १	२६.५८
	(३२)	४६.५१
क्रमशः चार सप्ताहों तथा मार्च मास } के दिवस	२८	३१.००
	(४)	१८.५१

=बुधवार, १८ अप्रैल, १७९२ ई०

पॉगसन के मतानुसार "अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने १७९० ई० में बुन्देलखंड में प्रविष्ट होकर अर्जुनसिंह को पराजित किया था।"[2]

ध्यानपूर्वक विचार करने से विदित होता है कि पॉगसन द्वारा दी हुई तिथि अलीबहादुर तथा हिम्मतबहादुर के बुन्देलखंड में प्रवेश करने की है। सन् १७९० ई० से १८०२ ई० तक ये लोग बुन्देलखंड को लगातार पादाक्रान्त करते रहे थे। अर्जुनसिंह से युद्ध करने से पूर्व उन्हें मार्ग में कुछ अन्य युद्ध भी करने पड़े थे। अतएव पॉगसन की दी हुई तिथि ठीक नहीं प्रतीत होती। पद्माकर की मानी हुई तिथि गणना करने पर ठीक आती है। अतः उनकी दी हुई तिथि ही शुद्ध है।

निश्चित पात्र

राजेन्द्रगिरि ।[3]

राजा हिम्मतबहादुर (अनूपगिरि)—पद्माकर ने इन्हें राजेन्द्रगिरि का पुत्र माना है[4], पर वे वास्तव में उनके शिष्य थे। यह अवध के नवाब शुजाउद्दौलाह की सेना में चार सहस्र रुपए (सम्भवतः वार्षिक) वेतन पाने वाले एक उच्च पदाधिकारी थे। यह सदैव दस सहस्र वीरों के साथ नवाब की सेना के अग्र-भाग में रहा करते थे। उस समय के राजनीतिक क्षेत्र में यह एक प्रमुख वीर व्यक्ति

---

[1] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, छं० २२-३, पृ० ४ [2] हिस्ट्री ऑव् दी बुन्देलॉज़, पृ० ११६ [3] देखिए द्वितीय खण्ड, अध्याय ८, पृ० ३१४-१६ [4] हिम्तमबहादुर-विरुदावली, छं० ४४, पृ० ७

माने जाते थे। जहाँ कहीं भी युद्ध होता था वहाँ यह अवश्य ही भेजे जाते थे। ये कभी देहली की सेना का सामना करते और कभी गोविंद बल्लाल जैसे शक्तिशाली मराठा सैनिक को पराजित करते थे। इन्होंने पानीपत के तृतीय युद्ध में अहमदशाह अब्दाली की सहायतार्थ शुजा-उद्दौलाह की सेना का नेतृत्व किया था। (१४ जनवरी, १७६१ ई०)। इनकी कूटनीति के फलस्वरूप गणेश शंभाजी नवाब अवध को झाँसी समर्पित करने को उद्यत हो गया था और कालपी पर शुजा का अधिकार करवा दिया था। अपनी इन विजयों से उन्मत्त होकर हिम्मतबहादुर ने १७६२ ई० में बुन्देलखंड पर आक्रमण किया, पर हिन्दूपति ने इन्हें बुरी तरह पराजित किया।[1]

शुजाउद्दौलाह और अंगरेज़ों के मध्य होनेवाले पंचपहाड़ी (३ मई, १७६४ ई०) तथा बक्सर (२३ अक्टूबर, १७६४ ई०) के युद्धों में इन्होंने नवाब की ओर से अभूतपूर्व वीरता प्रदर्शित की थी। उक्त युद्धों में हारकर शुजाउद्दौलाह असहायावस्था में इधर-उधर मारा-मारा फिरने लगा। इन दुर्दिनों में नवाब का साथ छोड़कर अनूपगिरि ने भरतपुराधीश जवाहरसिंह के यहाँ जाकर सेवा-वृत्ति स्वीकार कर ली। कुछ समय के उपरांत वहाँ से वह रघुनाथ दादा से जा मिला। १७६७ ई० में शुजाउद्दौलाह को अंगरेज़ों ने पुनः अवध के अधिकार सौंप दिए। यह शुभ समाचार ज्ञात होने पर अनूपगिरि पुनः उसके यहाँ लौट आए। इस प्रकार एक स्थान से दूसरे पर चले जाने से इनकी अवसरवादिता, कृतघ्नता एवं स्वार्थपरता का पर्याप्त आभास मिल जाता है। १७७२ ई० के आरंभ में कूटनीति विशारद हिम्मतबहादुर को नवाब ने मराठों से संधि करने के निमित्त बाहिरजी के साथ भेजा। इसी वर्ष अगस्त मास में इन्होंने नवाब से प्रार्थना करके राय द्वारिकाप्रसाद को क्षमा प्रदान कराई।[2]

कुछ समय तक इटावा की फ़ौजदारी पर रहने के पश्चात् समस्त मध्य दोआब—इटावा, एटा, मैनपुरी, रामघाट तथा आगरे की सीमा तक का उप-सूबेदार नियुक्त हुआ। इसके उपलक्ष्य में वह ५२ लाख रुपये वार्षिक नवाब के कोष में भेजा करता था। नवाब ने नौबत आदि प्रदान करके भी उसे सम्मानित किया था (१७७४ ई०। १७७५ ई० में आसफ़उद्दौला की आज्ञा से वह एक सेना लेकर बुन्देलखंड की ओर भी गया था।

मार्च, १७७६ ई० में नवाब ने इसे दोआबा से अलग कर दिया। तब उसने नजफ़ ख़ाँ के यहाँ जाकर नौकरी कर ली। उस समय की देहली की डाँवाडोल दशा के अवसर पर इसने बड़ी वीरता, चातुर्य तथा साहस का परिचय दिया। मुड़सान के युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने वाले और अंबाजी मराठा को प्रलोभन देकर फोड़ लेनेवाले हिम्मतबहादुर को नजफ़ ख़ाँ ने जयपुर से कर चुकाने का कार्य सौंपा। इस कार्य में असफल रहने के कारण एक वर्ष पश्चात् १७८० ई० में उसे वहाँ से हटा दिया गया।

---

[1] शुजाउद्दौलाह, भा०, पृ० १७, ३२, ३६-५०, ७७-८०, ६४-६६, १०३-७, १३८-६, १४७-६; वही, भाग २, पृ० ३४०; फ़ॉल ऑव् दो मुग़ल इम्पायर, भा० ३, पृ० ३१३ [2] हिस्ट्री ऑव् दी बुन्देलाज़, पृ० ११३, ११६; पर्शियन करसपाँडेंस, भा० १, पत्र संख्या २०२३, पृ० २७५; पत्र सं० २२३२, पृ० ३११; शुजाउद्दौलाह भा० १, पृ० १६७-२००, २०४-५, २७७, २८६-७; वही, भा० २, पृ० १६८ (पाद-टिप्पणी ४६ सहित), १८६-७; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० ३, पृ० ३१३

उस समय की मुग़ल सरकार की बिगड़ी हुई परिस्थिति को सुधारने और अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए यह सदैव सावधान रहने लगे। नजफखाँ की मृत्यु (६ अप्रैल, १७८२ ई०) के बाद अफ़रासयाब के साथ रहकर यह उसके प्रमुख परामर्शदाता बन गए। इसके उपरान्त वह शफ़ी और सिन्धिया में मैत्री-संस्थापन कराके देहली के 'प्रमुख दूत' बनकर सिन्धिया के दरबार में रहने लगे। नवम्बर, १७८४ ई० में अफ़रासयाब की हत्या कर दी गई। अवसर पाकर हिम्मतबहादुर ने उनके तीन वर्षीय पुत्र को मीर बख्शी बनाकर स्वयं उसका संरक्षक बनने और सिन्धिया को धन देकर दक्षिण को लौटा देने का विफल प्रयत्न किया।

वह सिन्धिया का प्रमुख परामर्शदाता बनकर रहना चाहता था, पर महादाजी सिन्धिया ने उसकी उपेक्षा करना आरम्भ कर दिया। आगरा दुर्ग पर अधिकार प्राप्त करने में वह असफल रहा, इससे सिंधिया उससे और भी अप्रसन्न हो गया। इस प्रकार दोनों में शनैः शनैः वैमनस्य बढ़ने लगा। अनूपगिरि ने सिंधिया के विरुद्ध अलीगढ़ के दुर्गाध्यक्ष को कुछ पत्र लिखे जो सिंधिया के हाथ पड़ गए (जनवरी, १७८६ ई०)। प्रयत्न करने पर भी मृत अफ़रासयाब के धन का सिंधिया को इन्होंने पता न लगने दिया। इनकी सेना के व्यय के लिए सिंधिया को लगभग तीन लाख रुपए मासिक व्यय करने पड़ते थे। तंग आकर सिंधिया ने उसे आज्ञा दी कि वह अपनी सारी जागीर (दोनों भाइयों की लगभग २० लाख रुपए वार्षिक आय की) छोड़कर चला जाये। वह लगभग एक मास तक इसमें टाल-मटोल करता रहा। इसके बाद सिंधिया ने अनूपगिरि को मौट (झाँसी से तीस मील उत्तर-पूर्व) और वृन्दावन की जागीर, इस आज्ञा के साथ, प्रदान की कि वह संन्यासी बनकर वृन्दावन में निवास करे, अपनी सेना का व्यय उठावे और उसे सिंधिया की सेवा में रहने दे। पर वह इससे सहमत न हुआ और वृन्दावन को चला गया (१६ फ़रवरी, १७८६ ई०) कुछ समय से पश्चात् यमुना पार करके उसने फ़ीरोज़ाबाद पर अधिकार कर लिया और अवध की सीमा में जाकर शरण ली (जुलाई, १७८६ ई०)।

अगस्त १७८७ ई० में लालसोत के युद्ध में सिंधिया की पराजय हो गई। इस अवसर से लाभ उठाने के अभिप्राय से इसने उसके राज्य में अशान्ति फैलाने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए। जब उसने फ़ीरोज़ाबाद अधिकृत कर लिया, तो अवध के नवाब और अँगरेज़ों ने अपनी सीमा में उसका प्रवेश निषिद्ध कर दिया। अँगरेज़ उससे सदैव सावधान रहते थे। ग़ुलाम क़ादिर से दिल्ली की रक्षा करने के लिए शाह आलम ने इसे बुलाया। उसका सामना करने में स्वयं को असमर्थ पाकर वह उस समय तक फ़ीरोज़ाबाद में ठहरा रहा जब तक ग़ुलाम क़ादिर का दिल्ली पर अधिकार हो गया (अगस्त, १७८८ ई०)। उसी वर्ष अक्टूबर मास में दिल्ली से ग़ुलाम क़ादिर को भगाने में इसने सिंधिया की सहायता की।

जुलाई १७८६ ई० में वह बाँदा के अलीबहादुर की शरण में चला गया। उसे पकड़ने के लिए किये गये सिंधिया के समस्त उपाय विफल हुए और वह स्वयं आपत्ति ग्रस्त हो गया। १७६० ई० में अलीबहादुर के साथ हिम्मतबहादुर ने बुन्देलखंड में प्रवेश किया। वहाँ इन्होंने नौगाँव, अजयगढ़, देवगाँव, गुढ़ा, चरखारी आदि में भयंकर युद्ध करने के उपरांत रीवाँ की ओर प्रस्थान किया। तदुपरान्त कालिंजर का घेरा डाला (१८०० ई०)। अलीबहादुर की मृत्यु हो जाने पर १८०२ ई० में उसके पुत्र शमशेरबहादुर का साथ छोड़कर हिम्मतबहादुर अँगरेज़ों से जा मिला।

इसकी सहायता से कर्नल पॉवेल ने कनवारा तथा कुवसा के युद्धों में शमशेरबहादुर को पराजित किया (सितंबर, १८०३ ई०)। इसने मराठों के विरुद्ध अँगरेज़ों की जो सहायता की उससे प्रसन्न होकर उन्होंने इसे बुन्देलखंड का एक भू-भाग—यमुना निकटस्थ एक भू-खण्ड, कालपी, सिकन्दरा (कानपुर ज़िले में) आदि जागीर में दिये जिसकी वार्षिक आय लगभग २२ लाख रुपये थी।

इसके कुछ समय के उपरान्त सत्तर वर्ष की अवस्था में जनवरी, १८०४ ई० में बाँदा निकटस्थ कनवारा नामक स्थान पर हिम्मतबहादुर की मृत्यु हो गई।[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वह अपने समय का एक अनुभवी सेनापति, चतुर कूट-नीतिज्ञ, लोभी, स्वार्थी तथा शक्तिशाली व्यक्ति था, जिससे सभी उसकी ओर से सावधान रहने का प्रयत्न किया करते थे।

उमरावगिरि—उमरावगिरि के समकालीन 'आसफ़उद्दौलाहकार' तथा अर्वाचीन लेखक 'इरविन' दोनों के मतानुसार यह हिम्मतबहादुर के कनिष्ट भ्राता थे। सरकार ने इन्हें उनका ज्येष्ठ भाई माना है। अपने भाई के समान यह भी चार सहस्र रुपये (संभवतः वार्षिक) पर शुजाउद्दौलाह की सेवा में नौकर थे। इनके सेनापतित्व में दो सहस्र अश्व रहा करते थे। कहा जाता है कि वह शुजाउद्दौलाह की एक प्रेयसी नर्त्तकी को लेकर चले गये और फ़र्रुखाबाद के अहमदशाह बंगश की सेवा में जाकर रहने लगे। इस पर असंतुष्ट होकर शुजाउद्दौलाह ने फ़र्रुखाबाद पर आक्रमण कर दिया। नजीब ख़ाँ की मध्यस्थता से दोनों में संधि हो गई। फ़र्रुखाबाद से निर्वासित होकर उमरावगिरि आगरे की ओर चला गया (१७६३ ई०)। कुछ समय के पश्चात् वह फिर अवध को लौट गया।

२६ जनवरी, १७७५ ई० में शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई। उमरावगिरि शोक विह्वल होकर रात-दिन उसकी क़ब्र के पास पड़ा रहने लगा। यह समाचार मिलने पर आसफ़उद्दौलाह ने इसे अपने पास बुला लिया। कालान्तर में यह अवध को छोड़कर नजफ़ ख़ाँ की सेवा में चला गया (१७७७ ई०)।

इसके अनन्तर यह अपनी पारिवारिक जागीर की देख-रेख करने लगा। अनुकूल अवसर

---

[1] शुजाउद्दौलाह; भा० २, पृ० २३५-६, २७५-६; आसफ़उद्दौलाह, पृ० ५-६, १७; पर्शियन करसपाँडेंस, भा० ४, पत्र सं० १६६३; वही, भा० ६, पत्र सं० ४६३; वही, भा० ७, पत्र सं० ४१ (पाद-टिप्पणी ५, पृ० १७), ३१५ (I), ४८७, ६३०, १५५६, १६४४, १८२६; पूना रेज़ीडेंसी करसपाँडेंस, भा० १, पत्र सं० ७, ८, १०, ११, १६, २८, २६, ३२, ३३, ३६, ४०, ४१, ४६, ६०, ६६, ६८, १४०, १४३, १४६, १५०, १५८, २१० २१६, २२०, २२१, २२८, २३४, २५२, २५३, २५५, २५६, २७८; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० ३, पृ० १२३ १२७-८, १६५-६, १६६, १७२, २०८-८, २१०, २३२, २४५, २५६-६०, २७२, २७५-७, २७६, २६१-२, २६६, ३०१-२, ३०७, ३१३-६, ३३५, ३४१, ३४६, ४२७, ४३७-४१, ४६१, ४६४; हिस्ट्री ऑव् दी बुन्देलाज़, पृ० ११६-२६, १२८; इम्पीरियल ग़ज़ेटियर, भा० १४, प० ३१८ (कालपी); डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, जालौन, पृ० १३०, वही, झांसी; पृ० २७०, वही, कानपुर, पृ० २०६; ऐचिसन: ट्रीटीज़, इंगेजमेंट्स आदि भा० ५, खं० २, पृ० ४७ ४६

पाकर वह अपनी जागीर में स्थित सिंधिया के थानों पर आक्रमण करने लगा। यही नहीं, सिन्धिया द्वारा इसकी जागीर पर अधिकार करने के लिए भेजे गये केशवपन्त की इसने हत्या तक कर डाली और फ़ीरोज़ाबाद पर अपना अधिकार कर लिया (१७८६ ई०)। इसके पश्चात् उसने अतरौली, छर्रा, भमौरी, आदि के मराठा अधिकारियों को निकालकर भगा दिया, उसने अंभाजी की सेना को मार भगाया और उसकी बन्दूकें छीन लीं। देवजी गोले की अध्यक्षता में आती हुई मराठा सेना का समाचार जानकर वह कासगंज की ओर भाग गया (१७८६ ई०का अन्त)।

वहाँ से उमरावगिरि नवाब-अवध की सीमा में रुहेलखंड में चला गया। वहाँ वह लगभग एक वर्ष पर्यन्त शान्तिपूर्वक काल-यापन करता रहा। लालसोत में सिंधिया के पराजित हो जाने पर (अगस्त, १७८७ ई०) उसने पुनः मराठों को तंग करना आरम्भ कर दिया। इससे अप्रसन्न होकर नवाब-अवध ने इसे अपनी सीमा से निर्वासित करने की घोषणा की (सितम्बर, १७८७ ई०)। इस मास में उसने फ़ीरोज़ाबाद का घेरा डाला और भाऊ बख्शी की विस्तृत सीमा पर अधिकार कर लिया। वह इसी प्रकार इधर उधर लूटमार करता रहा। अन्त में वह ७ अप्रैल, १७८८ ई० को पकड़ा गया। सिंधिया ने उसका उचित आदर सत्कार किया। १८ मई, १७८८ ई० को अवसर पाकर वह सिंधिया के कारागार से मुक्त होकर भाग गया।

कुछ समयोपरान्त उमरावगिरि ने नवाब-अवध के विरुद्ध एक भयंकर षड्यन्त्र रचा, जिसके कारण नवाब ने इसे कठोर कारावास का दंड दिया। उसे दीर्घ काल तक कारागार भोगना पड़ा यहाँ तक कि वह १८०३ ई० के लगभग भी बन्दी जीवन व्यतीत कर रहा था।[1]

सबसुखराय—इनका अधिक विवरण ज्ञात नहीं है। केवल इतना ही विदित है कि यह हिम्मतबहादुर के एक प्रमुख सेनापति तथा कोषाध्यक्ष थे।[2]

अर्जुनसिंह नोने—कहा जाता है कि अर्जुनसिंह का जन्म बाँदा प्रान्तान्तर्गत कुल-पहाड़ निकटस्थ कुँवरपुर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता जैतपुर के एक जागीरदार थे। वयस्क होने पर इन्होंने बाँदा के राजा गुमानसिंह की सेना में नौकरी कर ली और अपनी वीरता के कारण अल्पकाल ही में वे प्रमुख सेनापति बन गए। इन्होंने पद्माकार से दीक्षा ली थी।

दिसम्बर, १७६२ ई० में जब हिम्मतबहादुर ने हिन्दूपति पर आक्रमण किया था, उस समय अर्जुनसिंह भी उक्त युद्ध में सम्मिलित हुए थे। यह युद्ध तेंदवारी नामक स्थान पर लड़ा गया था।

गुमानसिंह की मृत्यु के उपरान्त अल्पवयस्क बखतसिंह बाँदा की गद्दी पर बैठे। सरकार[3]

---

[1] आसफ़उद्दौलाह, पृ० ६, १७, २०, २२, ३०, जरनल ऑव् एशियाटिक, सोसायटी ऑव् बंगाल, संख्या XLVIII, १८७६ ई०, पृ० १३७ (पाद-टिप्पणी सहित), १४०, १४२; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० ३, पृ० ३१२-१३, ३१७-६, ४१६, ४४५; शुजाउद्दौलाह, भा० १, पृ० १७, ८०, १५४, १५८; वही, भा० २, पृ० २६२, ३३४, ३४०; पूना रेज़ीडेंसी करसपाँडेंस, भा० १, पत्र संख्या २६, ३२, ३६, १४०, १४३-४, १४६-७, १५६-८, १६७, १७३ ६, २२१, २२८; पर्शियन करसपाँडेंस, भा० ७, पत्र संख्या ४८७, ६३०, १५५६, १७८७, १८२६; एचिसन, ट्रीटीज़, इंगेज़मेंट्स आदि, भा० ५, सं० २, पृ० ४७

[2] हिस्ट्री ऑव् दी बुन्देलाज़, पृ० १२२; हिम्मतबहादुर-विरुदावली, (पाद-टिप्पणी), पृ० २४

[3] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० ३, पृ० ३२१

ने बाँदा के उस शासक का नाम मधुकरशाह माना है। अर्जुनसिंह बाँदा के उस अल्पायु शासक के संरक्षक तथा शासक नियुक्त हुए (१७७८ ई०)। उसने चरखारी के खुमानसिंह को 'मौधा' पर पराजित किया। वह फिर विशाल सेना लेकर आ उपस्थित हुए। पंडौरी पर घोर संग्राम हुआ जिसमें खुमानसिंह खेत रहे (अप्रैल, १७८५ ई०)।

जब पन्ना में उत्तराधिकार युद्ध आरंभ हुआ तो अर्जुनसिंह ने सरनेतसिंह (अथवा सरमेदसिंह) का पक्ष लेकर पन्ना की सेना को गठ्यौरी पर पराजित किया और पन्ना का अधिकांश भाग बाँदा में मिलाकर स्वयं शासन करने लगे (१७८५ ई०)। इसके कुछ समय के उपरांत इन्हें पुनः पन्ना की सेना से चछौरी (Chuch, hnreea) नामक स्थान पर युद्ध करना पड़ा जिसमें दोनों पक्षों को भयङ्कर हानि उठानी पड़ी।

अर्जुनसिंह का अन्तिम युद्ध हिम्मतबहादुर के साथ हुआ था जिसका वर्णन पद्माकर ने अपने ग्रंथ में किया है।[1]

छत्रसाल बुन्देला[2]

अनिश्चि पात्र

नीचे लिखे हुए पात्रों के संबंध में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है:—

हिन्दू-पात्र—उत्तमगिरि, गंगागिरि, दिलावरजंग, राजगिरि, जगत्‌बहादुर, सरुपगिरि, सुंदरगिरि। कहा जाता है कि ये सभी व्यक्ति हिम्मतबहादुर के भतीजे थे।[3]

मानधाता—यह सबसुखराय के पुत्र बतलाए जाते हैं।[4]

नरिदसिंह पमार, जगतसिंह पमार, हिन्दूपति पमार, बहादुरसिंह, कंसराज, उमरावसिंह सेंगर, बुद्धसिंह सेंगर, दिलीपसिंह गौर, निवाजसिंह गौर, दुर्जनसिंह गौर, उत्तमसिंह गौर, नवलसिंह (गुलौलीवाले), निधानसिंह पड़िहार, दीवान दूलहसिंह, दीवान खुमानसिंह, हीरालाल, सरुपसिंह ज्योतिषी।

मुसलमान-पात्र—मेवात के नवाब जुलफ़िक़ार।

युद्ध-वर्णन

पद्माकर ने प्रस्तुत ग्रंथ में हिम्मतबहादुर द्वारा किए गए तीन युद्धों का उल्लेख किया है। उन्हीं तीनों युद्धों की ऐतिहासिकता पर नीचे क्रमशः विचार किया जा रहा है:—

प्रथम युद्ध—पद्माकर ने लिखा है कि हिम्मतबहादुर ने 'गूजर गलीम (ग़नीम = शत्रु) को जीता।"[5] इससे लाला भगवानदीन ने अनुमान लगाया है "कि हिम्मतबहादुर ने किसी समय गूजर-देश अर्थात् गुजरात पर भी चढ़ाई की थी।"[6] परन्तु हिम्मतबहादुर संबंधी प्राप्त विव-

---

[1] फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० ३, पृ० ३१९-२५; हिस्ट्री ऑव दी बुन्देलाज़, पृ० १०६, ११२-४; हिम्मतबहादुर-विरुदावाली, भूमिका पृ० २९-३३; एशियाटिक एनुअल रजिस्टर, १८०३ ई०, अध्याय-विविध (miscellaneous) पृ० ५८-६२; बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २३५, २५७, २६४, २६८ [2] देखिए द्वितीय खं०, अध्याय ५, पृ० २६१ [3] हिम्मतबहादुर-विरुदावली, भूमिका, पृ० २८ तथा २९ के मध्य का वंशवृक्ष; वही, पाद-टिप्पणियाँ, पृ० २७, २८, २९, ३२ [4] वही, पाद-टिप्पणी, पृ० २४ [5] वही, छं० १५, पृ० ४ [6] वही, पाद-टिप्पणी, पृ० वही

रण से यह नहीं विदित होता है कि उसने कभी भी गुजरात पर आक्रमण किया था। वर्त्तमान परिस्थितियों में 'गूजर' से गुजरात का अर्थ लेना कोरा अनुमान ही है। हो सकता है कि बुन्देलखंड के किसी भू-भाग अथवा अन्यत्र किसी प्रदेश पर गूजर-वंश का कोई शासक उस समय राज्य करता हो जिसको हिम्मतबहादुर ने पराजित किया हो। कुछ भी हो, इस युद्ध के विषय में वर्तमान सामग्री के आधार पर कोई भी निश्चयात्मक निर्णय करना कठिन है।

द्वितीय युद्ध—पद्माकर द्वारा वर्णित उसका दूसरा युद्ध दतिया के शासक के विरुद्ध था जहाँ से उसने मनमानी चौथ ली। इस युद्ध का विस्तृत विवरण अप्राप्य है। केवल इतना ही ज्ञात है कि उस समय दतिया में राजा रामचन्द्र राज्य करते थे। हिम्मतबहादुर ने उन्हें गद्दी से हटाकर कर उगाहा था।[1]

तृतीय युद्ध—"दतिया-युद्ध के उपरांत हिम्मतबहादुर ने छत्रसाल के देश में प्रविष्ट होकर वहाँ के निर्भीक मनः अर्जुनसिंह पर आक्रमण किया।"[2]

पद्माकर के छत्रसाल के देश कहने का केवल इतना ही अभिप्राय है कि बाँदा और अजयगढ़ उस समय छत्रसाल के वंशजों के आधीन थे। उन्होंने अर्जुनसिंह को वहाँ का शासक माना है। पर, वह वास्तव में शासक नहीं था, वरन् वहाँ के अल्पवयस्क राजा का संरक्षक और प्रमुख सेनापति था। संभवतः इसी से कवि ने उन्हें शासक मान लिया है।

पद्माकर का विचार है कि अर्जुनसिंह किसी से डरता नहीं था। इसी से कोप करके हिम्मतबहादुर ने आक्रमण किया था। पर इतिहास से विदित होता है कि बात ऐसी नहीं थी। वास्तव में बुन्देलखंड के शासकों के पारस्परिक युद्धों के कारण उस प्रदेश की जीर्ण-शीर्ण दशा हो गई थी। नोने अर्जुनसिंह ने पन्ना राज्य का अधिकांश भाग बांदा में सम्मिलित कर लिया था। बुन्देलखंड की ऐसी दयनीय दशा से लाभ उठाने के उद्देश्य से नाना फ़ड़नबीस ने अली बहादुर को सिंधिया के डेरे में भेज दिया था, कि वह अवसर पाकर बुन्देलखंड को अधिकृत कर ले।

इसी उद्देश्य की पूर्ति की लालसा से हिम्मतबहादुर तथा अली बहादुर की संयुक्त सेना ने बुन्देलखंड में प्रवेश किया (१७८९ ई० अथवा १७९० ई०)। नोने अर्जुनसिंह ने इनकी आधीनता अस्वीकार की। अतः नयागाँव (नौगाँव) और अजयगढ़ के मध्य भयङ्कर युद्ध हुआ। जिसमें अर्जुनसिंह मारे गए। उनका सिर काटकर अली बहादुर को भेंट किया गया।[3]

पद्माकर का कथन है हिम्मतबहादुर ने स्वयं अर्जुनसिंह का सिर काटा था।[4] पर लाला भगवानदीन की धारणा है के वे अपने वंश के किसी व्यक्ति, जो हिम्मतबहादुर की ओर से लड़ रहा था, के हाथ से मारे गए।[5] कुछ भी हो वे इस युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गए थे, यह निश्चित है।

---

[1] वही, छं० १६, पृ० ४; बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २५७ [2] हिम्मतबहादुर-वरुदावली, छं०१६-८, पृ० ४ [3] हिस्ट्री ऑव् दी बुंदेलाज़, पृ० ११६, १२१; बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २७३-४; एशियाटिक एनुअल रजिस्टर, १८०६ ई०, विविध (Miscellaneous) पृ०३०-१ [4] हिम्मत बहादुर-विरुदावली, छं०, २०७, पृ० ४३ [5] वही, भूमिका, पृ० २४-५

इस प्रकार हिम्मतबहादुर-विरुदावली के ऐतिहासिक विवेचन से स्पष्ट है कि यह बड़े महत्त्व की कृति है। इसमें हिम्मतबहादुर का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है, पर घटना ऐतिहासिक विवरण पर अवलंबित है। कवि ने अर्जुनसिंह का भी सच्चा एवं तथ्यपूर्ण वृत्त दिया है। उक्त युद्ध की तिथि, सम्मिलित होनेवाले पात्रों, युद्ध-विवरण आदि की दृष्टि से यह संक्षिप्त काव्य इतिहास का एक अत्यन्त महत्त्वशाली ग्रंथ है।

अध्याय ११

हम्मीररासो की ऐतिहासिकता

आगे के पृष्ठों में हम्मीररासो में वर्णित तिथियों, राजपूत-अग्निकुलोत्पत्ति, पात्रों, हम्मीर और अलाउद्दीन की शत्रुता के कारणों, रणथम्भौर पर आक्रमण, युद्ध-वर्णन, हम्मीर के मंत्रियों द्वारा विश्वासघात, मुसलमानों द्वारा रणथम्भौर-विजय, राव हम्मीर, मीर महिमा आदि की मृत्यु, अलाउद्दीन का रामेश्वर में जाकर प्राण-विसर्जन करना, चन्द्रकला-नृत्य, राव हम्मीर और अलाउद्दीन की सेनाओं की संख्या आदि पर विचार किया जा रहा है।

तिथियाँ

जोधराज ने ऐतिहासिक घटनाओं सम्बन्धी निम्नलिखित तिथियों का उल्लेख किया है :—

(अ) रणथम्भौर-संस्थापन-तिथि = सं० ११1० वि० बैशाख सुदी अक्षय तृतीया, शनिवार।[1]

(आ) पद्म-ऋषि-मरण-तिथि = सं० ११४० वि०, माघ शुक्ल १२, सोमवार।[2]

(इ) हम्मीर की जन्म-तिथि = सं० ११४१ वि०, कार्तिक शुक्ल १२, रविवार।[3]

(ई) अलाउद्दीन की जन्म-तिथि = कवि ने हम्मीर और अलाउद्दीन की जन्म-तिथि एक ही मानी है।[4]

(उ) रणथम्भौर पर आक्रमण की तिथि = सं० ११३८ वि० चैत्र द्वितीया अथवा ११८८ वि०, चैत्र तृतीया।[5]

(ऊ) युद्ध-समाप्ति-तिथि* = युद्ध आरम्भ होने की तिथि से चौदह वर्षोपरान्त, अर्थात् ११४२ अथवा १२०२ वि० चैत्र द्वितीया।[6]

(ए) हम्मीर-मरण-तिथि = इस कवि ने युद्ध-समाप्ति-तिथि ही राव हम्मीर की मरण-तिथि मानी है।[7]

(ऐ) अलाउद्दीन की मृत्यु तिथि = जोधराज ने रणथम्भौर-विजय, हम्मीर-मरण तथा अलाउद्दीन की मृत्यु एक ही समय में हुई मानी है।[8]

(ओ) छाड़गढ़-पराजय और रण—

---

*टिप्पणी १ कवि ने छं० ५०४, पृ० १०१ में १२ वर्ष पर्यन्त युद्ध होते रहने का उल्लेख किया है। यह भी उसकी अज्ञानता का द्योतक है।

[1] हम्मीररासो, छं० ८९, पृ० १७; वार्त्ता, पृ० १८ [2] वही, छं० १६५-७१; वार्त्तिक, पृ० ३३-४ [3] वही, छं० १७२-८१, पृ० ३५-६; वचनिका, पृ० ३७-८ [4] वही, छं० वही, पृ० वही [5] वही, छं० ३७२ (पाद-टिप्पणी ५ सहित), पृ० ७६ [6] वही, छं० ४२८-९, पृ० ८७; छं० ५८७, पृ० ११९; वचनिका, पृ० १८५ [7] देखिए ऊपर (ऊ); वचनिका, पृ० १८५-६ [8] देखिए ऊपर (ऊ); छं० ९५३-४, पृ० १८६; छं० ९६५, पृ० १८७

वीर-मृत्यु-तिथि = युद्धारम्भ होने के पाँच वर्ष के पश्चात् अर्थात् ११४३ वि०, चैत्र शुक्ल ६, शनिवार।[1]

उपर्युक्त तिथियों की प्रामाणिकता पर नीचे विचार किया जा रहा है।

(अ) रणथम्भौर—संस्थापन-तिथि :—

सं० १११० वि० वैशाख सुदी अक्षय तृतीया, शनिवार (अप्रैल, १०५३ ई०)

वैशाख अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्ति काल	३	अप्रैल २०.८६
३ तिथियों का समस्त व्याप्ति काल	२+१	२.६५
	६	२३.८४

=शुक्रवार २४ जनवरी, १०५३ ई०।

अतः गणना से सिद्ध होता है कि कवि द्वारा दी हुई उक्त तिथि अशुद्ध है।

हम्मीर महाकाव्य[2] के अनुसार सं० १३३६ वि० (१२८२ ई०) में और प्रबन्ध-कोष[3] के अन्त की वंशावली के अनुसार १३४२ वि० (१२८५ ई०) में हम्मीर सिंहासनारूढ़ हुए। अतएव उनके पिता जैत्रसिंह का सं० १११० वि० (१०५३ ई०) में वर्त्तमान होकर रणथम्भौर की नीव डालना जोधराज के मस्तिष्क की कल्पना है।

रणथम्भौर का प्राचीन इतिहास अभी तक अन्धकार के गर्त्त में निहित है। कहा जाता है कि १२वीं शताब्दी में पृथ्वीराज चौहान ने यादवों से यह दुर्ग छीना था।[4] इससे भी यह सिद्ध होता है कि जैत्रसिंह से बहुत पहले ही यह दुर्ग संस्थापित हो चुका था।

(आ) पद्म-ऋषि-मरण-तिथि

सं० ११४० वि०, माघ शुक्ल १२, सोमवार

माघ अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्ति काल	४	जनवरी १०.५१
१२ तिथियों का समस्त व्याप्ति काल	११+१	११.८१
	१६	२२.३२

=सोमवार २२ जनवरी, १०८४ ई०।

गणना के अनुसार उक्त तिथि ठीक है, पर पद्म ऋषि को ऐतिहासिक व्यक्ति मानने के लिए कोई सामग्री प्राप्त नहीं है। वह पौराणिक अथवा काल्पनिक पात्र प्रतीत होते हैं, अतएव उक्त तिथि का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। इस तिथि के आधार पर उन्हें जैत्रसिंह अथवा हम्मीर का समकालीन भी नहीं माना जा सकता।

(इ) हम्मीर की जन्म-तिथि

---

[1] हम्मीररासो, छं० ४०४, पृ० १०१; छं० ४८४, पृ० ११६ [2] हम्मीर महाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक ४६ [3] राजपूताने का इतिहास, भा० १, पृ० २२८ [4] दी इम्पीरियल गज़ेटियर ऑव् इंडिया, भा० २१, पृ० २३५

सं० ११४१ वि०, कार्त्तिक शुक्ल १२, रविवार

कार्त्तिक अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्ति काल	४	अक्टूबर २.२६
१२ तिथियों का समस्त व्याप्ति काल	११ + १	११.८१
	१६	१४.१०

=सोमवार, १४ अक्टूबर, १०८४ ई० ।

यह तिथि भी अशुद्ध है ।

अलाउद्दीन ने १३०० ई० में रणथम्भौर पर आक्रमण किया था। उस समय हम्मीर की आयु २८ वर्ष की थी।[1] इसके अनुसार हम्मीर १२७१ ई० में उत्पन्न हुआ होगा। यह कथन भी रासो की उक्त तिथि की निस्सारता सिद्ध करता है।

(ई) अलाउद्दीन की जन्म-तिथि—जोधराज ने हम्मीर और अलाउद्दीन की जन्म-तिथि एक ही मानी है। इसके अनुसार ११४१ वि० कार्त्तिक शुक्ला १२ रविवार अक्टूबर, १०८४ ई० को अलाउद्दीन ने जन्म लिया। यह-तिथि भी निरर्थक है।

अलाउद्दीन के समकालीन किसी भी इतिहास लेखक ने उसकी जन्म तिथि का उल्लेख नहीं किया है। पर १७वीं शताब्दी के आरंभ में हाजीउद्दवीर ने लिखा है कि :—

"सन् १३००–०१ ई० में रणथंभौर की विजय के पश्चात् वह (अलाउद्दीन) अभिमानी तथा विलासी हो गया। उस समय उसकी अवस्था ३४ वर्ष की थी।"[2] यदि इस कथन को सत्य मानें तो अलाउद्दीन का जन्म १२६७ ई० में हुआ होगा। इतिहास से स्पष्ट है कि अलाउद्दीन का शासन-काल १२९६ से १३१६ ई० तक था। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कवि जोधराज द्वारा दी हुई अलाउद्दीन की जन्म-तिथि एकदम काल्पनिक है।

(उ) रणथंभौर पर आक्रमण की तिथि :—

सं० ११३८ वि०, चैत्र, द्वितीया (मार्च १०८१ ई०)

अथवा

सं० ११८८ वि०, चैत्र द्वितीया (मार्च, ११३१ ई०)

जोधराज ने इस तिथि के साथ दिवस एवं पक्ष का उल्लेख नहीं किया है, अतः गणना द्वारा इसकी जाँच नहीं की जा सकती। हम्मीर महाकाव्य,[3] राजपूताने का इतिहास,[4] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया,[5] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी,[6] आदि के अनुसार सुलतान अलाउद्दीन ने १३००-०१ ई० में रणथंभौर पर आक्रमण किया था। अतएव जोधराज द्वारा दी हुई उक्त तिथि एकदम निराधार है।

(ऊ) युद्ध-समाप्ति-तिथि—अलाउद्दीन के आक्रमण के अवसर पर हम्मीर ने पूजा द्वारा महादेव जी को प्रसन्न करके चौदह वर्ष के उपरान्त आषाढ़ सुदी पुष्य (नक्षत्र) को शाका पूर्ण होने का वरदान प्राप्त किया।[7]

---

[1] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ६८ [2] वही, पृ० २ [3] सर्ग १३, श्लो० १८६ [4] भा० १, पृ० २२७ [5] तृ० भा०, पृ० ६६६ [6] पृ० ७७, ९३ [7] हम्मीररासो, छं० ४२८-९, पृ० ८७

ऊपर विचार किया जा चुका है कि जोधराज ने रणथम्भौर पर आक्रमण की तिथि ११३८ वि०, चैत्र द्वितीया (मार्च, १०८१ ई०) अथवा (मार्च ११३१ ई०) मानी है। इस प्रकार कवि के मतानुसार युद्ध १४ वर्ष पर्य्यन्त होता रहा और आषाढ़, सम्वत् ११५२ वि० (जून १०९५ ई०) अथवा आषाढ़ १२०२ वि० (जून ११४५ ई०) में समाप्त हुआ।

इस सम्बन्ध में अमीर ख़ुसरो ने 'तारीख़-इ-अलाई' में लिखा है कि "रज्जब से ज़िल्क़ाद महीने तक (वि० सं० १३५८ के चैत्र से श्रावण = ई० सन् १३०१, मार्च से जुलाई तक) सुलतान की सेना क़िले के नीचे डटी रही।......हम्मीरदेव ने......शाही फ़ौज पर आक्रमण कर वीरगति प्राप्त की। यह घटना हि० स० ७०० के ज़िल्क़ाद (वि० सं० १३५८ श्रावण शुक्ला ५ = ई० सं० १३०१, जुलाई ११) की है।"[1]

इस विवरण से रणथम्भौर के घेरे की अवधि छः मास ठहरती है, न कि चौदह वर्ष।

ज़ियाउद्दीन बरनी ने इस युद्ध का समय एक वर्ष माना है। बरनी द्वारा दी हुई तिथियाँ प्रायः भ्रमात्मक हैं।[2]

अमीर खुसरो ने 'अशीक़ा देवलरानी व खिज्र खाँ'[3] नामक काव्य में लिखा है :—

"......एक महीने के घोर युद्ध के पश्चात् अलाउद्दीन ने दुर्ग पर अधिकार करके उलग़ खाँ को वहाँ का सूबेदार बनाया।

सम्भवत: इसका तात्पर्य सुलतान के वहाँ पहुँचने के एक मास उपरांत से होगा।"[4]

'तारीख़-फ़रिश्ता'[5] के अनुसार "हिं० स० ६९९ (वि० सं० १३५७ = ई० सन् १३००) में अलाउद्दीन ने अपने भाई उलग़ खाँ और नुसरत खाँ को रणथंभौर पर आक्रमण करने को भेजा। एक वर्ष तक लड़ते रहने पर भी जब मुसलमानों को विजय की कुछ भी आशा नहीं दिखाई दी, तब रेत से भरे हुए बोरों को नीचे ऊपर रखवाकर दुर्ग पर चढ़कर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रणथंभौर का युद्ध छः मास अथवा एक वर्ष तक हुआ था, न कि चौदह वर्ष तक जैसी कि जोधराज की कल्पना है। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा दिया हुआ संवत् भी अशुद्ध है।

(ए) **हम्मीर की मरण-तिथि**—ऊपर युद्ध-समाप्ति की जो तिथि दी गई है वही तिथि हम्मीर-निधन की भी कवि द्वारा मानी गई है। कवि कथित इस तिथि की निस्सारता ऊपर सिद्ध की जा चुकी है। फ़ारसी इतिहासों के आधार पर ११ जुलाई, १३०१ ई० को हम्मीर की मृत्यु हुई थी।[6]

(ऐ) **अलाउद्दीन की मृत्यु-तिथि**—जोधराज ने हम्मीर और अलाउद्दीन की मृत्यु एक ही दिन मानी है, पर इतिहास में इसके विपरीत प्रमाण मिलते हैं। केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया[7] में अलाउद्दीन की मृत्यु की तिथि २ जनवरी, १३१६ ई० दी है। डा० किशोरीशरणलाल[8] ने उसका

---

[1] इलियट, हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ३, पृ० ७५-६; भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १, पृ० २७४ [2] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० २५ (पाद टिप्पणी) [3] हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ३, पृ० ५४९; भारत के प्राचीन राजवंश भा० १, पृ० २७५ [4] वही, पृ० वही [5] वही, पृ० २७६ [6] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ७७ [7] भा० ३, पृ० ११९ [8] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० २३६

मरण-काल सन् ७१५ हि०, शब्बाल ७ (६ जनवरी, १३१६ ई०) माना है। श्रीयुत श्रोझा जी[1] के मतानुसार अलाउद्दीन ता० ६ शब्बाल, ७१६ हि० (१३७३ वि०, पौष सुदी ७=१३१६ ई०, २२ दिसंबर) को मरा।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि १३०१ ई० में रणथंभौर-विजय होने पर राव हम्मीर वीर-गति को प्राप्त हुए और उसके पन्द्रह वर्ष पश्चात् अलाउद्दीन मरा। अतः कवि जोधराज का उसकी मृत्यु-तिथि संबंधी कथन कोरी कल्पना पर निर्भर है।

(ओ) छाड़गढ़-विजय और रणधीर की मृत्यु-तिथि—जोधराज ने, पाँच वर्ष पर्य्यन्त छाड़-गढ़ का घेरा पड़ा रहने के उपरांत उस पर अलाउद्दीन के अधिकार हो जाने का, उल्लेख किया है। इस दृष्टि से इस घटना की तिथि **११४३ वि०, चैत्र शु० ६ शनिवार** आती है।

चैत्र अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्ति काल	३	मार्च १७.८४
६ तिथियों का समस्त व्याप्ति काल	८+१	८.८६
	१२	२६.७०

=बृहस्पतिवार, २६ मार्च, १०८६ ई०

उक्त तिथि गणना से अशुद्ध सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त, जब रणथंभौर, दुर्ग पर केवल छः मास अथवा एक वर्ष तक युद्ध हुआ तो छाड़गढ़ में पाँच वर्ष तक रण होते रहने की धारणा कवि की मनगढ़न्त बात है। अतएव छाड़गढ़-विजय और रणधीर मरण-तिथि एकदम निराधार हैं।

जोधराज ने घटनावलियों की तिथियों का वास्तविक ध्यान नहीं रक्खा है। प्रत्येक घटना के घटित होने से बहुत पहले ही उन्होंने उसके होने की कल्पना कर ली है। यह बात निम्नलिखित तुलनात्मक तिथि-पत्र से भी स्पष्ट हो जाती है:—

क्रम-संख्या	घटना	इतिहास में दी हुई तिथि	जोधराज द्वारा दी हुई तिथि	अंतर	विवरण
१	रणथम्भौर-स्थापना	१२८२ ई०	१०५३ ई०	२२६ वर्ष	इस तिथि को हम्मीर का राज्याभिषेक हुआ था। अतः लगभग २२६ वर्ष पूर्व जैत्र-सिंह का वर्तमान होना और रणथंभौर की नीव डालना कवि की निराधार कल्पना है।
२	हम्मीर-जन्म	१२७१ ई०	१०८४ ई०	१८७ वर्ष	
३	अलाउद्दीन-जन्म	१२६७ ई०	१०८४ ई०	१८३ वर्ष	
४	रणथंभौर पर आक्रमण	१३००-१३०१ ई० " "	१०८१ ई० अथवा ११३१ ई०	२१६ वर्ष अथवा १६६ वर्ष	

[1] राजपूताने का इतिहास, भा० २, पृ० ४१६

क्रम-संख्या	घटना	इतिहास में दी हुई तिथि	जोधराज द्वारा दी हुई तिथि	अंतर	विवरण
५	युद्ध-समाप्ति	१३०१ ई०	१०९५ ई०	२०६ वर्ष	
			अथवा	अथवा	
		,,	११४५ ई०	१५६ वर्ष	
६	अलाउद्दीन की मृत्यु	१३१६ ई०	१०९५ ई०	२२१ वर्ष	
			अथवा	अथवा	
		,,	११४५ ई०	१७१ वर्ष	

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन के पश्चात् यही सार निकलता है कि कवि ने संवत् और तिथि का प्रयोग करने में वास्तविकता का ध्यान नहीं रक्खा है। प्रत्येक घटना के घटित होने से सैकड़ों वर्ष पूर्व के सन्-संवतों को मानकर मनगढ़ंत तिथियों का उसने प्रयोग कर दिया है। उसके द्वारा उपर्युक्त घटनावली संबंधी सारी तिथियाँ पूर्णरूप से काल्पनिक और ऐतिहासिक प्रमाणों से रहित हैं। अतः उनका कोई भी ऐतिहासिक मूल्य नहीं है।

अग्नि-कुलोत्पत्ति

जोधराज ने चौहान, चालुक्य (सोलंकी), प्रतिहार और प्रमार राजपूतों की अग्नि-कुल से उत्पत्ति का उल्लेख किया है।[1] इनके इस कथन की वास्तविकता की परीक्षा नीचे की जा रही है :—

"अर्बुदगिरि पर वशिष्ठ जी के यज्ञ-कुंड से चौहान, चालुक्य (सोलंकी) प्रतिहार और प्रमार राजपूतों के मूल पुरुषों की उत्पत्ति का उल्लेख हिन्दी के प्राप्य ग्रन्थों में सर्व-प्रथम पृथ्वीराजरासो में मिलता है। इसी ग्रंथ का आश्रय लेकर यह मत प्रचारित हुआ। 'पृथ्वीराजरासो' विद्वानों के लिए अभी तक एक समस्या बना हुआ है। श्री ओझा जी के मतानुसार यह जाली ग्रंथ विक्रमी संवत् की सोलहवीं शताब्दी के पूर्व का रचना नहीं है।[2] इस ग्रन्थ के निर्माण से पूर्व उक्त क्षत्रिय वंश 'अग्नि-कुल' नाम से विख्यात नहीं थे, जैसा कि नीचे के विवरण से स्पष्ट है :—

चौहान—पृथ्वीराज चौहान के राज-कवि पंडित जयानक ने पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य[3] में अनेक स्थलों पर चौहानों को सूर्य-वंशी बतलाया है, यथा :—

काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत्पुराभवत्त्रि प्रवरंरघोः कुलम्।
कला वपि प्राप्य सचाहमानतां प्ररूढ़तुर्य प्रवरं बभूव तत् ॥२॥७१॥
.........................भानोः प्रतापोन्नति।
तन्वन्गोत्र गुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥७॥५०॥
सुतोप्य परगांगेयो निन्येस्य रविसूनुना।
उन्नति रवि वंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता ॥८॥५४॥

---

[1] हम्मीररासो, छं० ४५-७०, पृ० ६ १४ [2] राजपूताने का इतिहास, भा० १, पृ० ७२
[3] वही, पृ० ७३; सारडा; पृथ्वीराज विजय, पृ० ७

अर्थात् जिस प्राचीन रघु के श्रेष्ठ काकुत्स्थ कुल ने इक्ष्वाकु और रघु को धारण किया अर्थात् जो काकुत्स्थ कुल इक्ष्वाकु और रघुकुल के नाम से प्राचीन काल में चला, वही कुल कलियुग में चाहमान को प्राप्त करके अपने चौथे प्रवर में आया अर्थात् उसी का चौथा नाम कलियुग में चाहमान से उत्पन्न हुआ ॥२॥७१॥

...अपने वंश-गुरु सूर्य के प्रताप की उन्नति का विस्तार करते हुए राजा का पुत्र जन्मा। ७ : ५० :

इसका पुत्र भी दूसरे भीष्म के समान हुआ जिसने कि सूर्यपुत्र-पृथ्वीराज के देखते-देखते सूर्यवंश को उन्नत किया। ८ : ५४ :

पृथ्वीराज के पूर्वज विग्रहराज (बीसलदेव चौथा) ने अजमेर में सरस्वती-मन्दिर की स्थापना करके, स्वरचित 'हरिकेलि नाटक' तथा अपने राजकवि सोमेश्वर कृत 'ललित-विग्रहराज नाटक' को शिलाओं पर खुदवाकर उसमें रखवाया था। वहाँ से प्राप्त एक बड़ी शिला पर किसी अज्ञात कवि के बनाये हुए चौहानों के इतिहास के किसी काव्य का प्रारम्भिक अंश खुदा है। इसमें भी चौहानों को सूर्य-वंशी ही लिखा है।"[1]

हर्ष के शिलालेख में चाहमानों को गूयक का वंशधर माना है। इस शिलालेख से विदित होता है कि दसवीं शताब्दी ई० में चौहान अपने को सूर्य-वंशीय मानते थे। यथा :—

"तन्मुक्त्यर्थ-मुपागता रघुकुले भू चक्रवर्ती स्वयं।"[2]

"अर्थात् उसकी मुक्ति के लिए रघुवंशीय चक्रवर्ती राजा स्वयं आया।"

१४वीं शताब्दी की रचना हम्मीर-महाकाव्य में भी चौहानों को सूर्य-वंशीय माना है।"[3]

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि संवत् ८१३ वि०(७५६ ई०) से पृथ्वीराजरासो की रचना के समय १६वीं शताब्दी (१५४३ ई०) तक चौहान अपने को अग्निवंशीय नहीं वरन् सूर्यवंशीय मानते थे।

चालुक्य वंश—"शक संवत् ५०० (वि० सं० ६३५=ई० स० ५७८) से लगाकर वि० सं० की १६ वीं शताब्दी तक सोलंकियों के अनेक दानपत्र, शिलालेख एवं ऐतिहासिक संस्कृत-ग्रंथ मिले हैं, जिनमें कहीं भी उनका अग्निवंशीय होना नहीं लिखा है, किन्तु स्थल-स्थल पर उन्हें चन्द्र-वंशीय और पांडवों की सन्तान बतलाया गया है।"[4]

प्रतिहार—"वि० संवत् ८७२ (ई० ८१५) से लगाकर वि० संवत् की १४ शताब्दी के पीछे के प्रतिहारों (पड़िहारों) के जितने शिलालेख, दानपत्रादि मिले हैं उनमें कहीं भी उनका अग्निवंशीय होना नहीं माना है। वि० संवत् ६०० (ई० सन् ८४३) के आसपास की ग्वालियर से मिली हुई प्रतिहार राजा भोजदेव की बड़ी प्रशस्ति में प्रतिहारों को सूर्यवंशी बतलाया है। ऐसे ही वि० सं० की दशवीं शताब्दी के मध्य में होनेवाले प्रसिद्ध राजशेखर ने अपने नाटकों में अपने शिष्य महेन्द्रपाल (निर्भय नरेन्द्र) को, जो उक्त भोजराज का पुत्र था 'रघुकुल-तिलक' (रघुकुल-तिलको महेन्द्रपालः) कहा है।"[5]

परमार (प्रमार)—"मालवे के परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघवर्ष) के समय अर्थात्

---

[1] राजपूताने का इतिहास, भा० १, पृ० ७३ [2] हिस्ट्री ऑव् मेडिविअल हिन्दू इंडिया, भा० २, पृ० १३-१४, ६७ [3] सर्ग १, श्लोक १४-८ [4] राजपूताने का इतिहास, भा० १, पृ० ७४ [5] वही, पृ० वही

वि० सं० १०२८ से १०५४ (ई० सन् ९७१ से ९९७) के आस-पास होने वाले उसके दरबार के पंडित हलायुध ने 'पिंगल सूत्र वृत्ति' में मुंज को 'ब्रह्मक्षत्र कुल' कहा है। ब्रह्मक्षत्र शब्द का प्रयोग प्राचीन काल में उन राजवंशों के लिए होता रहा है, जिनमें ब्रह्मत्व और क्षत्रित्व दोनों गुण विद्यमान हों या जिनके वंशज क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए हों। मुंज के समय के पीछे के शिलालेखों तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में परमारों के मूल पुरुष का आबू पर वशिष्ठ के अग्नि-कुंड से उत्पन्न होना अवश्य मिलता है, परन्तु यह कल्पना भी इतिहास के अन्धकार में पीछे से की हुई प्रतीत होती है। परमारों के शिलालेखों में उक्त वंश के मूल पुरुष का नाम धूमराज मिलता है। धूम अर्थात् धुँआँ अग्नि से उत्पन्न होता है, शायद इसी पर परमारों के मूल पुरुष का अग्नि-कुंड से निकलना और उसके अग्नि-वंशी कहलाने की कथा पीछे से प्रसिद्ध हो गई हो तो आश्चर्य नहीं।

सारांश यह है कि चौहान, सोलंकी और प्रतिहार विक्रम की १७वीं शताब्दी तक अपने को अग्नि-वंशी मानते ही नहीं थे और राजा मुंज के समय तक परमार भी ब्रह्म-क्षत्र कहे जाते थे, न कि अग्नि-वंशीय।"[1]

अतएव, ऐसा प्रतीत होता है कि जोधराज ने उक्त राजवंशों को अग्नि-कुलोत्पन्न मानने में पृथ्वीराजरासो का अनुकरण किया है। उसका यह कार्य इतिहास के प्रतिकूल है। सच बात तो यह है, कि ये चारों राजपूत वंश प्राचीन क्षत्रिय जाति के ही वंशधर हैं।

पात्रों की ऐतिहासिकता

हम्मीररासो में बहुत से पात्रों के उल्लेख मिलते हैं। यहाँ पर केवल उन्हीं पात्रों के विषय में संक्षिप्त विवेचन किया जारहा है, जो ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं। पौराणिक एवं काल्पनिक पात्रों को छोड़ दिया गया है।

निश्चित पात्र

हिन्दू पात्र—चाहमान—चाहमान की उत्पत्ति सूर्य-वंश में मानकर इन्हें चौहान वंश का प्रवर्त्तक बतलाया गया है।[2] इनके जन्म के संबंध में जोधराज का मत निराधार है। चाहमान को एक दम काल्पनिक व्यक्ति नहीं माना जा सकता। पर्याप्त सामग्री के अभाव में इनका अधिक विवरण देना दुष्कर है।

जैत्रसिंह—"११९३ ई० के उपरान्त पृथ्वीराज चौहान के पुत्र गोविन्दराय रणथंभौर में जाकर राज्य करने लगे। उनके पश्चात् बाल्हणदेव, प्रह्लाददेव, वीरनारायण, वाग्भट (ब्रह्लाददेव) तथा राव जैत्रसिंह क्रमशः शासक हुए।"[3] वि० सं० १३४५ (१२८८ ई०) के कवाल जी के कुंड (कोटा राज्य के शिलालेख) के अनुसार जैत्रसिंह ने मंडल (मांडू) के जयसिंह को बार बार सताया। मालवे के उस राजा के सैकड़ों योद्धाओं को झंपाइथाघट्ट (झपायता के घाटे) में हराया और उनको रणस्तंभपुर (रणथंभौर) में बन्दी रक्खा।[4] इन्होंने संवत् १३३९ वि० (१२८१-१२८२ ई०)

---

[1] राजपूताने का इतिहास, भा० १, पृ० ७९-६ [2] पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य, सर्ग २ श्लो० ४४-५; हम्मीर महाकाव्य, सर्ग १, श्लो० १४-२९ [3] हम्मीर ऑव् रणथम्भौर, पृ० २-६; भारत के प्राचीन राजवंश, भा०१, पृ० २६३-८ [4] राजपूताने का इतिहास, भा०१, पृ०२२७

अथवा १३४२ विक्रमी (१२८४ ई०) में वाणप्रस्थ लेकर अपने पुत्र हम्मीर का राज्याभिषेक कर दिया।[1]

अत: जोधराज द्वारा इनका जो विवरण दिया गया है, वह भ्रमात्मक है।

हम्मीर—यह जैत्रसिंह के पुत्र तथा रणथंभौर के प्रसिद्ध शासक थे। यही हम्मीररासो के नायक हैं, जिनके साथ अलाउद्दीन का युद्ध हुआ था।[2]

रत्न—जोधराज ने हम्मीर के पुत्र का नाम 'रत्न' बतलाया है, जो चित्तौड़ का शासक था। पर उस समय चित्तौड़ में सीसोदियों का राज्य था, न कि चौहानों का। जोधराज ने यह कोरी कल्पना की है। विश्वेश्वरनाथ रेउ ने हम्मीर के उत्तराधिकारी का नाम 'रामदेव' माना है।[3] इस संबंध में निश्चित मत निर्धारित करना कठिन है।

रणधीर—जोधराज ने हम्मीर के काका रणधीर का उल्लेख किया है, जो छाड़गढ़ के शासक थे। जयसिंह सूरि[4] ने अपने ग्रंथ में रणमल्ल नामक एक सेनापति का नाम दिया है, जो हम्मीर के साथ विश्वासघात करके अलाउद्दीन से जा मिला था। संभव है, नाम साम्य का आश्र लेकर हम्मीररासो के रचयिता ने रणधीर नाम दिया हो। पर दोनों—रणधीर और रणमल्ल-के चरित्रों में विषमता है। अतएव उपर्युक्त संभावना को अधिक महत्व नहीं प्रदान किया जा सकता। पर इस नाम को काल्पनिक भी नहीं माना जा सकता।

भोज—जोधराज के अनुसार यह भील सरदार वीरतापूर्वक युद्ध करके हम्मीर की ओर से मारा गया। हम्मीर महाकाव्य[5] में भोज नामक व्यक्ति हम्मीर का भाई, खड्ग-ग्राही तथा दंड-नायक माना गया है। अन्त में वह देशद्रोही बनकर अलाउद्दीन से मिल गया था। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि भोज नाम का कोई प्रधान व्यक्ति हम्मीर के दरबार में अवश्य रहा था।

साह सुरजन—(शाह सुर्जन) ऐसा विदित होता है कि अकबर के समकालीन रणथंभौर-दुर्गाध्यक्ष, बूँदी के हाड़ा राव सुर्जन, को भ्रमवश हम्मीर का समकालीन मानकर जोधराज ने अपने काव्य में इस नाम का उल्लेख किया है। इन्हीं के नाम पर इनके राजकवि चन्द्रशेखर वैद्य ने संस्कृत में 'सुर्जन-चरित्र' की रचना की थी।[6] सुर्जन के इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति होने में कोई सन्देह नहीं है, पर कवि जोधराज ने प्रमादवश उन्हें हम्मीर का समकालीन मान लिया है।

माणिक्वराव—सुर्जन-चरित्र[7] के अनुसार माणिक्यराज सोमेश्वर का पुत्र और पृथ्वीराज का भाई था। हर्ष-शिलालेख, बिजौलियन-शिलालेख, पृथ्वीराज-विजय, प्रबन्धकोष तथा हम्मीर महाकाव्य के आधार पर दिए हुए चौहान-वंश वृक्षों में इस नाम का उल्लेख नहीं है।[8]

अन्य पात्र—हम्मीररासो में प्रसंगवशात् जगदेव, वीसलदेव (वीसलह), सोमेश्वर, पृथ्वीराज आदि चौहान सम्राटों[9] तथा जगदेव प्रमार, भोज, विक्रम, आदि अन्य ख्याति-लब्ध एवं इतिहास प्रसिद्ध वीरों का उल्लेख किया गया है।

---

[1] हम्मीर महाकाव्य, सर्ग ४, श्लो० १४१-२; भारत के प्राचीन राजवंश भा० १, पृ० २६६ [2] देखिए इसी अध्याय में आगे युद्ध-वर्णन [3] भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १, पृ० २७८ [4] हम्मीर महाकाव्य, सर्ग १०, श्लो० ३६; सर्ग १३, श्लो० १३०-४ [5] सर्ग ६, श्लो० ८, १० [6] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० १५, १६६१ वि०, पृ० १६५-७; सारडा, पृथ्वीराज विजय, पृ० ६, पादटिप्पणी १ [7] वही, पृ० १५ [8] वही, पृ० १४-१५ [9] वही, पृ० वहीं

स्त्री-पात्र—आसा (आशा)—जोधराज की सम्मति में हम्मीर की रानी का नाम 'आशा' था। हम्मीर-काव्य[१] में सात रानियों के साथ उसके विवाह होने का उल्लेख किया गया है। सारडा[२] ने इनकी पत्नी का नाम रंगादेवी माना है।

देवलकुँवरि—जोधराज ने हम्मीर की राजकुमारी का नाम देवलदेवी माना है। हम्मीर महाकाव्य[३] में भी इसी नाम का उल्लेख किया गया है।

मुसलमान पात्र मुहम्मद ग़ोरी (अलाउद्दीन का पिता)—जोधराज के मतानुसार ग़ज़नी के शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी के घर अलाउद्दीन अवतीर्ण हुआ था; पर इतिहास से विदित है कि शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी की मृत्यु १२०६ ई०में हुई थी और इसके ६१ वर्ष पश्चात् अलाउद्दीन का जन्म हुआ था। वास्तव में अलाउद्दीन के पिता का नाम शहाबुद्दीन मसऊद ख़िलजी था। वह अपने भ्राता जलालउद्दीन के साथ बलबन (१२६८–८८ ई०) के यहाँ नौकरी करता था।[४]

संभवतः अलाउद्दीन के पिता के नाम के पूर्वार्द्ध 'शहाबुद्दीन' के कारण जोधराज ने उक्त भूल कर दी है। ख़िलजी और गौर दोनों ही अफ़ग़ान वंश के थे। हो सकता है कि इन दोनों के मिलाने के प्रयत्न में भी कवि ने अलाउद्दीन के पिता के नाम के संबंध में यह भूल कर दी हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

अलाउद्दीन—इतिहास प्रसिद्ध यह सुलतान दिल्ली का शासक था।[५]

अलावृत्त—जोधराज ने अलाउद्दीन के शाहज़ादे का नाम 'अलावृत्त' दिया है, जो असत्य है। सुल्तान अलाउद्दीन के चार शाहज़ादे थे जिनके नाम हैं—ख़िज्र ख़ाँ, शादी, शहाब और क़ुतुबुद्दीन।[६] न उसके अलावृत्त नाम का कोई पुत्र था और न कभी इस नाम का कोई सुलतीन ही दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

महरम ख़ाँ—हम्मीररासो में अलाउद्दीन के मन्त्री का नाम 'महरम खाँ' बतलाया गया है। इतिहास में उसके चार मन्त्रियों का उल्लेख आया है। अलाउद्दीन के राज्याभिषेक के अवसर पर ख्वाजा ख़ातिर उसका मन्त्री था। उसके पश्चात् नुसरत ख़ाँ इस पद पर १२९७ ई० से १३०० ई० तक रहा। उसके उपरान्त सैय्यद ख़ाँ तथा ताजुद्दीन काफ़ूर हज़ार दीनारी क्रमशः मन्त्री बने।[७] अतएव कवि द्वारा दिया हुआ उक्त नाम असत्य है।

मीर महिमा—इतिहास में इस नाम के किसी भी अमीर का उल्लेख नहीं मिलता है। संभवतः कवि ने मुहम्मद शाह नामक विद्रोही नौ-मुस्लिम सरदार के लिए, जिसने हम्मीर के यहाँ जाकर शरण ली थी[८] मीर महिमा शब्द का प्रयोग किया है।

गभरू—संभवतः काभरू (कबरू) नामक सरदार के लिए यह नाम प्रयुक्त किया गया है।[९] मुहम्मद शाह और काभरू दोनों ही हम्मीर की ओर से लड़े थे।[१०] कवि का यह कहना कि गभरू अलाउद्दीन की ओर से युद्ध में सम्मिलित हुआ था, असत्य है।

---

[१] पृथ्वीराज विजय, सर्ग ४, श्लो० १४३ [२] हम्मीर ऑव् रणथंभौर, पृ० ४४ [३] सर्ग १३, श्लो० १०६ [४] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ०१ (पाद-टिप्पणी १ सहित) [५] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा०३, पृ० ९३-११९ [६] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० २३४ (पाद-टिप्पणी) [७] वही, पृ० १७१ [८] फ़तूह-उल्-सलातीन, पृ० २४५ [९] वही, पृ० वही [१०] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ६५

अनिश्चित-पात्र—निम्नलिखित पात्रों की ऐतिहासिकता के संबंध में, प्रर्याप्त सामग्री के अभाव में, निश्चयात्मक निर्णय करना कठिन है :—

हिंदू-पात्र : पुरुष-पात्र—अभयसिंह, अजमत्त चहूवान (अजमत चौहान), कन्ह, बल्हन (बाल्हन), रेणुकुमार, चतुरंग, संखोदर, हरीसिंह बघेल।

स्त्री-पात्र—चन्द्रकला, सुंदरी कुँवरि।

मुसलमान-पात्र—पुरुष-पात्र—अली सैय्यद, अलीशेर, अलीखान, अजमत, अबदुलमीर, जमाल खाँ, जैनसाह सिकन्दर, निजामदीन, नूर मीर अफर्रस, बादित खाँ, मीर सिकन्दर, गौरीशाह मुहम्मद अली, मोहोबत मुदफ़्फ़र, हसन हुसेन, हिम्मति (हिम्मति बहादुरअली ??)।

स्त्री-पात्र—चिमना बेग़म, रूप-विचित्रा।

युद्ध-वर्णन

हम्मीर और अलाउद्दीन में बैर के कारण—जोधराज के मतानुसार 'रूप-विचित्रा' पर आसक्त होने के कारण मीर महिमा को अलाउद्दीन ने दिल्ली से निकाल दिया। उसने रणथंभौर के राव हम्मीर के पास जाकर शरण ली। इसी से कुपित हो दिल्ली सम्राट् ने रणथंभौर पर आक्रमण किया।[1]

इस भयंकर युद्ध के उक्त कारण की कल्पना में कवि ने परंपरा का अनुसरण किया है। पृथ्वीराजरासो की 'हुसेन-कथा'[2] से प्रभावित होकर इसने इस घटना का उल्लेख किया हो, तो आश्चर्य नहीं। किसी प्राप्त प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ अथवा शिलालेख में इस कथानक का उल्लेख नहीं है। हम्मीर महाकाव्य भी इस संबंध में मौन है। उसमें युद्ध का यह कारण दिया है :—

"जैत्रसिंह हम लोगों (अलाउद्दीन आदि) को कर देता था, पर यह उसका बेटा हम्मीर न कि, केवल कर ही नहीं देता वरन् हम लोगों के प्रति अपनी घृणा दिखाने के लिए प्रत्येक अवसर ताकता रहता है।"[3] इसके अतिरिक्त उसमें हम्मीर के दरबार में चार मुग़लों का वर्त्तमानत्व भी युद्ध का कारण माना गया है।[4]

फ़ारसी इतिहास में इस युद्ध के कारणों के संबंध में यह लिखा है :—

"गुजरात विजय (१२९७ ई०) के पश्चात् उलग़ खाँ और नुसरत खाँ देहली के लिए चल पड़े। जालौर में लूट की सामग्री का विभाजन किया गया। सैनिकों ने सामान को छिपाने का प्रयत्न किया। इस पर सेनापतियों ने कठोरता-पूर्वक व्यवहार किया। सैनिकों में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। उन्होंने नुसरत खाँ के भाई मलिक ऐज़ुद्दीन तथा उलग़ खाँ के धोखे में, सुलतान के भांजे को मार डाला। उलग़ खाँ और नुसरत खाँ ने विद्रोह शान्त कर लिया। विद्रोही भाग गए। मुहम्मद शाह और काभरू (कबरू) ने रणथंभौर के राणा हम्मीर के यहाँ तथा यलहक़ एवं बुर्राक़ ने देव-गिरि के रामदेव के अतिथि, गुजरात के निर्वासित राय कर्ण के पास नन्दुरुवार में जाकर शरण ली।[5]

---

[1] हम्मीररासो, छं० १८८-२७०, पृ० ३९-७६ [2] पृथ्वीराजरासो-सार, पृ० ३९-४३ [3] हम्मीर महाकाव्य, सर्ग ९, श्लो० १०२-५९ [4] वही, सर्ग १०, श्लो० ७४ [5] अलाउद्दीन मुहम्मद खि़लजी, पृ० ४९-५०; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ३, पृ० १०१

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि जालौर में सेना ने विद्रोह किया था तथा मुहम्मद शाह एवं काभरू ने हम्मीर देव के यहाँ जाकर शरण ली थी। कोई भी तत्कालीन इतिहास लेखक इस घटना को रणथंभौर पर आक्रमण करने का कारण नहीं बतलाता, परन्तु उत्तरकालीन इतिहासकारों द्वारा अनुमोदित अप्रत्यक्ष साक्ष्य से इनकी पुष्टि होती है।[1] इसॉमी के अनुसार "यह ज्ञात होने पर कि रणथंभौर के चौहान राणा के यहाँ मुग़ल शरणार्थी ठहरे हुए हैं उलग़खाँ ने सुल्तान के नाम से यह सन्देश भेजा कि यदि राय उन शरणार्थियों को मरवा दें अथवा उसके पास भेज दें तो सुल्तानी सेनायें देहली को लौट जायेंगीं। राणा को इस बात के लिए भी सावधान कर दिया गया था कि जब शरणार्थी, जिनको सुल्तान ने जीवन और सम्मान दिया, उसके प्रति स्वामि-भक्त न रह सके तो भला वे राणा के साथ कैसे सत्य व्यवहार रख सकेंगे। इस राजाज्ञा के विरुद्ध कार्य करने के दुष्परिणामों को सहने के लिए प्रस्तुत रहने की चेतावनी भी राव को दी गई थी।"[2]

इस घटना के पचास वर्ष के उपरान्त इसॉमी ने अपने ग्रंथ की रचना की (रचना-काल १३४६-५० ई०)। इससे और इसके पश्चात् की रचना 'हम्मीर महाकाव्य' से विदित है कि हम्मीर ने विद्रोहियों को आश्रय दिया था। मुहम्मद शाह और मीर काभरु (कबरू) ही 'हम्मीर महाकाव्य' एवं 'हम्मीररासो' के मीर महिमा शाह तथा मीर गभरु प्रतीत होते हैं। फ़ारसी इतिहासों एवं हम्मीर-महाकाव्य के अनुसार जालौर से भागकर उन्होंने रणथंभौर में आश्रय प्राप्त किया था। जोधराज के विचार में दिल्ली से निर्वासित होकर केवल मीर महिमा हम्मीर के दरबार में पहुँचा था और उसका भाई मीर गभरु अलाउद्दीन की सेवा ही में रह गया था। इस अन्तर का कारण 'हुसेन-कथा, का कवि पर प्रभाव और काव्य में शृंगार का समावेश करने की भावना से प्रेरित होना ही, प्रतीत होता है।

यद्यपि अलाउद्दीन ने विद्रोहियों के हम्मीर की शरण में चले जाने के कारण से रणथंभौर पर आक्रमण किया था, पर इसके अन्य कारण भी थे। दिल्ली के निकटस्थ एक शक्तिशाली हिन्दू-राज्य को अलाउद्दीन अपनी सत्ता के लिए भयप्रद समझता था। इसके अतिरिक्त जलालउद्दीन खिलजी की रणथंभौर पर पराजय से मुसलमानी प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा था। इन्हीं कारणों से अलाउद्दीन ने रणथंभौर पर आक्रमण किया था। जोधराज द्वारा दिए हुए कारणों में से केवल इतना ही अंश सत्य है कि मीर महिमा हम्मीर की शरण में गया था और उसकी रक्षा करने के लिए हम्मीर ने युद्ध किया था।

आक्रमण—जोधराज[3] के मतानुसार अलाउद्दीन स्वयं ससैन्य रणथंभौर की ओर चला, पर हम्मीर-महाकाव्य के मत में सर्वप्रथम उसके सेनापति उलग़ खाँ ने आक्रमण किया और वह स्वयं पीछे से गया।[4] बरनी का कथन है कि खिलजी सुल्तान ने उलग़ खाँ को उसके विरुद्ध चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इस सेवा के उपलक्ष्य में उसे बयाना का प्रान्त दिया गया। कड़ा का प्रान्त प्राप्त करके और सेना लेकर नुसरत खाँ भी उलग़ खाँ की सहायता के लिए जा पहुँचा।[5]

---

[1] अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी, पृ० ६५ [2] वहीं, पृ० ६६ [3] हम्मीररासो, छं० ३७१-८५, पृ० ७६-८ [4] सर्ग ६, श्लो० १०६; सर्ग ११, श्लो० ७, ८ [5] अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी, पृ० ६६

मुसलमानी सेना 'मलहारणों गढ़' को विजय करती हुई 'बनास' नदी के किनारे पर पहुँची जहाँ पर राजपूतों ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की, पर वे पराजित हुए। हम्मीररासो में उल्लिखित इस 'मलहारणों गढ़' स्थान की स्थिति का बतलाना कठिन है। पर इतना निश्चित है कि दिल्ली से रणथंभौर तक पहुँचने में मुसलमानों को मार्ग में अनेक स्थानों पर युद्ध करना पड़ा होगा। उन्हीं स्थानों में से किसी एक का उक्त नाम भी रहा होगा।

सरकार ने 'फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर' में रणथंभौर दुर्ग से १८ मील उत्तर में अवस्थित मलारना (Malarna) नगर का उल्लेख किया है। संभव है जोधराज द्वारा उल्लिखित 'मलहारणों गढ़' यही नगर हो।[1]

बनास (वर्णनाशा) नदी के युद्ध का उल्लेख करते हुए हम्मीर-महाकाव्यकार[2] ने लिखा है कि इस युद्ध में भीमसिंह मारा गया और विजयी उल्लू खाँ (उलग़ खाँ) दिल्ली को लौट गया। वह पुनः रणथंभौर पर चढ़ आया। जोधराज ने उक्त दोनों युद्धों का वर्णन, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, किया है। इन युद्धों के संबंध में फ़ारसी इतिहासकार मौन हैं। संभवतः अलाउद्दीन की पराजय ही उनके इस मौन का कारण है।

वहाँ से चलकर उलग़ खाँ एवं नुसरत खाँ ने झाँई पर अधिकार कर लिया और उसे अपना स्कंधावार बनाकर रणथंभौर का घेरा डाला।[3] इसॉमी के मतानुसार उलग़ खाँ ने 'झाँई' का 'शहर-इ-नौ' नाम रक्खा। बदायूँनी ने भी उसका समर्थन किया है। 'झाँई' अथवा 'शहर-इ-नौ' का अब पता नहीं चलता। परन्तु रणथंभौर से पूर्व में कुछ दूर पर 'नयगाँव' जिसका अर्थ 'शहर-इ-नौ' होता है, नामक एक स्थान अवस्थित है। संभवतः यही 'झाँई' नामक स्थान है।[4]

हम्मीररासो में प्रयुक्त 'छाड़गढ़' नामक स्थान की वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाना कठिन है। हो सकता है कि इस स्थान से कवि ने 'झाँई' की ही ओर संकेत किया हो। 'छाड़गढ़' पर पाँच वर्ष तक सेना पड़ी रहने और युद्ध होते रहने की ऊहात्मक उड़ान से यह ध्वनि निकलती है कि वह स्थान शाही सेना का पड़ाव-स्थान था। ऊपर कहा जा चुका है कि 'झाँई' अलाउद्दीन की सेना का स्कंधावार था। अतएव 'छाड़गढ़' और 'झाँई' एक ही स्थान की ओर संकेत करते हुए पाए जाते हैं। पर निश्चित मत निर्धारित करना दुष्कर कार्य है। यह भी सकता है कि वह कोई अन्य नगर रहा हो, जिसका पता लगना इस समय कठिन है।

"रणथंभौर में पहुँचकर उसके सेनापतियों ने सुरंगें एवं गरगच बनाने की आज्ञा दी। मुग्दर लगने से नुसरत खाँ के प्राण पखेरू उड़ गए। पराजित होकर उलग़ खाँ 'झाँई' की ओर लौट पड़ा। इस पराजय की सूचना पाकर सुलतान स्वयं दिल्ली से रणथंभौर की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने 'रण' नामक पहाड़ी पर डेरा डाला। 'रण' और 'मदन' पहाड़ियों के मध्य की घाटी को मुसलमानों ने घास-फूस आदि से भर दिया। राजपूतों ने अग्नि-वर्षा करके उसे भस्मसात् कर दिया। दोनों ओर हताहत की संख्या अपार थी।"[5]

---

[1] हम्मीररासो, छं० ३८६-४०५, पृ० ७१-८२; फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भा० ३, पृ० २०१ [2] सर्ग ६, श्लो० १४६-५० [3] हम्मीररासो, छं० ४०६, पृ० ८२-३ [4] अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी, पृ० ६६ (पाद-टिप्पणी २ सहित) [5] वही, पृ० ६६-७२

"यह युद्ध अधिक समय तक चलता रहा। नुसरत ख़ाँ जैसा सेनापति मारा गया, अलाउद्दीन के प्राण लेने का प्रयत्न किया गया, साम्राज्य में विद्रोह-ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी, अपार सैन्य-संहार हो रहा था तो भी सुलतान विचलित होने का नाम नहीं लेता था। कालान्तर में दुर्ग में खाद्य सामग्री का इतना अभाव हो गया कि स्वर्ण के दो दानों में चावल का केवल एक दाना मिलने लगा।"

युद्ध का अंत—खुसरो लिखता है कि "मनुष्य हर एक दुःख सह सकता है, पर क्षुधा पीड़ा उसके लिए असह्य है। अन्त में कष्ट, निराशा एवं भूख-पीड़ा से व्यथित होकर जौहर-कार्य किया गया। रानी रंगादेवी आदि महिलाओं ने अग्नि-प्रवेश किया। शेष शूर सामन्त सहित वीर हम्मीर केसरिया वस्त्र धारण करके युद्धार्थ निकल पड़े। मुहम्मद शाह तथा काभरू अन्त तक वीरतापूर्वक युद्ध करते रहे, इसाँमी का कथन है कि राणा के परिवार का कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं पकड़ा गया। शिवपुर प्रान्त के गढ़ला स्थान के स्मारक (मैमोरियल टेबलिट) से भी हम्मीर के १३०१ ई० में मारे जाने की पुष्टि होती है।"[१]

उपर्युक्त विवरण के अनुसार खाद्य सामग्री के अभाव में जौहर-प्रथा का अनुसरण किया गया। जोधराज ने भी जौरा-भौरा कोठों की सामग्री-समाप्ति की ओर संकेत किया है।[२] जोधराज ने अपने नायक के शौर्य को द्विगुणित करने ही के लिए हम्मीर की विजय, उनके द्वारा पकड़कर अलाउद्दीन को मुक्त करने तथा अन्त में शिव जी को शिर समर्पित करने की कल्पना कर ली है। अलाउद्दीन को बन्दी बनाकर छोड़ने की घटना का आधार पृथ्वीराजरासो में वर्णित पृथ्वीराज द्वारा गौरी को पकड़कर मुक्त कर देनेवाला कथन भी हो सकता है।

सुर्जन का विश्वासघात

"राणा हम्मीर के दो मन्त्रियों रणमल और रतनपाल के देशद्रोह के कारण रणथंभौर का पतन हुआ इस बात की पुष्टि हाजीउद्दवीर और फ़रिश्ता दोनों ही करते हैं। हाजीउद्दवीर कहता है कि रणमल अलाउद्दीन के साथ सन्धि नियम निश्चित करने के लिए भेजा गया था। वह सुलतान की ओर मिल जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। उसने एक लिखित प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिया और रतनपाल आदि के साथ दुर्ग छोड़कर शाही सेना में सम्मिलित हो गया। फ़रिश्ता लिखता है कि दुर्ग पर अधिकार हो जाने के उपरान्त अलाउद्दीन ने देशद्रोही एवं कृतघ्न राजपूत रणमल एवं उसके अन्य साथियों को प्राणदंड दिया।"[३]

जोधराज ने विश्वासघातक का नाम राव सुर्जनसिंह माना है, जो अनैतिहासिक है।[४] इस घटना के वास्तविक पात्रों के नामों से यह कवि अनभिज्ञ था, यह बात उक्त उदाहरण से स्पष्ट है।

"रणथंभौर निरंकुशतापूर्वक लूटा गया। 'हरदेव' का देवालय आदि मन्दिर पृथ्वी पर गिरा दिये गये। मकान नष्ट किये गये। 'कुफ़्र-केन्द्र' इस्लाम का आवास हो गया। उलग़ खाँ को झाँई तथा रणथंभौर का शासक नियुक्त करके अलाउद्दीन दिल्ली को लौट गया।"[५]

---

[१] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ७६-८ (पाद-टिप्पणी २ सहित) [२] हम्मीररासो, छं० ६५०-७, पृ० १३२-३ [३] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ७७-८ [४] हम्मीररासो, छं ६४७-५५, पृ० १३१-३ [५] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ७६; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ३, पृ० ५१६-७

"निज़ामुद्दीन और फ़रिश्ता ने एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि युद्ध-भूमि में घायल पड़े हुए मुहम्मद शाह को देखकर अलाउद्दीन को दया आई। उसने मीर से पूछा कि 'यदि घावों की चिकित्सा करके मृत्यु से बचा दिया जाये तो वह उसके साथ कैसा व्यवहार करेगा। उसने तिरस्कारपूर्वक निर्भीकता से उत्तर दिया कि वह सुलतान को मारकर हम्मीर-पुत्र को सिंहासनारूढ़ करायेगा।' इस पर क्रोधोन्मत्त सुलतान ने उसे गज-पद से कुचलवा दिया। अंत में उसने उसका वीरोचित अन्त्येष्ठ-संस्कार कराया।"[1]

संभवतः उक्त घटना की ओर संकेत करते हुए जोधराज ने अलाउद्दीन द्वारा मीर महिमा को गोरखपुर का परगना देकर अपनी ओर फोड़ लेने के लिए विफल प्रयत्न का वर्णन किया है।[2]

अलाउद्दीन की मृत्यु—अलाउद्दीन का रामेश्वर में जाकर प्राण-विसर्जन करना भी जोधराज के मस्तिष्क की निराधार उपज है।[3] अलाउद्दीन जैसे कट्टर मुसलमान द्वारा रामेश्वर में जाकर अर्चना करना साधारण समझ से बाहर की बात है। इसके अतिरिक्त "सन् १२९५ ई० में देवगिरि-विजय के पश्चात् अलाउद्दीन फिर कभी दक्षिण को नहीं गया और १३०३ ई० के उपरान्त तो वह दिल्ली को भी नहीं छोड़ सका था। पर उसके योग्य सेनापति विजय कार्य करते रहे थे। सन् १३०८ से १३१२ ई० तक मलिक काफ़ूर दक्षिण के विविध स्थानों की विजय करता रहा था। वह २५ फ़रवरी, १३११ ई० को द्वारसमुद्र तक पहुँचा था।"[4]

संभव है कि अलाउद्दीन के सैनिकों के द्वारसमुद्र तक पहुँचने की इसी घटना से प्रेरित होकर प्रमादवश जोधराज ने उपर्युक्त अनर्गल एवं भ्रमात्मक वर्णन कर दिया हो।

चन्द्रकला-नृत्य—कवि जोधराज द्वारा वर्णित चन्द्रकला नर्त्तकी-नृत्य का वर्णन हम्मीर-महाकाव्य में भी आया है। इस काव्य[5] के अनुसार उड्डानसिंह नामक व्यक्ति ने बाण द्वारा राधा नामक वेश्या को मारकर दुर्ग के नीचे उपत्यका में गिरा दिया था और मीर महिमा ने उस उड्डानसिंह को लक्ष्य करके काल कवलित कर दिया था। जोधराज[6] ने मीर गभरू (कबरू) के बाण से नर्त्तकी का घायल होकर गिरना तथा मीर महिमा के बाण से अलाउद्दीन के मुकुट गिराने की बात कही है। इन पर तुलसी कृत रामचरित मानस[7] में वर्णित राम द्वारा मन्दोदरी के ताटंक गिराने और अंगद द्वारा रावण के मुकुट फेंकने की घटनाओं का प्रभाव पड़ा हो, तो आश्चर्य नहीं है।

सेनायें

राव हम्मीर की सेना—जोधराज ने राव हम्मीर की सेना की संख्या का दो बार उल्लेख किया है। सर्व प्रथम, रणथंभौर का विवरण अलाउद्दीन को देते समय दूत ने हम्मीर की सेना की संख्या सत्तर सहस्र तुरंगम, दो लाख पैदल तथा पाँच सौ हाथी बतलाई है।[8] दूसरे, जब हम्मीर ने युद्ध

---

[1] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ७८ [2] हम्मीररासो, छं० ८३०, पृ० १६१ [3] हम्मीररासो, छं० ९९५-९, पृ० १८६-७ [4] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० १४७, १५०, ३४४-५ [5] हम्मीर महाकाव्य, सर्ग १३, श्लो० २१-३२ [6] हम्मीररासो, छं० ६२२-४५, पृ० १२६-३१ [7] डा० माताप्रसाद गुप्त, श्री रामचरितमानस, लंकाकांड, पृ० ४०६-१०, ४२१ [8] हम्मीररासो, छं० ३३३, पृ० ६७-८

के लिए प्रस्थान किया है तब उसके साथ अस्सी सहस्र सेना थी।[1] इसके अतिरिक्त राव रणधीर के साथ में इकतीस सहस्र घोड़े, अस्सी गजराज तथा दश सहस्र वीर थे।[2] साथ ही चित्तौड़ के कुमार सोलह सहस्र सेना लेकर इनकी सहायता करने आए थे।[3]

राव हम्मीर की ओर के युद्ध-स्थल में मरने वालों की संख्या कवि ने अपेक्षाकृत कम मानी है। बनास युद्ध में एक सौ पच्चीस,[4] चित्तौड़ कुमार के साथ सोलह सहस्र,[5] और रणधीर के साथ तीस सहस्र[6] वीर हम्मीर की ओर से काम आए थे।

और भी ऐसे प्रसंग हैं, जहाँ पर जोधराज ने हम्मीर की ओर के सेनापतियों की सेना तथा युद्ध में हताहत सैनिकों की संख्या का उल्लेख किया है। पर उपर्युक्त कतिपय विवरणों से स्पष्ट हो गया होगा कि कवि ने सेना की संख्या निर्धारित करने में कल्पना से अधिक काम लिया है।

"यहिया ने राव हम्मीर की सेना की संख्या बारह सहस्र अश्वारोही और अमीर ख़ुसरो ने दश सहस्र द्रुतगामी सवार मानी है।"[7] "हाजीउद्दवीर ने मुहम्मदशाह के साथ तीन सहस्र सैनिकों का उल्लेख किया है।"[8] पीछे बतलाया जा चुका है कि मुहम्मद शाह ही हम्मीररासो का मीर महिमा प्रतीत होता है।[9] अतएव उसकी सेना को भी सम्मिलित कर लेने पर हम्मीर की सेना की संख्या पन्द्रह सहस्र अथवा तेरह सहस्र रही होगी। इस संख्या से तुलना करने पर हम्मीररासो में कथित हम्मीर सेना के आँकड़े अतिशयोक्तिपूर्ण ठहरते हैं। अतएव उसका राव हम्मीर की सेना संबंधी कथन विश्वस्त नहीं माना जा सकता।

अलाउद्दीन की सेना—जोधराज के मतानुसार अलाउद्दीन ने पैंतालीस लाख सेना के साथ रणथंभौर पर आक्रमण किया था।[10] हम्मीररासो में अलाउद्दीन की ओर के मृतकों की संख्या भी अत्युक्तिपूर्ण है। कुछ उदाहरण देखिए। जोधराज ने सुलतान की सेना के बनास-युद्ध में तीस सहस्र,[11] रणधीर अज़मत-युद्ध में अस्सी सहस्र,[12] चित्तौड़ कुमार-युद्ध में पचहत्तर सहस्र[13], तथा रणधीर की मृत्यु के अवसर पर एक लाख[14] सैनिकों के मरने का उल्लेख किया है। यहाँ पर अन्य अवसरों के मृतकों के विवरणों को नहीं दिया गया है। केवल उपर्युक्त कुछ संख्याओं से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि जोधराज ने मनमानी संख्याओं की कल्पना कर ली है।

जोधराज द्वारा दी हुई अलाउद्दीन की सेना की संख्या अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों में दी हुई संख्या से मेल नहीं खाती। हम्मीर-महाकाव्य में कहा गया है कि उलग़ खाँ प्रथम बार अस्सी सहस्र सेना लेकर बनास नदी पर लड़ा था।[15] दूसरी बार वह सवा लाख सेना लेकर रणथंभौर पर चढ़ा था।[16] तीसरी बार नुसरत ख़ाँ के साथ जो सेना आई थी उसका उल्लेख हम्मीर-काव्य में नहीं किया गया है। अलाउद्दीन के आने पर प्रथम दो दिन में पचासी सहस्र मुसलमान मारे गए थे।[17]

---

[1] हम्मीररासो, छं० ६९९, पृ० १४१ [2] वही, छं० ३३५, पृ० ६८ [3] वही, छं० ५१०-१, पृ० १०३ [4] वही, छं० ४०४, पृ० ८२ [5] वही छं० ५५६-७, पृ० ११२-३ [6] वही, छं० ५८४, पृ० ११९ [7] अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ६७ [8] वही, पृ० ४९ [9] देखिए पृ० ३५४ [10] हम्मीररासो, छं० ३८१, पृ० ७८; छं० ३८९, पृ० ८० [11] वही, छं० ४०२, पृ० ८२ [12] वही, छं० ५५३, पृ० ९२ [13] वही, छं०५५५, पृ० ११२ [14] वही, छं० ५८०, पृ० ११८ [15] सर्ग ९, श्लो०२३ [16] हम्मीर-महाकव्य, सर्ग १०, श्लो० ३१ [17] वही, सर्ग १२, श्लो० ८८

फ़ारसी लेखकों के अनुसार अलाउद्दीन की सेना की संख्या का यह विवरण मिलता है :—

"अलाउद्दीन सुलतान बनने के उपरान्त (१६ जुलाई, १२६६ ई०) साठ सहस्र अश्वारोही और साठ सहस्र पदाति लेकर दिल्ली को रवाना हुआ।...जलालउद्दीन को मारकर जब अलाउद्दीन बदायूँ पहुँचा, उस समय उसकी सेना में छप्पन सहस्र अश्वारोही तथा साठ सहस्र पैदल थे।"[1] "१२६६ ई० में उसके पास बहुत से हाथी और सत्तर सहस्र अश्वारोही थे।"[2] "फ़रिश्ता के मतानुसार १२६६ ई० में मुग़लों के विरुद्ध शाही सेना की संख्या तीन लाख अश्वारोही और दो सहस्र सात सौ हाथी थे।"[3] "राज्य की ओर से नियमित रूप से वेतन पाने वाली सेना में चार लाख पचहत्तर सहस्र अश्वारोही रक्खे गए थे।"[4] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया के लेखक ने अलाउद्दीन की स्थायी सेना की संख्या लगभग पाँच लाख अश्वारोही बतलाई है।[5]

अलाउद्दीन की सेना के विषय में ऊपर जो विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न आँकड़े दिए गए हैं उनकी तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जोधराज द्वारा दी हुई उसकी सेना की संख्या अप्रामाणिक अतः अमान्य है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह परिणाम निकलता है कि हम्मीररासो ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ नहीं है। उसमें प्रयुक्त तिथियाँ एकदम अशुद्ध हैं और अधिकांश पात्रों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। कवि ने घटनाओं की वास्तविकता, सत्यता एवं प्रामाणिकता का बहुत कम ध्यान रक्खा है। उसने परंपरागत प्रचलित एवं मनगढ़न्त बातों का स्वतन्त्रता-पूर्वक प्रयोग किया है, जिसके फलस्वरूप इतिहास की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यन्त साधारण कोटि का बन पड़ा है। इसके संबंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जोधराज ने अपनी कृति के लिए रोचक, शौर्य-प्रधान और इतिहास-प्रसिद्ध कथानक को चुनकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। अतः ठोस ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से पूर्णरूपेण खरा न उतरने पर भी हम्मीररासो अपने ढङ्ग का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

---

[1] केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भा० ३, पृ० ६८; अलाउद्दीन मुहम्मद ख़िलजी, पृ० ३४
[2] वही, पृ० ४१ [3] वही, पृ० ६६ [4] वही, पृ० १२६, १३७ [5] भा० ३, पृ० ११४

परिशिष्ट-१

सहायक ग्रंथ-सूची

स्थानाभाव के कारण यहाँ पर संपूर्ण सहायक ग्रंथों की सूची देना कठिन है। केवल प्रमुख एवं चुने हुए ग्रंथों और पत्र-पत्रिकाओं की ही तालिका नीचे दी जा रही है :—

१. अगरचंद नाहटा : राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग २, प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान उदयपुर विद्यापीठ, उदयपुर।

२. अखौरी गंगाप्रसाद सिंह : पद्माकर की काव्य-साधाना, साहित्य-सेवा-सदन काशी, प्रथम संस्करण, जन्माष्टमी, १९९१ वि०।

३. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पुस्तक-भंडार, लहेरिया सराय, १९२७ ई०।

४. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, डाक्टर : फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑव् अवध, अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, १९३३ ई०।

५. ,, : शुजाउद्दौलाह, भाग १, एस० एन० सरकार, २, गंगाराम ललित लेन, कलकत्ता।

६. ,, : शुजाउद्दौलाह, भाग २ ,, ,,

७. आर० डबल्यू० फ़ेज़र : ए लिट्रेरी हिस्ट्री ऑव् इंडिया, तीसरी आवृति लन्दन, १९१५ ई०

८. आर० सी० मजूमदार, एच० सी० राय चौधरी, काली किंकरदत्त } एन एडवान्स्ड हिस्ट्री ऑव् इंडिया, मेक्मिलन एन्ड को० लिमिटेड, लंदन, १९४८ ई०।

९. ईश्वरी प्रसाद, डाक्टर : हिस्ट्री ऑव् मैडीविल इंडिया, इंडियन प्रेस इलाहाबाद, १९४० ई०।

१०. ,, : हिस्ट्री ऑव् मुस्लिम रूल इन इंडिया। ,,

११. उदयनारायण तिवारी, डाक्टर : वीरकाव्य, भारती-भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद। प्रथम संस्करण, २००५ वि०।

१२. ए० के० फोर्ब्स : रासमाला भाग १, लन्दन १८५६ ई०।

१३. एच० ए० एस्वर्थ : बैलड्स ऑव् दी मराठाज़, लाँगमैन्स, १८९४ ई०।

१४-२०. एच० एम० इलियट एन्ड डाउसन : हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भाग १-७, ट्रूबनर एण्ड को० ८ एण्ड ६० पेटरनोस्टर रो० लन्दन।

२१. एच०एम०इलियट : मेमायर्स ऑव् दी हिस्ट्री, फ़ॉकलोर एन्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑव् दी रेसेज़ ऑव् दी नॉर्थ-वेस्टर्न प्रॉविन्सेज़, ऑव् इंडिया, भाग १, जॉन बीम्स द्वारा संपादित।

२२. एस० आर० शर्मा : ए बिबिलयोग्रॉफ़ी ऑव् मुग़ल इंडिया } करनाटक पब्लिशिंग हाउस, बंबई २।
२३. ,, : दी क्रेसेंट इन इंडिया

२४. आर० एच० शर्मा : ए स्टडी इन मेडीविल हिस्ट्री, करनाटक पब्लिशिंग हाउस, बंबई २ ।

२५. एल० पी० टेसीटरी, डाक्टर : छन्द राउ जेता सी रो विथू सूजे रो किश्रो, एशियाटिक सोसायटी श्राव् बंगाल, कलकत्ता, १६२०ई० ।

२६. ,, : डेस्क्रिप्टिव कैटॉलॉग ऑव् बारडिक पोइट्री ,, ,, १६१७ ई० ।

२७. एच० मुनरो चेद्विक एण्ड एन० के० चेद्विक : दी ग्रोथ ऑव् लिट्रेचर, भाग २, यूनीवर्सिटी प्रेस केम्ब्रिज, १६३६ ई० ।

२८. एच० जी० रॉलिंसन : शिवाजी दी मराठा, आक्सफ़ोर्ड, १६१५ ई० ।

२६-३१. ए० रोजर्स एन्ड एच बीवरेज : अकबर नामा, भाग १-३ ⎫ एशियाटिक सोसा-
३२-३५. ,, : अकबर नामा फेसीकुलस १-४ ⎬ इटी ऑव् बंगाल
३६. ,, : आईन-इ-अकबरी, भाग १ ⎭ कलकत्ता ।

३७-३८. ,, : तुजुक-इ-जहाँगीरी, भाग १-२ लन्दन, ,, १६०६ ।

३६. ,, : दी मआसिरुल् उमरा, एशियाटिक सोसायटी : ऑव् बंगाल, कलकत्ता, १६११ ।

४०. कविराजा मुरारिदान : डिंगल-कोष ।

४१. कृष्णानन्द : राग-कल्पद्रुम-खंड १, स्वर्गीय : कृष्णानन्द रागसागर विरचित, प्रकाशक : श्रीरामकमलसिंह, २४३, १ अपर सरकुलर रोड, बंगीय-साहित्य-परिषद्-मंदिर, कलकत्ता सं० १६७१ वि० ।

४२. ,, : दूसरा खंड, ,, संवत् १६७३ वि० ।

४३. कन्हैयालाल पौद्दार, सेठ : काव्य-कल्पद्रुम, प्रथम भाग ⎫ पौद्दार-भवन,
४४. ,, ,, द्वितीय भाग ⎭ मथुरा ।

४५. कृष्णशंकर शुक्ल, पंडित : केशव की काव्य कला, सुलभ पुस्तकमाला-कार्यालय बड़ा गणेश, बनारस, द्वितीय संस्करण, संवत् २००२ ।

४६. कृष्णबिहारी मिश्र : मतिराम-ग्रंथावली, गंगा-ग्रंथगार ३६, लॉटूश रोड, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, १६६१ वि० ।

४७. क़ानूनगो : दारा शुकोह; एस० सी० सरकार एण्ड संस, कलकत्ता ।

४८. ,, : हिस्ट्री ऑव् दी जाट्स, भाग १, एच० सी० सरकार एन्ड संस, कलकत्ता, १६२५ ई० ।

४६. किशोरीशरण लाल, डाक्टर : अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी (यह थीसिस अब प्रकाशित हो गई है। प्रस्तुत ग्रंथ में इसकी टाइपड़ प्रति (प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय में वर्त्तमान) से सहायता ली गई है।

५०. कुलपति जीवानन्द-विद्यासागर, पंडित : शब्द-सागर, आशुबोध भट्टाचार्य नित्यबोध भट्टाचार्य, प्रथम संस्करण, १६०० ई० ।

५१. केशव : कवि-प्रिया, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १९२४ ई० ।

५२. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इंडिया, भाग ३, (केम्ब्रिज) १९२८ ई० ।

५३. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव् इण्डिया, भाग ४, (,,) ।

५४. गणेशप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी के कवि और काव्य भा० १, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उ० प्र० प्रयाग । १९३७ ई० ।

५५. गङ्गादास : छन्दोमंजरी, जयकृष्णदास-हरिदास गुप्त, चौखंबा संस्कृत सीरीज़ ऑफ़िस बनारस सिटी ।

५६. गुलबदन बेगम : हुमायूँ नामा, रॉयल एशियाटिक सोसायटी लन्दन, १९०२ ।

५७. गुलाबराय, बाबू : नवरस, प्रकाशक-मन्त्री, आरा नागरी प्रचारिणी सभा, आरा, द्वितीय संस्करण, १९३४ ई० ।

५८-६०. गुलाम हुसेन खाँ : दी सैर मुताखरीन, भाग १-३ आर०केम्बे एन्ड को०कलकत्ता । (अनुवादक—नोटा मेनस) ।

६१. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा । प्रथम संस्करण, संवत् १९९० ।

६२. चन्द्रवरदायी : पृथ्वीराजरासो, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस ।

६३. चन्द्रशेखर : हम्मीर-हठ, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, १९२८ ।

६४. चन्द्रमोहन घोष : प्राकृत पैंगलम्, एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, कलकत्ता १९०२ ।

६५. चिन्तामणि विनायक वैद्य : हिन्दू भारत का उत्कर्ष (मध्ययुगीन भारत, भाग २) श्री मुकुन्दलाल श्रीवास्तव, श्री काशी विद्यापीठ, काशी । प्रथम वार, संवत् १९८६ ।

६६. चौधरी रामलाल जी हाला : जाट क्षत्रिय-इतिहास (जाट क्षत्रिय-भंडार संघ, आगरा, १९९८ वि०)

६७. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' : छन्द-प्रभाकर, बिलासपुर, १९२२ ई० ।

६८. जदुनाथ सरकार : दी हिस्ट्री आव् औरंगज़ेब, भाग १,
६९. ,, : ,, भाग २,
७०. ,, : ,, भाग ३,
७१. ,, : ,, भाग ४, १९१६ ई०
७२. ,, : दी हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब, भाग ५, १९२४ ई०
७३. ,, : दी फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भाग १, १९३२ ई०
७४. ,, : ,, भाग २, १९३४ ई०
७५. ,, : ,, भाग ३,
(६८–७५) एस० सी० सरकार एण्ड संस, कलकत्ता ।

७६. जदुनाथ सरकार : दी फ़ॉल ऑव् दी मुग़ल इम्पायर, भाग ४, } एस० सी० सरकार एन्ड संस, कलकत्ता।
७७. ,, शिवाजी एन्ड हिज़ टाइम्सः १६१६ ई०
७८. ,, : हाउस ऑव् शिवाजी
७६. जानकी नाथसिंह, डाक्टर : दी कंट्रीब्यूशन ऑव् हिन्दी पोयट्स टू प्राँसॉडी, (थीसिस) १६४५, प्रयाग विश्वविद्यालय।
८०. जी० एस० सर देसाई : न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भाग १, फ़ुनेक्स पब्लीकेशन्स चीरा बाज़ार के लिये के० बी० धावले द्वारा प्रकाशित, बम्बई २।
८१. ,, न्यू हिस्ट्री ऑव् दी मराठाज़, भाग २ ,, ,, ,,
८२. जी० ग्रियर्सन : माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑव् हिन्दुस्तान, कलकत्ता, १८८६।
८३. टॉड : राजस्थान, भाग १, कलकत्ता, १८७७।
८४. डब्ल्यू ह्वे : हिस्ट्री ऑव् आसफ़उद्दौलाह, (अबू तालिब कृत) लंदन, १८८५।
८५. ताराचंद, डाक्टर : इंफ़ुलुएँस ऑव् इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, दी इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, १६३६।
८६. दास गुप्ता एस० एन० एंड एस० के० डे : ए हिस्ट्री ऑव् संस्कृत लिट्रेचर, भाग १, कलकत्ता विश्वविद्यालय।
८७. दीवान बहादुर एल० डी० स्वामी कुन्नू पिल्लई : इंडियन क्रानॉलॉजी*, ग्रांट एन्ड को० मद्रास, १६११।
८८. देशराज, ठाकुर : जाट इतिहास, श्री ब्रजेन्द्र साहित्य समिति, आगरा प्रथम संस्करण, १६३४ ई०।
८६. धीरेन्द्र वर्मा, डा० : विद्यापीठ अभिनंदनग्रंथ, काशी विद्यापीठ रजत जयंती अभिनंदन ग्रंथ का लेख चन्दवरदायी के पृथ्वीराजरासो पर।
६०. जयचन्द सूरि कृत हम्मीर महाकाव्य, नीलकंठ जनार्दन कीरतने द्वारा संपादित } एज्यूकेशन सोसायटी प्रेस, बाइ-कुला बम्बई, १८७६ ई०।
६१. पर्शियन करसपॉडेंस, केलेंडर ऑव, भाग १, प्रकाशक दी इंडियन गवर्मेंट कलकत्ता, १६११
६२. ,, ,, भाग ४, १६२५, ,, ,, कलकत्ता।
६३. ,, ,, भाग ६, १६३८, ,, ,, देहली।
६४. ,, ,, भाग ७, १६४०, ,, ,, देहली।
६५. पॉगसन कैप्टेन डब्ल्यू० आर० : हिस्ट्री ऑव् दी बुन्देलाज़, एशियाटिक लिथो-ग्राफ़िक कंपनी, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता, १८२८ ई०।
६६. प्राकृत-पिंगल-सूत्राणि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १८६४।

* प्रस्तुत ग्रन्थ में तिथियों की गणना करने में इस पुस्तक में दिये हुए चक्रों आदि से सहायता ली गई है।

९७. पुरोहित हरिनारायण शर्मा : व्रजनिधि-ग्रंथावली, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रथमावृत्ति, १९९० वि० ।

९८. पूना रेज़ीडेंसी करसपांडेंस, भाग १, (संपादक जदुनाथ सरकार) बंबई सरकार १९३६

९९. व्रजरत्न दास : मुआसिरुल् उमरा, भाग १ प्रथम संस्करण, १९८८ वि० } काशी नागरी प्रचारिणी सभा

१००. ,, ,, भा० २, प्रथम संस्करण, १९९५ वि० भा० ३, ,, प्रथम संस्करण, २००४ वि० } काशी नागरी प्रचारिणी सभा

१०१. ,, : भूषण-ग्रंथावली रामनारायण लाल, पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद, प्रथम बार १९३० ।

१०२. बाबूराम सक्सेना, डाक्टर : कीर्तिलता (विद्यापतिकृत) इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९८६ ।

१०३.-१०५. बाँकीदास-ग्रंथावली, भाग १-३, काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।

१०६. ब्रिटिश म्यूज़ियम कैटॉलॉग

१०७. बेनीप्रसाद, डाक्टर : हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर, भाग १, आक्सफ़ोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १९२२ ई० ।

१०८. भगवान दीन, लाला : केशव-कौमुदी (रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध), रामनारायण लाल पब्लिशर और बुकसेलर इलाहाबाद, मार्गशीर्ष, २००१ वि० ।

१०९. ,, : ,, (उत्तरार्द्ध) ,, ,,

११०. ,, : राजविलास (कवि मान कृत), काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।

१११. ,, केशव-पंचरत्न, रामनारायण लाल बुकसेलर कटरा, इलाहाबाद, प्रथमबार, श्रावण नागपंचमी, १९८६ वि० ।

११२. ,, : हिम्मतबहादुर-विरुदावली, शंकरदत्त बाजपेयी द्वारा, भारत-जीवन प्रेस बनारस में मुद्रित ।

११३. भगीरथ मिश्र, डाक्टर : हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास, लखनऊ विश्व-विद्यालय २००५ वि० ।

११४. भगीरथ प्रसाद दीक्षित : भूषण-विमर्श, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, पहला संस्करण, १९९५ ।

११५. भूरसिंह शेखावत, ठाकुर मलसीसर द्वारा संगृहीत : महाराणा यशप्रकाश, राज्य जयपुर, १९००ई०, श्री वेंकटेश्वर (स्टीम) प्रेस, बम्बई ।

११६. महताब चन्द्र खरैड़ : रघुनाथ रूपक गीताँरो, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

११७. महाकवि सूर्य मल्ल मिश्रण : वीर सतसई, बंगाल हिन्दी मण्डल, ८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता ।

११८. ,, : वंश-भास्कर, रामश्याम प्रेस, जोधपुर ।

११६. महामहोपाध्याय डाक्टर राय बहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताने का इतिहास भाग १, वैदिक यन्त्रालय अजमेर द्वितीय संस्करण १६८३ वि० ।
१२०. „ „ भाग २, „ वि० सं० १६२३ ई०
१२१. „ „ तीसरा खंड, „ १६८६ वि० ।
१२२. „ „ चौथी जिल्द, „ १६३८ ई० ।
१२३. „ उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, १६८८ वि० ।
१२४. „ „ भाग २, „
१२५-१२६. महामहोपाध्याय पं० विश्वेश्वर नाथ रेउ : मारवाड़ का इतिहास, प्रथम तथा द्वितीय भाग, आर्क्यालॉजिकल डिपार्टमेंट, जोधपुर, १६३८ ई० ।
१२७-१२६. „ „ : भारत के प्राचीन राजवंश, भाग १-३, हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर कर्यालय हीराबाग़ पो० गिरगाँव, बम्बई ।
१३०. महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री : प्रेलीमिनरी रिपोर्ट ऑव् दी ऑपरेशन इन सर्च ऑव् दी मेनुस्क्रप्ट्स ऑव् बॉरडिक क्रॉनीकिल्स एशियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, कलकत्ता, १६१३ ई० ।
१३१. माताप्रसाद गुप्त, डाक्टर : श्री रामचरित मानस, साहित्य कुटीर प्रयाग, प्रथम संस्करण, १६४६ ई० ।
१३२. „ : हिन्दी पुस्तक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद १६४५ ई० ।
१३३. मिश्र-बन्धु : मिश्र-बन्धु-विनोद, प्रथम भाग, गङ्गा ग्रंथागार, ३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, १६६४ वि० ।
१३४. „ „ द्वितीय भाग, वही, द्वितीय वार, १६८४ वि० ।
१३५. „ „ तृतीय भाग, गङ्गा-ग्रंथागार, ३६, लाँटूश रोड लखनऊ, द्वितीयावृत्ति, १६६१ वि० ।
१३६. „ „ चतुर्थ भाग, वही, प्रथमावृत्ति, १६६१ ।
१३७. „ „ भूषण-ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी । पंचम संशोधित संस्करण १६६६ वि० ।
१३८. „ संक्षिप्त हिन्दी नवरत्न, गङ्गा-ग्रंथागार ३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ प्रथमावृत्ति, १६६२ वि० ।
१३६. मोतीलाल मेनारिया : डिंगल में वीररस, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग । संवत् २००३ ।
१४०. मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं० २००६ ।

१४१. „ : राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, हिन्दी विद्यापीठ उदयपुर। प्रथम बार १६४२ ई०।

१४२. „ : राजस्थानी साहित्य की रूप-रेखा, छात्रहितकारी पुस्तक माला, दारागंज प्रयाग, अगस्त, १६१६ ई०।

१४३-१४४. रामनारायण दूगड़ (अनुवादक) मुहणोत नैणसी की ख्यात, भाग १-२, } काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

१४५. रघुवंश महाकाव्य, श्री बेंकटेश्वर स्टीम प्रेस सन् १६६४, शाके १८२६। (कालिदास कृत)

१४६. रघुवंश सहाय वर्मा, डाक्टर : प्रकृति और काव्य, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

१४७. रमाशंकर शुक्ल, डाक्टर : हिन्दी साहित्य का इतिहास।

१४८. „ : इवॉल्यूशन ऑव् हिन्दी पोयटिक्स (थीसिस) अप्रकाशित।

१४६. „ : अलंकार-पीयूष (पूर्वार्द्ध), रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १६२६ ई०।

१५०. „ „ उत्तरार्द्ध, वही।

१५१. पं० राजनारायणण शर्मा और देव चन्द्र विशारद } भूषण-ग्रंथावली, हिन्दी भवन, लाहौर।

१५२. रामचन्द्र श्रीवास्तव, हिन्दी काव्य में प्रकृति, सरस्वती मंदिर बनारस, १६४८ ई०।

१५३. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी-साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, द्वितीय संस्करण, २००३ वि०।

१५४. „ : जायसी ग्रंथावली, द्वितीय संस्करण, १६३५ ई०। (तथा) चतुर्थ संस्करण २००६ वि०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

१५५. „ चिन्तामणि, भाग २, सरस्वती मंदिर जतनवर काशी २००२ वि०।

१५६. रामकुमार वर्मा, डॉक्टर : हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १६३८।

१५७. रामकर्ण पंडित : राजरूपक, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, १६६८ वि०।

१५८. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डाक्टर : हिंदी लिट्रेचर एन्ड इट्स कलचुरल बैक-ग्राउंड (१७५७-१८५७ ई०)-थीसिस।*

१५६. लाला सीताराम : सिलेक्शन्स फ्रॉम हिन्दी लिट्रेचर भाग १, यूनीवर्सिटी ऑव् कलकत्ता, १६२१ ई०।

१६०. „ : हिन्दी सर्वे कमेटी रिपोर्ट, १६३० ई०।

*** अब इसका हिन्दी रूपांतर 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका' नाम से हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रकाशित हो गया है।**

१६१-२. विलियम इरविन : लेटर मुग़ल्स, भाग १-२, एस० सी० सरकार एण्ड संस, कलकत्ता
१६३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : पद्माकर पंचामृत, प्रथम संस्करण, श्रीरामभवन पुस्तक भवन, काशी, १६६२ वि०
१६४. विंसेंट स्मिथ : अकबर दी ग्रेट
१६५. वी० एस० आप्टे : प्रेक्टीकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, गोपाल नारायण एण्ड को० बम्बई, १६२४ वि०
१६६. श्यामसुन्दरदास (डा०) : हिन्दीशब्दसागर, (नागरी प्रचारिणी सभा), १६२७
१६७. ,, : हिन्दी भाषा और साहित्य, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद
१६८-६. ,, हस्तलिखित पुस्तकों का विवरण, भाग १-२
१७०. श्यामनारायण कपूर : डिंगल के गीत और उनका पिंगल
१७१. शिवदयाल जायसवाल : वीरगाथा, शिवदयाल ठेकेदार, पत्थर गली, इलाहाबाद
१७२. शिवसिंह सेगंर : शिवसिंहसरोज
१७३. शिवाजी सोवेनियर।
१७४ शिवाजीमहाराजचरितम्
१७५. शिवचरित निबन्धावली
१७६. सर मोनियर विलियम्स् : ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, क्लेरंडन प्रेस ऑक्सफ़ॅर्ड, नवीन संस्करण, १८६६ ई०
१७७. सत्यजीवन वर्मा : वीसलदेव रासो, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १६२२
१७८. सरकार एन्ड दत्त : टेक्सट-बुक ऑव् मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, तीसरी आवृत्ति, १६३७
१७६. साहित्यसागर।
१८०. सिद्धान्त, एन० के० : हीरोइक एज ऑव् इंडिया
१८१. सिन्हा, डाक्टर : राइज़ ऑव् दी पेशवाज़
१८२. सी० बी० वैद्य : हिस्ट्री ऑव् मेडीविएल हिन्दू इंडिया, भाग २
१८३-४. सी० ए० किंकेड एन्ड रा० ब० डी० बी० पारसनिस : हिस्ट्री ऑव् दी मराठा पीपुल, भाग १, आक्सफ़र्ड, १६१६ ई०, भाग १६।
१८५. सुजानचरित्र की हस्तलिखित प्रति, महाराजा पब्लिक लाइब्रेरी, भरतपुर
१८६. सूर्यकान्त, डाक्टर : हिन्दी साहित्य का इतिहास
१८७. हरबिलास सारडा : पृथ्वीराज-विजय, वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर, १६३५
१८८. ,, इम्परर बीसलदेव, ,, , १६३५
१८६. ,, हम्मीर ऑव् रणथम्भौर, अजमेर, १६२१
१६०. ,, महाराणा साँगा, अजमेर, १६२४ ई०
१६१. ,, महाराणा कुंभा, अजमेर
१६२. हस्तलिखित ग्रंथों की रिपोर्ट १६४० ई० (अप्रकाशित) काशी नागरी प्रचारिणी सभा

१९३-७. आर्कियालॉजीकल सर्वे रिपोर्ट्स : भाग ७, भाग ११, १९१६-१७, १९२५-२६
१९८-९. इंडियन एंटीक्विरी, १९०४ ई०, १९११ ई०
२००-६. इम्पीरियल गज़ेटियर ऑव् इंडिया, भाग ६, १४, १६-२१, २३, २५
२०७-८. एशियाटिक एनुअल रजिस्टर, १८०३ ई०, १८०६, ई०
२ ९. गज़ेटियर ऑव् बॉम्बे प्रेसीडेन्सी, भाग १८, खण्ड २, पूना ब्रांच, १८८५
२१०-११. गज़ेटियर अरवल तथा जयपुर
२१२-२१. डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, झाँसी, फ़तेहपुर, ग़ाज़ीपुर, जालौन, इलाहाबाद, कानपुर, बाँदा, ब्रिटिश गढ़वाल, ग्वालियर स्टेट गज़ेटियर, भाग १,नार्थ-वेस्टर्न प्राँविस् गज़ेटियर, भाग १
२२२. जरनल ऑव् इंडियन आर्ट एन्ड इंडस्ट्री
२२३-३१. दी जरनल ऑव् रॉयल एसियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, सं० LXXI, १, अंक २, १९०२ ई०, १८८१, सं० XLVII, भाग १, अंक ४, १८७८ ई०, १८७९ ई०, १९०० ई०, भाग ५, १८८७ ई०, १८९७ ई०, १८९५-ई०
२३२. जरनल ऑव् इण्डियन आर्ट, १९१५-१६
२३३. जरनल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०९
२३४. डी कुज़ : पोलीटिकिल रिलेशन्स एक्ज़िटेसिंग बिट्विन दी ब्रिटिश गवर्नमेंट एण्ड नेटिव स्टेट्स एण्ड चीफ़ सबजेक्ट टू दी गवर्नमेंट ऑव् नार्थ वेस्टर्न प्रॉविन्सेज़
२३५. द्वादश हिन्दी-साहित्य सम्मेलन लाहौर, कार्य विवरण, दूसरा भाग (निबन्ध माला), १९७८ वि०, स्वागत-कारिणी-सभा द्वारा, प्रकाशित
२३६-४८. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण भाग ३, १९७९, वि०, १९८०, भाग ५, १९८१ वि०, भाग ६, १९८२ वि०, भाग ८, १९८४ वि०, भाग १०, १९८६ वि०, भाग ११, १९८७ वि०, भाग १२, १९८८ वि०, भाग १३, १९८९ वि०, भाग १४, १९९० वि०, भाग १५, १९९१ वि०, भाग २०, १९९६ वि०, भाग २२, १९९८ वि०
२४९-५०. मॉडर्न रिव्यू अक्टूबर १९२३, दिसम्बर १९३८
२५१. माधुरी सितम्बर, १९३९
२५२. राजस्थान, वर्ष १, अंक २, १९९२ वि०
२५३. विन्ध्य-भूमि, पन्ना-राज्य, वर्ष २, सं० १, दिसम्बर, १९४६ ई०
२५४. विशाल भारत, अगस्त, १९३०
२५५-६. सी० यू० एचिंसन : ट्रीटीज़, इङ्गेजमेंट्स एण्ड सनद्स इन इन्डिया, भाग ५, खंड २, द्वितीय संस्करण, १८७६ ई०, भाग ३, कलकत्ता, १९०९ ई०
२५७. सर्च रिपोर्ट फॉर हिन्दी मैनुस्क्रप्ट्स (सभी प्रकाशित तथा उन्नीस सौ छियासी तक की अप्रकाशित रिपोर्ट्स), काशी नागरी प्रचारिणी सभा
२५८. हिन्दुस्तानी पत्रिका, भाग २, अंक ३, जुलाई १९३२ ई०

——

परिशिष्ट (ख)

नामानुक्रमणिका

हिन्दी वीरकाव्य (१६००-१८०० ई०) में प्रयुक्त व्यक्तियों, स्थानों, पर्वतों, नदियों आदि के नामों की सूची नीचे दी जा रही है। नामों के सामने के अंक पृष्ठ-संख्या सूचित करते हैं।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२२	१ = ३७ ई०	१८३७ ई०
१९	९	१८२८	१७२८
,,	१९	रस-कल्लोस	रस-कल्लोल
,,	२०	नान्नियका-भेद	नायिका-भेद
२३	८	जटमत	जटमल
२५	१६-१७	मध्य	मध्यन्य
२६	२०	६८० ई०	१६८० ई०
२७	१०	मध्यस्थ	मध्यन्य
,,	,,	.४३	.०३
२८	१६	१६१० ई०	१७१० ई०
,,	१८	१६२८ ई०	१६५८ ई०
३२	२२	मुदा	मुद्रा
,,	२४ २५	रजवान	रजधान
,,	२५	१८२५	१८५५
३४	९ (टिप्पणी)	१९७६	१९७
३५	१०	मध्यस्थ	मध्यन्य
,,	१२	समासिकाल	व्यासिकाल
३९	२ (टिप्पणी)	१६	१७
,,	वही	३४-६	३४
४१	२ (टिप्पणी)	८९	७९
४४	६ (टिप्पणी)	१४४	२४४
४५	२ (टिप्पणी)	समवन्य	समन्वय
४८	५ (टिप्पणी)	८-४५	८४-५
४८	१९वीं पंक्ति के पश्चात् जोड़िए	वर्णन करने से युद्ध के उत्तम चित्रण के तो काव्य में दर्शन हो जाते हैं, पर इससे कथानक की गति मंद अवश्य पड़ गई है।	
४९	३ (टिप्पणी)	२३४	३४
,,	५ ,,	२८९	२७९
५०	२ ,,	४७-१	४७-५१
५२	२६	१	८
,,	२७	२	९
५२	४ (टिप्पणी)	४	१०
५३	२ ,,	८८७	९६७
५५	१७	आवश्यक था	आवश्यक न था
५७	५	अकबार	अकबर
५९	२०	कासीमनि	कासीसनि
६०	१३	लगा देना	लगा देने से
,,	२१	समाप्ति	समर्पित
,,	१ (टिप्पणी)	६-१०७	१०६-१०७
६१	१८	जाने के	जाने से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२०	पूत	पूठ
६१	२०	थेना	थे ना
६२	७ (टिप्पणी)	२८६	३८६
६५	४ ,,	४४-२	४०-२
६८	१ ,,	४	२४
,,	२ ,,	९५६	९५-६
६९	३ ,,	७७३-७	७७६-७
७१	२ ,,	अंग	अंक
७२	२५	मनसुखराय	सबसुखराय
७३	२ (टिप्पणी)	६८	६८६
७४	१ ,,	२८९	२९८
,,	,,	४२३	४१३
७५	,,	९३	९३६
७८	१०	आगे के	आगे के पृष्ठों में
७९	१	मीन	मीच
८९	१४	गलकर	गलकत
९१	१५	रसब	रस
,,	३२	मैया	भैया
९५	२	सुविक	सुक्कि
१००	२६	प्रयुक्य	प्रयुक्त
१०७	२१	तृतीत	तृतीय
,,	२१	हर्षण	प्रहर्षण
१०८	१ (टिप्पणी)	राजविसाल	राजविलास
१११	१८	मेघत	मेघन
११४	२	मूर	भूर
१२०	१७	दंडक	दंडका
१२३	२४	=	८
१४१	२ (टिप्पणी)	संस्करत्त	संस्करण
१४५	२५	रीति-कवि	रीति-कवि थे
१४९	२९	अरुन	अरु
१४९	१ (टिप्पणी)	११८६ वि०	१९८६ वि०
१५१	२	अखि अखरोट अति	अति अखरोट अखि
१५२	२	भूररुह	भूरुह
,,	२४	से भी	में भी
१५५	२५	तहाँ कूप कासार	[इसे निकाल दीजिए]
१५६	२०	जुगनू नहूँ	जुगनून हूँ
१५८	११	रूताल	रु ताल
१७९	१२	१३३४ ई०	१९३४ ई०
,,	२९	१६१४	१६१५
१८७	१२	बेगम खाँ किया है	बेगम खाँ की मृत्यु का उल्लेख किया है